CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विस्मृत यात्री

राहुल सांकृत्यायन

किताब महल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रथम संस्करण : 1956
प्रस्तुत संस्करण : 1993

मुख्य वितरक

1. किताब महल एजेन्सीज,
84, के० पी० कक्कड़ रोड,
इलाहाबाद — 211003
फोन नं० : 50540

2. किताब महल डिस्ट्रीब्यूटर्स,
28, नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली — 2
फोन नं० : 3273230

3. किताब महल एजेन्सीज,
अशोक राजपथ,
पटना — 4
फोन नं० : 50599

4. किताब महल,
मनोज बिल्डिंग,
सेन्ट्रल बाजार रोड,
रामदास पेठ, नागपुर — 10

5. किताब महल एजेन्सीज,
A3/4A, मछोदरी,
वाराणसी — 220001
फोन नं० : 332721

6. पी० जी० परदेसी,
6 मेघदूत, 27 पी० एम० मार्ग,
विले पार्ले (पूर्व)
बम्बई — 400057
फोन नं० : 6132360

प्रकाशक : **किताब महल,** 22 ए, सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद।
मुद्रक : **सेन्चुरी प्रिन्टर्स,** 22, सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशकीय

हिन्दी साहित्य में महापंडित राहुल सांकृत्यायन का नाम इतिहास-प्रसिद्ध और अमर विभूतियों में गिना जाता है। राहुल जी की जन्मतिथि 9 अप्रैल, 1893 ई० और मृत्युतिथि 14 अप्रैल, 1963 ई० है। राहुल जी का बचपन का नाम केदारनाथ पाण्डे था। बौद्ध दर्शन से इतना प्रभावित हुए कि स्वयं बौद्ध हो गये। 'राहुल' नाम तो बाद में पड़ा—बौद्ध हो जाने के बाद। 'सांकत्य' गोत्रीय होने के कारण उन्हें राहुल सांकृत्यायन कहा जाने लगा।

राहुल जी का समूचा जीवन घुमक्कड़ी का था। भिन्न-भिन्न भाषा साहित्य एवं प्राचीन संस्कृत-पाली-प्राकृत-अपभ्रंश आदि भाषाओं का अनवरत अध्ययन-मनन करने का अपूर्व वैशिष्ट्य उनमें था। प्राचीन और नवीन साहित्य-दृष्टि की जितनी पकड़ और गहरी पैठ राहुल जी की थी—ऐसा योग कम ही देखने को मिलता है। घुमक्कड़ जीवन के मूल में अध्ययन की प्रवृत्ति ही सर्वोपरि रही। राहुल जी के साहित्यिक जीवन की शुरुआत सन् 1927 ई० में होती है। वास्तविकता यह है कि जिस प्रकार उनके पाँव नहीं रुके, उसी प्रकार उनकी लेखनी भी निरन्तर चलती रही। विभिन्न विषयों पर उन्होंने 150 से अधिक ग्रंथों का प्रणयन किया है। अब तक उनके 130 से भी अधिक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। लेखों, निबन्धों एवं भाषणों की गणना एक मुश्किल काम है।

राहुल जी के साहित्य के विविध पक्षों को देखने से ज्ञात होता है कि उनकी पैठ न केवल प्राचीन-नवीन भारतीय साहित्य में थी, अपितु तिब्बती, सिंहली, अंग्रेजी, चीनी, रूसी, जापानी आदि भाषाओं की जानकारी करते हुए तत्तत् साहित्य को भी उन्होंने मथ डाला। राहुल जी जब जिसके सम्पर्क में गये, उसकी पूरी जानकारी हासिल की। जब वे साम्यवाद के क्षेत्र में गये, तो कार्ल मार्क्स, लेनिन, स्तालिन आदि के राजनीतिक दर्शन की पूरी जानकारी प्राप्त की। यही कारण है कि उनके साहित्य में जनता, जनता का राज्य और मेहनतकश मजदूरों का स्वर प्रबल और प्रधान है।

राहुल जी बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न विचारक हैं। धर्म, दर्शन, लोकसाहित्य, यात्रासाहित्य, इतिहास, राजनीति, जीवनी, कोश, प्राचीन तालपोथियों का सम्पादन आदि विविध क्षेत्रों में स्तुत्य कार्य किया है। राहुल जी ने प्राचीन के खण्डहरों से गणतंत्रीय प्रणाली की खोज की। 'सिंह सेनापति' जैसी कुछ कृतियों में उनकी यह अन्वेषी वृत्ति देखी जा सकती है। उनकी रचनाओं में प्राचीन के प्रति आस्था, इतिहास के प्रति गौरव और वर्तमान के प्रति सधी हुई दृष्टि का समन्वय देखने को मिलता है। यह केवल राहुल जी थे जिन्होंने प्राचीन और वर्तमान भारतीय साहित्य-चिन्तन को समग्रतः आत्मसात् कर हमें मौलिक दृष्टि देने का निरन्तर प्रयास किया है। चाहे साम्यवादी साहित्य हो या बौद्ध दर्शन, इतिहास-सम्मत उपन्यास हो या 'वोल्गा से गंगा' की कहानियाँ—हर जगह राहुल जी की चिन्तक वृत्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और अन्वेषी सूक्ष्म दृष्टि का प्रमाण मिलता जाता है। उनके उपन्यास और कहानियाँ बिलकुल एक नये दृष्टिकोण को हमारे सामने रखते हैं।

समग्रत: यह कहा जा सकता है कि राहुल जी न केवल हिन्दी साहित्य अपितु समूचे भारतीय वाङ्मय के एक ऐसे महारथी हैं जिन्होंने प्राचीन और नवीन, पौर्वात्य एवं पाश्चात्य, दर्शन एवं राजनीति और जीवन के उन अछूते तथ्यों पर प्रकाश डाला है जिन पर साधारणत: लोगों की दृष्टि नहीं गई थी। सर्वहारा के प्रति विशेष मोह होने के कारण अपनी साम्यवादी कृतियों में किसानों, मजदूरों और मेहनतकश लोगों की बराबर हिमायत करते दीखते हैं।

विषय के अनुसार राहुल जी की भाषा-शैली अपना स्वरूप निर्धारित करती है। उन्होंने सामान्यत: सीधी-सादी सरल शैली का ही सहारा लिया है जिससे उनका सम्पूर्ण साहित्य— विशेषकर कथा-साहित्य—साधारण पाठकों के लिए भी पठनीय और सुबोध है।

प्रस्तुत कृति "विस्मृत यात्री" राहुल जी का एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसके कथानक से पाठक समझेंगे कि यह एक इतिहास का और घुमक्कड़ के अनुभवों का सागर है। उपन्यास का नायक नरेन्द्रयश कोई काल्पनिक पात्र नहीं। वह एक भारतीय ही था, वास्तव में था। बौद्ध भिक्षु बनने के बाद उसने भारत, सिंहल, मध्य-एशिया और चीन आदि देशों का भ्रमण किया। उसकी मृत्यु भी चीन में ही हुई। नरेन्द्रयश ने खूब भ्रमण किया और आज उसे हम विसर गये हैं, अत: उसे राहुल जी ने 'विस्मृत यात्री' कह कर उसकी स्मृति इस उपन्यास के द्वारा जाहिर की है।

'विस्मृत यात्री' के नायक ने इतिहास और पर्यटक प्रवृत्ति का जो अपने जीवन में अनुपम मेल किया है, वह अद्‌भुत तो है ही, अत्यन्त रोचक व रोमांचक भी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दो शब्द

इतिहास का विद्यार्थी और पर्यटक होने के कारण "विस्मृत यात्री" जैसे उपन्यास के लिखने के लिये मेरा ध्यान जाना स्वाभाविक ही है। मैं ऐसा करने में इतिहासकार और पर्यटक की ज़िम्मेवारी को ही पूरी तौर से निर्वाह करने की कोशिश करता हूँ, जिसका फल यह भी होता है, कि कितने ही उपन्यास-प्रेमी इसमें कुछ कमियाँ पाते हैं। ऐसे पाठकों के दृष्टिकोण से मेरे में कुछ अन्तर है, तो भी जिन दोषों का उद्‌भावन किया जाता है, उनमें से कितनों को मैं अनुभव करता हूँ। पर, हटाना मेरे बस की बात नहीं। हटाने के लिये कुछ तथ्यों को भी हटाना पड़ेगा, और साथ ही उतने धैर्य का मुझमें अभाव भी है। अतीत के समाज को ईमानदारी के साथ वास्तविक रूप में रखना मैं अपना प्रथम कर्तव्य समझता हूँ। ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास और भूगोल या तत्कालीन देश-काल-पात्र की असंगति को मैं अक्षम्य दोष और इसे किसी भी बहाने से व्याख्या करना वेकार समझता हूँ। "विस्मृत यात्री" के लिखने में इन बातों पर कितना ध्यान दिया गया है, इसे सहृदय पाठक समझेंगे।

"नरेन्द्रयश" कोई कल्पित पात्र नहीं है। वह हमारे ही देश के—अब पश्चिमी पाकिस्तान के—स्वात (उद्यान) की भूमि में 518 ई० में पैदा हुये थे। उन्होंने भिक्षु बनने के बाद भारत, सिंहल, मध्य-एसिया, घुमन्तओं की भूमि और चीन में विचरण किया था, और अन्त में आधुनिक सियान (प्राचीन छाङअन्) महानगरी में अपना शरीर छोड़ा। उनके सम्बन्ध में चीनी साहित्य में जो सूचना मिलती है, उसे डॉक्टर पा० चाउ ने प्रदान किया, जिसे मैं ग्रन्थ के आरम्भ में दे रहा हूँ और डॉ० पा० चाउ का इसके लिए बहुत कृतज्ञ हूँ—

"नरेन्द्रयश उद्यान के क्षत्रिय परिवार के थे। 17 वर्ष की उमर में उन्होंने प्रव्रज्या ली और 21 वर्ष की उमर में बौद्ध-संघ ने उन्हें उपसम्पदा प्रदान की। भिक्षु बनने के आरम्भ ही से उनके मन में बड़ी आकांक्षा थी कि उन पवित्र स्थानों की यात्रा करें, जहाँ बुद्ध की धातुयें सुरक्षित हैं। वह बौद्ध-धर्म-सम्बन्धी बहुत से स्थानों में गए। दक्षिण में वह सिंहलद्वीप तक गए और उत्तर में हिमालय से बहुत परे तक। एक बार एक स्थविर ने उनसे कहा, कि यदि तुम शील का चुपचाप अभ्यास करो, तो तुम्हें आर्यफल (मार्ग या निर्वाण) की प्राप्ति होगी, नहीं तो तुम्हारा पर्यटन बेकार जायेगा। लेकिन उन्होंने उस मुनि के आदेश का पालन नहीं किया।

"सिंहल से लौटने के बाद कुछ समय तक वह उद्यान में ठहरे। जब उनका विहार आग से जल गया, तो वह शायद सहायता प्राप्त करने के विचार से पाँच आदमियों के साथ हिमालय के उत्तर की ओर गये। हिमालय के ऊपर पहुँचने पर वहाँ दो रास्ते थे, एक आदमियों का और दूसरा दानवों का। उनको जब पता लगा कि हमारा एक साथी दानव-पथ पर चला गया है, तो वह झटपट उधर दौड़े, लेकिन दुर्भाग्य से तब तक दानवों ने उसे मार डाला था। मंत्रशक्ति से अपने को उनके पंजे से छुड़ाया। पीछे डाकुओं ने उन्हें घेर लिया, और उसी पवित्र मन्त्र के प्रताप से वह (नरेन्द्र) फिर बच गये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पूर्व की ओर जाकर वह जुई-जुई (अवार) देश में पहुँचे, जहाँ तुर्कों ने विद्रोह कर दिया था। पश्चिम की ओर चल कर उद्यान लौटने की सम्भावना नहीं थी, इसलिये वह उत्तर की ओर जाते-जाते नी-हाइ (नील समुद्र) के तट पर पहुँचे, जो कि तुर्कों के देश से 7000 ली (सवा दो हजार मील से अधिक) दूर था। उन्होंने देखा कि उस देश में बिल्कुल शांति नहीं है, इसलिये वह 558 ई० में चीन में उत्तरी छी-वंश (550-577 ई०) की राजधानी होना (येह) में पहुँचे। सम्राट् वेन् शुयेन (550-559 ई०) ने उनका स्वागत किया, और थियेन् पिंग विहार में उनहें रहने के लिये सबसे अच्छे कमरे और सबसे अच्छा भोजन प्रदान किया। चीनी भाषा में अनुवाद करने के लिए राजकुल में मौजूद संस्कृत के हस्तलेख उनके पास भेजे गये और चीन के विद्वान् बौद्ध पंडित अनुवाद के काम में उनकी सहायता करने के लिये दिये गये। जब कभी उन्हें अवकाश मिलता, वह पहले के सीखे मंत्रों का पाठ करते।

"चीन में आने के थोड़े ही दिनों बाद सम्राट ने उन्हें बौद्धसंघ के उपनायक का" पद प्रदान किया, और पीछे प्रधान-नायक बना दिया। अपने पद से मिलने वाली आमदनी के बहुत बड़े भाग को वह भिक्षुओं, गरीबों, बन्दियों के भोजन तथा प्राणियों के घास-चारे में खर्च करते। सार्वजनिक हित के लिये उन्होंने बहुत से कुएँ खुदवाये, जिनसे वह खुद पानी निकालकर प्यासों को पिलाते थे। उन्होंने पुरुष और स्त्री बीमारों के धर्मार्थ चिकित्सालय खोले, जिनमें हर तरह की आवश्यक चीजें मिलती थीं। चिन-जुन में पश्चिमी पर्वत के ऊपर उन्होंने तीन विहार बनवाये। वह तुर्कों के ठहरने की सरायों में जाया करते थे, और उनसे प्रार्थना करते, कि महीने में कम-से-कम छ दिन निरामिष भोजी रहो और अपने खाने के लिए बकरियों को मत मारो। इस तरह के पुण्य कार्य वह किया करते थे। एक बार जब वह बीमार पड़े, तो सम्राट् और सम्राज्ञी स्वयं पुछार करने के लिए उनके पास गए। इस तरह का सम्मान बहुत कम किसी आदमी के प्रति दिखलाया जाता था।

577 ई० के अन्त में उत्तरी छी-वंश को उत्तरी चाओं-वंश (557-81 ई०) ने खतम कर दिया। 572 ई० में सम्राट वूकने—जो कि ताउ धर्म का अनुयायी था—चीन में बौद्ध-धर्म, बौद्ध-विहारों और दूसरी संस्थाओं को नष्ट करने का निश्चय कर लिया। इन परिस्थितियों में नरेन्द्रयश बाहर से गृहस्थ की पोशाक पहनने के लिए मजबूर हुये, यद्यपि भीतर भिक्षु का चीवर वह तब भी रखते थे। अपने प्राणों को बचाने के लिये वह इधर-उधर मारे-मारे फिरे और बहुत तकलीफ सही। यह अत्याचार तब तक दूर नहीं हुआ, जब तक सुई राजवंश (589-618 ई०) की स्थापना नहीं हो गई। इस राजवंश के आरंभ में बेनती ने उन्हें राजधानी में बौद्ध-सूत्रों के अनुवाद करने के लिये निमंत्रित किया। उसके बाद उनसे प्रार्थना की, "कि विदेशी भिक्षुओं के स्वागतिक के" पद को स्वीकार करें। उन्होंने अपने कर्तव्य का बहुत अच्छी तरह पालन किया, और सभी लोग उनको पसन्द करते थे।

80 आह्ननिकों (प्रति आह्निक प्राय: 700 श्लोक) से अधिक परिमाण 15 ग्रन्थों का उन्होंने अनुवाद किया। 50 से अधिक देशों को देखने तथा 1 लाख 15 हजार ली (प्राय: 50 हजार मील) यात्रा करने में उन्होंने 40 वर्ष बिताये। 589 ई० में उनका देहान्त हुआ।

डॉ० पा० चाउ की उपरोक्त पंक्तियों से नरेन्द्रयश के व्यक्तित्व का कुछ पता लगता है।

सारी त्रुटियों के रहते हुये भी अपने महान् यात्री को हम इस पुस्तक द्वारा स्मरण करने में तो मैं अपने प्रयत्न को सफल समझूँगा।

"विस्मृत यात्री" के कितने ही भाग दिल्ली के "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" में क्रमशः निकले। उसके सम्बन्ध में कितने ही पाठकों ने पूछताछ की। "सिंह सेनापति" को पढ़कर कितने ही पाठ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पटना म्यूजियम में उन ईटों को देखने जाते हैं, जिनके ऊपर उस ग्रंथ के लिखे होने की बात उक्त उपन्यास के आरम्भ में कही गई है। यदि वह वस्तुतः ईंटों पर उत्कीर्ण होता, तो वह उपन्यास नहीं होता। ईंटों के दर्शनार्थी पाठकों को समझ लेना चाहिये था, कि यह उपन्यास है, हाँ ऐतिहासिक है, अर्थात् उस काल के देश-काल-पात्र की परिधि से बाहर नहीं जा सकता। कुछ पत्रों में "विस्मृत यात्री" के बारे में भी वही सवाल पूछे गये हैं। मेरे सभी ऐतिहासिक उपन्यास उपन्यास हैं, इतिहास या जीवनी नहीं।

ऋग्वेदकालीन आर्यों के सम्बन्ध में "सुदास" (दाशराज्ञयुद्ध) नाम से एक उपन्यास के लिखने की मैं इस वक्त तैयारी कर रहा हूँ। आज से तीन सहस्राब्दियों पहले के समाज में आज से भारी भेद था। किन्हीं-किन्हीं बातों में तो वह इतना उग्र था, जिसे आज के कितने ही श्रद्धालु सुनने के लिये भी तैयार नहीं होंगे। मेरी "वोल्गा से गंगा" के बंगला अनुवाद की समालोचना करते एक सज्जन ने सरकार को उसे जब्त करने की प्रेरणा दी। ऐसी प्रेरणाओं से डरकर अपने कर्तव्य से विमुख हो जाना किसी लेखक के लिये शोभा नहीं देता। तो भी, कोई यह न कहे, कि "सुदास" केवल कल्पनाओं के सहारे हमारी संस्कृति को नीचा दिखाने के लिये लिखा गया है; इसीलिये आजकल ऋग्वेद की सामग्री के आधार पर अनेक लेख मैं भिन्न-भिन्न पत्रिकाओं में लिख रहा हूँ, जिन्हें मूल ऋचाओं के साथ पुस्तकाकार छाप दिया जायेगा, और ईमानदार आलोचकों के लिये बात स्पष्ट हो जायेगी।

"विस्मृत यात्री" 1953 ई० में लिखकर तैयार हुआ था, और "सुदास" उसके तीन वर्ष बाद समाप्त होगा। इससे मालूम होगा, कि उपन्यास लिखने की मेरी व्यासक्ति नहीं है, यद्यपि रुचि अवश्य है। इससे भी अधिक रुचि जैसे ग्रंथों के लिखने की ओर मेरी है, उनके प्रकाश में आने में सबसे बड़ी दिक्कत है। मैंने प्रायः ऐसे ही विषयों पर ग्रंथ लिखने चाहे, जिनकी हिन्दी में कमी है। हिमालय के साथ पर्यटक के तौर पर मेरा घनिष्ट सम्बन्ध है, मैं नगाधिराज का परम भक्त हूँ। नगाधिराज को जानना हमारे हरेक शिक्षित का कर्तव्य है। इस जानकारी को देने के लिये मैंने हिमालय पर लिखना शुरू किया। भूटान की सीमा से जम्मू की सीमा तक पर लिख भी चुका। इन ग्रन्थों में "दार्जिलिंग परिचय" और "गढ़वाल" निकल भी चुके हैं। "गढ़वाल" के पढ़ने वालों से यह कहने की जरूरत नहीं है, कि इन ग्रन्थों में किस तरह हिमालय के हरेक अंग को दिखलाने की कोशिश की गई है। "नेपाल", "गढ़वाल" से भी दूना (1200 पृष्ठों का) ग्रंथ बड़ी मेहनत से लिखा गया है, और यह कहना अत्युक्ति नहीं है, कि अंग्रेजी में भी कोई एक उस तरह की पुस्तक नहीं है। वह तीन वर्ष पहले लिखा जा चुका था। इसके 300 पृष्ठ छपकर अब कीड़ों और चूहों के शिकार बन रहे हैं। "कुमाऊँ" की नैया भी भँवर में है। "जौनसार-देहरादून" की अभी पूछ ही नहीं आई। यमुना तट से चनाब के तट तक के "हिमाचल-प्रदेश" के सौ फार्मों के ग्रंथ का नाम सुनकर ही प्रकाशक कान पर हाथ रखते हैं। मेरी इच्छा थी, कि "जम्मू-काश्मीर" और "भूटान-पूर्वोत्तर सीमान्त" के दो और ग्रन्थों को लिखकर सारे हिमालय को पाठकों के सामने रख दूँ। अभी भी उस संकल्प को मैंने छोड़ा नहीं है, पर कीड़ों को खिलाने से मन हिचकता है।

हिमालय के अतिरिक्त अपने देश की काव्य-निधियों को संग्रह रूप में रखने की मेरी बड़ी इच्छा है। इसी के फलस्वरूप "हिन्दी काव्यधारा" को मैंने लिखकर आठवीं सदी से बारहवीं सदी तक प्रचलित अपभ्रंश भाषा के कवियों की सुन्दर कृतियों को कालानुसार रक्खा। "दक्षिणी काव्यधारा" को लिखे पाँच साल हो गये, लेकिन उसका सिर्फ एक फार्म प्रूफ के रूप में देख पाया। मालूम नहीं उसकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रेस-कापी कीड़ों से बच भी पायेगी। "संस्कृत काव्यधारा" को अभी-अभी मैंने तैयार किया है, जि ऋग्वेद से लेकर अन्तिम काल तक के 50 कवियों की सूक्तियों को काल-क्रम से रक्खा गया पुस्तक में बाईं ओर मूल और दाहिनी होर उसकी हिन्दी दी गई है। यह भी आठ-नौ सौ पृष्ठों पुस्तक है, मालूम नहीं यह प्रयत्न किसका भोज साबित होगा। जो भी हो, इसी तरह "पालि काव्य और "प्राकृत काव्यधारा" के दो और संग्रहों को तैयार कर देने का मैं संकल्प रखता हूँ।

रूस के दो साल प्रवास में जिस ग्रंथ के लिये मैंने अध्ययन और सामग्री-संचय किया वह "मध्य-एसिया का इतिहास" लिखकर तीन वर्ष से प्रेस में है। लेखक भी चुस्त है और प्रका और भी चुस्त, पर प्रेस की गति-विधि ऐसी हैं, कि नहीं विश्वास किया जाता, कि डेढ़ सौ फार्मों का कब तक बाहर निकलेगा। हम मुद्रक की इस बात को विश्वास कर लेते हैं, कि अगले साल वह निकल जायेगा।

लेखकों को अपने ग्रंथों के प्रकाशन में कैसी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है, उपरोक्त पंक्तियों से मालूम होगा। मेरे उपन्यासों के बारे में वह बात नहीं है। "विस्मृत यात्री" लि के तीसरे वर्ष प्रकाशकों की कमी से नहीं प्रकाशित हो रहा है। यदि उसकी प्रति दे दी गई होतं इसका गुजराती अनुवाद भी इसी समय प्रकाशित हुआ मिलता। किताब महल के स्वामी श्री निवास अग्रवाल ने "विस्मृत यात्री" और कितनी ही दूसरी पुस्तकों को प्रकाशित किया है, जिसके मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

पुस्तक को बोलने मर टाइप करने का काम श्री मंगलदेव परियार ने जिस तत्परता से है, उसके लिये मैं उनका भी कृतज्ञ हूँ।

मंसूरी, 12-11-55 राहुल सांकृत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बाल्य

(518—27 ई०)

"पा-कू-लाइ" (बोलोर) प्रदेश से उद्यान प्रदेश तक लोग पुल की जगह लोहे की जंजीरों का व्यवहार करते हैं। पहाड़ी खड्डों को पार करते समय इन्हीं जंजीरों की सहायता ली जाती है। यह जंजीरें अधर में लटकती रहती हैं। नीचे की ओर नजर करने पर पहाड़ी धार दिखाई नहीं पड़ती। जंजीर अगर हाथ से छूट जाये, तो हजारों हाथ नीचे गिर जाना पड़ेगा। इसीलिये यात्री लोग तेज हवा चलते समय उन्हें पार करने की कोशिश नहीं करते।...पामीर पर्वतमाला इस (उद्यान) प्रदेश के उत्तर में है और दक्षिण में भारतवर्ष है। जलवायु न अति शीत, न अति उष्ण तथा सुखद है। कितने ही सौ कोस यह प्रदेश फैला हुआ है। इस देश में उपज और निवासी दोनों की बहुतायत है। चीन की लिन्-जी उपत्यका के समान ही यह प्रदेश उर्वर है और जलवायु तो उससे भी अधिक उत्तम।...राजा निरामिषाहारी है। उपोसथ के दिन वह मृदंग, शंख, वीणा, वंशी आदि नाना प्रकार के वाद्यों के साथ प्रातः और सायं भगवान् बुद्ध की पूजा करता है। दोपहर बाद वह राजकाज देखता है। कोई आदमी हत्या कर दे, तो उसके अपराध में उसे मृत्यु-दण्ड नहीं देता, बल्कि कुछ थोड़ा-सा आहार देकर उसे पर्वतों की निर्जन भूमि में निर्वासित कर देता है।...समयानुसार लोग नदी के पानी से खेतों को भर देते हैं, जिससे भूमि उर्वर तथा अच्छी मिट्टी से भर जाती है। मनुष्यों के लिये आवश्यक सब तरह का खाद्य यहाँ भारी परिमाण में सुलभ है। इस देश में साग-भाजी बहुत पैदा होती है और तरह-तरह के फल भी काफी उत्पन्न होते हैं। संध्याकाल में संघाराम के घण्टा की ध्वनि चारों ओर सुनाई देती है। नाना रंगों के फूल सर्दी और गर्मी दोनों ऋतुओं में प्रचुर परिमाण में फूलते हैं और श्रमण तथा गृहपति जन उससे भगवान् बुद्ध की पूजा करते हैं।"

यह पंक्तियाँ उसी साल 518 ई० महाचीन के यात्री सुंग-युआन् ने लिखी थीं जबकि मैंने संसार में पहले पहल अपनी आँखें खोलीं। उससे बीस वर्ष पहले दूसरे चीनी यात्री फा-शीन (फा-हियान) भी मेरी मातृभूमि उद्यान में गये थे। चीन देश में आने के बाद मैंने देखा कि यहाँ के लोग सच्ची यात्राओं के पढ़ने के बड़े शौकीन हैं। उनसे ज्ञान की वृद्धि होती है। मेरे देश के लिये भी यह अनुकरणीय बात है। हमारे यहाँ कथाओं के सुनने का तो बहुत रवाज है, लेकिन वास्तविक की अपेक्षा काल्पनिक कथाओं को ही पसन्द किया जाता है। हमारे देश ने बड़े-बड़े पृथ्वी-पर्यटक पैदा किये। अब भी (588 ई०) अकेले चीन देश में हजारों की संख्या में हमारे देश के भिक्षु और दूसरे विद्वान् बड़ा-बड़ा कष्ट सहकर भिन्न-भिन्न रास्तों से पहुँचे हैं। हर साल ही हमारा महासंघ चारों दिशाओं में अपने धर्मदूतों को भेजता है। लेकिन अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचने के लिये हमें कैसे-कैसे, कौन-कौन से देशों से गुजरना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पड़ेगा, इसे जानने के लिये इसके सिवाय और कोई साधन नहीं है कि हम वहाँ गये-आये आदमियों से पूछकर पता लगायें। यदि हमारे धर्मदूत अपनी यात्राओं के वर्णन को लिपबद्ध कर जाते, तो कितना अच्छा होता? हमारे धर्मदूत वर्षों धर्म प्रचार करने के बाद अपने संघाराम में अपना वार्धक्य बिताते हैं, लेकिन अधिकतर जहाँ जाते, वहीं अपनी हड्डियाँ बिखेर देते, जिनमें से कुछ को समेटकर संघ अपने यहाँ स्तूप बनाता, जिससे प्रेरणा पा दूसरे तरुण उनके मार्ग का अनुसरण करते। मैंने चैत्यगिरि (साँची) और दूसरे पुनीत स्थानों पर उन सत्पुरुषों के स्तूपों के दर्शन किये हैं। हमारे संघ में तो देश-दर्शन और पर्यटन के प्रति आरम्भ ही से भारी प्रेरणा मिल रही है। उसी प्रेरणा का फल है जो कि मैं इतने देशों को आजीवन अपने परों से नापता रहा।

यदि अपने देश-भाइयों की इस विषय की उदासीनता का अनुकरण करता, तो शायद मैं भी अपनी यात्रा को लिपिबद्ध न करता। लेकिन, चीनी बन्धुओं को देखकर मुझे भी इच्छा हुई कि आने वालों के लिये अपनी यात्रा का विवरण लिख जाऊँ, यद्यपि मुझे बहुत कम आशा है कि मेरे देशभाई उसे प्राप्त करके लाभ उठा सकेंगे।

मेरा जन्म उसी उद्यान-भूमि में हुआ जिसके बारे में सुंग युआन ने उपरोक्त पंक्तियाँ लिखीं जिन्हें मैंने महाचीन में आकर पढ़ा। अपनी-अपनी मातृभूमि सबको अच्छी लगती है, इसलिये मैं किसी देश के कुरूप और असुन्दर होने की बात नहीं कहता, पर उद्यान तो सचमुच ही स्वर्ग का उद्यान है। उत्तर की ओर कर्पूर-श्वेत हिमों से आच्छादित उत्तुंग शिखरों की पंक्तियाँ कितनी सुन्दर मालूम होती हैं? बाल्य-नेत्रों से मैंने पहले-पहल इन श्वेत शिखर-पंक्तियों को देखा था। उस समय यह नुकीली स्तूपाकार गिरिमाला जितनी सुन्दर मालूम होती थी, आज सत्तर वर्ष की अवस्था में पहुँच जाने पर स्मृतिपटल पर अंकित उस दृश्य को जब मैं देखता हूँ, तो उसका सौन्दर्य किसी प्रकार भी कम नहीं मालूम होता। यह मैं तब कह रहा हूँ जब कि मैंने हजारों पर्वतों को देखा, सैकड़ों देशों का अवगाहन किया। विश्व कितना विचित्र है। मैंने सिंहलद्वीप में रहते हुये देखा कि वहाँ बारह महीना में बस दो ही ऋतु हैं, गर्मी और वर्षा, जाड़े का कहीं पता नहीं, यदि आप वहाँ के श्रीपाद पर्वत पर न चढ़ें। इससे मुझे पता लगा कि हम जितने ही अधिक ऊँचे पर्वतीय स्थानों पर जाते हैं, उतनी सर्दी ही बढ़ती है। शायद हमारे उद्यान के अधिक शीतल होने का कारण यही हो, क्योंकि गर्मियों में भी हम अपने यहाँ ऊनी कपड़ा पहन सकते हैं, जबकि सिंहलद्वीप में उसका नाम भी नहीं लिया जा सकता। सिंहल भिक्षु दाहिना कंधा नंगा करके अपना चीवर पहनते हैं। सिर भी नंगा रखते हैं। यदि उन्हें उद्यान के जाड़ों में रहना हो, तो मालूम हो जाये कि वहाँ दाहिना कन्धा और सिर नंगा रखने का मतलब है मृत्यु का आवाहन करना। देव-मनुष्यों के शास्ता आत्महत्या को गर्हित काम बतलाते थे। जीवन-रक्षा के लिये उन्होंने नाना भेषजों का विधान किया जिसके कारण उन्हें भैषज्य गुरु के नाम से हम पूजते हैं। भैषज्य गुरु की देशना के अनुसार हमारे कितने ही भिक्षु चिकित्साशास्त्र का अध्ययन करते और आतुरों-रोगियों को सहायता पहुँचाते हैं। बर्बर से बर्बर जातियों में बौद्ध भिक्षु को देखते ही जो सत्कार-सम्मान उपस्थित हो जाता है, उसका एक बड़ा कारण यही है कि वह हमें भैषज्य गुरु का शिष्य समझते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैंने अपने दूसरे बन्धुओं की तरह चिकित्साशास्त्र का विशेष अध्ययन तो नहीं किया, लेकिन जो थोड़ा-घना ज्ञान मुझे यों ही मिल गया, उससे मेरी यात्रा में जहाँ मुझे सहायता मिली, वहाँ अनेक नर-नारियों का भी उपकार हुआ।

उद्यान दुर्गम पर्वतों के बीच बसा हुआ स्वर्ग-सामान प्रदेश है, लेकिन उत्तराखण्ड की यात्रा करते मैं ऐसी भूमियों में भी पहुँचा जहाँ पर्वतों के मस्तक पर नहीं, बल्कि शीतसमुद्र (बाइकाल सरोवर) के तट पर उतनी सर्दी अत्यन्त गरम महीनों में देखी जितनी हमारे निचले गाँवों में जाड़ों में होती है। वहाँ के जाड़ों की सर्दी का तो अपने देश में रहते मुझे अनुमान भी नहीं हो सका था। पृथिवी पर कैसे विचित्र-विचित्र स्थान हैं। पर्यटक अपनी आँखों के सामने कितने प्रकार के नयनाभिराम दृश्य देखता है।

अपनी मातृभूमि का पक्षपात कह लीजिये, मुझे उद्यान की भूमि कितनी याद आती है? मुझे कितना आनन्द होता, यदि मैं अपनी इन हड्डियों को उसी भूमि को दे सकता जिसने इन्हें पैदा किया। लेकिन तथागत के कथनानुसार "तत् कुतोत्र लभ्यः।" ऐसी आसक्ति भिक्षुवेशु के अनुरूप नहीं है। पर अपनी जननी जन्म-भूमि के मधुर स्मरण से मैं अपने को वंचित कैसे कर सकता हूँ? उद्यान की भूमि वही है जिसे कभी सुवास्तु कहा जाता था। अब भी हमारी एक नदी का नाम सुवास्तु (स्वात) है। हमारी नदियों का पानी पानी नहीं दूध है। जब मैं पहले-पहल अपने से दक्षिण वाले गन्धार देश में गया, तो मुझे इस बात का पता लगा। सुवास्तु उसे अपने सुन्दर वास्तुओं (गृहों) के कारण कहा जाता था और अब अपने मधुर फलों के उद्यानों के कारण वही उद्यान के नाम से प्रख्यात है। कपिशा (काबुल) प्रदेश की द्राक्षा (अंगूर) सारे जम्बू द्वीप (भारत) में प्रसिद्ध है, लेकिन मैं नहीं समझता कि हमारे उद्यान की द्राक्षा से वह बेहतर है। अपनी द्राक्षाओं के लिये उद्यान की ख्याति शायद इसीलिये नहीं हो सकी, क्योंकि हमारे दुर्गम पर्वतों के भीतर से सूखी द्राक्षा (मुनक्का और किशमिश) को बाहर ले जाना मुश्किल है। हमारे उदुम्बर (अंजीर) और दूसरे भी फल कितने मधुर होते हैं?

मध्यमण्डल के भिक्षु जब हमारे देश की सर्दी के बारे में सुनते, तो तुषार (तुखार) कहकर इधर आने की हिम्मत नहीं करते थे, पर जब मैं उनसे अपने देश की क्षीरवाहिनी नदियों और अमृत-मधुर फलों की बात करता, तो उनके मन में उत्सुकता जरूर पैदा हो जाती। हमारे यहाँ के मौसिम की बातचीत से उसका अनुभव आदमी को कैसे हो सकता है? उसी तरह, हमारे लोगों या इस छांग-आन् महानगरी के लोगों को भी पता नहीं लग सकता कि वाराणसी और जेतवन में गर्मियों में भट्ठी की जैसी घोर गर्मी होती है। मैं कहता, हमारे उद्यान के निवासी तीनों ऋतुओं में उसी तरह तीन गाँव में बसते हैं जिस तरह चक्रवर्ती राजा तीनों ऋतुओं में तीन प्रकार के प्रासादों में रहा करते थे। जाड़ों में हम अपनी बड़ी नदियों के निचले भागों में जाकर रहते, कभी-कभी उन जङ्गलों में भी शरण लेते जहाँ पत्ते बराबर हरे रहते, बर्फ कभी नहीं पड़ती। वसन्त के आगमन के साथ जब बर्फ पिघल जाती, हमारे खेत नंगे हो जाते और सदा हरित न रहने वाले वृक्षों और वनस्पतियों में पत्तियाँ कलियों के रूप में फूट निकलतीं, तो हम अपने पहाड़ के ऊपरी गाँवों में चले आते। मुझे तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सबसे सुन्दर और प्यारे उद्यान के वह पयार (अधित्यकायें) लगते हैं जो उत्तुंग पर्वतों की पीठ पर दूर तक फैले हैं। वहाँ बर्फ और भी पीछे पिघलती जबकि वर्षा शुरू होती। इन पयारों के शुरू होने से पहले ही बड़े-बड़े वृक्षों की भूमि खतम हो जाती और केवल घास ही घास दिखाई पड़ती। ऐसी लम्बी-लम्बी घासें, जिनमें हमारी भेड़-बकरियाँ ही नहीं, बल्कि गायें भी छिप जातीं। और कितनी पुष्टिकर ये घासें होती हैं? मैंने तो वैसा होते नहीं देखा, लेकिन सुना जरूर है कि इनके खाने से भेड़ें इतनी मोटी हो जाती हैं कि उनका शरीर चमड़े के भीतर नहीं समाता और वह मध्यमण्डल की पकी ककड़ी की तरह फूट जाती हैं।

उद्यान की शोभा अपने उर्वर खेतों, सदानीरा नदियों, रमणीय पर्वतों से जिस तरह है, उसी तरह वहाँ के विशाल देवदार बड़े मनमोहक होते हैं। तथागत जिस बोधि (पीपल) वृक्ष के नीचे परमज्ञान को प्राप्त करने में सफल हुये, उसके सामने हमारा सिर हमेशा झुक जाता है---वर्षों हो गये ऐसे बोधिवृक्ष की पूजा किये। शीतप्रधान देशों में बड़े प्रयत्न के साथ बोधिवृक्ष को लगाने की कोशिश की गई, लेकिन उसमें सफलता नहीं हुई। अब तो उससे मिलते-जुलते पत्ते-वाले वृक्षों को लोगों ने अपने-अपने देश में बोधिवृक्ष मान लिया है, लेकिन असली बोधिवृक्ष तो जम्बू द्वीप, सिंहल द्वीप जैसे गरम देशों में ही मिलता है। बोधिवृक्ष के प्रति मेरे हृदय में बहुत सम्मान है, उसके कोमल चिकने पत्ते बड़े सुन्दर होते हैं, विशेषकर जबकि हल्की हवा से वह हिलने लगते हैं। लेकिन, मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि हमारे उद्यान का देवदार सचमुच देवों का दारु (वृक्ष) है। और उद्यान के महान् देवदारु के सामने इधर के देवदार बौने कुबेर के सामने रंक जैसे लगते हैं। वह पर्वतों के गात्र को ढाँके गगन-चुम्बी शिखर वाले विशाल वृक्ष कितने मनोरम हैं जिनके नीचे तूलाजिन की तरह सूखे पत्ते बिछे हैं, जिनके शरीर से भीनी-भीनी सुगंधि निकलती है। हमारे घरों में देवदार की लक-ड़ियों का ही सबसे अधिक इस्तेमाल था, दीवारों के बनाने में भी उनकी अपेक्षा पत्थरों का उपयोग कम किया जाता था। बचपन से ही देवदार के सूखे काष्ठ की सरस सुगंधि में मैंने साँस ली थी और अब भी यहाँ छाँग-आन् में मैंने देवदार काष्ठ की कुटी उसी ख्याल से बनवाई, लेकिन इसमें वह बात कहाँ? क्या मुझे स्मृति तो धोखा नहीं दे रही? बचपन की भोली-भाली आँखों का कसूर तो नहीं है जो कि सभी चीजों को मधुरतम बना देती हैं?

मुझे अपनी मातृभूमि का आवश्यकता से अधिक पक्षपात नहीं है। मैं भरसक अतिशयोक्ति भी नहीं करना चाहता, लेकिन क्या करूँ, जबकि उसके गुण बरबस मुझे मुखरित कर देते हैं। जान पड़ता है, हरेक बात के लिये जाति-जाति की अपनी अलग कसौटी, अपना-अलग मान होता है। हमारे यहाँ क्रोश और योजन से दूरी बतलाई जाती है और महाचीन में उसे ली में गिनते हैं जो हमारे एक कोश में चार होती है। महाचीन के लोग दूरी को ली में कहने पर उसे जितना आसानी से समझ सकते हैं, उतना क्रोश या योजन कहने में नहीं। हम अपने यहाँ गोरे रंग, सुनहले बालों और नीली आँखों को सौन्दर्य का प्रतीक मानते हैं, किन्तु महाचीन के लोग इसे बन्दरों जैसी शक्ल बतलाते हैं। ऊँची लम्बी नाकें हमें भली मालूम होती हैं, लेकिन महा-चीन वाले उसे भौंड़ी बतलाते हैं। भोजन भी अपने-अपने अलग होते हैं। मगध की गन्धशाली (वासमती) बहुत स्वादिष्ट होती है, इसे मैं मानूँगा, किन्तु मुझे तो लड़कपन से ही मुँहलगी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गेहूँ की रोटियाँ जितनी प्यारी लगती हैं, उतना गन्धशाली का भात एक-दो दिन ही लगता है। हम नमक के साथ उबले हुये मांस खण्डों को जितना रुचि के साथ खाते थे, उससे कहीं अधिक रुचि के साथ मगध वाले तली-भुनी मछलियों को पसन्द करते हैं। संगीत के विषय में भी लोगों की भिन्न-भिन्न रुचि है। महाचीन वाले उन तन्तु (तार) वाले वीणा जैसे वाद्यों को तुच्छ समझते हैं जिनकी ध्वनि हमारे कानों को अत्यन्त प्रिय लगती है।

उद्यान-निवासी रंग-रूप में बहुत सुन्दर होते हैं। चीनी यात्री यद्यपि हमारी वेश-भूषा और मध्यमंडल (उत्तर-प्रदेश, बिहार) की वेश-भूषा में फर्क नहीं करते, पर दोनों में बहुत अन्तर है, यह हम जानते हैं। जिस रंग को मध्यमंडल में गौर कहते हैं, उसे हमारे यहाँ काला कहने में भी संकोच नहीं किया जाता। मुझे मध्यमंडल में जाने पर यह सुनकर हँसी आती थी कि गर्भिणी माँ के साग खाने से शिशु का रंग काला या साँवला हो जाता है और खीर खाने से सफेद। हमारे उद्यान में तो एक भी काला या साँवला आदमी देखने को नहीं मिलता और साग के मौसिम में हमारे यहाँ की गर्भिणियाँ खूब साग खाती हैं। मैं तो समझता हूँ, रूप-रंग माता-पिता के कारण होता है। चीनी और तुरुष्क लोगों में काले या साँवले आदमी नहीं दिखाई देते, लेकिन उनकी नाक चिपटी, गालों की हड्डियाँ उठीं, आँखें अर्धस्फुटित तथा तिरछे ऊपर को उठी होती हैं। जहाँ हमारे चेहरों पर घनी दाढ़ी-मूँछ होती हैं, वहाँ इन लोगों के चेहरे पर केशों का नाम मात्र पता लगता है। यह माता-पिता के कारण नहीं तो और क्यों? देशाटन आदमी की बहुत-सी भ्रान्तियों को दूर कर देता है, इसीलिये कुपमंडूकता को अज्ञान का पर्याय माना जाता है।

मेरे माता-पिता उद्यान के एक ऐसे गाँव में रहते थे जो अपेक्षाकृत अधिक सर्द था। कुमार और सुवास्तु जैसी विशाल नदियों के उद्‌गम हमारे गाँव से बहुत दूर नहीं थे। उन हिमाच्छादित शिखरों को हम देखते थे जिनके दाहिने-बायें से ये दोनों नदियाँ निकलती हैं। गाँव के एक ओर से सुवास्तु में जाने वाली नदी बहती थी जिसकी धारा छोटे-बड़े चट्टानों के ऊपर उछलती रात-दिन घर्-घर् घर्-घर् स्वर में कोई गम्भीर गीत गाया करती थी। पत्थरों पर उछलता पानी दूध की तरह सफेद दिखाई पड़ता था। बचपन में मैं समझता था, यह सचमुच ही दूध है, लेकिन हाथ में उठाने पर यह पानी हो जाता था। कुछ नीचे, जहाँ हम गर्मियों में नहाने के लिये जाते थे, वहाँ पानी का एक कुण्ड बन गया था जिसका रंग हल्का नीला या गहरे हरे रंग का था। गाँव से ऊपर की ओर का सारा पहाड़ देवदार वृक्षों से ढँका था। जाड़ों के दिनों में जब गाँव के और लोगों के साथ हमारा परिवार भी घर को बन्द कर अपने पशु-प्राणियों को ले नीचे की ओर प्रस्थान करता; तो मुझे गाँव छोड़ने का बड़ा खेद होता। कभी-कभी माँ के साथ ननिहाल में मैंने जाड़े बिताये। वहाँ तीन-तीन हाथ मोटी सफेद बर्फ चारों ओर पड़ जाती। उस वक्त हम लड़के बर्फ के कितने ही प्रकार के खेल खेला करते। मैं पूछता था कि हमारा परिवार भी, जाड़ों में अपने ही गाँव में क्यों नहीं रहता? माँ कहती—हमारे यहाँ और भी अधिक बर्फ पड़ती है और कभी-कभी बर्फ के सैलाब आ जाने का डर रहता है जिसके धक्के से घर के घर चूर-चूर हो जाते हैं। फिर यहाँ जाड़े भर एक तिनका या घास पशुओं के लिये नहीं मिल सकता और अपने जमा किये हुये

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

घास-भूसे से हम उनको दो महीने से अधिक नहीं पाल सकते । उस वक्त मेरी बाल-कल्पना कहती थी कि यदि भीषण हिमवर्षा में भी सदा हरे रहने वाले देवदार के पत्ते हमारे पशुओं के लिये घास की तरह चारे का काम देते, तो कितना अच्छा होता ? तब तो हम जाड़ों में भी अपने गाँव में ही रहते ।

मेरे पिता अपने चार भाइयों में सबसे छोटे थे और सभी भाइयों के अधिक प्रिय भी । दादा को मैंने नहीं देखा था, लेकिन दादी की याद अब भी मुझे पूरी तौर से है । उनके केश वैसे ही सफेद थे, जैसे हिमालय का हिम । वह सत्तर वर्ष की बतलाई जाती थीं जिस साल उन्होंने शरीर छोड़ा और मैंने उद्यानभूमि का पहली बार कई वर्षों के लिये परित्याग किया । इतने बुढ़ापे में भी उनके चेहरे पर कहीं झुर्रियों का पता नहीं था । शरीर से भी और स्त्रियों की अपेक्षा वह अधिक ऊँची ही नहीं, बल्कि अधिक स्वस्थ और सुपुष्ट थीं । वह मुझे बचपन में तरह-तरह की कथायें सुनाया करतीं । मेरे दो चचा भिक्षु हो गये थे और तीसरे की केवल दो लडकियाँ ही थीं, इसलिये परिवार में प्रथम पुत्र के रूप में जब मैं पहले-पहल पैदा हुआ, तो घर भर का अनुराग सिमटकर मेरे ऊपर केन्द्रित हो गया । उसके बाद मेरे दो और भाई पैदा हुये । यह उन्हीं की कृपा समझिये, जो भिक्षु बनने का अवसर मिला । तथागत ने माता-पिता की आज्ञा के बिना किसी को भिक्षु बनाना संघ को वर्जित कर दिया है । एकलौता पुत्र होने की अवस्था में मेरे माता-पिता मुझे कभी आज्ञा न देते, इसमें सन्देह नहीं । मेरे सबसे छोटे भाई के जन्म के समय प्रसव-पीड़ा से मेरी माँ का देहान्त हो गया । उस समय मैं दस साल का था । माँ के लिए मेरा हृदय हमेशा भूखा रहता जिसको तृप्त करने के लिए मेरी दादी कोशिश किया करती थीं । पिता ने माँ के मरने के बाद दूसरा ब्याह किया था और मैं इसे स्वीकार करूँगा कि मेरी सौतेली माँ में वैसी कोई बात नहीं थी जो सौतेली माँ के साथ हमेशा याद की जाती है । शायद इसका कारण उनका चचेरी मौसी होना भी हो ।

हमारा उद्यान पूरी तौर से तथागत का अनुयायी है । पूर्व के पड़ोसी कश्मीर, दक्षिण में गन्धार, पश्चिम में कपिशा और कम्बोज के देशों में भी तथागत के अनुयायी (बौद्ध) अधिक हैं, किन्तु वहाँ तीर्थिकों की भी संख्या पर्याप्त है । मैं समझता था, तथागत का स्वरूप जितना उज्ज्वल, उनकी देशना (शिक्षा) जितनी स्वच्छ और सुन्दर है, उसके अनुरूप शायद उद्यान की भूमि ही सबसे अधिक है, तभी तो हमारे यहाँ सभी नर-नारी, बाल-वृद्ध तथागत के प्रति इतना प्रेम और भक्ति रखते हैं । जब मैं अपने उपाध्याय के पास ग्रन्थों को पढ़ता और उसमें ब्राह्मणों तथा दूसरे तीर्थिकों के विचारों और धार्मिक आचारों की बातें पढ़ता, तो मुझे यह समझना मुश्किल हो जाता कि महेश्वर कैसा देवता है, विष्णु कैसे होते हैं । हमारे यहाँ उद्यान में न तीर्थिकों के देवालय सुलभ थे और न उनके ग्रन्थ ।

उद्यान में, इसमें शक नहीं, कुछ ब्राह्मण भी थे, लेकिन वह भी तथागत के उपासक थे । इतना ही अन्तर था कि हम उनके प्रति विशेष सम्मान दिखलाते थे । हमारे यहाँ के बाकी निवासी अधिकतर क्षत्रिय थे । अपने से भिन्न रंग वाले शिल्पकारों को हम शूद्र मानते थे, लेकिन हमारे अधिक ठंडे स्थानों के गावों में वह केवल गर्मियों में घूमने-घामने आते थे । वह हमारे बाणों के लिए लोहे के फल, तलवारें बनाकर लाते, कुदाल और कुल्हाड़े भी वही देते ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनमें से कुछ हमारे लिये सोने-चाँदी के जेवर और कुछ धातुओं के बर्तन बनाते। हमारे बहुत से बर्तन लकड़ी के होते। इस प्रकार हमारे उद्यान में केवल तीन जातियाँ थीं। वैश्य केवल पुस्तकों में पाये जाते थे। जहाँ तक व्यापार का सवाल था, उसमें हमारे ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों शामिल थे। सचमुच हमारे रूप-रंग इतने समान थे कि हम ब्राह्मण-क्षत्रिय में कोई भेद नहीं देखते थे। हमारा परिवार अपने को क्षत्रिय कहता था। कुछ क्षत्रिय अपने को शाक्य वंशी कहकर अधिक कुलीन सावित करना चाहते थे, लेकिन वह शाक्य मुनि के वंशज नहीं, बल्कि तुषार देश से आये शक लोगों की सन्तान हैं जिन्होंने बहुत समय तक जम्बू द्वीप, कम्बोज तथा दूसरे देशों पर शासन किया था और जिनमें एक से एक बड़े-बड़े राजा हुये। कनिष्क धर्मराज इसी वंश में पैदा हुये, जिनके बनवाये विशाल संघारामों और चैत्यों के दर्शन मैंने कई बार किये। अब तो शक लोगों की भी प्रधानता खतम हो गई है और उनका स्थान येथा (यन्ता) लोगों ने लिया है।

येथा लोगों की क्रूरता की बहुत-सी कथायें मैंने अपनी दादी के मुँह से सुनी थीं। पर येथों में अब उस क्रूरता का पता नहीं लगता। येथा लोग भी शकल-सूरत में हमारे उद्यान-वासियों जैसे ही हैं, कुछ तो हमसे भी अधिक गोरे हैं। वह लड़ने में बहादुर हैं, लेकिन हमारे उद्यानवासी भी इस बात में किसी से पीछे नहीं हैं। इतने बीर होने पर भी हमारे लोग क्यों कभी शकों के अधीन रहे और कभी येथों के करद हुये? सोचने पर मुझे तो यही मालूम हुआ कि इसमें कारण हमारा संख्या-बल में कम होना था। मेरी दादी येथा राजा तोरमाण की बड़ी प्रशंसा किया करती थीं। कहती थीं—वह धर्मराज कनिष्क का अवतार था, लेकिन उसके पुत्र मिहिरकुल (508-47 ई०) की वह बहुत निन्दा किया करती थीं। मिहिरकुल के शासन-काल में ही मैं पैदा हुआ और उसके मरने (547 ई०) के तीन वर्ष बाद मैंने अपनी जन्मभूमि से सदा के लिए विदाई ली। हो सकता है, मिहिरकुल तरुणाई में बहुत अत्याचारी रहा हो, लेकिन कश्मीर में मैंने उसे देखा था और उसके राज्य में तो हम रहते ही थे। मैंने तो उसकी कोई क्रूरता नहीं देखी। हमारे लोग भी मिहिरकुल की सेना में शामिल थे। बाहर जाने पर उन्हें भी लोग येथा या हूण कहते थे। जब तक मैं महाचीन नहीं आया, तब तक मैं भी समझता था कि येथा लोग हूण ही हैं। लेकिन, अब मालूम है कि हूण तुरुष्कों के पूर्वज थे और शकल-सूरत, रूप-रंग में वह चीनियों जैसे थे। चीन के इतिहास से पता लगता है कि हूण एक समय महाचीन वालों के जबर्दस्त शत्रु थे और उन्हीं के आक्रमण से रक्षा पाने के लिए महाचीन में हजारों कोस लम्बी महादीवार बनाई गई। येथा वस्तुत: शकों के भाई-बंद थे। शकों को अपने देश से भगाने वाले यही हूण थे। जो शक हूणों के भीतर रह गये थे, वह कितनी ही बातें हूणों से सीख गये थे। अवसर आने पर उन्होंने शत्रुओं के प्रति क्रूरता दिखलाने में हूणों को भी मात किया था, शायद इसी लिये लोग उन्हें भी हूण के नाम से याद करने लगे। हमने जिन येथा सरदारों और सैनिकों को उद्यान, कश्मीर, गन्धार या कपिशा में देखा, स्वयं मिहिरकुल को प्रौढ़ावस्था में जैसा देखा, उसी से पता लग जाता था कि इनका सम्बन्ध हूणों या तद्वंशज आवारों-तुर्कों से बिलकुल नहीं है। मिहिरकुल की नाक वैसी ही लम्बी और नुकीली थी जैसी हम लोगों की, और उसके बाल तथा दाढ़ी-मूँछ भी हमारी जैसी। उसके पिता "विजितावनि अवनिपति श्रीतोरमाण" के सिक्के को देखने पर ही मालूम हो जाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है कि वह हूण नहीं, हमारे जैसा था। वस्तुतः येथा शक वंश ही एक शाखा है जिसके वीर नेता किदार ने अपनी दिग्विजयों द्वारा कुषाणों के राज्य को जहाँ अपने हाथ में लिया, वहाँ मध्यमण्डल पर भी उसने दूर-दूर तक चढ़ाइयाँ कीं।

हमारे बहुत से पहाड़ी लोग तो बल्कि यह जानते ही नहीं कि मिहिरकुल कौन है, तोरमाण कौन था, या दुनिया में और दूसरे कौन-कौन राजा हैं। उद्यान का राजा ही हमारे लिए सब कुछ है। हम उद्यान-राजधानी में तथागत की जयन्ती के उत्सव में जाते और राजा-रानी को भक्ति-भाव से भगवान् की पूजा का तथा भिक्षु-संघ को आहार-वस्त्र देते देखते, हमें वही सब कुछ मालूम होता। राजा के पास प्रतिष्ठित आसन पर बैठे एक सैनिक-सामन्त के बारे में किसी ने बतलाया, तभी मुझे पहले पहल मालूम हुआ कि हमारे राजा के भी ऊपर मिहिरकुल है जो कश्मीर में अपनी राजधानी में रहता है, जिसकी मुद्रा हमारे यहाँ व्यवहार में आती है और जिसके सामन्त-प्रतिनिधि की आज्ञा हमारे राजा को भी शिरोधार्य माननी पड़ती है।

शैशव जीवन का कितना मधुर और सुन्दर समय है। लेकिन शैशव की स्मृति भी तो हमें बहुत दूर तक नहीं ले जाती। मैं बहुत ध्यान देकर सोचता हूँ, तो भी वह चार वर्ष की अवस्था से पहले नहीं जाती। उस समय मुझसे छोटी बहन पैदा हुई थी। मैंने माँ की गोद में उसे बैठा देखकर बड़ी ईर्ष्या की थी। मैं अपने को माँ की गोद का एकमात्र अधिकारी मानता था, तो भी वह गुलाबी रंग की छोटी पुतली मुझे बुरी नहीं मालूम हुई। जब माँ ने कहा कि तेरे खेलने के लिए आई है, तो मुझे वह बड़ी प्यारी लगने लगी। मैंने अपने बाल-हाथों से उसे उठाना चाहा, पर असमर्थ रहा। मेरे प्रयत्न को विफल देखकर माँ और दादी हँसने लगीं। यही मेरी सबसे पुरानी स्मृति मुझे याद आती है। बेचारी बहन दो वर्ष बाद चल बसी। उस समय भी मुझे बहुत दुःख हुआ था।

शैशव की कितनी ही स्मृतियाँ याद हैं। अँधेरे में मैं उस वक्त कितना डरा करता था? अप्सराओं की कथायें सुनता, भूतों और चुड़ैलों की बातें बतलाई जातीं। अन्धेरा होते ही घर के हरेक कोने में, पेड़ की हरेक छाया के नीचे ये भयावने प्राणी भय पैदा करने लगते। मैंने सुना था, भूत और चुड़ैल बुरे होते हैं, किन्तु देवता और अप्सरायें अच्छी होती हैं। भूतों और चुड़ैलों के देखने की हिम्मत तो मुझमें नहीं थी, लेकिन अप्सराओं के देखने की बड़ी लालसा रहती थी। अप्सराओं का जो रंग-रूप मैंने सुन रक्खा था, वह मेरी माँ और बुआ से अधिक मिलता-जुलता था, इसलिए मुझे उनसे डर नहीं था। जब ताजा-ताजा सफेद बर्फ पड़कर सब जगह बिछ जाती, पूर्णिमा का चाँद उगता और उसके मुँह को ढाँकने में सफल होकर भी रूई के गाले की तरह आसमान से झरती बर्फ उसके प्रकाश को विलीन नहीं कर पाती। उस समय मैं अपने झरोखे से बड़े ध्यान से देवदारों के जंगल और अपने घर के बीच के चढ़ाव वाले खेतों की सफेद भूमि की ओर देखता। मैंने सुन रक्खा था, ऐसे ही समय अप्सरायें देवलोक से उतरती हैं और रुई के गाले जैसे नरम बर्फ के ऊपर नाचती-गाती हैं। न जाने कितने वर्षों तक अप्सराओं के नृत्य को देखने की मैं कोशिश करता रहा। यदि पिता-माता का डर न होता, तो मैं उसी समय अप्सराओं से मिलने घर से बाहर निकल पड़ता। एक बार निकलकर मैं पास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ाले बर्फ से ढँके खेतों तक थोड़े ही रहता, मैं उन्हें ढूँढ़ते देवदारों के भीतर दूर तक जाता। ैं बहुत ध्यान से देखता, तो दूर देवदारों के बीच पड़ी सफेद बर्फ पर परियों जैसी कोई चीज देखलाई पड़ती। कभी उनकी सफेद पोशाक हिलती नजर आती और कभी सुनहले बाल भी। ेकिन कोई चीज स्पष्ट नहीं होतीं थी। सवेरे उठकर बर्फ देखता मैं दूर तक चला जाता। मुझे विश्वास था, यदि रात को अप्सरायें आई होंगी, तो उनके "पैरों के निशान जरूर दिखाई ड़ेंगे।" लेकिन, मुझे कभी उनके पैरों के निशान नहीं दिखलाई पड़े। छोटे-मोटे निशान मिले ी, तो उन्हें सयाने लोग भालू, भेड़िया या किसी दूसरे जानवर के पदचिह्न बतला देते।

शैशवकाल में नौ वर्ष की उमर तक मेरी दुनिया अत्यन्त सीमित थी। अपने परिवार ौर गाँव के आदमियों के साथ में भी ऋतु अनुसार तीन स्थानों में हो आया करता। बतला ो चुका हूँ कि अपने बहुसंख्यक पशुओं के चारे का ख्याल करके अधिक ठण्डे स्थान में बसा ्मारा गाँव जाड़ों में नीचे सुवास्तु के किनारे ऐसे स्थान में चला जाता जहाँ बर्फ नहीं पड़ती ी। पहले-पहल जब नानी के यहाँ मैंने जाड़ा बिताया, और वहाँ सफेद बर्फ के फर्श, और उस र चाँदनी में झरते हिमतूलों को देखा, तो वह दृश्य मुझे इतना सुन्दर मालूम हुआ कि मैं ही चाहता था कि जाड़ों में नानी के यहाँ ही रहूँ। लेकिन, वह मेरे बस की बात नहीं थी। ीचे की ओर जाते समय हमें राजधानी (उद्यानपुरी) से गुजरना पड़ता। उस वक्त की दुनिया ें मेरे लिए उससे बड़ी कोई नगरी नहीं हो सकती थी। अब तक न मैंने पुरुषपुर (पेशावर) खा था, न तक्षशिला, न कान्यकुब्ज और न पाटलिपुत्र। छाँग-आन् की यह विशाल नगरी जो हुत पीछे तक मेरी कल्पना में नहीं आ सकती थी। उद्यानपुरी में मैं दूकानें देखता जिनमें रह-तरह की चीजें बिका करतीं। मुझे कभी कोई अच्छा खिलौना मिल जाता और कभी ोई मिठाई। हमारे गाँवों में न गुड़ होता, न शक्कर। हम तो मधु को ही मिठाई समझते थे ौर यही जानते थे कि मधुमक्खियाँ हमारे लिये मीठा तैयार करती हैं। बाजार की मिठाई ाने के बाद जब मुझे बतलाया गया कि यह मधुमक्खियों की जमा की हुई मिठाई नहीं है, ल्कि एक पेड़ से निकलती है, तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। उससे भी अधिक आश्चर्य और विश्वास की बात मुझे यह मालूम हुई, जबकि किसी ने हमारे एक पूज्य भिक्षु के चीवर कपड़ों) को दिखलाकर बतलाया, कि उसका ऊन किसी भेड़ से नहीं, बल्कि पेड़ पर पैदा ोता है। इस बात को तो मैंने तब तक विश्वास नहीं किया जब तक कि अपनी यात्राओं में पास के पौधे को अपनी आँखों नहीं देख लिया। कितनी ही बार उस आधे विश्वास और ाधे सन्देह वाली अवस्था में कल्पना दौड़कर कहती—जिस तरह मिठाई और कपड़े पेड़ पर लते हैं, उसी तरह यदि हमारा मांस भी पेड़ पर पैदा होता, तो कितना अच्छा होता? भी मैं यह न समझता था, कि गेहूँ, शाली (धान) और दूसरे अन्न तो उसी प्रकार के पेड़ र पैदा होने वाले मांस हैं। हमारे देश में कृषि और बागवानी यद्यपि कम नहीं थी, लेकिन ो भी जीविका का एक बड़ा साधन पशुपालन था। हम रोटी खाते थे, द्राक्षा तथा दूसरे वादु फलों को सुखाकर साल भर के लिये रख लेते थे; तो भी मांस हमारे यहाँ जितना धिक पसन्द किया जाता था, उतना अन्न नहीं। मध्यमण्डल और सिंहल द्वीप में जाने के ाद ही विश्वास हुआ, कि हमारे यहाँ के लोगों का आहार मांसप्रधान है। उत्तर के घुमन्तुओं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में जब मुझे रहने का मौका मिला, वस्तुतः तब मैंने देखा कि मांसप्रधान आहार कैस होता है ?

हमारे उद्यान देश में महायान का प्रचार अभी उतना नहीं था। वहाँ सभी हीनया के मानने वाले थे। उद्यान से बाहर जाने के बाद मेरा सम्पर्क महायान के साथ हुआ औ उसे अपनाने में तो और भी काफी देर हुई। मैं नहीं समझता हूँ, उद्यान में कभी भी महाया का सफलतापूर्वक प्रचार हो सकेगा। हीनयान मांस के आहार को हिंसा में सम्मिलित न करता जबकि महायान चरम अहिंसा का प्रचार करता है। इसके कारण भिन्न-भिन्न देशका के अनुसार उपासकों की कठिनाइयाँ बढ़ जाती हैं। मैं तुरुष्क (त्युरोक) लोगों के डेरों जब-तब जाकर उन्हें कुछ समय के लिये मांस का परित्याग करने के लिये कहता हूँ, क्योंकि क्ष से क्षुद्र प्राणी को जीवन-दान देने के लिये अपने सर्वस्व की बाजी लगाने वाले बोधिसत्वों यान पर आरूढ़ होकर भला कैसे कोई किसी तरह की हिंसा का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप समर्थन कर सकता है ? तो भी, मैं जानता हूँ कि अहिंसा में भी मध्यमार्ग के मानने वाले अधिक रहेंगे। अब जबकि तीस वर्ष से मैंने मांस को छूआ नहीं, तब भी उद्यान में मेरे गाँव लोग उसी तरह मांस खाते होंगे। उससे विरत होना उनके लिये खाद्य की भारी कठिन उपस्थित कर देगा।

अपनी बालबुद्धि और बालदृष्टि से उस समय मैं कितनी ही तरह की कल्पना किया करता था। देवताओं और अप्सराओं को देखना चाहता था। फिर सनातन हिम आच्छादित सामने की शिखर-पंक्तियों में अनेक अर्हतों और बोधिसत्त्वों का निवास सुनकर वहाँ भी पहुँचने की लालसा रखता था। इन लालसाओं की पूर्ति के लिये मैं कहाँ-कहाँ न गया, लेकिन सभी जगह निराश होना पड़ा। अब मेरा उन पर विश्वास नहीं है, यह नहीं क सकता। आखिर तथागत ने भी उनके होने के बारे में कहा है, दूसरे भी बड़े-बड़े आप्तज उन्हें मानते हैं ? शायद वह होंगे, लेकिन जब से मैंने बोधिसत्वों के यान महायान को दृढ़ पूर्वक अपनाया, तब से मुझे उनके देखने की कोई लालसा नहीं रही। मैं तो यही चाहता कि दुःख से संतप्त प्राणियों की किस तरह सेवा कर सकूँ। अवदानों और जातकों में तथा ने अपने चरित्र से दिखलाया है कि किस तरह हमारे जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य उनके द्वा दूसरों का उपकार होना चाहिये। मेरे चमड़े से दूसरों के पैरों की रक्षा के लिये जूते बन स तो इससे बढ़कर उसका उपयोग क्या हो सकता है ? मैं तो कहता हूँ, मेरे मरने के बाद शरीर को जलाया न जाय, बल्कि दूर किसी ऐसे स्थान में छोड़ दिया जाय जहाँ उससे प पक्षियों के भूख की शान्ति हो सके। एक नहीं, सहस्रों जन्मों तक मैं यही चाहूँगा कि मैं सभी सत्त्वों, सभी प्राणियों की सेवा करता रहूँ और जिसमें सभी संसार दुःख से मुक्त जाये, इसके लिये प्रयत्न करता रहूँ।

पशुपाल-जीवन

उद्यान एक बौद्ध देश है, यह बतला चुका हूँ। हमारे यहाँ सात-आठ वर्ष की उम्र में लड़ को श्रामणेर और लड़कियों को श्रामणेरी बनाने का रवाज है। प्रत्येक परिवार से एक व्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जरूर भिक्षु-संघ को दे दिया जाता है। हमारे लिए संघाराम घर या गाँव की तरह ही है। हरेक गाँव में बुद्ध मन्दिर हैं, लेकिन संघाराम प्रायः चार-पाँच गाँवों पर एक हुआ करते हैं। जब हरेक घर का कम-से-कम एक व्यक्ति भिक्षु बनता हो, तो संघाराम में चचा या मामा का होना स्वाभाविक है। मेरे चचा भी भिक्षु थे। जब वह कभी-कभी हमारे घर पर भोजन या भिक्षा के लिए आते, तो यद्यपि संघ के नियम के कारण मुझे गोद में नहीं उठाते, लेकिन उनकी दृष्टि और बातचीत से मैं उतना ही प्रसन्न होता जितना माँ-बाप से। मैं अबोध शिशु था, तभी से मेरे चचा भदन्त जिनवर्मा आते रहते होंगे, लेकिन मुझे उनकी स्मृति तब से है, जब मैंने कुछ होश सँभाला। पिता-माता पंच-प्रतिष्ठित से (सिर दोनों हाथ और दोनों पंजों से भूमि को छू) उन्हें प्रणाम किया करते, यद्यपि वह वय में छोटे थे। वस्तुतः पहले मैं आम भिक्षुओं में से उन्हें एक समझता था, पीछे किसी ने बतला दिया कि वह मेरे चचा हैं। हमारे गाँव के और परिवारों के मेरे साथ खेलने वाले दो-एक लड़के सात-आठ वर्ष की उमर में सिर मुड़ा, ताम्रवर्ण के चीवर को पहन श्रामणेर बन संघाराम में रहने लगे थे। मेरा बाल्य-हृदय भी भीतर से बड़ा मचलता था कि मैं भी वहाँ चला जाऊँ। लेकिन, अभी मैं अपने परिवार में अकेला बालक रह गया था। यद्यपि इकलौते बेटे को संघ को प्रदान करना हमारे यहाँ भारी पुण्य का काम समझा जाता था, वह अनहोनी बात नहीं थी, लेकिन मेरे पिता-माता मुझे जुदा नहीं करना चाहते थे। जब मेरा दूसरा भाई पैदा हो गया, तो मुझे कुछ-कुछ आशा बँधी। मेरे साथ खेलने वाले लड़के श्रामणेर बन अब कुछ लिखने-पढ़ने भी लग गये थे। मुझे खेल लिखने-पढ़ने से अधिक पसन्द था, लेकिन तब भी मैं कभी-कभी अपने साथियों के साथ के लोभ से जाकर चचा के साथ रहने के लिए उत्सुक जरूर हो जाता था। जब मैं भदन्त जिनवर्मा से इसके लिए आग्रह करता, तो वह कहते—जरा ठहरो, हम तुम्हें जरूर ले चलेंगे। लेकिन, वह समय मेरे लिए जल्दी नहीं आया।

हमारे लोग त्यूरोकों (तुरुष्कों) की तरह के यायावर या घुमन्तू नहीं थे, न उनकी तरह हमारे गाँव तम्बुओं के झुण्ड थे। हमारे घर सुवास्तु (स्वातु) तीर पर बसी राजधानी, मंगलपुर या दूसरे गाँवों की तरह चाहे विशाल और सुन्दर न भी हों, तो भी वह घर थे! हमारे गाँव के घरों में मिट्टी का कोई इस्तेमाल नहीं था, दीवारों में पत्थर भी बहुत कम लगे थे, नहीं तो सारा मकान देवदार की सदा महकने वाली लकड़ी से बने थे। छतें भी लकड़ी के फलकों से ढँकी थीं जिनके नीचे पानी न जाने देने के लिए भोजपत्र की छालकी मोटी तह बिछी रहती थी। लकड़ी हमारे लिए सबसे सुलभ चीज थी। घर के भीतर जरा भी सर्दी होते आग जला दी जाती। लेकिन घरों को बहुत कुछ यायावरों के तम्बुओं की तरह हमारे यहाँ इस्तेमाल किया जाता। उसी तरह खाने-पीने की चीजें, चमड़े और कपड़े ढेर करके दीवार के सहारे रक्खे जाते। फर्क यही था कि तम्बुओं से हमारी कोठरियाँ बड़ी थीं और वह कम-से-कम दो मंजिला जरूर थीं। गाय-बैल, भेड़-बकरियों के रखने के लिए घर से बाहर छोटा-सा घेरा रहता जहाँ रात भर में बहुत-सी मेंगनी जमा हो जाती। हमारे यहाँ उनका इस्तेमाल खेतों में केवल खाद के तौर पर होता। यह हमें बहुत पीछे मालूम हुआ कि इन मेंगनियों को ईंधन के तौर पर भी इस्तेमाल किया जा सकता है। जब रहने के लिए हरेक के तीन या चार गाँव हों, तो जीवन घुमक्कड़ों जैसा क्यों न हो जाये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जिस गाँव में हम सबसे अधिक रहते थे, वहाँ के घर सबसे अधिक अच्छे भी थे। यहीं हमारे खेत भी ज्यादा थे। तीनों वस्तियों में थोड़ी या अधिक खेती होती थी। गेहूँ, जौ, फाप की फसल बोई जाती थी। चावल हम लोग खीर के लिए इस्तेमाल करते थे जो कि गन्धार से आता था। जब पहले-पहल मैंने गन्धशाली (बासमती) का नाम सुना, तो मुझे मालूम हुआ, गन्धार की शाली होने के कारण ही इसका यह नाम पड़ा। हमारी चौथी वस्ती शुद्ध तम्बुओं की थी और वहाँ का जीवन भी बिल्कुल भिन्न और विचित्र था। हम इस वस्ती में उस समय पहुँचते, जब बरसात शुरू हो जाती। हमारे दूसरे और तीसरे गाँवों में भी वर्फ पड़ती थी, पर मुख्य गाँव में जहाँ वह तीन-चार हाथ मोटी होती, वहाँ तीसरे गाँव में उसकी मोटाई दसियों हाथ होती। इन तम्बुओं की वस्ती वाले स्थानों में तो उसकी मोटाई का ठिकाना नहीं था। गर्मी के अन्त में हम जब पहले-पहल वहाँ पहुँचते, तो अब भी कितनी ही जगहों पर वर्फ दिखाई पड़ती। हमारे तीनों गाँव के आसपास वाले सारे पहाड़ घने जंगलों से ढँके थे जिनमें कहीं-कहीं भूमि को कुछ समतल करके खेत वनाये गये थे। लेकिन, तम्बुओं की वस्ती वाली भूमि (पयार) में चार हाथ की भी कोई झाड़ी नहीं थीं। लड़कपन से ही अभ्यस्त होने से मेरा ध्यान इस ओर नहीं जाता था कि हमारी चारों बस्तियों के स्थानों में वृक्षों और वनस्पतियों की एक ही तरह की जातियाँ क्यों नहीं देखने में आतीं। जाड़ों में जिस जगह हम रहते, वहाँ शायद ही कभी वर्फ पड़ती। वहाँ के वृक्ष तथा घास-तृण हरे बने रहते जिनके ही लोभ से हम अपने ढोरों को लेकर वहाँ जा डेरा जमाते। निचले और मुख्य गाँव में देवदार, बंज (बान) आदि के वृक्ष ज्यादा थे जिनके पत्ते कड़ी से कड़ी सर्दी और हिमवर्षा में भी नहीं गिरते थे। एक तरह कह सकते हैं, कि यहाँ पतझड़ कभी नहीं होता, या थोड़ा-थोड़ा करके बारहों महीने होता रहता था। हमारी तीसरी वस्ती में देवदार और दूसरे सुई जैसे पत्ते वाले वृक्षों की बहुतायत थी। सबसे ऊँचे के स्थानों पर सफेद छाल वाले भुर्ज (भोजपत्र) के वृक्ष ही दीख पड़ते थे। देवदार की लकड़ी को जहाँ हम घर बनाने या जलाने के लिए इस्तेमाल करते थे, वहाँ भुर्ज हमारे और भी कितने ही कामों में इस्तेमाल होता था। हम उसकी छाल के दोने बना लेते, जिसमें मक्खन, दही या दूसरी चीजें रखते। हमारे यहाँ लिखने-पढ़ने के लिये भी उसका काम था। हमारी पुस्तकें भुर्जपत्र के ऊपर लिखी जातीं। जब मैं पाटलिपुत्र (पटना) के अशोकाराम में रहने लगा, उस समय वहाँ के भिक्षुओं के अज्ञान को सुनकर मुझे बड़ी हँसी आती थी। वह भुर्ज-छाल को पत्ता समझते थे। मेरे कितने कहने पर भी मानने के लिए तैयार नहीं थे और हठ करते—यदि यह पत्र नहीं होता, तो इसका भुर्जपत्र नाम क्यों पड़ा। मैं भला कैसे मान सकता था, कि वह पत्र है, जबकि मैं बचपन से ही चाकू से इन सफेद वृक्षों की अंगुल भर मोटी लम्बी-चौड़ी छाल को काट कर उसमें से बारीक परत निकालने का खेल खेला करता था। मैंने उन्हें बतलाया—भुर्जपत्र नाम उन लोगों का दिया हुआ है, जिनके यहाँ इतनी सर्दी और भारी हिमवर्षा नहीं होती, कि वहाँ यह वृक्ष उग सके। लिखने के लिए वह ताल के पत्तों का इस्तेमाल करते थे, जिसकी ही नकल पर उन्होंने हिमवन्त देश की इस लेखन-सामग्री का नाम भी भुर्जपत्र रख दिया।

यह तो मालूम ही हो गया, कि हम उद्यानवासियों, विशेषकर उद्यान के ऊपरी काँठे में रहने वालों का जीवन भी एक तरह का यायावरी जीवन है, घर और गाँव रहते भी हम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक जगह साल भर नहीं बसे रहते। लेकिन, मुझे तो सबसे प्रिय वह जीवन था, जिसे बहुत कुछ शुद्ध घुमन्तुओं का जीवन कह सकते हैं। यदि गर्मियों में हम अपने जाड़े के रहने वाले स्थानों से चलते, तो वर्षा में रहने के स्थानों (पयारों, बुक्यालों) में पहुँचने में एक पखवारे से ज्यादा नहीं लगता और उस समय इस सारी यात्रा में स्पष्ट हो जाता, कि जितनी ऊँचाई अधिक होती है, उसी के अनुसार सर्दी बढ़ती जाती और उसी के अनुसार वृक्षों और वनस्पति की जातियों में भेद होता जाता है। वर्षा में वैसे हमारे गाँव के स्थानों में भी घास की कमी नहीं थी, लेकिन अनादिकाल से हमारे लोग देवदार और भूर्ज के वृक्षों से ढँके पहाड़ों के पृष्ठ-भाग पर पशुचारण करना अधिक पसन्द करते चले आये थे। इन जगहों पर पहुँचने से दो-चार कोश पहले ही बड़ी जाति वाले वृक्ष भी बौने होने लगते और अन्त में घास के लिए वह स्थान छोड़ देते। नीचे से देखने वालों को कभी विश्वास भी नहीं हो सकता कि पत्थरों से ढँके बीहड़ चढ़ाई वाले इन पहाड़ों की पीठ पर दूर तक बड़ी विस्तृत समतल, किन्तु कितनी ही जगह उतार-चढ़ाव वाली भूमि है, जहाँ लम्बी-लम्बी घासें उगी हुई हैं। घास ही नहीं, बल्कि कहीं-कहीं जंगली गेहूँ का जंगल भी दिखाई पड़ता है। हाँ, यह जंगली गेहूँ ठीक हमारे गेहूँ जैसा होता है, जहाँ तक पत्तों और डण्ठल का सम्बन्ध है, लेकिन दाना छोटा और पतला होता है। यहाँ सबसे दुर्लभ चीज थी लकड़ी, जिसे काटकर लाने के लिए हमें तीन-तीन, चार-चार कोस नीचे उतरना पड़ता। पर्वतपृष्ठों की इन चरागाहों में यद्यपि गाँव की तरह सीमा नहीं बनी थी, लेकिन सभी गाँव वाले जानते थे, कि उनकी गोचरभूमि कहाँ तक है। गाँवों में जहाँ हर घर के खेत अलग-अलग होते, वहाँ इन गोचर भूमियों में मेरा और तेरा का सवाल नहीं था, सारे गाँव की गोचर भूमि ही नहीं, बल्कि हमारे निवास के झोपड़े भी सम्मिलित थे, खाना भी सम्मिलित बनता था। सिर्फ यहाँ तैयार किये हुये मक्खन को अलग-अलग रखा जाता। गाँव से हमारे लिए आटा, सत्तू, नमक या अनाज की चीज हर पखवारे या महीने आया करती; उसी समय जमा किया हुआ मक्खन, कभी-कभी मांस और चमड़ा भी घर भेज दिया जाता। ऊन हम यहाँ से घर लौट कर कतरते। हमारे लिए मांस, दूध, दही, मक्खन वैसे ही सुलभ थे, जैसा कि हमारे पशुओं के लिए घास और तृण। चीन में आकर मैंने मांस को छोड़ दिया। इसी समय मैं समझने लगा, कि उद्यानवासियों को हीनयान क्यों अधिक प्रिय है—क्योंकि मांस छोड़ना उनके लिए अपने सबसे अधिक सुलभ खाद्य से वंचित होना है। अब तो मुझे उस क्रूरता के ख्याल से भी बहुत जुगुप्सा होती है, लेकिन उस वक्त सद्योजात भेड़-बकरी के बच्चे के मांस को भूनकर हम लड़के बड़े चाव से खाया करते थे। सद्योजात बच्चे का चमड़ा और ऊन अत्यन्त मुलायम होता। उनका कला चमड़ा तो तूलाजिन (समूर) जैसा ही कोमल और चमकीला होता है। उसी के लोभ से उन्हें दुनिया को एक नजर से देखने का भी अवसर न दे मारकर चमड़े को अलग कर लिया जाता है। उनके मांस को बहुत ही स्वादिष्ट समझ अतिथि को खिलाकर गृहपति को बहुत प्रसन्नता होती। भिक्षु लोग—हीनयानी होने पर भी—अपने लिए मारे गये पशु का मांस नहीं खा सकते थे, अपने लिए का मतलब खास व्यक्ति के निमित्त मारकर तैयार किया हुआ मांस समझना चाहिए, नहीं तो यह किसे मालूम नहीं कि पशुओं को मनुष्यों की जमातों के निमित्त ही मारा जाता है। ऐसा मांस चरवाही झोपड़ों में तयार होता, तो भिक्षु भी उसी चाव से खाते, जैसे हम बच्चे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन पथारों (पयारों, बुकयालों) का जीवन मेरे लिए सदा से आकर्षक रहा। जि समय मैं पहली बरसात में वहाँ जाकर रहा, उस समय भी और आज भी 70 वर्ष का होक मुझे पयारों के जीवन को स्मरण करके बड़ी ईर्ष्या होती है। आज भी हमारे उद्यान के पया में उसी तरह चहल-पहल होगी, जैसा कि मेरे या मेरे बाप-दादों के बचपन में। वहाँ सवेरे वक्त पशुओं को खोलने और शाम के वक्त बाँधने की आवश्यकता नहीं थी। अपने ही आप रात के विश्राम के लिए डेरों के पास चले आते। जिनका दूध दुहना होता, उन्हें सवेरे लिया जाता और इसके लिए उनके बच्चे शाम को ही अपने झोपड़ों में बाँध दिये जाते। सत्तू, उबला मांस खाते। दूध के लिए जब वहाँ पूछना नहीं था, तो छाछ की बात क्या? लड़के सवेरे का भोजन करके खेड़ों में चले जाते, जो हमसे पहले ही घास के मैदान में विख गये रहते। हमारे पशुओं के शत्रु यहाँ भी उसी तरह मौजूद थे, जिस तरह हमारे गाँवों के आस पास। बर्फानी चीते इक्के-दुक्के पाकर ढोरों को मार डालते, लेकिन समूहबद्ध होकर हमा सींग वाले जानवर बड़े से बड़े चीते क्या बाघ या सिंह को भी पास फटकने नहीं देते। बाघ और सिंह हमारे जाड़े के रहने के स्थानों में ही रहते थे, शायद ठंड से वे भी घबराते हैं हमारी भेड़-बकरियों के सबसे बड़े शत्रु भेड़िये थे। बेचारी संघबद्ध होकर भी उनसे अपन रक्षा नहीं कर सकती थी। लेकिन, हमारे कुत्ते भेड़ियों का मुकाबिला करने के लिए तैयार थे कुत्तों को हम पशुओं में नहीं गिनते। वह तो हम मनुष्यों के समाज के अंग थे। सवेरे के वक्त उन्हें भी उसी तरह खाना दिया जाता, जैसे बच्चों या सयानों को। जब हम पशुचारण लिए निकलते, उससे भी पहले वह भेड़-बकरियों के खेड़ों के साथ चल देते। भेड़ियों की तरह ही हमारे कुत्ते थे। उनके काले लम्बे बाल और हल्दी जैसी पीली आँखें बड़ी डरावनी थीं। अपरिचित आदमी की खैरियत नहीं थी, यदि बिना सजग हुये निहत्था वह उनके पास आ जाता। कुत्ते कितने होशियार होते हैं? मनुष्य के बाद शायद ही कोई जन्तु हो, जो इतन समझदार हो। भेड़िया बड़ा चालाक समझा जाता है, लोमड़ी उसका भी कान काटती है लेकिन मैं नहीं समझता, बुद्धि में वह दोनों हमारे कुत्तों का मुकाबिला कर सकते हैं।

अपने पशुओं के साथ दिनभर रहने में हम लड़कों को अपार आनन्द आता था। हमा झोपड़ों या तम्बुओं में स्त्रियों-पुरुषों, लड़कों-लड़कियों की संख्या यद्यपि एकसमान नहीं थी क्योंकि बूढ़े-बुढ़ियाँ और उनके बाद बच्चे वाली स्त्रियाँ अधिकतर गाँव में ही रह जाती थीं यहाँ उन्हें ही साथ लाया जाता जिनकी काम के लिए आवश्यकता होती। छह-सात वर्ष ऊपर का लड़का-लड़की शायद ही कोई होता, जो वर्षा में पयारों में नहीं पहुँचता। यहाँ ह गाँव के सात से चौदह-पन्द्रह वर्ष तक के लड़के-लड़कियों की पलटन जमा हो जाती थी। भिक्षु जीवन में मुझे कितना सुन्दर मालूम होता, जब देखता कि हम लोग भिक्षा से लाये या संघा राम में बने भोजन को एक पाँती में बैठ मिलकर खाते। मुझे पहले-पहल ख्याल आया, कि इ तरह के सम्मिलित सहभोज का विधान तथागत ने हमारे उद्यान के पयारों के जीवन से ग्रह किया था। मुझे और मेरे देशवासियों को विश्वास था, कि तथागत अपने अनेक जन्म में हमा उद्यान में पैदा हुये थे। मैंने उस स्थान का भी दर्शन किया था; जहाँ तथागत ने कबूतर जन्म लेकर अपने शरीर का दान दे दूसरे प्राणी की भूख शान्त की थी। उद्यान की राजधानी से दक्षिण-पूर्व आठ दिन के रास्ते पर उस स्थान पर भी मैं गया था जहाँ बोधिसत्व ने अपन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शरीर दान दे एक वाघिन की भूख मिटाई थी। पीछे मेरा यह विश्वास कुछ डिग चला जब मैंने अपने भ्रमण में भिन्न-भिन्न देशों में ऐसे स्थानों को पूजे जाते देखा, जहाँ पर तथागत के उन्हीं अवदानों के घटना-स्थलों को बतलाये जाते देखा, जिन्हें मैं उद्यान की अपनी चीज समझता था।

दोपहर के समय हमें हर रोज खाने के लिए आने को कहा जाता, लेकिन हम बहुत कम उस समय लौट पाते। इसका कारण यही नहीं था, कि हम अपने पशुओं के साथ उस समय दो-दो तीन-तीन कोश पर चले गये रहते, बल्कि हमारा तो वह खेल-कूद और निश्चिन्त मनोविनोद का जीवन था। उस जीवन में हमें फुर्सत ही कहाँ थी, कि उसे छोड़कर हम अपने झोपड़ों में लौटते। हमारी पीठ की झोलियों में भुने हुए गेहूँ, उबले मांस या रोटियाँ रहतीं। भेड़ की ताजा झिल्ली में भरा हुआ छाछ या दूध भी हम अपने साथ रखते। इसलिए जब भूख लगती, तो हम किसी जगह बैठकर खा लेते। यहाँ हमारा सम्बन्ध अपने गाँव के बच्चों तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि दूसरे गाँवों के बच्चे भी हमें मिल जाते और खेल तथा भोजन में हमारे सहभागी बनते। उम्र के अनुसार दो ही तीन वर्ष के अन्तर से लड़के-लड़कियों की हमारी मिश्रित टोलियाँ बन जातीं, कभी-कभी लड़कियाँ अपनी समवयस्काओं की अलग भी टोली बना लेतीं, नहीं तो प्रायः हम सभी एक टोली में रहते।

पशुओं के मुँह में तृण हमें हाथ से देना नहीं था। वह अपने आप लम्बी घासों में कुछ देर चरते, फिर विश्राम करने लगते और फिर चरते। उनकी रखवाली के लिये हमारे कुत्ते मौजूद थे ही। कभी-कभी जब किसी संकट को देखकर कुत्ते भूँकने लगते, तब हमारा ध्यान उस ओर जाता और बहुधा हम अपना खेल छोड़कर वहाँ दौड़ जाते। हमें खेलों के साथ शिकार का भी शौक था। खरगोश को घेरकर अपने कुत्तों की मदद से हम मार लेते, फिर सूखी लकड़ियों के लिये दौड़ जाते। हमारे पास आग जलाने के लिये चकमक-पत्थर मौजूद था। आग पर भुने खरगोशों को हम बड़े चाव से खाते। जिस दिन हमें शिकार में सफलता होती, उस दिन तो हमारे आनन्द की सीमा नहीं रहती। हाथ भर का छुरा हम बचपन ही से लटकाना जानते, तीर-धनुप चलाना भी हम खेल-खेल में सीख लेते। यद्यपि मेरा निशाना उतना अचूक नहीं होता, लेकिन मेरे साथियों—लडके और लड़कियों दोनों—में कितने ही ऐसे थे जिनका तीर कभी नहीं चूकता। हम लड़के-लड़कियाँ छोटे-छोटे पत्थरों को डालकर गोफन से भी शिकार करते, यद्यपि उसका अधिक उपयोग हम भेड़िया या किसी और जानवर को डराकर भगाने या अपने पशुओं को हटाने के लिये ही करते। बच्चे बड़ों की हर बात में नकल करते हैं। सात वर्ष का बच्चा दस वर्ष वाले की, दस वाला बारह वाले की; इसी तरह चौदह-पन्द्रह वाला अपने से ऊपर वालों की नकल करता है। शाम के वक्त जब हमारे गाँव के लोग और कामों से निश्चित हो जाते, तो शराब पीते और फिर बाजे बजने लगते। स्त्री-पुरुष आधी-आधी रात तक नाच और गाने में बिता देते। इस आमोद-प्रमोद में हमें सम्मिलित होने का अवसर नहीं मिलता था। हम उसकी कसर दिन में अपनी चरवाही के समय निकालते। वंशी बजाने का लड़कों को बहुत शौक होता है, गाने में लड़के-लड़कियाँ चाहे उतने गीत न जानते हों, लेकिन स्वर और ध्वनि में बड़ों से पीछे नहीं थे। इसका खेद रहता,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि हम ढोल जैसे दूसरे बाजे यहाँ नहीं बजा सकते थे। शायद छोटा-मोटा ढोल या को दूसरा बाजा हम चुराकर भी ला सकते थे। लेकिन हमारे बड़े यह कैसे पसन्द करते, कि ह चरवाही छोड़कर उनकी रात की महफिल का अनुकरण करें। इन पयारों में ढोल की आवा और भी बहुत दूर तक फैलती, फिर बड़ों को मालूम होते देर न लगती और हमें घुड़क सहनी पड़ती। इसीलिये हम बाजे के नाम पर वंशी और लकड़ी पर ताल देकर संतो कर लेते।

हमारे खेलों में एक और भी बड़ी बाधा थी। पशुओं में जाने के समय हममें से हर को पाव-छटाक ऊन और तकला दे दिया जाता। शाम को उसका सूत कातकर लौटा पड़ता। जिन्हें घुड़की और मार खाने की आदत होती, वह कातने की कम ही पर्वाह करते लेकिन मेरे जैसे लड़के-लडकियां रोज नियमपूर्वक अपने ऊन का सूत कातकर शाम को लौ देते। हम ऐसे समय किसी ऊँची जगह पर बैठ जाते, जहाँ से हमारी नजर अपने पशुओं प भी रहती। मंडरी बाँधकर जैसे हम बैठते, उसी तरह हमारे आसपास हमारे कुत्ते भी बै होते। फिर एक ओर हमारा हाथ तकले पर चलता और दूसरी ओर हमारे कंठों से बालसुल गीतों का सुर निकलता। हमारे पहाड़ के लोग, विशेषकर उद्यानवासी अपने मधुर कण्ठ लिये बहुत मशहूर हैं। वस्तुत: बचपन से ही हम उसी तरह गाना गाने लगते हैं जिस तर साँस लेते हैं। अपनी उमर के लड़कों में मेरा गला बहुत मधुर था, और उससे भी अधि बात यह थी, कि स्मृति तेज होने से मुझे बहुत से गीत याद थे, जिसके कारण मैं अप समवयस्क लड़के-लड़कियों में बहुत प्रिय था। जब गीत की हरेक पंक्ति को समाप्त कर समय हम लम्बी तान लेते, तो दूर-दूर तक हमारा स्वर गुंजित हो उठता। मुझे क्या सभ बच्चों को यह विश्वास था, कि हमारे गाने को सयाने लोग जरूर सुनते हैं। शायद उन्हें भ अपने बचपन की मधुर स्मृतियाँ याद आती थीं, इसीलिये भेड़-बकरियों को अपने भाग्य प छोड़कर हमें अपनी संगीत-मण्डली रचाते देखकर वह कुपित नहीं होते, और न हमें झिड़क खानी पड़ती थी।

यह वर्षा का समय था, इसलिये चरवाही करते समय अक्सर वर्षा आ जाती। हमा डेरों में कुछ तम्बू भी होते, जो बकरियाँ या घोड़ों के बालों के सूत से बुने थानों से बना जाते। लेकिन त्यूरोक घुमन्तुओं की तरह हम केवल तम्बुओं का उपयोग नहीं करते थे। शाय पास ही में घास और दो-चार कोस पर लकड़ी सुलभ न होने पर हमें भी केवल तम्बुओं ही अपने को ढँकना पड़ता। हमारे रहने के लिए अधिकतर झोपड़े होते थे। इन पर्वत-पी पर जल-वर्षा के अतिरिक्त कभी-कभी हिम-वर्षा भी हो जाती। जब लगातार झड़ी पड़ लगती, सर्दी हमारे मोटे ऊनी चोगे और सुत्थन को फोड़कर चमड़ों और हड्डियों को बेधत मालूम होती, तो हम जान जाते, कि अब पानी की जगह हिम की वर्षा होगी। लेकिन, इ मौसिम में पड़ा हिम दिन के कुछ घंटों से अधिक नहीं ठहर सकता था। हम यह जरूर समझ थे, कि जाड़ों में यहाँ उससे कहीं अधिक मोटी हिम चारों ओर धरती को ढाँके रहती होग जितना कि हमारे गाँवों के आसपास की भूमि में। ऐसे समय हमारी भेड़ें मानो स्वयं सजग ह जातीं और बादलों की घनी छाया को छाते देख उन्हें सन्ध्या के आगमन का पता लगता औ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह डेरों की ओर लौट पड़तीं। ऐसे समय जंगली जानवरों के हमले का ज्यादा डर रहता। हमारे पशुओं को हर साल जंगली जानवरों से नुकसान पहुँचता। कितना ही सजग रहने पर भी वह हर साल कुछ को मारने में सफल होते। किसी जानवर के आक्रमण होने पर हम हल्ला करके मृत जानवर को छीनने की कोशिश करते।

हमारे अधिक धर्मभीरु बूढ़े और सयाने जानवर द्वारा मारे गये पशु के मांस को अधिक शुद्ध मानते थे, क्योंकि उसके लिये हिंसा नहीं करनी पड़ी। तथागत ने अहिंसा के सम्बन्ध में बहुत से उपदेश दिये हैं जिनको हमारे भिक्षु दोहराया ही करते हैं, इसलिये इस तरह की भावना स्वाभाविक थी। कभी-कभी कोई बर्फानी चीता ढोरों पर हमला करने में सफल होता; किसी गाय, बैल या बछड़े को मार डालता। उस समय हम यदि समय पर पहुँच जाते तो बहुत सारा मांस मिलता। ऐसा भी अवसर आता जब इस मांस को एक बार में समाप्त करने के लिये हम गाँव भर को नहीं, बल्कि सारे पड़ोसियों को भोज का निमंत्रण देते। भोज बिना शराब के नहीं हो सकता था। चमड़े के बड़े-बड़े कुप्पों में गेहूँ या जौ की कच्ची शराब गाँव में हमारे यहाँ बराबर आती रहती थी। त्यूरोकों में आने से पहले मुझे मालूम नहीं था कि घोड़ी के दूध की भी शराब बन सकती है। हमारे यहाँ घोड़े-घोड़ियाँ भी काफी थीं। यद्यपि हमारे घोड़े कम्बोजों की तरह बहुत लम्बे-चौड़े नहीं होते थे, लेकिन वह ठिगने होते भी बहुत मजबूत होते थे। पहाड़ की यात्रा में तो उनसे अधिक अनुकूल घोड़े हो ही नहीं सकते थे। कठिन से कठिन चढ़ाई और सँकरे से सँकरे रास्ते में वह खट-खट चढ़ जाते। हमारे यहाँ चमर नहीं पाले जाते, जैसा कि शीतसमुद्र के आसपास वाले लोगों में मैंने देखा। मैं भी पहले समझता था कि चमर एक प्रकार का मृग या हरिन है, लेकिन जब मैंने उसे मध्यमण्डल के ग्राम्य पशु भैंस जितने बड़े और हाथ-हाथ भर लम्बे काले बालों से ढँका देखा, तो सन्देह नहीं रहा कि यह हरिन या मृग नहीं है। और जब यह भी देखा कि साधारण गाय और चमर के संयोग से सन्तान पैदा होती है और उसका वंश बराबर चलता है, तो विश्वास हो गया कि यह गाय की ही जाति है। आखिर मनुष्यों में भी तो त्यूरोकों के चेहरे-मोहरे दूसरी तरह के होते हैं और हम उद्यानियों के दूसरी तरह के। दक्षिणी जम्बू द्वीप में तो रंग में और भी अधिक भेद मिलता है, वहाँ कोयले जैसे काले स्त्री-पुरुष अधिक मिलते हैं।

हमारे पयार के जीवन में केवल आमोद-प्रमोद, पशुचारण और पशुदोहन का जीवन ही सम्मिलित नहीं था। कितनी ही बार हमारे भदन्त भिक्षु निमंत्रित हो वहाँ पर पहुँचते थे और कभी-कभी वह स्वयं चारिका करने चले आते। हमारे लोगों के लिये पहाड़ों की दुर्गम चढ़ाई-उतराई कोई कष्ट की बात नहीं है। हमारे उद्यान के भिक्षु तो बाल्य में पयार के पशुपाल जीवन का आनन्द ले चुके रहते थे, इसलिये उनका इधर अधिक आकर्षण भी था। वह जब आते, तो हमारे झोपड़ों में बड़ी सरगर्मी दिखाई पड़ती। यदि कोई संघाराम का महास्थविर आता, तो हमारे नाच-गाने के बाजे उनके स्वागत के वाद्य बन जाते। झोपड़ों के सभी नर-नारी, बालक-बालिकायें अगवानी के लिये बाजे-गाजे के साथ जाते, सब उनके सामने पंचप्रतिष्ठता में अभिवादन करते, उनका आशीर्वाद लेते और फिर गीत और वाद्य के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साथ उन्हें अपने झोपड़ों में लाते। कभी-कभी उनके ठहरने के लिये नये झोपड़े बना दि
जाते। जो एक से अधिक होने पर भिक्षुओं के छोटे से संघाराम का रूप ले लेते। वर्षा
अन्त होने पर दो-चार ही दिन हमारे डेरों में रहते। लेकिन वर्षा के दिनों में भिक्षु गमनागम
नहीं कर सकते, इसलिये इस समय आने पर वह वर्षावास के लिये हमारे डेरों में ठहर जाते
अमावस्या और पूर्णिमा को विशेष पूजा होती। लोग उस दिन मांस नहीं खाते। दोपहर
वक्त केवल एक बार आहार करके उपोसथ व्रत रखते। शाम के वक्त भक्तिभाव से सब लो
धर्मश्रवण करने के लिये एक जगह एकत्रित होते, जहाँ हमारे भदन्त उन्हें बड़े रोचक ढंग
उपदेश करते।

पयार में एक साल महास्थविर संघवर्धन पाँच भिक्षुओं और चार-पाँच श्रामण
(बालभिक्षुओं) के साथ हमारे आवास में वर्षावास कर रहे थे। उन्होंने जातक-अवदान
सौ कथायें कहीं। उनके कहने का ढंग इतना सरल था, कि मेरे जैसा दस-ग्यारह वर्ष
बालक भी बहुत कुछ समझ सकता था। इन कथाओं में पशु-पक्षियों की बातें अधिक आ
थीं, जिसके कारण भी हम बच्चों के लिये वह बड़ी दिलचस्प थीं। उस समय की सुनी हु
कथाओं में से, विशेषकर उनके कहे हुये ढंग में, कितनी ही अब भी मुझे याद हैं, यद्यपि स्मृ
क्षीण होती जा रही है। वर्षावास की समाप्ति पर जब आश्विन पूर्णिमा को प्रावारणा
दिन आया, भारी उत्सव मनाया गया। उपदेश सुनने के लिये दूसरे गाँव वाले हमारे पड़ो
नर-नारी भी उसी तरह हमारे यहाँ आ जाया करते थे, जिस तरह उनके यहाँ ऐसा आयोज
होने पर हमारे लोग जाते थे। प्रावारणा के दिन महोत्सव में कई-कई कोस तक के डेरे वा
हमारे यहाँ पहुँचे थे। उस समय तथागत के जीवन पर महास्थविर ने बहुत सुन्दर औ
विस्तृत उपदेश दिया। रात एक पहर रह गई थी, जब वह उपदेश समाप्त हुआ। अवदा
कथाओं के सुनने से वह इतनी अच्छी लगने लगी थीं, कि जब इस अन्तिम कथा की बात मैं
सुनी, तो रात को कहीं नींद न आ जाये, इसलिये मैंने दिन में ही खूब सो लिया था। रा
को मैं दूसरों से भी अधिक तत्परता के साथ कथा को सुनता रहा। मेरे पास बैठी मेरी प्रौ
बुआ और उनके भाई—मेरे पिता—आधी रात बीतते-बीतते ऊँघने लग गये थे। मेरी उम
के कितने बच्चे तो वहीं सो गये थे, लेकिन मेरी पलक भी नहीं झपी। महास्थविर संघवर्द्ध
ने जम्बूद्वीप की अनेक बार यात्रा की थी; कई सालों जैतवन महाविहार में रहकर उन्हों
अध्ययन किया था। उनकी जैसी आकर्षक, ज्ञानवर्द्धक, मधुर और सरल वाणी मैंने बहुत क
में पाई। उन्होंने तथागत के बाल्य-जीवन का जब सजीव चित्र खींचा, तो वह मुझे अप
समवयस्क और प्रिय विनोदी मित्र से जान पड़े। उनके वर्णन में कुछ बातें ऐसी जरूर थीं
मुझे उस समय समझ में नहीं आईं। मैं तो समझता था, सारी दुनिया हमारे उद्यान की तर
ही ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों की है, जहाँ साल में कुछ महीने बर्फ जरूर पड़ा करती है। लेकिन
महास्थविर तथागत की जन्मभूमि घूमे हुये थे। उन्होंने जैतवन ही में कई वर्ष निवास ही नह
किया था, बल्कि तथागत द्वारा अविजहित (अपरित्यक्त) चारों नहीं, आठों स्थानों में एक-ए
वर्षावास किये थे। लुम्बिनी, कुसीनारा, वज्रासन (बोधगया,) ऋषिपतन (बनारस)
संकाश्य, राजगृह और वैशाली उनके लिये उतने ही सुपरिचित थे, जैसे कि उद्यान के भिन्न
भिन्न स्थान। मेरे लिये ही नहीं, बल्कि सयानों के वास्ते भी तथागत के चरित्र से सम्बन्ध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रखने वाले स्थानों और वस्तुओं का कितना ही वर्णन अज्ञेय था, लेकिन उसके कारण कथा की रोचकता नहीं घटी। पीछे जब मैं इन स्थानों में गया, तो महास्थविर संघवर्द्धन की उस समय कही हुई मेरे हृदय में सुषुप्त बातें एक-एक करके जाग्रत होने लगीं।

महास्थविर के इस उपदेश की छाप मेरे हृदय पर सदा के लिये अमिट हो गई। मुझे कुछ-कुछ समझ में आने लगा, कि जीवन को केवल अपने सुख और प्रसन्नता के लिए उपयोग करने से जितना आनन्द आता है, उससे कहीं अधिक आनन्द मिलता है, उसे दूसरों के सुख में लगाने में। वह प्रावारणा की रात्रि ही थी जिसने मुझे प्रेरणा दी, मेरे हृदय में वह बीज वपन किया जो अंकुरित होकर मेरे सारे भविष्य के जीवन का पथ-प्रदर्शक बना। महास्थविर 80 वर्ष के थे। मैं उस समय बारह वर्ष का बालक अब 70 वर्ष का बूढ़ा हूँ। हमारी चारों आँखों ने मिलकर करीब डेढ़ शताब्दियों की विस्तृत दुनिया देख ली हैं। दुनिया जिस तरह देश में बदली दीख पड़ती है, काल में वह और भी अधिक बदलती रहती है। पुरानी पीढ़ियाँ आँख से ओझल और स्मृति से विलुप्त होती रहती हैं और उनका स्थान नई पीढ़ियाँ लेती हैं। दुनिया में दुःख है, अपार दुःख है, इसे सभी मानते हैं, तथागत ने भी माना, लेकिन उन्होंने साथ ही यह भी बतलाया, कि दुःख का उसी तरह कोई कारण या निदान होता है, जैसे रोग का, और रोग ही की तरह दुःख से भी छुटकारा मिल सकता है। उस छुटकारा पाने का मार्ग तथागत ने अपनी वाणी और चरित्र द्वारा लोगों को दिखलाया। वह मार्ग है बहुजन हित का, बहुजन सुख का। उस मार्ग पर चलने वाले के लिये जीवन को अपने सुख और स्वार्थ तक सीमित नहीं रखना होता। हरेक दूसरे के सुख और हित के लिये जीये, तो इस दुनिया से दुःख कितना कम हो सकता है? चारों ओर स्वार्थ का घोर अन्धकार छाया हुआ है। इस अन्धकार में तथागत ने बोधिप्रदीप को जलाकर रखा।

उस प्रावारणा की रात मेरे जीवन पर अमिट छाप छोड़कर सदा के लिए चली गई। वह बोया हुआ बीज मेरे हृदय के किसी कोने में निहित अज्ञात-सा पड़ा रहा। मैं कुछ दिनों तक महास्थविर के उपदेश और उनके संसर्ग के अभाव को महसूस करता रहा जो कभी-कभी मेरे आमोद-प्रमोद में भी बाधा डालता था, लेकिन उसके बाद मैं फिर दूसरे लड़के-लड़कियों की तरह अपनी बाल-सुलभ क्रीड़ाओं में लग गया। फिर वही सवेरे के समय पशुओं में जाना, फिर कभी गाना-नाचना और कभी शिकार के पीछे दौड़ना। हाँ, अकस्मात् ही एक परिवर्तन मेरे भीतर यह जरूर हो गया था, कि अपने हाथ को मैं किसी शिकार पर नहीं चला सकता था। अब शिकार का आनन्द केवल दुर्गम टेकरियों और स्थानों में दौड़-धूप करके ही मैं ले सकता था। मेरे इस परिवर्तन को मेरे साथ खेलने वाले बच्चे भी जानते थे और कभी वह ताना कसते मुझे भिक्षु कह देते थे। लेकिन जहाँ तक गाने-नाचने का सम्बन्ध था, मैं अब भी उनका पहले ही की तरह का साथी था और मेरे गीतों की फरमाइश वह उसी तरह आग्रह-पूर्वक करते थे।

पयार का जीवन हमारा चार-पाँच महीने का होता था। वह कब शुरू हुआ, कब खतम, इसका हमें पता नहीं लगता था। वर्षा कम होते-होते रुक जाती। लम्बी-लम्बी घासें हमारे हजारों पशुओं के चरने से उच्छिन्न कहाँ हो सकती थीं। हम तो एक स्थान के डेरे में रह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर चाहते तो सारा समय बिता सकते थे। घास की कमी के कारण नहीं, बल्कि अधिक गोबर और मेंगनियों के जमा हो जाने के कारण हमारे झोपड़े डेढ़-दो महीने बाद वहाँ से कुछ कोस दूर दूसरी जगह लगा दिये जाते। वर्षा के महीनों की गिनती भी होती रहती। तीसरा महीना समाप्त होने के बाद सर्दी की वृद्धि ही बतला देती, कि अब पयार का जीवन अन्तिम छोर पर पहुँच रहा है। चौथे महीने के अन्त में घासें पीली पड़ने लगतीं और तब हरियाली के स्थान में पीलेपन के आने की तरह हमारे मन की भी हरियाली कुम्हलाने लगती। हम बच्चे सोचने लगते कि अब हमें फिर अपने गाँव के घरों में जाना है। पयार में जहाँ हम दिन-रात भाई-भाई की तरह एकसाथ सोते-खाते-खेलते, अब हमारा यह विशाल परिवार फिर छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट जायगा। मैं बतला चुका हूँ कि हमारे गाँव के लोग अधिक ठण्डा होने से जाड़ों में बहुत नीचे के गरम स्थानों में चले जाते थे जिसके कारण वहाँ हिमकाल और उसके खेलों का आनन्द नहीं मिलता था। मेरा बराबर आग्रह ननिहाल जाने का इसी कारण होता था। लेकिन, इसका यह मतलब नहीं कि हिम और हिमकाल छोड़कर और कोई ऋतु मुझे प्रिय नहीं थी।

पयार का जीवन अवश्य मुझे अत्यन्त प्रिय था, उसका दूसरा-तीसरा महीना तो मेरे मन में आनन्द का प्रवाह छोड़ देता था। यह वह समय था जब पर्वत-पृष्ठों पर लम्बी-लम्बी घासों का मैदान ही नहीं, बल्कि हजारों तरह के फूलों का उद्यान सजा देता था। रंग-बिरंगे फूल थे जिन्हें सात रंगों का कहकर उनके सौंदर्य का हम अपमान करते हैं। नीले हैं, तो उसमें भी पचासों रंग के नीले। लाल हैं, तो वह भी बीसियों छाया के लाल। फिर उनकी आकृति भी नाना प्रकार की बड़ी मोहक, पत्तियाँ भी तरह-तरह की। कितने ही फूलों में अत्यन्त मधुर सुगन्ध होती थी और कुछ सुगन्ध-वंचित, किन्तु सौन्दर्य में अनुपम थे। कुछ की तो पत्तियाँ भी बहुत सुवास देती थीं। उस समय हम लड़के-लड़कियाँ फूलों का खेल खेलते। एक दूसरे के बालों को फूलों और पत्तियों से सजाते, वनदेवी के पुत्र और पुत्री बन जाते। उद्यान जैसे ठण्डे देश में यदि नित्य स्नान लोग नहीं करते, तो इसके लिए नाक-भौं सिकोड़ना नहीं चाहिए। उद्यान न हो आये कोई मित्र भिक्षु या सहयात्री हमारे लोगों की गन्दगी की शिकायत करते, तो मैं उनसे यही कहता—यदि वैसी हाड़ चीरने वाली सर्दी में आपको रहना पड़ता, सद्योहिमगलित जल-धारा में नहाना पड़ता, तो आप हमसे भी कम नहाने का नाम लेते। वर्षा के इन दिनों में पयार पर सर्दी रहती, कभी-कभी वर्षा में हम भीग भी जाते। बच्चों के गुलाबी चेहरे पानी से धुलते ही अधिक चमक उठते, इसका हमें पता था। हम यह भी देखते कि शरीर पर पानी पड़ने से जहाँ की मैल धुल जाती, वहाँ का रंग निखर आता। इसलिए हम स्नान के महत्व को समझते थे और लड़के-लड़कियाँ वर्षा आते ही बूँदों के पड़ते ही अपने ऊनी चोंगों और सुत्थनों को दूर फेंककर खड़े हो जाते। बूँदें जितनी घनी होती जातीं, उतने ही हमारे आनन्द की घनता बढ़ती जाती। हम खूब नाचते, गाते और एक दूसरे के शरीर के मैल को मल-मलकर छुड़ाते। अबोध बालक का आनन्द कितना असीम और निर्दोष होता है। यह वर्षा का आनन्द हम उसी समय लेते थे जबकि फूलों की शोभा अपने पूरे यौवन पर रहती थी। हमारे केश पीले और कुछ-कुछ के श्वेत-पाण्डुर होते। अभी मुझे यह मालूम नहीं हुआ था कि सभी मनुष्यों के केश इस रंग के नहीं होते और काले रंग वाले केश ही दुनिया में अधिकांश देखे जाते हैं। इसमें शक नहीं, वर्षा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का दूसरा-तीसरा महीना अपनी पुष्पश्री के कारण हमारे आनन्द को चरम सीमा पर पहुँचाता था। चौथे ही महीने के आरम्भ होते, हमें यदि वह मनोरम भूमि छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ता, तो बड़ा दुःख होता। हमारे प्रवास का अवसान धीरे-धीरे होता। पाँचवें महीने के अन्त तक रहना अनिश्चित था, क्योंकि ऋतु-परिवर्तन कभी जल्दी और कभी देर से होता था। आसपास के तृण-वनस्पति के अधिक पीला होते ही घर वाले प्रस्थान की तैयारी में लग जाते। पहले गाय-बैलों को नीचे भेजा जाता, फिर घोड़े-घोड़ियों को, अन्त में गाय-बकरियों को लेकर अपने डेरों को खाली करके सभी लोग चल पड़ते। रोते-धोते रहने पर भी हम बच्चों को भेड़ों के साथ उतरने के लिए नहीं रहने दिया जाता। उस समय स्त्रियाँ भी नहीं रहती थीं और पुरुषों को स्वयं अपना सारा काम करना पड़ता। चौथे महीने में जो रसद आती थी, उसी पर उन्हें बाकी समय गुजारना पड़ता था। उस समय दूध भेड़ों-बकरियों का ही मिल सकता था। मक्खन काम के लिए पहले से रख छोड़ते और मांस भी दुर्लभ नहीं था, किन्तु दूसरी खाद्य-सामग्री बहुत परिमित रह जाती थी। बची हुई सामग्री को फिर अपनी पीठ पर ढोकर ले जाना ठीक नहीं समझा जाता और उसे यहीं पर गड्ढा खोद भुर्ज की छाल बिछा दबा दिया जाता। ऐसी छोड़ी हुई कोई चीज अगले साल की वर्षा के आरम्भ में जरा जल्दी आने पर बिगड़ती नहीं थी। यदि जरा भी देरी हुई और हिम-वर्षा अधिक तथा लगातार कई दिनों तक पड़ती, तो पशुओं, मनुष्यों दोनों के लिए खतरा पैदा हो जाता। प्रथम हिमपात के होते ही लोग गाँवों की ओर जरूर चल पड़ते हैं। कभी-कभी हिमपात और पशु-मनुष्य के नीचे उतरने में होड़ लग जाती। जिस साल एक भी पशुप्राणी की हानि उठाये बिना लोग अपने गाँव में पहुँचते, उस साल बड़ा आनन्द मनाया जाता।

प्रेम (534-35 ई०)

पयारों में पशुचारण मुझे बहुत पसन्द आता था और प्रायः वर्षाकाल मेरा वहीं बीतता था। यह नहीं कह सकता, कि घुमक्कड़ी जीवन के वास्ते पयारों में पशुपाल के जीवन ने बड़ी पाठशाला का काम दिया। महाचीन में आने पर और रास्ते में भी मुझे सैंकड़ों पर्यटक भिक्षु मिले, जिन्होंने दुर्गम पहाड़ों, भीषण मरुकान्तारों और तूफानी समुद्रों की हजारों योजन की यात्रायें की थीं, पर उनमें हम उद्यानियों जैसे पयारों के जीवन से परिचित बहुत थोड़े ही थे। कितने ही नगरों में पैदा हुये। उनका बाल्य और तारुण्य का भी कितना ही समय नगरों के आसपास के संघारामों में बीता। इस पर भी उन्होंने दूर-दूर की यात्रायें कीं। यह जरूर कह सकता हूँ, कि हम उद्यानियों का जीवन बचपन ही से इतना परिश्रम का होता है, कि हम कितने ही कष्टों को बड़ी आसानी से बर्दाश्त कर सकते हैं। छुटपन से ही पीठ पर बोझा ढोना हमारे लिए स्वाभाविक है और बड़े होने पर पीठ पर मन-डेढ़ मन लादकर कठिन चढ़ाइयों पर हम आसानी से चढ़ सकते हैं। हाँ, पयारों की अतिशीतल भूमि में साँस जरूर अधिक फूलती थी और बोझा ढोने की हमारी शक्ति भी कम हो जाती थी। मुझे कितनी ही बार ख्याल आता था, कि पहाड़ों की अधिक ऊँचाइयों पर जाने पर क्यों सर्दी बढ़ती है और क्यों वहाँ दस कदम चलते ही साँस फूलने लगती है। मुझे बतलाया जाता था, कि बरसात

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में हजारों प्रकार के फूलों वाली जड़ी-बूटियों में से कितनी ही विषैली होती हैं, जिनकी गन्ध से आदमी की यह अवस्था होती है। कोई-कोई यह भी बतलाते थे, कि वहाँ की मिट्टी में विष होता है। यह बात मैंने उद्यान में नहीं सुनी, इसे मैंने उन देशों में सुना, जहाँ के पहाड़ों में हरियाली सपने की चीज है।

पयार का जीवन धीरे-धीरे खिसकता गया। शैशव बाल्य में परिणत हुआ और फिर वह नवतारुण्य की ओर पैर बढ़ाने लगा। अपने समवयस्कों की तरह मेरा जीवन-प्रवाह भी उसी तरह बदलता गया। जाड़ों में जब मैं नीचे उतरता, तो मेरे चचा भिक्षु या कोई दूसरा हमारे आवासों में रहा करता। चचा ने मुझे अक्षर ज्ञान कराया, कुछ पुस्तकें पढ़ाईं। पयार के जीवन में थोड़े से धार्मिक ग्रंथों का पारायण भर कर पाता, लेकिन जाड़े के दिनों में पहले बेमन से और पीछे उत्साह के साथ मैं अधिक पढ़ता था। चचा को आशा थी, कि मैं उनका शिष्य (भिक्षु) बनूंगा। जब हरेक घर का एकाध व्यक्ति भिक्षु-भिक्षुणी बनता हो, तो अगली पीढ़ी में उनका अनुकरण करने वाला जरूर ही कोई मिलता। मुझे भी भिक्षुओं की वेश-भूषा और उनकी जीवन-चर्या पसन्द आती थी, खास करके यह समझकर, कि तथागत भी इसी वेश में रहा करते थे, इसी तरह विचरा करते थे। महास्थविर संघवर्द्धन के उपदेशों को सुनने के बाद मेरा आकर्षण भिक्षु-जीवन की तरफ कुछ समय तक तो बहुत तीव्र रहा, लेकिन समय बीतने के साथ प्रभाव कुछ निर्बल होने लगा। उसका एक कारण यह भी था कि नवतारुण्य के साथ वह मेरे जीवन में जो परिवर्तन हुये, वह संघारामों की ओर पैर बढ़ाने में बाधक हो रहे थे। हर देश में अपने-अपने रीति-रवाज होते हैं। सामाजिक रूढ़ियों के कारण कितनी ही बातें जो एक देश में खुलेआम चलती हैं, दूसरे देश में वर्जित होती हैं। अपने पर्यटक-जीवन में इन विभिन्नताओं को मैंने इतना अधिक देखा, जिन पर उद्यान में रहते मैं कभी विश्वास नहीं कर सकता था। पारसीक लोग स्वयं अपनी माता से विवाह कर सकते हैं। ऐसे भी देश हैं, जहाँ सहोदरा बहन से विवाह निषिद्ध नहीं है और मैंने स्वयं धर्मग्रंथों में पढ़ा था, कि तथागत के वंश वाले शाक्य मूलतः बहन-भाई की से सन्तान थे। सभी भाइयों का एक स्त्री से विवाह केवल द्रौपदी और पंच पाण्डवों की कथा में ही सुनने की बात नहीं, बल्कि मैं ऐसे देशों से गुजरा, जहाँ यह प्रथा आम है। यह सब देख लेने के बाद सामाजिक रूढ़ियों के लिए आदमी के हृदय में दुराग्रह रही नहीं सकता।

उद्यान का जीवन अधिक स्वच्छन्द था। हमारे यहाँ स्त्री-पुरुष, विशेषकर तरुण-तरुणियों को स्वछन्द प्रेम का रास्ता खुला था। नृत्य-गीत हमारे जीवन का उसी तरह एक आवश्यक और मुख्य अंग था, जैसे खान और पान। मैं अच्छा गाता था, कण्ठ मेरा मधुर था, यह बतला आया हूँ। नाचने में भी बुरा नहीं था, लेकिन एक कमी मुझमें जरूर थी, और वह थी आवश्यकता से अधिक मितभाषी होना, जिसका कारण अधिक मात्रा में लज्जा और संकोच का होना था। यह दोष नहीं था, इसे तो पीछे तथागत के उपदेशों में मैंने एक बड़ा गुण पढ़ा था। तरुणाई और प्रेम का इतना घनिष्ट सम्बन्ध है, उसमें न लज्जा और संकोच बाधा डाल सकती है, और न मितभाषिता। आखिर जहाँ तक स्वास्थ्य और सौन्दर्य का सम्बन्ध था, मैं अपने समवयस्कों में किसी से पीछे नही था। मैं खूब चढ़ाइयाँ चढ़ता,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शिकार मारने की हिम्मत न रखते हुये भी मैं शिकारियों के साथ दूर-दूर तक की दौड़ लगाता, कठिन से कठिन नाचों को घंटों नाच सकता। इन सब के कारण मेरा शरीर खूब पुष्ट था। 15 साल की उमर ही में, जबकि अभी नवतारुण्य की सीमा पार नहीं हो पाया था, मैं 20-22 वर्ष का जवान मालूम होता था। बोलने में चाहे मैं पीछे रहता हूँ, लेकिन काम में दूसरों के सहायता देने में मुझे एक तरह का आनन्द आता था। मैं अपने समवयस्कों का नेता कभी नहीं बन पाया, लेकिन उनका स्नेहपात्र बराबर रहा। मेरा किसी से झगड़ा शायद ही हुआ हो।

मेरे समवयस्क छह-छह, सात-सात साल से कितने ही श्रामणेर बनकर संघाराम में रहने लगे थे। जब-तब वह अपने माता-पिता से मिलने घर आते, उस समय मेरी उनसे मुलाकात होती। हममें बहुत अन्तर हो गया था। पहले जिस तरह हम हिल-मिलकर रहते, खेल-कूद सकते थे, अब उसका स्थान दूसरे प्रकार के बर्ताव ने ले लिया था। अरुण चीवर पहनते ही चाहे उमर में वह मुझसे दो-चार महीने छोटे ही हों, मेरे माँ-बाप के लिये भी बड़े हो जाते। उनकी देखादेखी मैं भी उन्हें अंजलि बाँधकर अभिवादन करता, और वह "सुखी हो" कहते, 80 वर्ष के बृद्ध की तरह हमें आशीर्वाद देते। उनके साथ मुलाकात होने पर मैं उनसे पढ़ने-लिखने के बारे में पूछता और फिर ईर्ष्या करते हुए और भी मन लगाकर अपने पाठों को याद करता। मेरी स्मृति उनकी अपेक्षा अधिक तीव्र थी, इसलिए घर में रहते भी विद्या में मैं उनसे पीछे नहीं रहना चाहता था और न रहा। संघाराम में प्रवेश करने में देर हो गई थी। मेरे दो भाई और हो चुके थे, और माँ मर चुकी थी। परिपाटी के अनुसार पिता तथा घर में रहने वाले चाचा-चाची मेरे भिक्षु बनने में कोई बाधा नहीं डाल सकते थे, बल्कि भीतर-भीतर उनकी भी लालसा वैसी ही थी। चचा भिक्षु जिनवर्मा हर साल ही आग्रह करते, कहते—संघाराम में जाकर नरेन्द्र अधिक पढ़-सीख सकता है। लेकिन मेरा उत्साह न देखकर कोई जोर न देता था। यह बात नहीं थी, कि मैं भिक्षु बनना पसन्द नहीं करता था। मैं अभी गृहस्थ या भिक्षु-जीवन में किसी एक के बारे में अपना फैसला नहीं दे सकता था। मुझे गीत और नृत्य से बहुत प्रेम था और भिक्षु होते ही इन दोनों चीजों को हमेशा के लिये तिलांजलि देनी पड़ती थी।

वर्षा का शायद तीसरा मास था। पयार में हम ऐसे स्थान में गये हुये थे। जहाँ लम्बी घासों की जगह घनी पुष्पवाटिका-सी सजी हुई थी। इसी समय दूर कुत्तों के भोंकने की आवाज सुनाई दी। भेड़ों को बिदकते और चकित होते देखा गया। हम 14-15 वर्ष वाले कितने ही लड़के-लड़कियाँ उस समय एक जगह बैठे संगीत-मण्डली रचाये हुए थे। प्रेमी-प्रेमिकाओं के गीत वाद-सम्वाद के रूप में दो कण्ठों से निकलने पर बड़े ही प्रिय मालूम होते हैं। ऐसे दो गानों में मैं अपनी मित्र-मण्डली में बड़ी ख्याति प्राप्त कर चुका था। मैं और भद्रा किसी पुराने गीत को सवाल-जवाब में बारी-बारी गा रहे थे। कितने ही लड़के-लड़कियाँ पास बैठे सुन रहे थे। कुत्तों के भूकने और भेड़ों के बिदकने को सुनते ही हमारा गीत वहीं बन्द हो गया, और सभी भेड़ों की ओर दौड़ पड़े। भद्रा और मैं भी भेड़ों की ओर दौड़ते समय एक ओर भागे। बादल छाया हुआ था। हमारा गीत भी काली घटाओं की छाया में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक उन्नत पर्वत-शिखर पर बैठे दो तरुण-हृदयों के प्रेम से सम्बन्ध रखता था। ऐसे गीत को हल्के दिल से कैसे गाया जा सकता था। भद्रा और मैं दोनों अपने-अपने गीतांशों को गाते उन्हीं भावनाओं को अपने हृदय में तरंगित देखते थे। भेड़ों के पीछे दौड़ते ही मोटी-मोटी बूंदें पड़ने लगीं जो कुछ ही देर में और तेज होकर ओलों के रूप में परिणत हो गईं। हमारे शरीर पर जो मोटे ऊनी चोंगे थे वह अत्यन्त असाधारण मोटे थे। पर ओलों से हमारी रक्षा कर सकते थे। शायद टोपी भी हमारे लम्बे बालों के ऊपर पड़ी सिर को बचा सकती थी, लेकिन चेहरा और शरीर के और अंग खुले थे। ओले बहुत बड़े नहीं थे, लेकिन कौन जानता है, वह कब बड़े-बड़े न हो जायें। भेड़-बकरियाँ मनुष्य से ज्यादा अन्तर्ज्ञानी होती हैं, इसीलिये वह दौड़-दौड़कर घास के मैदान में जहाँ-तहाँ खड़ी शिलाओं के पास जाने लगीं। हम भी उनमें से कुछ के साथ आगे की ओर लटकती एक विशाल शिला के नीचे जा पहुँचे। हमारे वहाँ पहुँचते ही ओले बड़े-बड़े पड़ने लगे। पयार के जीवन में अपनी और पराई भेड़ों का ख्याल रखना बहुत मुश्किल है। गाँव की सारी भेड़ें एक रेवड़ में रहा ही करतीं, दूसरे गाँव वालों की भेड़ें भी कितनी ही बार मिल जातीं थीं। चिन्ह के लिये हम भेड़ों को दाग रखते। भीषण ओलों की ऐसी वर्षा हो रही थी, जिसमें हम इसीलिये बहुत प्रसन्न थे, कि शिला की शरण में आ पहुँचे हैं। दूसरे साथियों और भेड़ों का क्या हुआ, इसे जानने की हमें उस वक्त उत्कंठा भी नहीं थी। भेड़ें सिमटकर शिला के नीचे के सारे अवकाश को भरे खड़ी हो गईं। कुछ देर तक शंका से उनके कान खड़े रहे, फिर वह शान्त हो गईं। उन्हीं के बीच में हम दोनों भी जा खड़े हुये। कुछ समय तक हमारी आँखें बड़े-बड़े ओलों की ओर रहीं, और हमारा ध्यान भी उधर ही खिंचा था। फिर भद्रा ने अपनी सखियों के सम्बन्ध में उत्सुकता प्रकट की। मैंने उसे सान्त्वना देते हुये कहा—

बड़े-बड़े ओले तुरन्त नहीं पड़ने लगे, और यहाँ पयार में ऐसी शिलाओं की कमी नहीं है, इसलिये कहीं न कहीं सुरक्षित स्थान में वह जरूर पहुँच गई होंगी।

भद्रा अपने छोटे भाई के लिये बड़ी चिन्ता करने लगी। यह बतला चुके हैं कि पयार के चरवाहों के लिये घर और सम्बन्ध उतना महत्त्व नहीं रखता, जितनी समवयस्कता, इसीलिये भद्रा का आठ वर्ष का छोटा भाई अपनी मित्र-मण्डली के साथ था। भद्रा की चिन्ता को दूर करने में कुछ समय लगा। ओलों की वृष्टि तो मालूम होती थी, थमने के लिये हुई ही नहीं है। हमारे सामने सारी जमीन चमकते सफेद ओलों से ढँक गई और वह अब भी बन्द नहीं हो रहे थे। कुछ देर तक तो मैं और शायद भद्रा भी इसी प्रतीक्षा में थे, कि वृष्टि बन्द हो और हम अपने साथियों को ढूढ़ने निकलें। लेकिन, वह कहाँ होने वाला था। अब हमें इसी शिला के नीचे संतोष करके रहना था। धीरे-धीरे भद्रा भी ठीक-सी हो गई, भेड़ें भी अब बेपर्वाह हो कुछ बैठ कर और कुछ खड़े ही जुगाली करने लगीं। उपल-वृष्टि की एकरस आवाज अब भी आ रही थी, हवा अब भी तेज थी, यद्यपि उसका प्रहार हमारी शिला के पीछे की ओर हो रहा था। अधिक समय तक हम नीरव या साथियों तथा भेड़ों की बात तक नहीं कर सके। भद्रा बिजली के कड़कने से डर गई और मेरे साथ सटकर खड़ी हो गई। मैंने उसके कन्धे और सिर पर हाथ रख कर ढारस दिया। उस स्पर्श में एक विचित्र तरह की चेतना अनुभूत हुई। उसे अकस्मात् आग पर हाथ पड़ जाने की तरह नहीं कहा जा सकता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था, क्योंकि वह स्पर्श जलाने और पीड़ा देने वाला नहीं, बल्कि दूसरी ही तरह का था। अपने गीतों और कथाओं में सुनते-सुनते मैं यह तो जानता था कि तरुण-तरुणी के बीच प्रेम होता है। लेकिन, वह सुना-सुनाया प्रेम वैसा ही था, जैसे मधु की बात करने पर वह मालूम होती हो। मधु का जब जिह्वा से स्पर्श होता है, तभी उसके मधुर स्वाद का पता लगता है। मेरे हाथों के स्पर्श मात्र से भद्रा प्रकृतिस्थ, उसकी घबराहट दूर हो गई। हम दोनों वहीं शिला के सहारे बैठ गये। स्पर्श ने हमारी वाणी को मुखरित कर दिया।

उद्यान में क्षत्रिय कही जाने वाली और भी कई जातियाँ थीं, जिनमें हमारे खस लोग सबसे अधिक थे। उसके बाद शकों का नम्बर आता था। वहाँ कितने ही येथा भी रहते थे, किन्तु सामन्तों और शासकों को छोड़कर वह अधिकतर घुमन्तू पशुपाल थे। मिहिरकुल और तोरमाण की जाति के होने के कारण उनको अधिक अभिमान था, और इसीलिये खस और शक उनके साथ घनिष्टता स्थापित नहीं करते थे। भद्रा शक कुल की लड़की थी। उद्यान के सभी निवासी बौद्ध थे, उसी तरह भद्रा का कुल भी भगवान् तथागत को पूजता था। शक और खस भिक्षु एक ही संघाराम में रहा करते थे और दोनों जातियों का सम्बन्ध बहुत घनिष्ट हो गया था। जैसा कि पहले बतला चुका हूँ, मैं और सारे शक भी समझते थे, कि शक लोग गौतमवंशी शाक्य हैं। यद्यपि यह धारणा गलत थी, लेकिन उसके कारण शकों के प्रति हमारा सम्मान अधिक था। जब हम कनिष्क धर्मराज तथा दूसरे शक राजाओं के बनवाये बड़े-बड़े संघारामों और चैत्यों का दर्शन करते, तो इस वंश की महिमा हमारे हृदय में और भी अधिक स्थापित हो जाती। खस और शक यद्यपि दो अलग-अलग जातियाँ थीं, किन्तु अब वह एक ही भाषा बोलतीं, और उनके बीच ब्याह-शादी होती थी। खसों की अपेक्षा शक अधिक गोरे होते, उनके बाल कभी काले या भूरे नहीं देखे जाते, भद्रा की तरह अधिकांश शक-कुमारियाँ नीलाक्षी होतीं। बुद्ध के रूप-वर्णन में मैंने उन्हें अलसी के फूलों की तरह नीलाक्ष सुना था, इसलिये उस समय मैं भी समझता था, कि शक सचमुच ही कपिलवस्तु से प्राण बचाकर भागे हुये शाक्यों में से हैं।

भद्रा असाधारण सुन्दरी थी। केवल हमारे पयार में पचासों कोसों से आई हुई तरुणियों में ही नहीं, बल्कि मैं कह सकता हूँ, वह सारे उद्यान की जनपद-कल्याणी थी। अभी वह 14 वर्ष की थी, और बाल्य का अल्हड़पन ही उसमें अधिक था। मुझसे भी अधिक सुरीला उसका कण्ठ था। इसलिये दो गानों को गाते हुये न जाने कब चरवाहों ने हमारी जोड़ी पक्की कर ली और जिस समय हम दोनों उपस्थित रहते, उस समय हमीं दोनों को मिलकर गाने के लिये मजबूर किया जाता। कितने ही वर्षों से हम इस तरह एकसाथ गाना गाते, एक-दूसरे से सुपरिचित हो गये थे। हम जिन भावों को अपने गानों में दोहराते, उनका शब्दार्थ भर ही समझते थे। शैशव से हम एक-दूसरे के साथ हिलमिलकर खेलते थे। आज जब ओले शिला के ऊपर तड़-तड़ पड़ रहे थे, हवा शिला को दूसरी ओर से उड़ा फेंकना चाहती थी, और भीतर दो मनुष्य तथा पचासों दूसरे प्राणी शरण लिये चुपचाप बैठे थे, उस समय मेरे हृदय में एक तूफान उठ खड़ा हुआ था। क्यों भद्रा का स्पर्श आज रोज जैसा नहीं मालूम होता? मैं इसका कारण ढूंढ़ रहा था। पहले सोचा, केवल मेरे ही भीतर वह तूफान मचा हुआ है। भद्रा के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लाल ओंठों पर हलकी-सी मुस्कुराहट की रेखा जरूर थी, और उसके अरुण कपोल पहले से भी अधिक आरक्त थे। लेकिन वह तो हमेशा हँसमुख लड़की रही। मैं इस विशेषता को नहीं समझ सका। मैंने हृदय को शान्त करना चाहा, भद्रा के बालों पर कुछ बूँदें पड़ी थीं, मैं हाथ से उन्हें पोंछने लगा। फिर वही उत्तेजना बढ़ने लगी। अन्त में किसी तरह हृदय शान्त करने में असमर्थ हो मैंने कुछ मुँह से बोलने में ही खैरियत समझी और निरुद्देश्य कुछ कहने लगा।

—भद्रा, आज क्या बात है। तुम्हारे कन्धों या बालों का स्पर्श पहले जैसा नहीं मालूम होता।

—नरेन्द्र, क्या तुम्हें वही बात मालूम हो रही है। मेरा हृदय भी आज अधिक चंचल मालूम होता है। ऐसा चंचल, जैसा मैंने कभी नहीं देखा था। क्या जाने जिनके प्रेम का गीत हम गा रहे थे, वही तो हमारे भीतर प्रविष्ट नहीं हो गये ?

भूतों और देवताओं का आवेश स्त्री-पुरुषों पर होना हमारे देश में मामूली-सी बात थी। जिस तरह वैश्रवण (कुवेर) या उसकी पत्नी हारीतिदेवी सयानों के सिर पर आकर बात करती हैं, उसी तरह हमारे गीतों के नायक और नायिका यदि गाने वालों के सिर पर आ जायँ, तो इसमें आश्चर्य क्या ? आखिर सयाने (ओझा) भी तो गीतों द्वारा ही अपने इष्ट देवताओं का आवाहन करते हैं। लेकिन, उनके शरीर और जिह्वा पर तो देवता प्रविष्ट हो जाता, वह आपे से बाहर हो दूसरी ही तरह बातें करते हैं। हमारे हृदय में खलबली जरूर थी, लेकिन सयानों जैसी कोई बात नहीं थी।

हमने अपने हृदय की चंचलता, उसके वेग को परखने के लिए अनेक बार एक-दूसरे का स्पर्श किया। वह बढ़ता ही गया। भद्रा से मेरा संसार अधिक विस्तृत था। वह बेचारी अपने परिवार के साथ कभी पयार और कभी अपने स्थायी गाँव में रहती थी। उसने उद्यान की राजधानी तक को भी नहीं देखा था। मैं हर साल ही राजधानी होकर अपने परिवार के साथ दक्षिण के अपने जाड़ों के आवास में जाता। मैंने अनेक संघाराम देखे, पुरुषपुर, तक्षशिला, कपिशा की एक बार यात्रा कर आया था। यद्यपि वह यात्रा माँ के साथ हुई थी और मैं उस समय 9 साल का था, इसलिए सभी बातों को अच्छी तरह नहीं समझ सका। इधर मैं दिल लगाकर पढ़ रहा था। व्याकरण और कोश मुझे कंठस्थ थे। अश्वघोष और मातृचेट के काव्यों की ही नहीं, बल्कि कालिदास के अभिज्ञानशकुन्तला को भी मैं पढ़ चुका था। मैं बाह्य और मानस-जगत् की बहुत अधिक बातें जानता था। भद्रा के लिए यह बातें सब अपरिचित सी थीं। जो बातें, मैंने पुस्तकों में पढ़ी थीं, अब नया अनुभव उनके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ रहा था। भद्रा के साथ इस तरह बैठना, उससे बात करना और इससे भी अधिक उसके स्पर्श से एक प्रकार का विशेष आनन्द लेना मुझे कुछ-कुछ बतला रहा था, कि यह जीवन की मधुर अनुभूति शायद वही है, जिसे अब तक मैंने केवल पढ़ा और सुना भर था।

अपनी मानसिक स्थिति की दार्शनिक विवेचना में बहुत देर तक मैं मत्था-पच्ची नहीं करता रहा। थोड़ी देर में हम दोनों के कपोल एक-दूसरे से सट गए, न जाने किस वक्त हमारे ओठ एक दूसरे से मिल गए। अब हमारे हृदय के भीतर के किसी कोने में संकोच का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ता नहीं था। हमने गीतों और कथाओं के नायकों ही की तरह अपने प्रेम को एक-दूसरे के ामने खोलकर रखा। हमारे लोगों में लड़की या लड़के का विवाह 20 वर्ष से पहले ायद ही कभी होता है, इसलिए अपने विवाह के बारे में हमने घर में कोई चर्चा नहीं ुनी। मेरे लिए तो उसकी आवश्यकता भी नहीं समझी जाती थी, क्योंकि चचा भिक्षु के आग्रह और पिता की लालसा मेरे पैरों को संघाराम की ओर खींच रही थी। ेरा भी स्वयं अधिक आकर्षण उसी ओर था। इसी साल मेरे श्रामणेर होने की बातचीत चलने ागी थी। मैंने सोचा—संघाराम में जाकर फिर भद्रा का साथ नहीं रह सकेगा। पहले होता, तो उसके साथ मिलकर गाने या नाचने से वंचित होने भर का ख्याल रहता, लेकिन अब उसके स्पर्श और आलिंगन ने जो कुछ आनन्द पैदा किया था, उससे भी वंचित होने का ख्याल मन में उठना स्वाभाविक था। मैं बीच-बीच में भद्रा के स्पर्श और उसके मुँह से निकले अक्षरों के सुनने का सुख लेता और इसी बीच मेरा ध्यान दौड़कर संघाराम के जीवन की ओर चला जाता।

× × ×

भिक्षु जिनवर्मा की आशा अब भी नहीं टूटी थी। अबके सारे जाड़ों भर वह उसी जंगल के पास संघाराम में रहते थे, जिसमें हमारे गाँववालों का आवास था। जहाँ तक पढ़ने का सम्बन्ध था, मैं अब भी उसमें पहले जैसी ही लगन रखता था और जिनवर्मा जो कुछ भी पढ़ा सकते थे, उसे पढ़ रहा था। यह भी तो लग रहा था, कि यदि मुझे और पढ़ना होगा, तो किसी दूसरे गुरु की शरण लेनी पड़ेगी। लेकिन गृहस्थ के लिए शास्त्रों का अधिक पढ़ना हमारे यहाँ आवश्यक नहीं समझा जाता, विशेषकर क्षत्रिय तरुण के वास्ते। संघाराम में जाने से इन्कार तो मैंने नहीं किया, लेकिन मैं उसे टाल रहा था, यह सभी जानते थे। मैं बड़ी उत्सुकता के साथ वर्षा के आगमन की प्रतीक्षा करता रहता और भी सबसे पहली टोली में पर्वत-पृष्ठ की ओर चल पड़ता। मेरे वहाँ पहुँचने पर अभी बहुत जगह बर्फ दिखलाई पड़ती। इस समय वही लोग आते थे, जिन्हें नई झोपड़ियाँ खड़ी करनी होतीं या लकड़ी-ईंधन जमा करना पड़ता। भद्रा का परिवार हमेशा एक महीने बाद पहुँचता, लेकिन नीचे प्रतीक्षा करने की जगह मैं पयार में रहकर ही उसकी प्रतीक्षा करना चाहता था। उपलवृष्टि के समय प्रणय का जो प्रथम सूत्रपात हुआ था, वह अब परिपक्वता की ओर पहुँच रहा था। गाँव और परिवार को भी हम दोनों के प्रेम का पता था। यह कोई निषिद्ध बात नहीं थी, न अस्वाभाविक। हरेक उद्यान कुमार और कुमारी के जीवन में एक बार ऐसा होता ही था। कितनी ही बार यद्यपि जोड़ा चुनने में माता-पिता का मुख्य हाथ होता, लेकिन प्रेम-विवाह (स्वयंवर) भी हमारे यहाँ काफी प्रचलित था। भद्रा और मैं अब भी अपने दो गानों से अपने साथियों का मनोरंजन करते, लेकिन प्रणय-सूत्र के मजबूत होने के साथ-साथ लोगों के सामने हमारे पारस्परिक वर्तावों में संकोच आने लगा। अब हम अधिकतर एकान्त में मिलते, अपने भावों को अधिक खोलकर कहते और भविष्य के लिए तरह-तरह की कल्पनायें दौड़ाते। भद्रा को मालूम था, कि मेरे पिता और भदन्त जिनवर्मा की बड़ी इच्छा है, कि मैं भिक्षु बन जाऊँ। श्रामणेर बनने की अब आशा कम ही रह गई थी। 20 वर्ष का होने के बाद तो मैं बिना श्रामणेर बने सीधे भिक्षु बन सकता था। मैंने निजी रूप में जो शिक्षा प्राप्त की थी, वह किसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

योग्य से योग्य श्रामणेर से कम नहीं थी। यद्यपि मैं अपने हृदय को जानता था और निश्च कर चुका था, कि अब काषाय चीवर मेरे लिए बदे नहीं हैं, अब मेरा जीवन भद्रा का है लेकिन, भद्रा जब-तब आशंकित हो उठती थी।

मेरा सत्रहवाँ वर्ष चल रहा था। हम वर्षाकाल पयार पर बिता रहे थे। उस समय क्या पता था कि यही मेरा अन्तिम पयार-वास होगा। एक दिन हम लकड़ी काटने अपने डे से चार कोश दूर के जङ्गल में गये थे। हम सवेरे ही चल पड़े थे और शाम तक लौट आने आशा थी। हमारे में कुछ के पास लकड़ी ढोने के लिए अपने गदहे और घोड़े भी थे और कु अपनी पीठ पर लादकर ले आने वाले थे। गदहे-घोड़े वाले कुछ दूर तथा अपेक्षाकृत बड़े-ब दरख्तों वाले जंगल तक जा सकते थे, लेकिन पीठ पर भार ढोने वाले नजदीक ही से लकड़ काटकर लौट जाना चाहते थे। हम कुछ आदमी गदहे-घोड़े लेकर गये थे। भद्रा भी अपने छो भाई के साथ इसी टोली में थी। लकड़ी काटकर बोझ बना डेरे की ओर लौटने से पहले विश्राम करने के लिए हम देवदारों के नीचे बैठ गये। भद्रा और मैं औरों से कुछ हटकर एक पुराने देवदार की घनी छाया में गये। भद्रा ने वहाँ बैठने के लिए विशेष तौर कहा था। मैं समझ रहा था, कि वह कोई बात कहना चाहती है। कुल्हाड़ा चलाकर लकड़ काटते समय काफी परिश्रम करना पड़ा था। मेरे ललाट का पसीना अभी पूरी तरह से सूख नहीं था। पसीने के कारण ही बागा मैंने निकाल दिया था, भीतर बंडी पड़ी हुई थी। कुछ दे तक भद्रा मेरी मांसल भुजाओं तथा विशाल वक्ष की ओर देखती रही। मैं भी काम करने कारण अधिक लाल हो गये उसके मुख और सर्वांगपूर्ण सुडौल शरीर को देख रहा था। पहले उसका चेहरा फूले पद्म जैसा था, लेकिन एकाएक शरद् के बादलों की तरह हल्की पांडुर छाया सी उसके चेहरे पर आती दिखाई पड़ी। उसके अर्धस्फुट ओठों पर से मुस्कुराहट विलीन हो गई, कपोलों पर अवसाद पड़ने के साथ उनकी चमक जाती रही। आँखें अब भी स्फीत और सुन्दर थीं, लेकिन उनकी नीली पुतलियाँ पहले से छोटी मालूम होने लगीं। यह सब परिवर्तन बड़ी शीघ्रता से हुआ। मैं अभी इसके बारे में कुछ पूछना ही चाहता था, कि भद्रा स्वयं बोल उठी :

—सुना है, तुम भिक्षु बनना चाहते हो?—करुण रस से भरे अक्षरों में उसने धीरे धीरे ये शब्द कहे।

मैं ऐसे प्रश्न की आशा नहीं रखता था। उसके चेहरे के परिवर्तन से यह तो समझ रहा था कि उसके हृदय में कोई अप्रिय स्मृति काम कर रही है। लोगों में नरेन्द्र के भिक्षु होने की चर्चा भले ही होती हो, लेकिन नरेन्द्र अब उस इरादे को सालों पहले छोड़ चुका था। मैंने केवल बातों को ही पर्याप्त न समझ अपने दाहिने हाथ को भद्रा के कन्धे पर रखकर उसकी नीली पुतलियों की ओर एकटक देखते हुये कहा—

—किसने कहा? बिलकुल गलत है। कभी भिक्षु बनने का ख्याल हृदय में रहा हो, किन्तु जिस समय से इस हृदय की स्वामिनी भद्रा बनी, तब से वह ख्याल न जाने कहाँ लुप्त हो गया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भद्रा के चेहरे में फिर उल्टी दिशा में वर्ण-परिवर्तन होने लगा, लेकिन अपने विश्वास को और दृढ़ करने के लिए अपने सिर को मेरी छाती पर रखते उसने कहा :

—मुझे तुम पर विश्वास है।

—विश्वास करना चाहिये, भद्रा, मैं अपना स्वामी नहीं हूँ, इस जीवन को मैंने तुम्हारे हाथ में दे दिया। अपने हृदय से मेरे हृदय की अवस्था सुन लो।

—मुझे भी विश्वास नहीं होता था। सभी लोग कह रहे थे, कि अगले ही साल नरेन्द्र का चचा उसे संघाराम में ले जाने वाला है। सबके मुँह से ऐसी बातें सुनकर मेरे मन में चिन्ता उठनी स्वाभाविक थी।

—भद्रा, यह सुनकर तुम्हें प्रसन्नता होनी चाहिए कि मेरे सम्बन्धी तुम्हें वधू देखने के लिए बड़े लालायित हैं। पिता भी अब अपना विचार बदल चुके हैं। चचा भदन्त जिनवर्मा यद्यपि समझते हैं कि मैंने जिसे इतने वर्षों तक पढ़ा-लिखाकर तैयार किया, उसका स्थान घर में नहीं, बल्कि संघाराम में है; लेकिन उन्हें भी अब आशा कम रह गई और अब वह मेरे अनुज को मेरे बदले में लेने की सोच रहे हैं।

भद्रा का चेहरा फिर खिल उठा। हमारी बात का रुख बदल गया। अब हम भावी जीवन के बारे में विचार करने लगे। जब हम दोनों पति-पत्नी बन जायेंगे, तो अपने लिए नया घर बनायेंगे। पिता का घर मुझे अपर्याप्त मालूम होता था। यद्यपि सौतेली माँ में वह गुण नहीं थे जिनके लिए सौतेली मातायें बदनाम हैं, लेकिन सगी सास से भी तो नहीं पटती। इसलिए मैं समझता था कि हमें गाँव में अपने लिए अलग मकान बनाना होगा। मैं इसकी चर्चा करते हुये बोला :

—भद्रा, मैंने कुल्हाड़ा चलाना भर ही नहीं सीखा, बल्कि एक कुशल बढ़ई की तरह काठ पर तरह-तरह की फूल-पत्तियाँ और चित्र उत्कीर्ण कर सकता हूँ।

—तब तो यदि हम दोनों बढ़ई-बढ़इन बनकर उद्यानपुरी में चले चलें, तो वहाँ भी अच्छी तरह जीविका कमा सकेंगे।

उद्यानपुरी का नाम सुनकर मेरे मन में कुछ आशंका-सी उठ खड़ी हुई। भद्रा अनिन्द्य सुन्दरी है। उद्यानपुरी में जाने पर न जाने किसकी नजर उस पर पड़े। मैंने बात बदलने के लिए उससे कहा :

—नहीं, उद्यानपुरी मुझे पसन्द नहीं है। वहाँ से जंगल दूर-दूर हैं, गर्मी भी वहाँ अधिक होती है। फिर हम पयार में हर वर्षाकाल में कैसे आ सकेंगे ?

भद्रा भी मेरी ही तरह पयार के जीवन को पसन्द करती थी। उसने भी मेरे विचारों से सहमति प्रकट करते हुए कहा :

—हाँ नरेन्द्र, पयार देवताओं की भूमि के नजदीक है। देखते नहीं, यहाँ से वह जो सफेद हिमशिखर दिखाई पड़ते हैं, वहाँ पर तो देवताओं का निवास है।

—देवताओं के इसी निवास के कारण ही भद्रा तुम इतनी सुन्दरी हो। गर्भ में बच्चे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के रहने के समय जब किसी आकाशचारिणी देवी या देवता की छाया माँ के ऊपर पड़ ज
है, तो बच्चा अत्यन्त सुन्दर पैदा होता है।

—तब तो तुम्हारे माँ के ऊपर भी किसी देवी की छाया पड़ी होगी।...यह क
कहते भद्रा स्वयं रुक गई। बचपन में ही मेरी अपनी माँ के बारे में कितनी ही बार मैं
चुका था और जब भी माँ का जिक्र होता, मेरी आँखें गीली हुये बिना न रहतीं। भद्रा को
का ख्याल हो आया। उसके खेद को दूर करने के लिए मैंने कहा :

—हाँ, भद्रा, अवश्य, किन्तु उस समय जिस देवता की छाया मेरी माँ के ऊपर प
थी, वह उतना सुन्दर नहीं था, जितना कि तुम्हारी वाली देवी।

भद्रा ने मेरे भीतर के भाँवों को समझकर कहा :

—सुनते हैं स्वर्ग में जाकर हमारे स्वजन अपने बच्चों की सुध भूल नहीं जाते। तुम्हा
माता भी इस समय शायद आकाश में या उन श्वेत शिखरों में से किसी के ऊपर बैठी हमें य
आपस में इस तरह बातचीत करते देखती होगीं। उनको बड़ा आनन्द मिलता होगा।

—जीवित रहते समय माँ ने तुम्हारी ज़ैसी बहू के मुख को नहीं देखा, उसकी सेवा
को नहीं प्राप्त किया, लेकिन दिवंगत होने पर वह हमारे आनन्द की सहभागिनी जरूर होगी

× × ×

जीवन कभी-कमी जबर्दस्त मोड़ लेता है। पहाड़ों की यात्रा में हम जबर्दस्त मोड़ों
अक्सर देखा करते हैं। अभी हम सीधे पूर्व की ओर जा रहे हैं, फिर एकाएक पहाड़ मुड़ता
और हमारे चलने की दिशा पश्चिम की ओर जाती है। लेकिन, तब भी हम कुछ-कुछ अनुम
रखते हैं, कि कैसे स्थानों से हमें गुजरना पड़ेगा। बाहरी रास्तों के मोड़ बहुत धीरे-धीरे हे
आते हैं, किन्तु जीवन के मोड़ के बारे में कुछ न कहिये। अभी-अभी तो हमने इकट्ठा बैठ
एक दूसरी दुनिया की कल्पना की थी। देवदार की छाया में बैठे भद्रा और मैंने एक सुख
सपना देखा था, जिसमें जीवितों ही नहीं, दिवंगतों को भी हम सहभागी बनाना चाहते थे
अठारहवें वर्ष में प्रवेश करने के साथ भदन्त जिनवर्मा ने अब मुझसे निराश होकर मेरे अ
की ओर ध्यान दिया था। 50 वर्ष ही में वह अपने को इतना बूढ़ा समझते थे, कि अ
की शिक्षा-दीक्षा का पूरा करना अपने जीवन से बाहर की बात समझते थे। उन
निराशा आशा में बदल गई, लेकिन मेरा जीवन-प्रवाह एकाएक सूख गया और फिर
अन्तस्लीला किसी नदी की तरह जब दूसरी जगह प्रकट हुआ, तो उसकी दिशा ही दूसरी थी

भद्रा असाधारण सुन्दरी थी। उद्यान में इतनी सुन्दरी तरुणी मैंने दूसरी नहीं देखे
किन्तु यह किसे पता था कि उसके सौन्दर्य की प्रसिद्धि उद्यान की सीमाओं के बाहर पहुँच
है। कश्मीर में राजा मिहिरकुल के रनिवास में सुन्दरियों की क्या कमी थी? देश-देश से उ
लाया जाता था। लेकिन, राजाओं को उतने से तृप्ति कहाँ होती है? तोरमाण महान् सम्रा
था, उसके राज्य की सीमा मध्यमण्डल के बहुत भीतर तक चली गई थी। प्रतापी गुप्तों
वह कई बार पराजित कर चुका था। लेकिन, उसके पुत्र मिहिरकुल का साथ भाग्य ने न
दिया। मैं जब नौ वर्ष का ही था, तभी मिहिरकुल को जबर्दस्त हार खानी पड़ी और प्रा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बचाने के लिए कश्मीर में शरण लेनी पड़ी। अब यद्यपि उसका राज्य पिता जैसा विशाल नहीं था, लेकिन तो भी वह राजाओं का राजा था। बुढ़ापे के साथ उस करारी हार के बाद उसकी दिग्विजय की सारी लालसायें खतम हो गईं और उसका स्थान कामुकता और विलास ने ले लिया। मिहिरकुल के गुप्तचर अब प्रतिद्वन्द्वी राजाओं के भेदों का पता लगाने की जगह राज्य में सभी जगह सुन्दरियों को ढूँढ़ते फिरते थे। जो जितनी ही अधिक सुन्दरी प्राप्त कराये, उसे उतने ही अधिक पारितोषिक मिलते थे। उद्यान अपनी सुन्दरियों के लिए पहले से ही काफी ख्याति रखता था, इसलिए मिहिरकुल का ध्यान उसकी ओर भी अधिक था। उद्यानपुरी में उसके प्रतिनिधि की भी कोशिश थी और प्रान्तपाल सेनप भी बराबर सुन्दरियों की खोज में रहते। भद्रा का सौंदर्य कैसे छिपा रह सकता था? उसके सौन्दर्य की चर्चा काफी दूर तक फैली हुई थी। जाड़ों के दिन थे। भद्रा का परिवार अपने गाँव में लौट गया था और मैं भी अपने गाँव वालों के साथ हेमन्त आवास में था। असली घटना का पता मुझे तब लगा, जब अगले साल के जाड़ों के बाद मैं अपने गाँव में आया। राजधानी-स्थित राज-प्रतिनिधि ने पता लगते ही भद्रा के पिता को बुलवा मँगाया और सीधे प्रस्ताव रक्खा—भद्रा राजाधिराज मिहिरकुल के लिए है। पिता के लिए तो यह बड़े आनन्द की बात थी कि उसकी पुत्री महारानी बने। भद्रा बेचारी क्या कर सकती थी? उसने बहुत रोया-धोया, बहुत इन्कार किया, लेकिन उसके पक्ष में एक भी आदमी नहीं था। यदि यह घटना वर्षाकाल में पयार के ऊपर हुई होती और मैं वहाँ मौजूद होता, तो मेरे जीते जी भद्रा को कोई नहीं ले जा सकता था।

भद्रा मिहिरकुल के रनिवास में चली गई। मैं कितने ही महीनों तक खोया-खोया-सा रहा। मिहिरकुल के रनिवास से भद्रा का निकाल लाना किसी तरह भी सम्भव नहीं था। मेरा प्रेम मुझे अधीर बनाए हुए था, जीवन भार मालूम होता था, संसार में साँस लेना भी साँसत जान पड़ती थी। आत्महत्या कायरता है, यह मैं अनेक बार पढ़-सुन चुका था। धीरे-धीरे मुझे मालूम होने लगा, कि जिस दिशा की ओर मैं बढ़ना चाहता था, अब वह खतम हो गई। फिर मुझे महास्थविर संघवर्द्धन का महाप्रावारणा के दिन दिया हुआ उपदेश याद आने लगा। कई महीने लगे, लेकिन अन्त में इस निश्चय पर पहुँच गया, कि अब मुझे फिर उसी स्वप्न को जागृत करना है, जिसे किसी समय मैं देखने लगा था।

भिक्षु (536—40 ई०)

भद्रा के जबर्दस्ती अंत:पुर में डालने की बात सुनकर मेरा हृदय एक बार विचलित जरूर हो गया, किन्तु जान पड़ता है, मेरे जीवन में वह एक क्षण के लिए बिजली की तरह चमकी थी। उसके बाद न मेरी स्मृति उसके हृदय में रह गई और न मेरे हृदय में उसकी—अपने बारे में तो मैं यह निश्चय कह सकता हूँ। कश्मीर की राजधानी में जाने पर भी मैंने उसके बारे में कोशिश नहीं की और न किसी तरह से जान पाया। अन्तिम पयार-वास के बाद मैं परिवार के साथ जाड़ों के निवास-स्थान में न जा अपने बराबर के गाँव से कुछ ही नीचे उतरकर सुवास्तु की मुख्य धारा को पकड़ ऊपर की ओर बढ़ा। मेरे गाँव से पूर्व की ओर उत्तुंग हिमशिखरों की जो माला दिखाई पड़ती थी, उसके ही दूसरे ओर वह संघाराम था जिसमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भदन्त जिनवर्मा रहते थे। मेरे पिता भी मेरे साथ थे। हम दोनों तीन दिन में संघाराम में पहुँचे। भदन्त को हम पहलें सूचना नहीं दे सके थे, इसलिए जब उन्हें मालूम हुआ कि मैं संघाराम में प्रव्रज्या (साधु बनने) के लिए आया हूँ तो उन्हें आश्चर्य और प्रसन्नता दोनों हुई। हमारे उद्यान में पयारों के छोड़ देने पर नदियों की सभी घाटियाँ हरी-भरी तथा अत्यन्त सुन्दर हैं, तभी तो उसका नाम उद्यान पड़ा। लेकिन, उद्यान का यह संघाराम जिस स्थान में अवस्थित था, वह और भी मनोहर था। सुवास्तु (स्वात) नदी वहाँ से करीब एक दिन के रास्ते पर ऊपर से निकलती थी, लेकिन उसमें हिमगलित कितनी ही धारायें आ मिलती हैं, जिसके कारण धारा बहुत चौड़ी न होने पर भी अत्यन्त प्रखर है और पत्थरों पर पैर रखकर उसे पार करना कहीं ही कहीं सम्भव है। धारा से एक तरह बिल्कुल लगा हुआ किन्तु कितने हाथों की ऊँचाई पर एक लम्बी समतल भूमि है। कहावत है कि इस भूमि को देवताओं ने हाथों से समतल किया था। पयारों में ऐसी भूमि दुर्लभ नहीं है, लेकिन सुवास्तु के उद्गम के पास इस तरह की भूमि सचमुच ही स्वाभाविक नहीं कही जा सकती। इस भूमि के पास बहने वाली धारा सीधे उत्तर से दक्षिण की ओर है, जो दोनों छोरों पर दो दिशाओं में मुड़ जाती है। नदी को अपने क्रोड़ में लेने वाले दोनों ओर के पहाड़ यहाँ कई कोस के फासले पर हैं। इसका एक फल यह है, कि यहाँ सूर्य की रोशनी, धूप दिन के बहुत अधिक समय तक रहती है, जिसके कारण अपनी स्थिति के अन्य स्थानों से यह भूमि गरम है। लोगों ने इस स्थल का नाम "सुभूमि" ठीक ही रक्खा है। कहा नहीं जा सकता, कि वहाँ पर सुभूमि संघाराम बनने के बाद स्थान को यह नाम मिला या विहार के नाम के कारण स्थान का यह नाम पड़ा। विहार की स्थापना हेमवतों के आचार्य काश्यप ने स्वयं किया, यह परम्परा कहाँ तक ठीक है, इसके बारे में मैं नहीं कह सकता, लेकिन विहार की स्थविरावली में उनका नाम पहले जरूर याद किया जाता है। बगल वाले पहाड़ देवदार और दूसरे शीतप्रधान स्थानों के वृक्षों से बिल्कुल ढके हुये हैं। नदी पार का पहाड़ भी जंगलों से ढँका है, लेकिन उधर उतनी चौरस भूमि नहीं है। वहाँ एक काफी बड़ा गाँव है जिसमें कुछ किसान और अधिकतर पशुपाल रहते हैं। आर-पार जाने के लिए नदी की पतली गर्दन पर लकड़ियों का पुल बना हुआ था, जो प्रायः हर साल हिम के सैलाब में बह जाता और धारा के हिम-उन्मुक्त हो जाने पर फिर बना दिया जाता। जाड़ों में पुल की जरूरत भी नहीं होती, क्योंकि धार जम जाती है और उसके ऊपर कई हाथ मोटी बर्फ पड़ जाती है। उस समय परले गाँव वाले अपने पशु-प्राणियों को लेकर हमारे गाँव वालों की तरह नीचे के गर्म जङ्गलों में चले जाते। लेकिन, सुभूमि विहार में जाड़ों में भी भिक्षुओं की संख्या कम होने की जगह कुछ बढ़ जाती। बर्फ से यद्यपि विहार के निचले तल वाले कोष्टक ढँक जाते, लेकिन ऊपर की मंजिलें खुली रहतीं। भिक्षुओं के लिए सर्दी की शिकायत हो सकती थी, किन्तु उसका भी काफी इन्तिजाम था। गर्म-चर्म के ओढ़ने उनके पास थे और मोटे ऊन के चीवर इस वक्त पहने जाते। पैरों में भी चमड़े के मोजे और चप्पल होते। मध्यमण्डल में भिक्षुओं को सिर ढाँके कभी नहीं देखा जाता। यहाँ के भिक्षु सर्वास्तीवादी होने से विनय के नियमों को बड़ी कड़ाई से पालन करने वाले होते भी सिर पर पोस्तीन का कंटोप बाहर निकलते समय लगा लेते। सर्दी से बचने के लिए आग जलाने का हर कोष्टक में इन्तिजाम था, जिसके लिए बहुत पहले ही सूखी लकड़ियाँ भर ली जातीं। भोजन के लिए हमें अधिकतर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपनी संचित सामग्री पर ही निर्भर रहना पड़ता। सूखे साग और सूखे मांस का भण्डार जाड़े भर में खतम होने वाला नहीं था। संघाराम के उत्तर और दक्षिण की समतल भूमि में बहुत से फलोद्यान लगे हुये थे जिनमें वर्षाकाल में देखकर सुभूमि को द्राक्षावलय भूमि भी कहा जा सकता था। यहाँ की सुनहली द्राक्षा बड़ी मीठी होती। इसमें शक नहीं, वह कपिशा (काबुल) की द्राक्षा से किसी प्रकार भी कम नहीं थी, न आकार में, न रूप में, न माधुर्य में। लोग कहते हैं, अशोक धर्मराजा के समय संघ ने यह महाकाश्यप स्थविर को हैमवतों में जब धर्म-प्रचार के लिए भेजा था, उसी समय सुभूमि में उन्होंने एक द्राक्षा खाकर उसके बीज को गाड़ दिया था जिसकी ही सन्तानें उद्यान की यह सारी द्राक्षायें हैं। विहार के पश्चिम की ओर का पहाड़ सबसे अधिक मनमोहक था। उसका ऊपरी भाग कई जाति के वृक्षों के जंगलों की सीमा का उल्लंघन कर सँकरे से पयार के रूप में बदल जाता। आगे कई सदा हिमाच्छादित शिखर आते। उनमें तीन विशेष तौर से आकर्षक थे जिन्हें लोग त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म, संघ) का प्रतीक स्वयम्भू चैत्य मानकर पूजते थे। अधिक श्रद्धालु कभी-कभी उनकी जड़ तक पहुँचने की कोशिश करते।

सुभूमि विहार सौन्दर्य में अद्वितीय था, यह मैं अपने विशेष पक्षपात से नहीं कह रहा हूँ। मैंने अपनी 70 साल की उम्र में बहुत से सुन्दर-सुन्दर स्थानों में एक से एक बढ़कर विहार देखें हैं, लेकिन न कहीं सुभूमि का-सा प्राकृतिक सौन्दर्य देखा, न वैसी जलवायु। जाड़ों में वहाँ प्राणियों का कहीं चिह्न न दिखाई पड़ता, न उनकी आवाज सुनाई देती, केवल संघाराम-निवासी भिक्षु अपने साथियों की ही आवाज सुन सकते थे। धूप होती, लेकिन इतनी नहीं कि ताजी पड़ी बर्फ को गला सकती। हम धूप लेने के लिए दूर तक सफेद चादर की तरह फैली बर्फ पर कभी टहलते और कभी बैठ जाते। हमारे अध्ययन का यह बहुत सुन्दर समय था। मेरे जैसे परिश्रमी विद्यार्थी तो इस वक्त खूब अपने पाठों को कंठस्थ करते। कभी-कभी मौसिम खुला रहने पर हम देवदारों के भीतर से नग्न भुर्ज वृक्षों के जंगलों में होते सँकरे पयार पर पहुँचते। धूप में हिम की चमक आँखों को अन्धा कर देती, इसके लिए हम अपनी आँखों के सामने कंटोपों के भीतर से देवदार के हरे पत्ते लटका लेते। हमारे अनध्याय के दिन इसी तरह की आर-पार के पहाड़ों की यात्राओं में खतम होते। नवतरुण भिक्षुओं और श्रामणेरों को ऐसी यात्राओं के लिए उत्साहित किया जाता।

हमारे संघाराम में तीन सौ भिक्षु बराबर रहा करते, लेकिन जाड़ें में उनकी संख्या चार सौ तक पहुँच जाती। मेरे चचा भदन्त जिनवर्मा अच्छे विद्वान् थे, लेकिन महास्थविर संघवर्द्धन के स्थान पर विहार के महास्थविर गुणवर्द्धन बने थे जिनकी विद्या की ख्याति उद्यान की सीमा के बाहर तक फैली थी। वह कम्बोज में पैदा हुये और विद्याध्ययन के लिए महास्थविर संघवर्द्धन के पास आये। अध्ययन के बाद उन्होंने मध्यमण्डल के पवित्र स्थानों के दर्शन करने के लिए कई यात्राएँ कीं। कलिंग में दन्तपुर में जाकर उन्होंने तथागत की दन्तधातु का दर्शन किया और कुछ साल सिंहल के महाविहार में बिताया। वस्तुतः तथागत के धर्म के सभी निकायों (सम्प्रदायों) और दर्शनों का इतना बड़ा विद्वान् और देशों में भी दुर्लभ था। महास्थविर गुणवर्द्धन इस तरह के चारिका के जीवन को बिताकर अंत में सुभूमि विहार में चले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आये। वह कहा करते थे—मैं तो कितना ही छोड़ना चाहता था, लेकिन सुभूमि विहार छोड़ने के लिए तैयार नहीं। सुभूमि विहार में वह सभी बातें मौजूद थीं, जो गुणवर्द्धन को थीं। यहाँ अच्छे से अच्छे विद्यार्थी तुम्हें मिल सकते थे। जिनका अध्यापन क हुए वह अपनी विद्या को ताजा रख सकते थे। उन्हें विद्या के साथ-साथ ध्यान योग का भी अनुष्ठान प्रिय था। उसके लिए सुभूमि विहार, विशेषकर जाड़ों में, स्वाभा शान्ति और परम एकान्तता प्रदान करता था। फिर कम्बोज जैसे अत्यन्त शीत प्रदेश में होने के कारण उन्हें ऐसे स्थान से स्वाभाविक अनुरक्ति थी। महास्थविर संघवर्द्धन के भिक्षु-संघ ने गुणवर्द्धन को अपना नायक-महास्थविर निर्वाचित किया। संघवर्द्धन सारे ज के भिक्षु-संघ के नायक महास्थविर थे, गुणवर्द्धन तो कश्मीर और गंधार तक में परम स जित महास्थविर माने जाते। विद्या के कारण उनकी ख्याति तो थी ही, कितने ही समझ लोग भी उन्हें अर्हत् (मुक्त पुरुष) कहने से बाज नहीं आते। वस्तुतः महास्थविर गुणवर्द्धन शी समाधि और प्रज्ञा तीनों से सम्पन्न थे। उनको कभी मैंने गुस्सा होकर कठोर बात कहने बात तो अलग, ललाट पर शिकन भी लाते नहीं देखा। हर वक्त उनके चेहरे पर हल्की मुस्कराहट दौड़ती रहती। अब वह 60 से ऊपर हो चुके थे, लेकिन उनको देखकर कोई 40 अधिक का नहीं कह सकता। शाम के वक्त दो घण्टे तक चंक्रमण (चहलकदमी) करना उ नित्य का नियम था। वह हम सबको कहा करते थे—रोज बिना नागा चंक्रमण कि करो। तथागत जेतवन या जिस किसी स्थान में भी अधिक समय रहते, वहाँ उनके चंक्र के लिए चंक्रमण—"स्थान बने रहते, जिस पर वह रोज काफी समय तक घूमते रहते। श के स्वास्थ्य के लिए चंक्रमण आवश्यक है और अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए शरीर स्वास्थ्य की आवश्यकता होती है।" महास्थविर वर्षा के समय भी चंक्रमण करना छोड़ते थे। वह उस समय महाचैत्य की लकड़ी की छतों वाली परिक्रमा में चारों ओर घू घूमते रहते।

सुभूमि विहार बहुत पुराना है। उसका सात-आठ सौ वर्ष पुराना होना कोई असं बात नहीं है। दूसरे विहारों से उसकी बनावट भी कुछ भिन्नता रखती है। बीच में पाषाण महास्तूप है। उसके किनारे चौकोर बनाती कोष्टकों की तिमंजिला पंक्तियाँ हैं। इसी विहार की सबसे पुरानी इमारत बतलाते हैं। उद्यान की सभी इमारतों की तरह यह अधिकतर लकड़ी की है, इसलिए यह तो नहीं कहा जा सकता, कि यह आठ शताब्दी पु होगी। हो सकता है, बीच-बीच में मरम्मत और नवीकरण होता रहा। नायक-महास्थविर कितने ही विद्यावयोवृद्ध भिक्षु इसी मूल विहार में रहते, जिनमें मेरे चचा जिनवर्मा भी उनका अन्तवासी (शिष्य) होने के कारण मुझे भी उनके पास ही रहने को स्थान मिला। विहार से काफी हटकर इस तरह के आँगन वाले तीन और विहार थे। मूल विहार के च ओर हरी घास और फिर फलों का उद्यान था। रास्ते पत्थरों से पटे थे, जिसके कारण वर्षा पैरों में कीचड़ नहीं लगती।

भदन्त जिनवर्मा से महास्थविर गुणवर्द्धन को मेरी मेधा की अतिरंजित खबर मि थी। जब मैंने श्रामणेर-दीक्षा ली, तो महास्थविर भी वहाँ मौजूद थे। हम जब सुभू

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विहार में पहुँचे, तो पहले ही पहल बर्फ पड़ी थी। अभी भी सारी जमीन बर्फ से ढँकी नहीं थी और महाचैत्य तथा दूसरी इमारतों के ऊपर उसका कहीं पता नहीं था। भिक्षु-संघ के भोजन आदि को तैयार करने वाले कुछ दास और कर्मकर रह गये थे, बाकी परला गाँव खाली हो चुका था। मेरे वहाँ पहुँचने के दो दिन बाद प्रव्रज्या दिन निश्चित हुआ। नवीनता का भाव मेरे दिमाग में जरूर चक्कर मार रहा था, लेकिन उससे मेरा उत्साह और प्रसन्नता में वृद्धि ही हो रही थी। उस दिन सबेरे मेरे लम्बे सुनहले केश एक भिक्षु ने मूँड़ दिये, भौंहों तक को भी नहीं छोड़ा। मुँह पर दाढ़ी-मूँछ का अभी बहुत हल्का-सा ही चिह्न दिखाई पड़ रहा था, लेकिन उसे भी साफ कर दिया। मेरी माँ ने पुत्र के लिए अपने हाथों से कात और बुनकर ऊनी दूष्य (धूसा) तैयार किया था। वह बड़ी भक्त महिला थीं, धर्मोपदेश सुनने के लिए हमेशा लालायित रहती और पढ़ी न होने पर भी बहुश्रुत थीं। अपने जीवन में उसने मुझे काषायवस्त्र पहने नहीं देखा, लेकिन उसके हाथ का कता-बुना कपड़ा अब मेरे शरीर पर था। विहार में पहुँचते ही कई भिक्षुओं ने मिलकर उस श्वेत दूष्य को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। फिर किसी वृक्ष की छाल के अरुण रंग में रंगकर धान की क्यारियों की तरह सी दिया। नीचे पहनने के लिए अपेक्षाकृत कम अरज का अन्तर्वासक, उसके ऊपर दाहिना हाथ नंगा रखते हुये बंडी जैसा असंकूट और फिर काफी लम्बा-चौड़ा चीवर पहनाया गया। बायें कन्धे पर दोहरा चीवर या संघाटी चौपेत कर रख दी गई और फिर कमरबन्द बाँध दिया गया। लोहे का भिक्षापात्र भदन्त जिनवर्मा ने पहले ही से तैयार कर रक्खा था। आठों परिष्कारों-सहित मैंने महाचैत्य की छाया में प्रवेश किया। दाहिने महास्थविर गुणवर्द्धन और बायें थोड़ा नीचे भदन्त जिनवर्मा बैठे। मैंने भदन्त जिनवर्मा के सामने पंचप्रतिष्ठित से अभिवादन कर उकुड़ू बैठकर प्रव्रज्या की यांचना की। उन्होंने बुद्ध, धर्म और संघ तीनों की शरण का वाक्य बोलकर मुझे शरणागत किया। फिर प्राणी-हिंसा आदि दस निषिद्ध कर्मों से विरत होने का व्रत दिया। उपस्थित भिक्षु-मण्डली और हमारे जैसे उपासकों ने "साधु, साधु" कहा। इस प्रकार मेरा नया जीवन आरम्भ हुआ।

अब मेरा नाम श्रामणेर नरेन्द्रयश था। बीस वर्ष होने में अभी दो साल की देर थी, इसलिये मैं उपसम्पदा-प्राप्त भिक्षु नहीं बन सकता था। मेरे बालपन के दूसरे साथी सात-आठ वर्ष की उमर से ही श्रामणेर बन चुके थे। उनमें से दो सुभूमि विहार में थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा बहुत पहले से शुरू हो गई थी। वह निरन्तर विहार के विद्वान् भिक्षुओं के साथ रहते थे। मैंने देखा कि यद्यपि व्याकरण, कोष और काव्य में मैं उनसे किसी तरह कम नहीं हूँ, लेकिन सूत्र और विनय में वह आगे बढ़े हुये हैं। स्पर्धा आनी स्वाभाविक थी और मैंने पहले ही दिन निश्चय कर लिया कि मुझे अपने समवयस्कों में किसी बात में किसी से पीछे नहीं रहना है।

क्या सचमुच मैं नया मनुष्य था? नये समाज में पहुँचने पर आदमी नया मनुष्य हो ही जाता है। भदन्त जिनवर्मा पिछले दस सालों से मुझे शिक्षित करने की कोशिश करते आये थे। उन्हीं की कृपा का फल था कि मैं अक्षरशून्या कोरा एक उद्यानी गँवार बनकर सुभूमि विहार में नहीं आया। विद्या-सम्बन्धी मेरा ज्ञान काफी संतोषजनक था। लेकिन, कहाँ साल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में चार-पाँच महीने की पढ़ाई और कहाँ अब बारहों महीना विद्या की गंगा में डुबकी लगाना। सुभूमि विहार या किसी विहार में रहने वाले सभी, भिक्षु नियमपूर्वक विद्या की गंगा में डुबकी लगाते हों, यह आवश्यक नहीं है। मैंने तो पीछे देखा, कि विहारवासी बहुत से भिक्षु यह समझकर अधिक परिश्रम नहीं करना चाहते, कि अभी सारी जिन्दगी पड़ी है, इतनी जल्दी करने की क्या जरूरत? ब्राह्मणों के लड़कों को मैंने उनकी अपेक्षा अधिक तत्पर देखा। वे जानते हैं, कि जवानी के साथ-साथ विवाह करने के बाद फिर उनका विद्यार्थी-जीवन खतम हो जायगा, इसलिये आयु के पहले पच्चीस वर्षों को ही विद्यार्थी और शिशु के रूप में बिताया जा सकता है। सुभूमि विहार का वातावरण कुछ दूसरा ही था। ऐसा वातावरण कश्मीर, गंधार और मगध-कोसल के विहारों में ही देखा जाता है। जब हमारे अध्यापक एक से एक गम्भीर विद्वान् हों, तो छात्रों में उनके अनुकरण की प्रवृत्ति होती ही है। या यों कहिये, सदृश वस्तु सदृश को खींचती है। सुभूमि विहार में वही तरुण प्रवेश करते हैं, जो वहाँ ज्ञान के दौड़ में निवह सकते हैं। दूसरे विद्यार्थी पूर्वाह्ण या उत्तराह्ण में एक समय पाठ लिया करते थे, लेकिन श्रामणेर बनने के कुछ ही सप्ताहों बाद मैंने दोनों समय पाठ लेना शुरू किया। केवल सूत्र और विनय का अध्ययन छह महीने तक ही रहा। उसके बाद प्रमाणशास्त्र की महिमा सुनकर मुझे उसके पढ़ने की भी इच्छा हुई। हमारे गंधार के वसुबन्धु और उनके शिष्य दक्षिणापथजन्मा दिग्नाग के ग्रन्थों की इस समय बड़ी ख्याति थी। दिग्नाग के "प्रमाण-समुच्चय" का अध्ययन अभी विरले स्थानों में होता था। हमारे नायक महास्थविर गुणवर्मा ने प्रमाणशास्त्र का विशेष तौर से अध्ययन किया था। उन्होंने इच्छा प्रकट करने पर स्वयं पढ़ाना शुरू किया। प्रमाण-समुच्चय की कुछ सौ कारिकाएँ (श्लोक) मैंने कुछ सप्ताहों में ही कंठस्थ कर डाले। महास्थविर के पढ़ाने का ढंग बड़ा सुन्दर था। आरम्भ से ही वे शिष्य के ऊपर ज्ञान का पहाड़ लाद देना नहीं चाहते थे। पहले उतना ही बतलाते थे, जितना शिष्य की बुद्धि ग्रहण कर सकती है। मातृचेट के "अध्यर्धशतक" को श्रामणेरों की आरम्भिक पुस्तिका माना जाता है। इसमें तथागत की स्तुति के रूप में कवि मातृचेट ने डेढ़ सौ श्लोकों में सारे सिद्धान्त को निचोड़ कर रख दिया है। इसे तथागत की देशना या त्रिपिटक का सार कहना चाहिये। मुझे मातृचेट की यह कृति वर्षों पहले से कंठस्थ थी, इसलिये प्रमाण-शास्त्र में प्रवेश करने में सुगमता हुई, इसमें कोई सन्देह नहीं।

दो साल का समय कितनी जल्दी बीत गया? वस्तुतः अधिक कार्यव्यासक्त होने पर आदमी को समय बीतने का पता नहीं लगता। मैंने अपने इन दो वर्षों के 24 महीनों के एक एक दिन को काम में तेजी से चलकर नहीं, बल्कि सरपट दौड़कर बिताया था। आचार्यों से जब मालूम हुआ कि 18-18, 20-20 वर्ष की अवस्था में ही दिग्नाग तथा दूसरे कितने ही विद्वान् अगाध पांडित्य प्राप्त कर चुके थे, तो मुझे अपने ऊपर ग्लानि होने लगी। सचमुच सात-आठ वर्ष की उमर में श्रामणेर बनने से वंचित रहने का फल मेरे लिये अच्छा नहीं हुआ। मुझे अपने सहपाठियों के मुकाबिले में आगे नहीं बढ़ना, बल्कि वसुबन्धु, दिग्नाग और दूसरे आचार्यों के समान बनना था। इस बात का अफसोस आज भी मुझे है। यदि आरम्भ की जड़ मजबूत होती, तो स्मरणशक्ति और बुद्धि का जो प्रसाद मुझे प्राप्त हुआ था, उससे और आगे बढ़ सकता था। समय भी शायद बीत नहीं चुका था, लेकिन आगे मेरे पैर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चक्का बँध गया और सुभूमि विहार के चार वर्षों के निरन्तर निवास के बाद मैं लगातार डटकर किसी एक स्थान पर वर्षों अध्ययन नहीं कर सका। तो भी, दूसरों की अपेक्षा अपनी प्रगति पर मैं असंतुष्ट नहीं था।

मैं 20 वर्ष का हो गया (538 ई०)। वर्षा का पहला मास आया। बसन्त और ग्रीष्म के महीनों में विहार के कितने ही भिक्षु, जो बाहर चारिका के लिये चले गये थे, वर्षा के तीन महीनों को बिताने के लिये विहार में लौट आये। कुछ अन्य देशीय भिक्षु भी वर्षावास के लिये आये, लेकिन जैसा कि मैंने कहा, सुभूमि विहार में भिक्षुओं की सबसे अधिक संख्या जाड़ों में हुआ करती थी, जब कि कश्मीर, गंधार, कपिशा, कम्बोज जैसे पड़ोसी देशों के ही नहीं, बल्कि कांस्य और महाचीन जैसे सुदूर देशों के भी कुछ भिक्षु आ जाते थे। वर्षाकाल में भिक्षुओं के लिये यात्रा करना वर्जित है। इन तीन महीनों को एक जगह सांघिक जीवन बिताते परस्पर सहायता करते अपने शील, समाधि और प्रज्ञा बल को बढ़ाने के लिये कहा गया है। वर्षा के प्रथम मास का एक महत्व यह भी है, कि साल में सिर्फ इसी समय एक बार संघ अपेक्षार्थियों का भिक्षु बनाता है। इस समय सुभूमि और सुवास्तु तट की छटा निराली होती थी। जाड़ों से जहाँ देवदार जैसे सदा हरित रहने वाले वृक्षों को छोड़कर केवल सफेद बर्फ ही चारों ओर देखने में आती, वहाँ अब सुवास्तु के पत्थर पर टकराकर चलती धारा के क्षीर-समान जल को छोड़कर सभी जगह हरियाली का राज्य होता।

पार का गाँव बिल्कुल आबाद था। यद्यपि उसके प्रायः सारे पशु और कुछ प्राणी पयार पर चले गये थे, लेकिन गाँवों में चहल-पहल थी। रात को कितने ही समय तक लोगों के गाने और बाजों की आवाज सुवास्तु के घर-घर ध्वनि से दबकर क्षीण रूप में हमारे पास कभी-कभी पहुँचती थी। वर्षोपनायिका (आषाढ़ पूर्णिमा) की महिमा हमारे उद्यान में महा-प्रावारणा (आश्विन पूर्णिमा) की तरह ही है। उस दिन से भिक्षु-संघ का वर्षावास शुरू होता है। परले पारके गाँव वाले उपासक-उपासिकायें ही नहीं, बल्कि नीचे दूर-दूर से श्रद्धालु गृहस्थ भिक्षुओं को दान देने के लिये आहार, वस्त्र, भैषज्य आदि चीजें लाते।

श्रावण के प्रथम पक्ष की पहली तिथि आई जिस दिन कितने ही श्रामणेरों को उपसम्पन्न बनाया गया, जिसमें मैं भी था। उस दिन सवेरे हमारे पीले काषाय चीवर हटा दिये गये। हमें उद्यान के राजकुमार-जैसी पोशाक पहनाई गई। इसी काम के लिये बहुत सुन्दर और मुलायम चोगा, सुत्थन सुरक्षित थे। हमें उन्हें पहनाया गया, सिर पर सुवर्ण-मंडित मुकुट, बगल में तलवार लटकाई गई। फिर चुनकर लाये हुये उद्यान के अच्छे-अच्छे सफेद घोड़ों पर बैठाकर हमारी शोभायात्रा (जलूस) निकाली गई। सारी सुभूमि की प्रदक्षिणा हुई। आगे-आगे वेणु, पटह और दूसरे बाजे बज रहे थे। बीच-बीच में जलूस खड़ा हो जाता और नर-नारी बड़े आनन्द के साथ नाचने लगते। लोग ऋतु में सुलभ फूलों की वर्षा हमारे ऊपर कर रहे थे। मालूम होता था, राजकुमार ब्याह करने के लिये जा रहे हैं। गृहस्थ जीवन को सदा के लिये छोड़ना था, इसीलिये एक बार उसकी पूरी झलक दिखलाने और उसका आनन्द लेने के लिये ऐसी शोभा-यात्रा सभी देशों में की जाती है। मूल विहार वाले महाचैत्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के समीप पहुँचकर हम घोड़ों से उतर गये। हथियार हमारे पहले हटा दिये गये। फिर विहार के द्वार के भीतर घुसने के बाद हमें अलग प्रकोष्टक में ले जाया गया और वहाँ हमारी पोशाक भिक्षुओं के चीवर में बदल दी गई। मूल विहार की उपोसथागार बहुत विशाल शाला थी, जिसमें पाँच सौ भिक्षु आसानी से पाँच पंक्तियों में बैठ सकते थे। वहाँ उपोसथ-शाला में हममें से एक-एक बारी-बारी से पहुँचाया गया। मैं पहला था। ऊपर की ओर विशिष्ट आसन—धर्मासन था, जिस पर मेरे जाने के समय से पहले ही महास्थविर गुणवर्द्धन बैठे हुये थे। तीन पंक्तियों में तीन सौ के करीब भिक्षु अपने भिक्षु-आयु के क्रम से बैठे थे। वहाँ 21 वर्ष से 100 वर्ष की उमर तक वाले पुरुषों को देखा जा सकता था। क्रम आयु का नहीं, बल्कि भिक्षु बनने के समय का था, इसलिये सभी को नीचे से ऊपर तक आयु के क्रम से नहीं देखा जा सकता था। उपोसथशाला शान्त थी। उसके द्वार के बाहर बैठे या खड़े सैकड़ों नर-नारी भी बिल्कुल नीरव थे। ऐसी नीरवता जाड़े के दिनों में ही यहाँ देखी जा सकती थी। दो भिक्षु मुझे द्वार से भीतर ले गये। कैसे करना चाहिये, यह बात हमें पहले से सिखला दी गई थी, तो भी किसी बात में कोई व्यतिक्रम न हो, इसके लिये वह हमें बतला रहे थे। उच्चता में समान, किन्तु महत्त्व में बड़े धर्मासन के ऊपर बैठे स्थविर गुणवर्द्धन के सामने उकड़ूँ बैठ पंचप्रतिष्ठित से अभिवादन करके मैंने संघ से उपसम्पदा प्राप्त करने की याचना की। 20 वर्ष तुम्हारे पूरे हो गये हैं। माता-पिता ने भिक्षु बनने के लिये तुम्हें अनुज्ञा दी है? कोई सांघातिक या पैतृक महारोग तो नहीं है? आदि-आदि बातें उसी तरह पूछी गईं जिस तरह और देशों में भिक्षु-संघ में उपसम्पदा देते वक्त पूछा जाता है। मेरे उपाध्याय महास्थविर गुणवर्द्धन बने और आचार्य भदन्त जिनवर्मा। मैं उपसम्पन्न हो अब भिक्षु-संघ का एक अभिन्न अंग था, श्रामणेर की तरह अब अपेक्षार्थी नहीं, बल्कि पूरा भिक्षु बन गया। सुभूमि विहार में विनय के नियमों का कड़ाई से पालन होता है। वहाँ संघ और व्यक्ति उसी नियम के अनुसार आचरण करते हैं, जैसा कि तथागत ने विनयपिटक में बतलाया है। दूसरे स्थानों में सोना-रूपा के न छूने के नियम की आम अवहेलना देखी जाती है, लेकिन सुभूमि विहार के भिक्षु उसमें हाथ भी नहीं लगाते। मूल विहार में कुछ ऐसे भी भिक्षु हैं, जो नये कपड़े का चीवर नहीं पहनते। यह भी कहा जाता है, कि विहार के संस्थापक मूल स्थविर काश्यप स्वयं इसी तरह का चीवर पहनते थे। मैं समझता हूँ, यह धारणा तथागत के प्रधान शिष्य महाकाश्यप और हेमवतों के आचार्य काश्यप को एक करने पर निर्भर है। तथागत ने अत्यन्त कमनीय अपने जैसे सुन्दर शरीर वाले महाकाश्यप को सुन्दर चीवर पहने हुये देखकर समझा, कि इससे मेरे तरुण शिष्य के सौन्दर्य की वृद्धि होगी, जिसके कारण लोलुप आँखें उसकी ओर देखने लगेंगी। इसलिये उन्होंने कहा था—"काश्यप, तेरे चीवर बड़े सुन्दर हैं।" पहले-पहल सम्पर्क में आये महाकाश्यप ने समझा कि शायद भगवान् इस चीवर को पसन्द करते हैं। इसलिये उन्होंने देने की इच्छा प्रकट की। भगवान् ने कहा—लेकिन, फिर तू क्या पहनेगा?

महाकाश्यप ने बड़ी नम्रता के साथ कहा—यदि भगवान् की कृपा हो, तो आपका यह चीवर मुझे पहनने के लिये मिल जाय।

तथागत के शरीर पर पाँसुकूल का चीवर था, अर्थात् बेकार समझकर फेंक दिये गये

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कूड़े-कर्कट पर पड़े चीथड़ों को जोड़कर वह चीवर बनाया गया था। हजारों टुकड़ों को बेढ़ंगे, किन्तु चीवर की परम्परा के अनुसार सिले उस चीवर के बारे में तथागत ने कहा :

—लेकिन, इस चीवर का पहनना तेरे लिये आसान नहीं होगा। फिर तो जीवन भर तुझे ऐसा ही चीवर पहनना पड़ेगा।

महाकाश्यप ने स्वीकार किया और वह आजन्म पाँसुकूलिक रहे। कहा जाता है, तथागत का दिया वही एक चीवर वह अपने जीवन भर पहनते रहे और आज भी उसी चीवर को लिये आने वाले मैत्रेय बुद्ध को देने के लिये वह वज्रासन (बोधगया) के पास किसी पहाड़ की गुहा में अन्तर्धान-वास कह रहे हैं। मैं नहीं समझता, हेमवतों के आचार्य काश्यप भी पाँसुकूलिक थे। मूल विहारवासी कुछ भिक्षु उसी परम्परा का अनुकरण करते पाँसुकूलिक हैं।

श्रामणेर बनने के साथ मेरा नया जीवन आरम्भ हुआ था, इसे तो मैं मानता हूँ, किन्तु भिक्षु बनने के साथ बिल्कुल नया जीवन आरम्भ हुआ हो। ऐसा नहीं मालूम होता था। फर्क इतना ही था, कि अब मैं भिक्षुओं और स्थविरों के साथ एक आसन पर बैठ सकता था, एकसाथ भोजन कर सकता था। उपोसथशाला में प्रतिपक्ष उपोसथ कर्म करने के समय एकत्रित हुये भिक्षुओं की मण्डली में सम्मिलित हो सकता था। नया भिक्षु होने के कारण मैं पंक्तियों में नीचे की ओर लेकिन समान तौर से बैठ सकता था। संघ किसी छोटे-मोटे अपराध या सांघिक सम्पत्ति के बारे में जब निर्णय करता, तो मुझे भी छन्द (राय) देने का अधिकार था। यह ख्याल मुझे बार-बार आता था, कि अब मैं तथागत द्वारा संस्थापित हजार वर्ष से चले आते पवित्र भिक्षु-संघ का एक सदस्य था। उसी के नाते मेरा मूल्य और मान और साथ ही मेरी जिम्मेदारी भी बढ़ गई थी।

सुभूमि विहार में अनुशासन बहुत कड़ा था। उसके पालन करने में असमर्थ भिक्षु यहाँ आने की हिम्मत ही नहीं करते थे। उस समय मेरे मन में संकल्प होता कि मैं भी पाँसुकूलिक बनूँ, महाकाश्यप की तरह ही सदा पिंडपातिक रहूँ—निमंत्रण न स्वीकार कर सदा भिक्षा पर ही जीवन यापन करूँ, पैसा न छूऊँ। लेकिन जब अबाध गति से मेरा घुमक्कड़ी जीवन आरम्भ हुआ, तो मालूम हुआ कि इन नियमों का पालन करना मेरे लिए सम्भव नहीं। उस वक्त मैं उनके पालन करने की भरसक कोशिश करता था। भिक्षु बनने के बाद भी मेरी पढ़ाई की धारा उसी तरह अविच्छिन्न चलती रहती। उसके बाद चार वर्ष तक उपाध्याय और आचार्य के आश्रम में रहने का नियम था, किन्तु 22 वर्ष के बाद अपने पैरों को रोकना मेरे लिए मुश्किल हो गया। तब तक विहार में पढने लायक सारी विद्याओं को मैं समाप्त कर चुका था, यह तो नहीं कह सकता, लेकिन मैं विहार के तरुण विद्वानों में गिना जाने लगा था, कुछ श्रामणेरों का अध्यापन भी करता था। मैंने बाकी दो सालों को अभिधर्मकोष, अभिधर्मपिटक, प्रमाणशास्त्र और विभाषाओं के अध्ययन में लगाया। विहार में वर्षा या हेमन्त काल में आकर वास करने वाले अन्यदेशीय भिक्षुओं से मैं घंटों बातें किया करता। वह अपने देश के बारे में बहुत-सी बातें बतलाते। तुषार देश के भिक्षु ने बतलाया, कि कैसे दुर्गम पहाड़ी जोतों को हमें एक के बाद एक कई बार पार करना पड़ता है। रास्ते में कई दिनों तक किसी आदमी से भेंट नहीं होती। कूचा और कांस्य देश के भिक्षुओं ने बतलाया कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हमारे देश में हरियाली के लिए आँखें तरसती रहती हैं। उसकी जगह दूर तक बालू से ढ़ै निर्जन भूमि दिखाई पड़ती है। रास्ते में खाद्य और जल का अभाव ही त्रासजनक नहीं होत बल्कि भूत-प्रेत भी भारी बाधाएँ उपस्थित करते हैं। दक्षिण के देशों में घूम आये भिक्षु वहाँ की भीषण गर्मी की बातें सुनाते। तथागत की जन्मभूमि को देखने के लिए सभी भक्तों तरह मेरी भी उत्कट इच्छा थी।

महास्थविर गुणवर्द्धन की देशनाओं में उसका अक्सर जिक्र आता था। अपने गुरु तरह वह भी परोक्ष वस्तु का साकार रूप खड़ा कर देने में सिद्धहस्त थे। वह तथागत की जन भूमि में गर्मियों में भी रहे थे। उन्हें कष्ट भी हुआ था। उस समय वह विहार के भीत खिड़की-किवाड़ बन्द कर दिन भर पड़े रहते। शरीर पर सब जगह फुंसियाँ निकल आतीं लेकिन, इन सभी यातनाओं को वह हल्का करके बतलाते थे "बुद्धों की भूमि बहुत सुन्दर है वहाँ चार महीने कष्ट के हैं, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु वह तो परीक्षा के लिए हैं। वहाँ हेमन्त बहुत मधुर होता है; न अति गरम और न हमारे उद्यान की तरह अति शीतल। वहाँ तर तरह के भोजन और फल मिलते हैं। लोगों में अपार श्रद्धा और विद्या के प्रति भारी अनुरा है। हरेक घर में आगन्तुक का सत्कार होता है। संघारामों में किसी भी देश के भिक्षु के पहुं जाने पर उसका वहाँ घर की तरह स्वागत होता है। विद्या हमारे कश्मीर और गन्धार में है। बड़े-बड़े विद्वान् इस भूमि में पैदा हुए, लेकिन तथागत ने जिस भूमि में अपने परिनिर्वाण समय तक विहार किया, वहाँ की विद्या के बारे में क्या कहना? विद्या के उस मधुर समुद्र तट पर पहुँचे विना आदमी की ज्ञान-पिपासा पूरी तौर से शान्त नहीं हो सकती। मैंने सोचा जहाँ फूल होता है, वहाँ काँटे भी होते हैं।

आदमी पहली बार किसी यात्रा के लिए जब कदम उठाता है, तो उसे कहाँ मालू होता है, कि इसका अन्त कहाँ होगा। सुभूमि विहार के अन्तिम वर्ष में यह तो पता था मुझे तथागत की जन्मभूमि का दर्शन करना है। अवदानों और जातकों के प्रभाव ने मुझे भी प्रेरणा दी थी, कि बोधिसत्त्व की तरह ही मैं अपने जीवन को दूसरे प्राणियों के दुःखों हल्का करने में लगाऊँ। रोग सबसे बड़े दुःखों में है। रोग-पीड़ित मनुष्य की सांत्वना केव वचनमात्र से नहीं हो सकती। उसे तो भैषज्य-गुरु की आवश्यकता होती है। त्रिनयपिटक भैषज्यस्कन्धक को पढ़ते समय मैंने देखा, कि तथागत मन की चिकित्सा ही नहीं, बल्कि शरी की चिकित्सा के भी भिषग् थे। हमारे एक विहार के प्रतिमागृह (मंदिर) में भैषज्य गुरु रूप में तथागत की प्रतिमा भी स्थापित थी, जिनके एक हाथ में ओषधि का प्रतीक हर्रा रक्ख हुआ था। मुझे अन्यदेशीय भिक्षुओं से यह भी पता लगा, कि सभी देशों में भिक्षु चिकित शास्त्र का अध्ययन करते हैं। यात्रा में चिकित्सा-विद्या सबसे बड़ा सम्बल है, भाषा और री रवाज से अपरिचित किसी देश में भी चले जाने पर चिकित्सा का ज्ञान आदमी के लिए पा का काम भी देता है। व्याधि से कराहते आदमी को सूखी सहानुभूति की जगह इस विद्या द्वा अधिक सान्त्वना दी जा सकती है। हमारे कितने ही भिक्षु वर्षों लगाकर चिकित्सा के ग्रन् को पढ़ते, ओषधियों को अपने हाथ से तैयार करने की विधि सीखते। मुझे विश्वास नहीं था मैं केवल चिकित्सक भिक्षु बन सकता हूँ। लेकिन, साथ ही केवल "भैषज्य स्कन्धक" तक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपने चिकित्सा के ज्ञान को मैं उसी तरह सीमित नहीं रखना चाहता था जिस तरह अपने शास्त्रों के ज्ञान को सूत्र, विनय और अभिधर्म के अध्ययन तक। जान जाने पर मेरे गुरु जिन-वर्मा और महास्थविर गुणवर्द्धन नहीं चाहते, कि मैं अध्ययन में लगने वाले समय को चिकित्सा सीखने में लगाऊँ। अपने किसी आचरण को छिपाना या किसी काम को उनकी अनुमति के बिना करना मेरे स्वभाव में नहीं था, लेकिन, सीखनें में मैंने इस नियम का पालन नहीं किया।

सुभूमि के चार वर्ष के निवास का अन्त आ रहा था। तीसरे वर्ष के मध्य में पहुँचने के साथ ही मुझे बराबर यात्रा के लिए वेकरारी होने लगी। चौथे वर्ष के मध्य तक तो साफ मालूम होने लगा कि अपने विहार में मेरा यही अन्तिम हेमन्त-वास होगा। अन्तिम छह महीनों में आँख बचाकर मैं मूल विहार से सुभूमि के एक दूसरे विहार में आया-जाया करता था, जिसमें उद्यान के एक प्रसिद्ध वैद्य भिक्षु रहा करते थे। उनसे मैंने कहा, कि नियमपूर्वक सारे चिकित्साशास्त्र का अध्ययन करना मेरे लिए सम्भव नहीं। मैं चारिका (यात्रा) करने वाले भिक्षु के लिए उपयुक्त चिकित्सा-ज्ञान को सीखना चाहता हूँ और वह भी अपने आचार्य-उपाध्याय की आँख बचाकर। भिक्षु-वैद्य भी देशान्तर में घूमे हुये थे और अवस्था अधिक हो जाने के कारण ही अब उन्होंने चारिका करनी छोड़ दी थी। वह मेरी आवश्यक-ताओं को जानते थे। उन्होंने अधिक होने वाले रोगों के पहचानने का निदान मुझे बतलाया, फिर उपचार और कुछ ओषधियों को सिखलाया। यह कहते हुये कुछ को तो मेरे हाथों से बनवाया—हर जगह बनी-बनाई ओषधि या उसकी सामग्री सुलभ नहीं है, इसलिए तुम्हें उन्हें बनाने की विधि सीख लेनी चाहिए। हर देश में सभी तरह की जड़ी-बूटियाँ सुलभ नहीं हैं। उद्यान की कुछ जड़ी-बूटियों का परिचय कराते हुए उन्होंने जम्बू द्वीप और कांस्य देश तक की अपनी विचरण-भूमि की ओषधियों के बारे में कुछ बातें बतलाईं। अन्तिम वर्ष के बचाये हुए जिस समय को मैंने चिकित्सा-सम्बन्धी ज्ञान के अर्जन में लगाया था और उसमें जितनी सफलता मिली थी, मैं उसे असंतुष्ट नहीं था।

गंधार-कश्मीर

(541-42 ई०)

मैं 23 वर्ष का हो गया था। यह नहीं कह सकता, कि मेरी ज्ञानवृद्धि के लिए उद्यान में योग्य गुरु नहीं थे, किन्तु महासरोवर चाहे कितना ही बड़ा हो, वह समुद्र-जैसा आकर्षण नहीं रखता। हमारे उद्यान में जो बड़े-बड़े विद्वान् थे, उनमें से सभी ने विद्याध्ययन के लिए अपना बहुत-सा समय मध्यमंडल में बिताया था। यद्यपि हमारे पड़ोसी कपिशा, गंधार और कश्मीर भी तथागत की चरणधूलि से पुनीत थे—जहाँ तक क्विदन्वियों का सम्बन्ध था, यही सुना जाता था, पर विनय और सूत्र-पिटक के देखने पर मालूम होता है, कि वहाँ कोई भी ऐसा वाक्य नहीं है, जिससे सिद्ध हो कि भगवान् ने मध्यमंडल से बाहर विहार किया था। जो भी हो, हम उद्यानी भिक्षुओं के लिए अपने महापंडितों, विनयधरों और लक्षणशास्त्रियों के लिये

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रसिद्ध गंधार-कश्मीर घर-सा मालूम होता था और दूर के स्थान ज्यादा आकर्षक। मैं बचपन में माँ के साथ एक बार गंधार-राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) देख आया था, किन्तु वह बाल्य-काल की बात थी। उस समय ज्ञान परिमित होने से मैं उस पुनीत नगरी के दर्शन से जो आनन्द या लाभ ले सकता था, वह नहीं ले पाया। अब मैं फिर उसके दर्शन करना चाहता था। गंधार जाने से पहले मैंने कपिशा को देखना चाहा। हम अत्यन्त सर्द मुल्क के आदमी थे। गरम मुल्कों की जो बातें सुनने में आती हैं, उनसे दिल घबड़ा उठता—वहाँ बहुत काले साँप होते हैं जिनके छू भर देने से आदमी के प्राण निकल जाते। वहाँ मच्छर, बिच्छू और संताप देने वाले क्या-क्या जन्तु नहीं रहते। गर्मियों में वहाँ रहकर कोई विरला ही लौट पाता है, इत्यादि-इत्यादि बहुत सी बातें मैंने सुन रक्खी थीं, लेकिन मेरे आचार्य वर्षों मध्यमंडल के अत्यन्त गरम स्थानों में रह आये थे, वह ज़ीवित-जागृत मेरे सामने थे। यदि वह बचकर चले आये, तो पग-पग पर मैं क्यों मृत्यु को ही देखूँ ?

बसन्त का समय था। गर्मियों के दिन इसके बाद ही आरम्भ होते हैं। यदि मध्यमंडल की ओर जाना होता, तो हम जाड़ों के समय में प्रस्थान करते, लेकिन कपिशा पहाड़ी और ठंडी जगह है। हमारे गाँवों जितना नहीं, तो भी उसे ठंडा ही कहना होगा। विहार से एक बड़े और दो छोटे-छोटे डाँड़ों को पारकर हम सुवास्तु की बहिन कुनर नदी के किनारे चले आये। यह बड़ी नदी है, इसकी भी उपत्यका हरी-भरी है। हमारे साथ तीर्थयात्रियों की एक मंडली चल रही थी। यद्यपि मैं चार-पाँच से अधिक सहयात्री पसन्द नहीं करता और सो भी उपासकों को नहीं, भिक्षुओं को ही। उपासकों (गृहस्थों) के घर-द्वार होते हैं, पुत्र-पौत्र होते हैं। उन्हें सब बातों में जल्दी पडी रहती है। वह झटपट अपनी तीर्थयात्रा समाप्त करके घर लौटना चाहते हैं। हम भिक्षु निर्द्वन्द्व होते हैं, हमें किसी चीज की पर्वाह नहीं होती। जहाँ चाहा, दो-चार दिन नहीं दो-चार महीने रुक गये, बस्ती और नगर में ही नहीं, पशुपालों के डेरों में, महावनों में भी। उद्यान की भूमि ने मेरे मन में पर्वतीय नदियों, देवदार और दूसरे सदाहरित वृक्षों से ढँकी गिरिमालाओं के प्रति एक विशेष आकर्षण पैदा कर दिया था।

मनुष्य की बाल्य-स्मृति सबसे मधुर होती है। उसकी बाल्य-आँखें जिसके सौन्दर्य और सुषमा के पक्ष में अपना निर्णय दे देती हैं, वह जीवन भर के लिये पक्का हो जाता है। जागृत या स्वप्न अवस्था में पुरानी स्मृतियाँ जग-जगकर आदमी को उधर खींचती हैं। कुनार का तट भी, विशेषकर उसका ऊपरी भाग, हमारी आँखों में बड़ा रमणीय जँच रहा था। हम दो ही तीन दिन बाद उसके किनारे के नगर में पहुँचे। हमारे लोग किसी भी बड़े ग्राम को, जहाँ दस-पाँच दूकानें, कोई अच्छा-सा विहार और एक छोटा-मोटा राजा हो, उसे नगर कह देते हैं। यह नगर नगरहार का पासंग भी नहीं था। खैर, अभी तो मैंने खुली आँखों से बड़े नगरों को देखा ही नहीं था। हमारे सहयात्री, विशेषकर उपासिकाएँ तो इसकी प्रशंसा किये बिना नहीं थकती थीं। उपासक-उपासिकाओं के साथ चलने का एक लाभ जरूर था कि हमें भिक्षा के लिये कोई तरद्दुद करना नहीं पड़ता था। सूर्योदय होते ही लघु आहार—जो हमारे एकाहारी भिक्षुओं के लिये पूर्ण आहार जैसा होता था—तैयार मिलता। उसके बाद हमारी मंडली चल पड़ती। नदी के नीचे हम जितना ही आगे बढ़ रहे थे, उतनी ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गर्मी भी बढ़ती जा रही थी, लेकिन अभी वसन्त की सह्य गर्मी थी। तो भी हम सवेरे और शाम को ही चलना पसन्द करते थे। अश्मर की अच्छी खासी बस्ती नदी के बायें तट पर बसी हुई है। वहाँ से आगे हमें गर्मी अधिक लगने लगी। कुनार भी एक अच्छी खासी बस्ती है। शायद नदी का नाम इसी के कारण पड़ा। सुवास्तु भी तो इसी तरह नदी और प्रदेश दोनों का नाम है। नगरहार तक हम इसी तरह अधिक गर्म और गरम स्थान में बढ़ते गये। नगरहार पहुँचने से बहुत पहले ही पहाड़ नंगे क्या हो गये, उनकी श्री छिन गई। बिना वृक्ष-वनस्पति का भी कोई पहाड़ हो सकता है, इसकी मुझे तो कल्पना नहीं थी। हमारे लोग थोड़ी देर के लिये नगर की विशालता, तरह-तरह के पण्यों से सजी उसकी दूकानों तथा सोने की छतों वाले विहारों और प्रतिमागृहों को देखकर सब कुछ भूल गये। मैं नंगे पहाड़ों को देखकर खिन्न हो रहा था। इसमें शक नहीं, नंगे होने पर भी छोटी-छोटी कुल्याओं को लाकर यहाँ खेती-बारी और बागवानी बहुत होती है। हमारे यहाँ से भी अच्छे फल होते हैं। चावल भी बहुत अच्छे किसिम का होता है। यदि हम अधिक सर्द देश के रहने वाले न होते, तो यहाँ को जलवायु को सुखद कह सकते थे। लोग सौम्य स्वभाव के थे, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं, कि वह समय पड़ने पर प्राणों की बाजी लगाने के लिए तैयार न होते। विद्या के प्रति, कला के प्रति प्रेम और सम्मान किसे कहते हैं, इसे मैंने पहले-पहल यहाँ देखा।

नगरहार (जलालाबाद, 1960 फुट)

नगरहार हमारे लोगों के लिये पुरुषपुर (पेशावर) जैसा ही पुनीत स्थान है। यहाँ के विहार, चैत्य और प्रतिमागृह पुरुषपुर जितने विशाल और सम्पन्न न हों, तो भी यहाँ तथागत के शरीर से सम्बन्ध रखने वाली कितनी ही पवित्र वस्तुएँ हैं। जब पुरुषोत्तम पृथ्वी पर अपने उपदेशों द्वारा लोगों को कृतार्थ करते विचर रहे थ, उस वक्त कोटि-कोटि लोगों ने उनका दर्शन किया होगा, उनकी कलविंक-जैसी मधुर वाणी को सुना होगा और तृप्तिलाभ किया होगा। लेकिन, वह तो अब हजार वर्ष पहले की बात हो गई। उन द्विपदोत्तम के दर्शन के लिये हमारी आँखें भी प्यासी हैं, हमारे कान भी उनकी जीवनदायिनी देशना को सुनना चाहते हैं। देशना का आनन्द हम तथागत की सूक्तियों को पढ़कर कुछ ले लेते हैं। लेकिन, यहाँ नगरहार में भगवान् की ग्रीवा-अस्थि मौजूद थी—"तीन अंगुल लम्बी ढाई अंगुल मोटी पीताभ, देखने में मधुच्छत्र जैसी"। यही तो वह पुनीत अस्थि है, जो कभी तथागत के शरीर का अभिन्न अंग थी। फिर हमने उस विहार को भी देखा, जिसमें भगवान् की संघाटी (चीवर) रक्खी थी। भगवान् ने गृहस्थों पर भार न देने के लिए चाहा, कि भिक्षु नये कपड़े का ही चीवर नहीं बना रास्ते में फेंके हुये चीथड़ों को भी सीकर अपने शरीर को ढाँके। चीथड़ों और नये कपड़ों की संघाटी में समानता रखने के लिये उन्होंने जहाँ उन्हें काषाय से रँगने का विधान किया, वहाँ मगध के धान की क्यारियों को दिखलाकर यह भी बतलाया, कि तुम्हारे चीवर इस तरह के होने चाहिये। नये कपड़ों को भी काटकर क्यारियों के रूप में ही चीवर बनाये जाते हैं। तथागत की इस संघाटी में भी तेरह खंड जुड़े हुये हैं, चारों तरफ दशा (मगजी) लगी हुई है। संघाटी के साथ-साथ भगवान् का खत्तरदंड भी यहाँ मौजूद है। जो कभी उनके हाथ में रहकर चलने-फिरने में आश्रय देता था, आज वह निराश्रय हो यहाँ पड़ा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हुआ है। ऐसी पवित्र वस्तुओं के प्रति लोगों की श्रद्धा जैसे अतिरंजना से काम लेती है, वैसे ही इस दंड के बारे में भी है, वह एक सुवर्णमंडित काष्ठ के आधार पर रखा हुआ है। कहते हैं, सैकड़ों आदमी लगकर भी यदि इसे उठाना चाहें, तो भी नहीं उठता और किसी समय एक साधारण बालक भी उसे उठा सकता है। एक विहार में भगवान् का दन्त और केश भी रक्खा हुआ है। इन सभी पवित्र धातुओं की पूजा सबेरे-शाम होती है। उसी समय लोग उनका दर्शन कर सकते हैं। लोगों की श्रद्धा से लाभ उठाते हुये धर्म के व्यापारी उन्हें वंचित भी करते हैं, इसलिये जो भी परम्परायें सुनने में आती हैं, उनमें सब पर विश्वास करना मेरे जैसे श्रद्धालु के लिये भी कठिन है। खासकर केश के बारे में मुझे सन्देह है, क्योंकि अपने दीर्घ-कालीन अध्ययन में मैंने कहीं नहीं देखा, कि भगवान् ने अपने केशों को कटवाया हो। भिक्षुवेश धारण करते समय ही उन्होंने अपने केशों को अपनी तलवार से काट लिया था, जिसे देवेन्द्र शक्र देवलोक में ले गये। कुसीनारा में जब भगवान् का शरीर अग्नि को भेंट किया गया, उस समय भस्म तथा अस्थि के अवशेषों को जमा करके बाँटा गया, पर केशों के होने की कोई बात नहीं मालूम होती। आग में केशों का जल जाना ही स्वाभाविक था। जो भी हो, जब चारों ओर श्रद्धालुओं की मूढ़ मंडली हो, तो उस समय बुद्धि की बात छेड़ना असमय की रागिनी है।

हमारी मंडली तीन-चार दिन के लिये नगरहार में ठहरेगी, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। हम भिक्षु जहाँ कहीं भी विहार मिलते, उपासकों को उनके लिये बने उपाश्रय, अतिथिगृह, या दूसरे स्थानों में रख विहारों में चले जाते। यही हमारे यहाँ शिष्टाचार था। नगरहार के भिक्षुओं में मैंने एक से एक विद्वान् देखे, और बाजवक्त मन करने लगा, कि यहीं रहकर क्यों न उनसे कुछ सीखें। लेकिन, नगरहार तो उद्यान का घर-आँगन है, अभी मुझे बहुत देश देखने थे। मेरा जो कुछ ज्ञान था, उससे नगरहार के नायक स्थविर मुझसे प्रसन्न हुये थे। वह स्वागत करते, यदि मैं उनके पास रहने की इच्छा प्रकट करता। एक ही दो दिन तक मैं डावाँडोल स्थिति में रहा, फिर यही निश्चय किया कि मध्यमंडल छोड़ और कहीं रहना नहीं होगा।

नगरहार के आसपास कितने ही और विहार हैं। कुछ तो पहाड़ों के भीतर और उनकी कन्दराओं में भी हैं। यहाँ की गोपगुहा के दर्शन के लिये लोग बहुत जाते हैं। मैं भी वहाँ गया। कहा जाता है, तथागत ने मनुष्य-लोक में विहार करते समय यहाँ पर अपनी छाया छोड़ दी जो कि अब भी देखने में आती है। नगर से आधा योजन दक्षिण यह गुहा अवस्थित है, जिसका मुँह पश्चिम की ओर है। गुहा से कुछ दूर हटकर ध्यानपूर्वक देखने से तथागत का सुवर्णवर्ण रूप दिखलाई पड़ता है। जितना ही उसके पास जायें, उतनी छाया स्पष्ट होती जाती है। कहा जाता है, बहुत से कुशल चित्रकारों ने इस छाया की प्रतिच्छवि लेनी चाही, लेकिन वह इसमें सफल नहीं हुये।

नगर से एक योजन उत्तर-पूर्व उपत्यका के मुँह पर वह विहार है, जिसमें तथागत का चन्दन का खत्तरदण्ड रक्खा हुआ। चन्दनों में सर्वश्रेष्ठ गोशीर्ष चन्दन की बनी यह यष्टि 16-17 हाथ लम्बे काष्ट की आधानी में रक्खी हुई है। भगवान् की संघाटी पश्चिम की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ओर के विहार में है। लोगों का विश्वास है कि अनावृष्टि होने पर यदि संघाटी की शोभा-यात्रा करके पूजा की जाये, तो वृष्टि होने लगती है। छाया विहार से 400 हाथ पश्चिम जाने पर वह स्थान है, जिसके बारे में कहा जाता है, कि तथागत ने यहाँ अपने केश और नख का छेदन किया था और भविष्य का संकेत करते हुये 70-80 हाथ ऊँचा एक स्तूप बनवाया था। वही स्तूप आज भी वहाँ वर्तमान है। पास में और छोटे-बड़े हजारों चैत्य हैं, जिनमें अनेक अर्हतों की धातुएँ (हड्डियाँ) रक्खी हुई हैं।

तीन-चार दिन में हमने नगरहार[1] और उसके आसपास के सभी पवित्र स्थानों को देख लिया।

एक योजन दक्षिण-पूर्व जाकर हम अस्थि (हड्डी-हड्डा) नामक नगर में पहुँचे। यह नगर या बड़ी बस्ती एक कोस के घेरे में पहाड़ी के ऊपरी भाग पर अवस्थित है। पहाड़ों के नंगे होने पर भी द्राक्षा, उदुम्बर (अंजीर) जैसे सुमधुर फलों के बगीचों और कितनी ही पुष्करणियों के कारण स्थान बड़ा रमणीय है। उद्यान के भीतर एक दुमंजिला भवन है, जिसमें तथागत की उष्णीष-अस्थि, उनकी खोपड़ी, एक आँख, खत्तरदंड और संघाटी रक्खी हुई है। धातुगृह के उत्तर में एक अद्भुत पाषाण-स्तूप है जो अँगुली के धक्के से हिलने लगता है।

कपिशा

नगरहार के आसपास के पवित्र स्थानों के दर्शन के बाद हम अब पश्चिम दिशा की ओर बढ़े। नगर के पास ही कुभा (काबुल) नदी से मिल जाती है। हमें मालूम था, कि कुभा कपिशा से आ रही है, लेकिन नदी के रास्ते हर जगह जाना सुगम नहीं था, इसलिये हमारा रास्ता अधिकतर छोटी-बड़ी पहाड़ियों के ऊपर या किनारे-किनारे था। अब फिर हम गरम जगह से ठण्डी जगह की ओर बढ़ रहे थे। पहाड़ वैसे ही नंगे थे, कहीं-कहीं गाँवों में जरूर खेत और बाग-बगीचे थे, लेकिन पहाड़ों पर कहीं ही कहीं मूज के झुरमुट दिखाई पड़ते थे। मुझे लगा, शायद यहीं मुँजवान् पर्वत था। एक बड़े डाँड़े को पार करने के बाद हम अपेक्षाकृत ठंडी जगह में पहुँच गये। अन्त में हम कपिशा की राजधानी (बेग्राम, कोहदामन) में पहुँच गये। कपिशा की द्राक्षा अपने स्वाद और सौन्दर्य में अद्भुत मानी जाती है। सूखी द्राक्षा मैंने देखी और खाई थी, लेकिन ताजी को देखने का यहीं मौका मिला। यद्यपि अभी द्राक्षालताओं में पत्तियाँ ही निकलने लगी थीं। यह उसके फलों का मौसिम नहीं था, लेकिन कपिशा वाले इन्हें सुरक्षित रखना जानते हैं। पकी हुई द्राक्षा को हाथ से तोड़कर बड़ी सावधानी से कच्ची मिट्टी के डब्बों में रखकर ऊपर से पिधान दे मिट्टी से चारों ओर लेप देते हैं, फिर उसे साल भर तक खोलने पर वैसे ही ताजा पाया जाता है। पांडुवर्ण, पारदर्शक दो-दो, ढाई-ढाई अंगुल के द्राक्षाफल देखने ही में सुन्दर नहीं, बल्कि खाने में भी बहुत मधुर थे।

नगरहार, कपिशा के राजा के अधीन है। कपिशा के उत्तर में हिमाच्छादित पर्वत-

1. जलालाबाद (नगरहार) से 5 मील दक्षिण।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रेणियाँ हैं, जिसे पार कर वाल्हीकों (वलख) की भूमि में पहुँचा जा सकता है। कपिशा क्यों नाम पड़ा, कपि—बानर के लाल-मिश्रित पीले रंग से इस भूमि का क्या सम्बन्ध ? इस तरह की बातें मेरे दिमाग में चक्कर काट रही थीं। लेकिन, जब मैंने कपिशावासी नर-नारियों को पिंगलवर्ण और पिंगलकेश देखा, तो मुझे विश्वास हो गया, कि शायद इसी के कारण लोगों को कपि और उनकी भूमि को कपिशा कहा जाने लगा। कपिशा अधिक ठंडी—यद्यपि हमारे गाँव और विहार जितनी नहीं—तथा प्रशस्त उपत्यका है। वीच से कुभा नदी वहती है, और चारों ओर पहाड़ चले गये हैं। राजधानी बहुत बड़ी नहीं है, शायद आधे योजन की हो। मकान यहाँ के बड़े सुन्दर हैं, जिनके बनाने में लकड़ी का भी काफी इस्तेमाल हुआ है। आसपास के पहाड़ जंगलों से सूने हैं। कपिशा द्राक्षालताओं की भूमि है। यहाँ गेहूँ, जौ और दूसरे बहुत प्रकार के अनाज पैदा होते हैं। अपनी केसर और घोड़ों के लिये भी कपिशा प्रसिद्ध है। लोग कुछ उद्दंड मालूम होते हैं। यहाँ के लोग उत्तर वाले हिमाच्छादित पर्वतों के पार के निवासी तुखारों से बहुत मिलते-जुलते हैं। पोशाक यद्यपि इनका चुना हुआ सुत्थन (सलवार) और ऊपर सिर से डालकर पहनने वाला जामा है। सिर पर यह लोग पगड़ी बाँधते हैं, लेकिन इनके शासक येथो की पोशाक भिन्न है। जैसी पोशाक मैंने पीछे कूची और दूसरे प्रदेशों में देखी, उसे देखने पर मुझे विश्वास हुआ, कि आगन्तुक शायद कूचियों के भाई-बन्द थे। सर्द मुल्क होने से हमारे उद्यानियों की तरह यहाँ के लोग भी ऊनी कपड़ों का अधिक व्यवहार करते हैं। कोमलता और सुन्दरता के लिये यहाँ के कम्बल (दुशाले) दूर-दूर तक मशहूर हैं। कपिशा में सैकडों विहार हैं। गाँव-गाँव में सुअलंकृत चैत्यों को देखकर पता लगता है, कि तथागत का धर्म यहाँ सर्वत्र सम्मानित है। लेकिन, यहाँ पाशुपत और दूसरे धर्म वाले भी रहते हैं, यह उनके मन्दिरों के देखने से जान पड़ता है।

कपिशा की राजधानी (वेग्राम) अब भी एक छोटे से राजा की राजधानी है। उसके आसपास के उजड़े घरों और बीथियों को देखने से मालूम होता है, कि पहले यह नगरी और भी विशाल रही होगी। बहुत-सी दीवारों के अब भी खड़े रहने से यह मालूम होता है, कि उसकी यह अवस्था बहुत पुराने काल में नहीं हुई। येथा (श्वेत हूण) लोगों के आक्रमण के समय कपिशा राजधानी का भारी ध्वंस हुआ, यह अब भी पुराने लोगों की स्मृति में है। महाराज मिहिरकुल का शासन यहाँ भी माना जाता है, यद्यपि प्रताप के क्षीण होने के कारण उसका उतना मान नहीं है। कपिशा में कई विहार हैं। महाराजा कनिष्क की अनेक राजधानियों में कपिशा भी एक थी, इसलिये यहाँ के राजविहार का आरम्भ उन्होंने किया होगा। उसके बारे में एक और भी परम्परा है। कनिष्क केवल हमारे देश के ही शासक नहीं थे, बल्कि उनका राज्य सीता के तट से पीत नदी के पास तक फैला हुआ था। किसी समय चीन से उनकी लड़ाई हुई, जिसमें जमानत (प्रतिभू) के तौर पर चीन के सम्राट ने अपने एक कुमार को कनिष्क के दरवार में भेजा। कनिष्क ने राजकुमार का बहुत सम्मान किया। ऋतुओं की अनुकूलता देख राजकुमार को गर्मियों में कपिशा, शरद में गंधार और जाड़ों में भारत में रहने के लिये महल बनवा दिये। खर्च के लिये एक प्रदेश दे दिया, जो कि आज भी चीनमुक्ति के नाम से प्रसिद्ध है। कपिशा के राजविहार को उसी राजकुमार का बनवाया बतलाया जाता है। राजकुमार ने अपने हरेक निवास-स्थान में एक-एक विहार बनवाये थे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कपिशा के राजविहार की दीवारों पर जो चित्र अंकित हैं, उनमें कुछ चीनी राजकुमारों जैसे मालूम होते हैं, उससे भी उस परम्परा की पुष्टि होती है। राजकुमार ने विहार के लिये बहुत से वृत्ति-बंधान किये थे। आज भी वर्षोपनायिका (आषाढ़ पूर्णिमा) और महाप्रावारणा (आश्विन पूर्णिमा) के महापर्वों के समय राजकुमार की ओर से भिक्षु-संघ को दान-सम्मान किया जाता है। उपोसथगार के पूर्वी दरवाजे की दक्षिण तरफ एक चहवच्चा खोदकर राजकुमार ने बहुत-सा धन यह लिखकर गाड़ दिया था कि खंड-मुंड परिष्कार और मरम्मत के लिये इस धन का उपयोग किया जाये। कथा सुनाने वाले स्थानीय भिक्षु ने अन्त में यह भी बतलाया कि कुछ समय पहले सीमान्त के एक राजा ने इस खजाने के ऊपर लोभ की नजर डाली और उसे लूटना चाहा। इस पर रक्षक देवता के मुकुट पर बनी तोते की तस्वीर ने अपने पंखों को फड़फड़ाकर चिल्लाना शुरू किया, जिससे धरती भी काँप उठी, राजा और उसके सिपाही वहीं बेहोश होकर गिर पड़े। जब होश आया, उन्होंने अपराध के लिये क्षमा प्रार्थना की। फिर वह अपने देश लौट गये।

कपिशा पारस्य, वाह्लीक, तुखार, जम्बु द्वीप सभी देशों के व्यापारियों और यात्रियों के समागम का स्थान है। यहाँ के राजविहार में चारों दिशा के भिक्षु दिखाई पड़ते हैं। इस कथा के सुनने वालों में भिक्षु बुद्धिल भी थे। उनकी उमर मुझसे तीन ही चार वर्ष बड़ी थी, किन्तु देखने में वह मेरी उमर से कम ही मालूम होते थे। वह कथा सुनते हुए मुस्कुरा रहे थे और अन्त में उन्होंने कहा—राजा और उसके सैनिकों को क्षमा माँगकर लौटने क्यों दिया? तोता मार देता, यही अच्छा होता। बुद्धिल की चमकती आँखों और तेजस्वी चेहरे को देखने से ही मालूम होता था, कि उनमें असाधारण प्रतिभा है। उनके बात करने का ढंग भी बड़ा आकर्षक था। उसके बाद ही हमने एक दूसरे के बारे में परिचय प्राप्त किया और फिर वह परिचय कपिशा में ही घनिष्ठता के रूप में परिणत हो गया। जीवन में मुझे बहुत से मित्र मिले, किन्तु बुद्धिल जैसा नहीं। वह कितने उदार और स्नेही पुरुष थे। अपने नाम के अनुरूप ही बुद्धि उनमें कूट-कूटकर भरी थी, जो कभी-कभी मुझे उतनी प्रिय न लगती थी। हमारे मतभेद के कितने ही स्थान थे, किन्तु मतभेद रखते हुये भी दो पुरुषों में ऐसा प्रेम हो सकता है। यदि बुद्धिल से मेरा सम्पर्क न हुआ होता, तो मैं इसे मानने के लिये तैयार न होता। उसके बाद तो हम एक-दूसरे की छाया की तरह रहने लगे। हम दोनों ही राजविहार के शालक में रहते थे। उस विहार के उत्तर के पहाड़ों में कुछ गुफाएँ हैं, जहाँ चीन-राजकुमार ध्यान किया करते थे। वहाँ पर भी एक यक्ष की रक्षा में उन्होंने खजाना गाड़ रक्खा था। बुद्धिल कहने लगे—तथागत के परिग्रहरहित भिक्षुधन के पीछे कितने मर रहे हैं! स्वप्न में भी किंवदन्तियों में भी उन्हें गड़ी हुई निधियाँ ही याद आती हैं। उन्होंने मेरे टोकने पर कहा—सिंहल से तुखार तक मैं घूमा हूँ। जहाँ देखो, यही कथा। यहाँ अमुक राजा ने खजाना गाड़कर देवता को बैठा दिया, वहाँ अमुक सेठ ने एक कोटि निधि रखकर किसी राक्षस को रख वाला बना दिया। कथा एक है, स्थान भिन्न-भिन्न हैं, और रखवालों में जरा-जरा परिवर्तन। बुद्धिल ने जब अपनी उमर 26 साल बतलाई, तो मुझे उनकी यात्रा पर आश्चर्य हुआ। इस पर उन्होंने कहा—मेरे गुरु धर्मलाभ बराबर घूमते ही रहते थे। वह अद्‌भुत विद्वान् थे,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लेकिन कहीं छह महीने से बेसी ठहरना उनके लिये असम्भव था। मैं इसे अपना सौभाग्य समझता हूँ, कि मैं बारह वर्ष की उमर से छाया की तरह उनके साथ रहा। तुम समझते होगे, इस यात्रा से मेरे अध्ययन में विघ्न पड़ा होगा। नहीं, मेरे उपाध्याय इसका बराबर ध्यान रखते थे, कि वैसा न होने पाये। उनके पास जो अपार विद्यानिधि थी, उस सबका अवगाहन करना मेरी शक्ति के बाहर था, लेकिन उन्हीं का प्रसाद है, जो मैं दो अक्षर पढ़ सका।

बुद्धिल को अपनी विद्या का अभिमान छू नहीं गया था, यह उनके दो अक्षर के कहने ही से मालूम होगा, लेकिन उनके एक-एक अक्षर में लाखों श्लोकों का ज्ञान भरा हुआ था, यह मुझे उनके सहवास से मालूम हुआ। उनके साथ के सात वर्ष के सहवास में यद्यपि मैंने और आचार्यों से भी कुछ-कुछ पढ़ा, लेकिन मेरे असली आचार्य बुद्धिल ही थे। एक तरह कह सकता हूँ, कि मैंने घनिष्ठता बढ़ाने के लिए ही और विद्वानों के पास पुस्तक के पन्ने उलटे, नहीं तो वह उन सभी विषयों को मुझे पढ़ा सकते थे, जिन्हें मैं पढ़ना चाहता था। वैसे फक्कड़ और हर वक्त पैर में चक्कर बाँधे हुये बुद्धिल जब किसी ऐसे विहार में पहुँच जाते, जहाँ दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह होता, तो वह महीनों के लिए वहाँ डट जाते और जब तक अपठित सारी पुस्तकें समाप्त नहीं कर लेते, वहाँ से हटने का नाम न लेते। उनमें दिखावा बिल्कुल नहीं था, न अपनी विद्या का, न अपनी बुद्धि का। मैंने अनेक बार उन्हें बड़े-बड़े तार्किकों को चुटकी बजाते-बजाते चुप करते देखा, लेकिन उसके बाद ही अपने प्रतिद्वन्द्वी के साथ वह इतने नम्र हो जाते, इतना विनय दिखलाते, कि मालूम होता, वह उनके शिष्य हैं। इस प्रकार पराजित होने वाले को वह अपने स्नेहसूत्र से हमेशा के लिये बाँध लेते।

कपिशा में जहाँ-जहाँ भी घूमना होता, अब हम दोनों साथ-साथ जाते। वर्षावास के लिए हम यहीं ठहर गये। हमारे उद्यान के तीर्थयात्री उपासक-उपासिका पहले ही लौट चुके थे। साथ आये भिक्षुओं में से कोई भी नहीं रह गया था। एक दिन राजकुमार की ध्यानगुफा से आध कोस पश्चिम में अवस्थित अवलोकितेश्वर की मूर्ति के दर्शन के लिए गये। मूर्ति बड़ी सुन्दर है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। राजधानी से 5-6 कोस दक्षिण-पूर्व में राहुल-विहार भी एक बड़ा विहार है, लेकिन यह बोधिसत्त्व सिद्धार्थ के पुत्र राहुल के नाम पर नहीं बना है, बल्कि इसका बनाने वाला राहुल नामक एक राजामात्य था। राजधानी से 6 कोस दक्षिण स्फीतफल नाम का एक नगर है। इसके बारे में लोगों का विश्वास है कि जब सभी जगह भूकम्प और भूपात होता है, तब भी यहाँ की भूमि पर उसका जरा भी प्रभाव नहीं पड़ता। इस नगर के दक्षिण में 4-5 कोस पर बड़ा ही ऊँचा तथा जबर्दस्त खड्डों वाला अरुण पर्वत है, जिसके बारे में कहावत है, कि वह शुनासीर पर्वत की ओर झाँकता प्रतिवर्ष सैकड़ों हाथ ऊँचा उठते फिर एकाएक दब जाता है। कथा कहने वाले ने बतलाया, कि शुनासीर (शुनादेवता) एक बार कहीं से आ रहा था। वह इस पहाड़ पर रुकना चाहता था। पहाड़ के देवता ने समझा, कहीं यह आगन्तुक हमारे ऊपर हाथ न साफ करे, इसलिए वह अपने शरीर को हिलाने लगा। इस पर शुनादेवता ने कहा—"तुम यह हड़कम्प इसलिये मचा रहे हो कि मैं यहाँ विश्राम न करूँ। यदि तुमने जरा-सा भी मेरा आतिथ्य किया होता, तो मैं तुम्हें धन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से मालामाल कर देता। अब मैं चौकूट देश में शुनाशिला पर्वत पर जाता हूँ जहाँ राजा और राजामात्य प्रतिवर्ष मेरी पूजा करेंगे। उस समय मेरे अधीन हो दर्शक बनकर तुम वहाँ रहोगे।" कहते हैं, इसीलिए अरुण पर्वत प्रतिवर्ष शुनादेवता की पूजा के समय खड़ा होकर उसकी ओर देखता है और फिर दब जाता है।

बुद्धिल इस तरह की कथाओं को बड़े चाव से सुनते थे। उस वक्त मालूम होता था कि इन बातों पर उनका विश्वास है। वह कथाओं की रोचकता को और बढ़ाते हुए कभी-कभी दोहराते थे, यद्यपि उनका विश्वास जरा भर भी नहीं था। पहाड़ है, उसमें न कोई देवता है और न घटने-बढ़ने की शक्ति। जनसाधारण के लिए ऐसी कथाएँ प्रिय होती हैं, इसलिए उनके गढ़ने वालों की कमी नहीं होती। ये हमारे निर्लोभी कहे जाने वाले भिक्षु उन्हें दोहराकर भोले-भाले उपासकों और उपासिकाओं को मुग्ध कर उनसे कुछ लेने कीं कोशिश करते हैं। इन कथाओं के लिए बुद्धिल को यदि किसी के ऊपर क्रोध आता था, तो वह थे भिक्षु तया पुरोहित। कपिशा से पश्चिमोत्तर में वही महान् हिमवान् है जो हमारे उद्यान के उत्तर दिखलाई पड़ता है और जिसे हमने तथागत की जन्मनगरी कपिलवस्तु के उत्तर में देखा। कपिशा के उत्तर एक बड़ा सरोवर है। कहते हैं, उस सरोवर में एक नागराज रहता है। यह नागराज कनिष्क राजा के समय बड़ा उपद्रव करता था, यद्यपि पहले वह बड़ा भलेमानुस था। गंधार देश में किसी अर्हत् भिक्षु के एक श्रामणेर (शिष्य के) मन में कामना हुई कि मैं मर कर नागराज होऊँ। वह बड़ा क्रोधी स्वभाव का तरुण था। मरने के बाद नागयोनि में उसका जन्म हुआ और उसका क्रोधी स्वभाव उसके साथ-साथ था। वह इसी सरोवर में जाकर पैदा हुआ। पहले का नागराज उसे क्यों पसन्द आने लगा। वह उसे मारकर स्वयं लोगों का राजा बन गया। अपने स्वभाव के अनुसार समय-समय पर उत्पात मचाता। कनिष्क राजा के समय भी उसने ऐसा ही किया। उसने इतना पानी बरसाया कि बहुत से वृक्ष-वनस्पति उखड़कर बह गये, पहाड़ की जड़ में बना विहार ध्वस्त हो गया। खबर सुनकर कनिष्क राजा ने कहा कि हम इस सरोवर को पाटकर सुखा देंगे। उसने इसके लिए लाखों आदमी लगा दिये। नागराज की अक्ल अब ठिकाने आई। सरोवर के पानी के सूख जाने पर तो उसका घर ही उजड़ जाता। उसने बूढ़े ब्राह्मण का रूप ले राजा के पास जा हाथ जोड़कर बहुत प्रार्थना की कि अब मैं ऐसा कभी नहीं करूँगा। कनिष्क ने उससे प्रतिज्ञा करवाई, विहार को फिर से बनवा वहाँ एक बड़ा स्तूप स्थापित कर दिया। विहार में कह दिया कि एक आदमी बराबर सरोवर की ओर देखता रहे। अगर वहाँ काले बादल उठते दिखाई पड़ें, तो घन्टा बजा दे। तब से अब तक यही किया जाता है। अपने स्वाभाविक क्रोध के कारण जब कभी नागराज काले बादलों को उठाता है, तो घन्टा बजा दिया जाता है और कनिष्क के साथ की हुई प्रतिज्ञा को याद करके उसका गुस्सा ठंडा हो जाता है। यहाँ के स्तूप में भी तथागत के मांस और अस्थिधातु के रक्खे होने के बारे में बतलाया जाता है।

एक दिन हम राजधानी से पश्चिमोत्तर नदी के दक्षिण वाले किनारे पर अवस्थित पुराने राजविहारों में भी गये, जहाँ डेढ़ अंगुल लम्बा शाक्य मुनि का दूध का दाँत है। इससे दक्षिण-पूर्व एक और पुराना राजविहार है, जहाँ पर डेढ़ अंगुल चौड़ी पांडुवर्ण की तथागत की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उष्णीष की अस्थिधातु है, जिसमें केशों के छिद्र भी मौजूद हैं। यहीं डेढ़ बालिस्त लम्बा गह बैंगनी रंग का तथागत का एक केश भी है, जो घुँघराला होकर एक अंगुल से भी कम मालूम होता है। उपोसथ के दिनों में राजा और राजामात्य भी उसकी पूजा लिए आते हैं। इस विहार के दक्षिण-पश्चिम में पुराना रानीविहार है, जिसका 60 हाथ ऊँचे सोने के मुलम्मे वाला ताँबे का शिखर है। उसमें भी बुद्ध की धातुओं के होने की बात कही जाती है। बुद्धिल कहीं जाने के लिए मुझसे ज्यादा उत्साह रखते थे, यद्यपि साथ ही यह भी कहते थे कि अभी तो तथागत के निर्वाण को हजार ही वर्ष बीते हैं। हजार-डेढ़ हजार वर्ष और बीतने दीजिए, फिर सारी पृथ्वी पर सारे स्तूपों में इतने केश और अस्थिधातु जमा हो जायेंगे कि मध्यमंडली की सारी भूमि को उनसे ढाँका जा सकता है।

राजधानी के दक्षिण-पश्चिम पीलुसार पहाड़ है। पहाड़ों में हाथी (पीलु) या दूसरे तरह की आकृतियाँ बन ही जाती हैं और उन्हीं के अनुसार लोग उन्हें नाम दे देते हैं। कहते हैं इस पहाड़ के देवता का रूप हाथी-जैसा है। जब लोकनायक पृथ्वी पर थे, तो इस पीलु देवता ने उन्हें अपने यहाँ निमंत्रित किया। भगवान् अपने बारह सौ अर्हतों के साथ इस पहाड़ पर आये। स्वागत कर एक बड़ी चौरस शिला पर देवता ने उनका स्वागत और भिक्षादान किया। इसी शिला के ऊपर पीछे अशोक राजा ने 60 हाथ ऊँचा स्तूप बनवाया। उसमें बुद्धधातु है। इस स्तूप के उत्तर और एक चट्टान की जड़ में एक नागनिर्झर है। यहीं तथागत और उनके बारह सौ श्रावकों ने दातवन कर देवता के भोजन को स्वीकार किया। दातुवनों को उन्होंने इसी जगह फेंक दिया, जो पीछे वृक्ष होकर अब एक घने जङ्गल के रूप में परिणत हो गईं।

वर्षा का अन्त आया। महाप्रावारणा के लिए राजधानी ही नहीं, सारी कपिशा के निवासियों ने उत्सव और दान का वड़ा आयोजन किया। राजविहार में चीनी राजकुमार के पाँच शताब्दी पहले वाले दान को भी दोहराया गया। उस दिन सवेरे ही से बाजा-गाजा, नृत्य-गीत के साथ शोभायात्रा करते दूर-दूर के ग्रामों और नगरों के नर-नारी तथा कपिशा-निवासी राजविहार में आये। मध्याह्न को तरह-तरह के स्वादिष्ट भोजनों से भिक्षुओं को तृप्त किया गया। यह ऐसा समय है, जब कि कपिशा में खेतों की फसल कटकर घरों में आ जाती है और द्राक्षा, उदुम्बर आदि तरह-तरह के मधुर फल ताजे पककर तैयार होते हैं। द्राक्षा-गुच्छकों का विहार में ढेर लग जाता है। गाँवों और शहरों में भी घरों के ऊपर सछिद्र दीवारें खड़ी होती हैं, जिनमें इन गुच्छों को सूखने के लिए लटका दिया जाता है। कपिशा की सूखी द्राक्षा (मुनक्का) की बहुत दूर-दूर तक माँग है। ताजी द्राक्षा दूर भेजना सम्भव नहीं है, नहीं तो उसकी भी माँग कम नहीं होती।

महाप्रावारणा के खतम होते ही हम दोनों ने यहाँ से गन्धार और कश्मीर जाने का निश्चय किया था।

× × ×

बुद्धिल का मिलना मेरे लिए बहुत अच्छा रहा। हो सकता है और भी ऐसे हों, किन्तु हम पहाड़ के लोग तो सचमुच ही कूपमंडूक होते हैं। पीढ़ियों से हम गर्मी के मारे पहाड़ से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नीचे जाने से डरते आये हैं। हमारे यहाँ ऐसे नर-नारियों की संख्या बहुत मिलेगी, जो यह नहीं जान सकते, कि धरती पहाड़ों के बिना बिल्कुल समतल भी हो सकती है। यात्रा की उमङ्ग, दूर-दूर देशों को देखने की लालसा मेरे भीतर उत्कट थी, तो भी मैं यह मानूँगा, कि बचपन से ही जो बातें सुन रक्खी थीं, उनके कारण भीतर से मेरा दिल बहुत हिचकिचाता था। क्या सचमुच अंगारे जैसी झुलसा देने वाली हवा में रहना पड़ेगा, बरसात के कीड़े-मकोड़ों की तरह विषैले साँप-विच्छुओं के भीतर से गुजरना पड़ेगा? मरने का भय मुझे नहीं था, लेकिन मैं घुल-घुल के मरना नहीं चाहता था और साथ ही जीवन को इतना तुच्छ भी नहीं समझता था, कि उसे किसी तरह फेंकने के लिए तैयार होता। बुद्धिल उज्जयिनी के रहने वाले थे। उनसे बढ़कर मध्यमंडल के बारे में कौन बतला सकता था? मध्यमंडल में शायद ही कोई बड़ा नगर, बड़ा विहार हो, जहाँ वह अपने उपाध्याय के साथ न घूमे हों। पहले मुझे अपनी यात्रा अँधेरे में कूदने जैसी थी, लेकिन अब मेरे ऐसे साथी के कारण वह बिल्कुल दिन-जैसी प्रकाशमय मालूम होती थी। हम कपिशा से पास के देश गंधार में जाने वाले थे। वर्षा के तीन महीनों में एक साथ रहकर यात्रा के बारे में हमने बहुत-सी बातें सोच डाली थीं। एक-दूसरे के स्वभाव से इतने परिचित हो गये थे कि हम अपनी अचल मित्रता पर विश्वास कर सकते थे। मैं बतला चुका हूँ, कि बुद्धिल अनेक शास्त्रों के पारंगत पंडित थे। मैं उनके सामने भी अपनी विद्वत्ता को बिल्कुल तुच्छ समझता था। जो दूसरे के सामने भी अपनी विद्वता को प्रकाशित नहीं करना चाहता, वह अपने सुहृद और वंशवद शिष्य के सामने क्यों ऐसा करने लगा।

कपिशा से फिर हम उसी रास्ते लौट कर नगरहार (जलालाबाद) पहुँचे। नगरहार से हमारा रास्ता पूर्व की ओर पहाड़ों पहाड़ था। वहाँ से 20 योजन चलने के बाद हम गंधार की सीमा के भीतर घुसे। इसकी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) उद्यानियों के लिए अपरिचित नहीं है। वज्रासन (बोधगया) और जैतवन जाना सबके भाग्य की बात नहीं, परन्तु पुरुषपुर जैसा पुनीत तीर्थ पड़ोस के देश में होने के कारण वहाँ की यात्रा करने से कोई अपने को वंचित नहीं करना चाहता। नगरी किसी समय बहुत बड़ी थी; यह दूर-दूर तक गिरे हुये मकानों और उनकी ऊँची भूमि से मालूम होता है। किसी समय जहाँ शतसहस्र परिवार रहते होंगे, अब उनका दशांश भी नहीं रह गया। कनिष्क धर्मराज की यही राजधानी थी। तथागत के शासन के लिये वह द्वितीय अशोक थे। अब भी उनके बनवाये अद्भुत विहार और चैत्य मौजूद हैं। पुरुषपुर के आस-पास की जमीन समतल है, यद्यपि दूर-दूर पहाड़ दिखाई पड़ते हैं। नगरहार से हम स्वयं एक पहाड़ी दर्रे (खैबर) से होकर आये, जिसमें कितने ही दुर्ग बने हुये हैं। शत्रु को रोकने के लिये यह सँकरे पहाड़ी दर्रे बड़े सहायक होते हैं, लेकिन क्या केवल पहाड़ी दर्रों या कठिन दुर्गों के बल पर कोई देश अपनी रक्षा कर सका है? आसपास की भूमि बहुत उर्वर है। यहाँ तरह-तरह के फल-फूल होते हैं, ऊख और अपनी शरकरा (सक्कर) के लिये पुरुषपुर बहुत मशहूर है।

हमारे लिये तो पुरुषपुर और भी ज्यादा श्रद्धाभाजन है। इसने एक से एक महाविद्वान् और महापुरुष पैदा किये। आर्य असंग यहीं पैदा हुये थे। उनके अनुज वसुबन्धु की बाल्य-क्रीड़ाभूमि यही पुरुषपुर है। धर्मत्रात, मनोरथ और पार्श्व जैसे महान् धर्मनायक को जन्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देने का गौरव इसी पुरी को है। बुद्धिल वैसे तो मूढ़ श्रद्धा न रहते भी हरेक प्राचीन विहार और स्थान को देखने के लिये लालायित रहते, किन्तु इन महान् आचार्यों के जन्म स्थानों, उनके पितृगृहों के दर्शन के लिये जाते समय उनका हृदय श्रद्धा से परिपूर्ण हो जाता था। दिग्नाग और उनके गुरु वसुबन्धु के प्रति उनके हृदय में अपार सम्मान था। दिग्नाग के प्रमाणशास्त्र का अवगाहन करते समय ही उनके हृदय में यह श्रद्धा पैदा हुई थी। जिस घर में असंग, वसुबन्धु और विरंचि तीनों सहोदर पैदा हुये थे, अब वह खंडहर पड़ा हुआ था। कुछ ब्राह्मण-परिवार अब भी अभिमान के साथ कहते थे : हमारे ही परिवार में ये तीनों आचार्य पैदा हुये थे। गृहस्थों के घरों की तरह बहुत से विहारों और चैत्यों की भी वही अवस्था है। उनमें रहने वाले भिक्षुओं की संख्या कम हो गई है, और उससे भी कम है उनकी आय, जिसके कारण वह धर्मस्थानों को पहली अवस्था में नहीं रख सकते। कनिष्क के समय नगर कितना भव्य रहा होगा ?

राजधानी से डेढ़ कोस दक्षिण-पूर्व 60 हाथ के करीब ऊँचा और बहुत दूर तक फैला एक पवित्र बोधि (पीपल) वृक्ष अपनी घानी छाया और हरी पत्तियों से बतलाता है, कि उसको पुरुषपुर के भाग्य के बन्धन में नहीं पड़ना पड़ा। लेकिन, उसके पास की प्रतिमाएँ, वही बात नहीं कह सकतीं। बोधिवृक्ष की चारों तरफ ध्यानावस्थित चार बुद्ध-मूर्तियाँ बैठी हुई हैं। कहते हैं, इस वृक्ष ने तथागत को अपनी शीतल छाया प्रदान की थी। इसी वृक्ष के नीचे दक्षिणाभिमुख बैठकर तथागत ने आनन्द से कहा था—मेरे निर्वाण के चार सौ वर्ष बाद कनिष्क राजा होगा, जो इस जगह से थोड़ा दक्षिण एक स्तूप बना उसमें मेरी धातुएँ स्थापित करेगा। बुद्धिल का कहना था, कि तथागत ने मध्यमंडल से बाहर कहीं पैर नहीं रक्खा, और उनके उड़कर जाने की बात कोरी गप्प है। वृक्ष के दक्षिण तरफ कनिष्क द्वारा निर्मित महान् स्तूप है। कनिष्क सारे जम्बूद्वीप के चक्रवर्ती थे। उनका शकवंश बाहर से अभी-अभी आया था, और बल में अपरबल होने पर भी शिक्षा-दीक्षा में बहुत पीछे था। कनिष्क की पाषाण-मूर्तियां मैंने एक से अधिक देखी हैं। हमारे समय में भी उद्यान और दूसरी जगहों में शक मौजूद हैं। लेकिन, अब उनमें औरों से कोई भेद नहीं मालूम होता। बुद्धिल स्वयं उज्जयिनी के शकवंश में पैदा हुये। वह भी बतलाते थे : रंग में औरों से अधिक गोरा होने के सिवाय हम दूसरे ब्राह्मण-क्षत्रियों से कोई भेद नहीं रखते। हमारे सामन्त वंशों का सम्बन्ध तो अब क्षत्रियों से इतना हो गया है, कि उन्हें उसी वर्ण का कहा जा सकता है। कनिष्क की प्रतिमाओं में वही घुटने तक का बड़ा जूता है, जिसे सीता की उपत्यका में और पीछे घुमन्तुओं के देश में भी मैंने देखा। पोशाक और टोपी भी उसी तरह की है।

कनिष्क पहले तथागत के धर्म को नहीं मानते थे। एक बार वह यहीं जंगल में शिकार करने आये। एक खरगोश को देखकर उसके पीछे उन्होंने घोड़ा डाल दिया। खरगोश अन्तर्धान हो गया। यहीं वृक्षों के नीचे राजा ने एक चरवाहे लड़के को देखा, जिसने दो हाथ ऊँचा एक छोटा-सा स्तूप बना रक्खा था। राजा के पूछने पर लड़के ने तथागत की भविष्यद्वाणी को दोहराकर कहा, कि, तुम्हीं वह राजा हो। जब उस महान् स्तूप की परिक्रमा करते हुये मैंने यह कथा सुनी, तो मेरे हृदय में बड़ी श्रद्धा जाग उठी। चरवाहे लड़के का दो हाथ का स्तूप पास के कितने सौ हाथ ऊँची चार मंजिलों का स्तूप ढाई सौ हाथ से भी ऊँचा अद्भुत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शिल्पकला से मंडित आज खड़ा है। लड़के के छोटे स्तूप के चारों ओर कनिष्क ने अपने स्तूप को बनवाकर उसे उसके गर्भ में छिपा देना चाहा, लेकिन लड़के का स्तूप हमेशा उससे डेढ़ हाथ ऊपर निकला रहता था। पाँच सौ हाथ के घेरे में बना यह स्तूप चार मंजिल और ढाई सौ हाथ ऊँचा बन गया। तो भी दक्षिण-पूर्व वाले कोने में स्तूप की जड़ में आधा लघु स्तूप फिर प्रकट हो गया। राजा ने नाराज होकर अपने स्तूप को हटवा दिया, छोटे स्तूप को ढाँकने की कोशिश छोड़ दी और उसके पास अपना बड़ा स्तूप[1] बनवाया। उसके ऊपर सुनहले ताँबे के 15 छत्र और उसमें भगवान् की धातु स्थापित की। उसके महास्तूप के पूर्व तरफ पत्थर की सीढ़ियों की दक्षिण ओर डेढ़ और तीन हाथ ऊँचे पत्थर में महास्तूप के दो छोटे-छोटे नमूने कटे हुये हैं। यहाँ तथागत की दो प्रतिमाएँ भी हैं, जिनमें से एक तीन हाथ और दूसरी चार हाथ ऊँची है। दोनों ही बोधिवृक्ष के नीचे वज्र आसन मारे बैठी हैं। महास्तूप के दक्षिणी पार्श्व पर 10 हाथ ऊँची तथागत की प्रतिमा चित्रित है। यह महास्तूप के दक्षिण-पूर्व सौ कदम पर 12 हाथ ऊँची सफेद पाषाण की बुद्ध-प्रतिमा उत्तर की ओर मुँह किये खड़ी है। प्रतिमा अद्भुत है। महास्तूप के दोनों तरफ पास-पास सौ के करीब छोटे-छोटे स्तूप तथा बुद्ध की कितनी ही सुन्दर मूर्तियाँ स्थापित हैं। इस महास्तूप के कितने ही चमत्कार सुनने में आते हैं। अर्धरात्रि में गंधर्व मधुर कंठ से स्तुति करते सुने जाते हैं, देवता पूजा और प्रदक्षिणा करते हैं। यह भी भविष्यत्वाणी सुनी जाती है, कि जब यह स्तूप सात बार जलकर फिर नया बनेगा, तो तथागत का धर्म लुप्त हो जायेगा। तीन बार स्तूप के जलने और बनने की बात सुनकर बुद्धिल ने कहा : "अब शायद तीन ही चार सौ वर्ष और तथागत का शासन रहेगा, लेकिन मैं भविष्यद्वाणी करता हूँ कि जो तथागत का, शासन लुप्त होने वाला है, वह यही मूढ़ों का धर्म है।" तथागत ने जो अनात्मवाद, प्रतीत्यसमुत्पाद, सर्वानित्यतावाद की दृष्टि मानव को दी है, वह तभी लुप्त हो सकती है, जब संसार में केवल मूढ़ ही मूढ़ रह जायँ और ज्ञान तथा बुद्धि का प्रकाश कहीं देखने में न आये।

महास्तूप की पश्चिम तरफ कनिष्क ने कई मंजिलों का एक विहार बनवाया था। विहार की इमारत स्तूप की तरह ठोस नहीं थी, इसलिये वह बड़ी भग्न अवस्था में है। अब भी उसमें कितने ही सर्वास्तिवादी भिक्षु रहते हैं। कनिष्क ने अपने महाविहार को बनवाकर उसकी तीसरी मंजिल में भदन्त पार्श्व का निवास-स्थान तैयार किया था, जो अब गिर गया है। पार्श्व कनिष्क के गुरु थे, उसी तरह, जिस तरह अशोक धर्मराज के मौद्गलि पुत्र तिष्य (उपगुप्त)। पार्श्व के रहने के कोष्टक से पूर्व ओर एक पुराना घर है, जिसमें रहते हुये आचार्य वसुबन्धु ने अपने "अभिधर्मकोश" को रचा था। इस कोष्टक के ऊपर विशेष चिह्न बना दिया गया है, जिसमें लोगों को मालूम हो, कि तथागत की देशना का शुद्ध संक्षेपभूत यह शास्त्र इसी पुनीत स्थान में निर्मित हुआ था। वसुबन्धु के कोष्टक से 50 कदम दक्षिण दो-मंजिला एक दूसरा घर है, जिसमें रहते हुये आचार्य मनोरथ ने अपने ग्रन्थ रचे थे। आचार्य मनोरथ आचार्य वसुबन्धु के गुरु थे। गुप्त राजा उनके बहुत भक्त थे। उन्हीं के कारण वसुबन्धु भी उनकी राजधानी में जाकर सम्मानित हुये थे। कनिष्क-विहार में भगवान् का भिक्षापात्र

1. कनिष्क चैत्य पेशावर के वर्तमान हजार खत्री कारवाँ सराँय स्थान पर था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रक्खा गया था। राजा मिहिरकुल के मन में बुद्ध-शासन के प्रति द्रोह पैदा हो गया था। उसने बहुत से बौद्ध-विहार ध्वस्त कर दिये, इस भिक्षापात्र को भी तोड़ दिया। उसे फिर जोड़ दिया गया। राजा फिर न कहीं उस पर हाथ उठाये, इसलिये उसकी पहुँच से बाहर रखने के लिये उसे बाह्लीक देश में ले जाया गया।

कनिष्क ने अपने विशाल चैत्य के निर्माण में सुन्दर कारुकार्य वाले काष्टों का बहुत उपयोग किया। चैत्य (स्तूप) के ऊपर चढ़ने के लिये एक सीढ़ी बनवाई जिसके ऊपर लकड़ी की सुन्दर छत थी। सब मिलाकर यह चैत्य तेरह मंजिलों वाला है। इसका लोह-स्तम्भ 56 हाथ ऊँचा है, जिसमें 15 वृत्ताकार सुनहले छत्र लगे हुये हैं। स्तम्भ लिये हुये सारे स्तूप की ऊँचाई 500 हाथ के करीब है। स्तूप के ऊपर तीन बार बिजली पड़ी, लेकिन उसका फिर से प्रतिसंस्कार कर दिया गया। स्तूप के चारों तरफ चार आसन बने हुये हैं, जिन पर पूजा की जाती है। छत्रों से जो क्षुद्र घंटिकाएँ लटकती हैं, उन पर प्रातःकाल की मन्द वायु जब लगती है, तो घंटियों से बड़ी मधुर ध्वनि निकलती है।

महाचैत्य के दक्षिण 50 कदम पर 18 हाथ ऊँचा एक गोलाकार पाषाण-चैत्य है। यह भी बड़ा सुन्दर है।

पुष्कलावती[1]—कनिष्क-चैत्य से 2 योजन पर कुभा नदी के पार जाने पर हमें यह पुर मिला। यह पुरुषपुर से भी पुराना नगर है। गन्धार के कितने ही नगरों की तरह इसकी स्थिति भी दयनीय है। पश्चिमी नगरद्वार के बाहर महेश्वर का एक विशाल मन्दिर है, जिसमें पशुपति की मुखलिंग प्रतिमा स्थापित है। नगर के पूर्व ओर अशोक का बनवाया धर्मराजि का स्तूप है। यहीं पर वसुमित्र ने "अभिधर्म-प्रकरणपाद" शास्त्र को रचा था। नगर से एक कोस पर एक पुराना विहार टूटी-फूटी अवस्था में है, जिसमें कुछ सर्वास्तिवादी भिक्षु रहते हैं। यहीं पर आचार्य धर्मत्रात ने अपने अभिधर्म-सम्बन्धी ग्रंथ का निर्माण किया था। इसके पास में 60 हाथ ऊँचा अशोक-स्तूप है, जिसमें लकड़ी और पत्थर पर बड़ी ही सुन्दर मूर्तियाँ और फूल-पत्ते उत्कीर्ण हैं। कहा जाता है, पूर्व शन्म में शाक्यमुनि हजार बार राजा के रूप में यहाँ पैदा हुये थे, और प्रत्येक बार उन्होंने अपनी आँखों का दान दिया था। इसके पास और भी तथागत के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले कितने ही स्थान हैं। पूर्व में दो पाषाण-स्तूप हैं। इससे 6 कोस उत्तर-पश्चिम में एक स्तूप है, जहाँ पर कि भगवान् ने यक्षिणी हारीति का दमन किया था। आज भी यहाँ लोग हारीति की पूजा करते हैं। हारीति पहले मगध में राजगृह नगर की एक यक्षिणी थी, जिसका ब्याह गंधार के यक्ष से हुआ था। पहले हारीतिका का नाम नन्दा था, लेकिन उसे बच्चों को चुराकर खाने की आदर पड़ गई। लोगों को जब मालूम हुआ, तो उन्होंने नन्दा का नाम बदलकर हारीति (चोर) कर दिया। तथागत को जब यह मालूम हुआ, तो उन्होंने अपने भिक्षापात्र में हारीति के ही एक छोटे बच्चे पिंगल को छिपा लिया और उसे उसके सामने रख दिया। यक्षिणी बेचारी अपने बच्चे को कैसे खाये?

1. वर्तमानहस्त नगर (अष्टनगर) चारसद्दा, पेशावर से 18 मील उत्तर स्वात-पंचकोश की सम्मिलित धार लंडी और काबुल नदी के संगम के नजदीक अवस्थित है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस पर तथागत ने उपदेश दिया : सबको अपने बच्चे इसी तरह प्यारे होते हैं। हारीति ने तबसे प्रतिज्ञा की, कि अब मैं फिर कभी बच्चों को नहीं खाऊँगी। उसके बाद वह बच्चों की भक्षिका की जगह रक्षिका बन गई।

जातकों और अवदानों में वर्णित कितनी ही घटनाओं के स्थान गंधार में मौजूद हैं। मेरे मित्र का कहना था, कि गन्धार कनिष्क के पहले से ही बुद्ध के शासन का एक जबर्दस्त गढ़ था, इसीलिये यहाँ पर पुरानी कथाओं के हरेक स्थान को निश्चित करने की कोशिश की गई। हारीतिचैत्य से 2 योजन उत्तर वह स्थान है, जहाँ तथागत पूर्वजन्म में शाम के रूप में अपने अन्धे माता-पिता की सेवा करते मृग के भ्रम से एक राजा के बाणों द्वारा निहत हुये। दशरथ ने भी श्रवणकुमार को इसी तरह अपने अन्धे माता-पिता की सेवा करते मारा था, लेकिन श्रवण मरे ही रह गये, जबकि शाम इन्द्र की कृपा से पुनरुज्जीवित हो गये।[1]

शाम-स्तूप से 8 योजन दक्षिण-पूर्व जाने पर हमें उरसा नगरी मिली। नगर के उत्तर ओर का स्तूप उसी जगह बना है, जहाँ कि तथागत ने अपने पूर्वजन्म में सुदान वैश्वन्तर राजकुमार के रूप में जन्म लिया था। इस स्तूप के पास वाले विहार में कितने ही सर्वास्तिवादी भिक्षु रहते हैं। आचार्य ईश्वर ने यहाँ रहकर अपने शास्त्र की रचना की थी। नगर के दक्षिणी द्वार के बाहर अशोक-स्तम्भ उस स्थान को बतलाता है, जहाँ पर ब्राह्मण ने सर्वस्व-दायी वैश्वन्तर से उसके पुत्र और पुत्री को माँगकर बेंच दिया। वैश्वन्तर ने जिस दन्तालोक पर्वत पर अपने प्रिय पुत्र और कन्या का महादान किया था, वहाँ अशोक ने एक स्तूप बनवा दिया था। इसी स्तूप के पास ब्राह्मण, राजपुत्र और राजपुत्री को बड़ी निष्ठुरता से पीटता था। उनका रक्त इसी जगह बहा था। आज भी यहाँ के वनस्पति लाल रंग के होते हैं। बगल की चट्टान में वह गुहा भी मौजूद है, जिनमें वैश्वन्तर और उनकी रानी ध्यान-पूजा में रत रहते थे। यहीं पास में एक श्रृंग (ऋष्यश्रृंग) का आश्रम था, जिसे मोहकर उसके कन्धे पर चढ़ एक गणिका अपनी भारी विजय को दिखलाती नगर में गई थी।

पाणिनि के व्याकरण को मैंने भी पढ़ा था और बुद्धिल का तो उस पर विशेष अधिकार था। जब उन्होंने बतलाया, कि यहाँ से 9 योजन पर ही दाक्षी-पुत्र पाणिनि का जन्म-स्थान शलातुर है, तो मेरी उसे देखने की उत्कट इच्छा हुई। उरसा से 2 योजन उत्तर-पूर्व हम एक बड़े पर्वत के पास गये, जहाँ महेश्वर की पत्नी (गौरी) का एक विशाल देवालय है। कन्धार, कपिशा और कश्मीर में पाशुपत भी बड़ी संख्या में रहते हैं। वह इस मंदिर को बहुत पवित्र मानते हैं। भस्मधारी पाशुपत परिव्राजकों का यहाँ एक सुन्दर मठ है। देवी के मंदिर से 6 योजन दक्षिण-पूर्व जाने पर उद्‌भांड (ओहिन्द) नगरी मिली, जिसके दक्षिण ओर सिन्धु नदी बहती है। गंधार के नगरों में यही फला-फूला दिखाई पड़ता था। शायद इसका कारण सिन्धु के घाट पर, वणिक-सार्थों के रास्ते में होना होगा।

उद्‌भांड (ओहिन्द) से 1 योजन से कम ही उत्तर-पश्चिम शलातुर गाँव है। पाणिनि का व्याकरण आज हमारे लिये कल्पवृक्ष है। हमने उस स्थान को बड़े भक्तिभाव से देखा;

1. वैश्वन्तर जातक में यह करुण कहानी वर्णित है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जहाँ यह महान् आचार्य पैदा हुये थे। शलातुर से लौटकर हम फिर उद्भांड चले आये। सिन्ध नदी यहाँ पर एक कोस के करीब चौड़ी है। इसका पानी बड़ा ही शुद्ध और नीले रंग का है, यद्यपि वर्षा में उसका यही रंग नहीं होगा। सिन्धु नदी पार हो 3 दिन चलकर तक्ष-शिला (शाहजीदीढेरी) पहुँचे। हमारा रास्ता अधिकतर पूर्व की ओर था। तक्षशिला पहले गंधार का ही एक भाग थी। अब भी मिहिरकुल का शासन पुरुषपुर और तक्षशिला दोनों पर था। यथा (श्वेत हूण) लोगों के आक्रमण के पहले यह नगरी बड़ी समृद्ध थी। भूमि बहुत उर्वर और लोग भी बहुत अच्छे हैं। येथों ने इसे लूटकर जो बरबाद किया, उससे फिर यह सँभल नहीं सकी।

यहाँ पर धर्मराज अशोक और धर्मराज कनिष्क दोनों के बनवाये विशाल स्तूप और अनेक विहार हैं। नगर से डेढ़ कोस उत्तर अशोक का महाचैत्य है, जिसकी अद्भुत शक्ति के बारे में कितनी ही कथाएँ मशहूर हैं। इसी जगह तथागत ने अपने पूर्वजन्म में अपना सिर काट (तक्ष) कर हजार जन्मों तक दान दिया था, जिसके कारण इसका नाम तक्षशिरा या तक्षशिला पड़ा। अशोक के बनवाये पुराने विहार की पहली स्थिति नहीं है। ध्वस्तप्राय दूसरे विहारों में कुछ थोड़े से भिक्षु रहते हैं। सौत्रांतिक आचार्य कुमारलात ने यहीं पर रहकर अपने शास्त्र को रचा था। राजधानी के दक्षिण-पूर्व दक्षिणगिरि के उत्तर पार्श्व में अशोक का बनवाया 60 हाथ ऊँचा एक स्तूप है। अशोक पुत्र कुणाल ने अपनी कुटिल सौतेली माँ के छल से यहीं पर अपनी आँखें निकालकर दे दी थीं। सौतेली माँ नहीं चाहती थी, कि अशोक के बाद कुणाल जम्बू-द्वीप का राजा बने। उसने राजमुद्रा को चुराकर राजा की ओर से कुणाल की आँखों को निकलवाने का शासन-पत्र भेजा। कुणाल ने बिना आनाकानी किये अपनी आँखों को निकाल दिया। आज भी इस स्तूप पर अन्धे अपनी आँखों को लौटा पाने के लिये पूजा करते हैं। अशोक नहीं है, कुणाल भी नहीं है, इनके वंश का वैभव भी कब का खतम हो गया, लेकिन आज भी लोग सम्मान से इस स्थान के दर्शन के लिये आते हैं। कहते हैं, अर्हत् घोष के वरदान से कुणाल की आँखें फिर ठीक हो गईं। तक्षशिला में किसी समय सुदूर काशी-कोसल, मगध-विदेह तक के तरुण विद्या पढ़ने के लिये आया करते थे। लेकिन आज उसकी अवस्था कितनी हीन थी, यह देखकर मुझे बार-बार दुनिया की असारता का ख्याल आता था। मेरे मित्र का कहना था—"दुनिया का ध्वंस इसलिये होता है, कि उसकी जगह नये संसार की उत्पत्ति हो। हमें केवल ध्वंस और विनाश की ओर नहीं देखना चाहिये, बल्कि नव-निर्मित संसार की ओर भी देखना चाहिये। यदि पतझड़ न हो तो वसन्तश्री को हम कैसे देख पायेंगे? यदि पुरानी पीढ़ी न जाये, तो नई पीढ़ी के वसुबन्धु और दिग्नाग कैसे मिलेंगे?"

× × ×

कश्मीर

तक्षशिला से हम अपनी यात्रा सीधे पूर्व की जारी रखते मैदान ही मैदान शाकल होते मध्यमण्डल की ओर जा सकते थे। आखिर हमें मध्यमंडल को ग्रीष्म को बर्दाश्त करना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के लिये तैयार होना ही था। पर हमारी इच्छा कश्मीर के देख लेने की भी हुई जहाँ हम गर्मियों को भी अच्छी तरह बिता सकते थे, इसलिये हम वहाँ से पूर्वोत्तर दिशा की ओर चलते पहाड़ों को पार कर कश्मीर की भूमि में कश्मीर-उपत्यका वहुत रमणीय है। चारों तरफ ऊँचे पहाड़ हैं। यद्यपि हमारे उद्यान की वनश्री का यह मुकाबिला नहीं कर सकती तो भी यह सुन्दर भूमि है, नाना प्रकार के फलों और फूलों से हरी-भरी कुमकुम (केसर), घोड़े और बहुत तरह की जड़ी-बूटियाँ यहाँ होती हैं। लोगों की पोशाक उद्यान वालों जैसी है, लेकिन इनमें वैसी वीरता नहीं देखी जाती। विद्या का इनमें प्रेम है। बौद्ध और पाशुपत दोनों ही धर्म वाले यहाँ रहते हैं। उपत्यका के सौ से अधिक विहार और कई हजार भिक्षु यह बतलाते हैं, कि मिहिरकुल वैसा खूँखार नहीं है, जैसा कि उसके बारे में कहा जाता था। हो सकता है, जवानी में वह वैसा रहा हो लेकिन अब तो वह सूर्य, पशुपति और बुद्ध को एक जैसा सम्मान की दृष्टि से देखता है। सभी अपने धर्म के अनुसार यहाँ स्वच्छन्दतापूर्वक रहते हैं। मिहिरकुल की राजधानी में पहुँच कर मुझे पहले हल्की-सी टीस मालूम हुई। मेरी तरुणाई की प्रियतमा शायद अब भी उसके अन्तःपुर में मौजूद थी। बुद्धिल ने मेरी बाल्य प्रेमकथा को वड़ी सहानुभूति के साथ सुना और जब मैंने कहा कि सूखे घाव को फिर हरा नहीं करना चाहिये, तो उन्होंने भी इसका आग्रह नहीं किया कि मैं अपनी भूली प्रिया को देखने की कोशिश करूँ।

कश्मीर शास्त्रों और विद्वानों की भूमि आज भी है और पहले भी रही है। इसलिये हमने अपना समय वहाँ के भिन्न-भिन्न पवित्र स्थानों को देखने में बिताया।

कश्मीर देश के भीतर घुसते ही हमें कनिष्क-पुत्र का बनवाया हुविष्क-विहार मिला, जहाँ पहले से भिक्षुओं की संख्या कम हो गई थी। वहाँ हम दो दिन से ज्यादा नहीं रहे। कश्मीर की कथा भी उसी तरह रोचक और भयानक सुनने में आई जिस तरह दूसरे धार्मिक देशों की। पहले सारी कश्मीर-उपत्यका एक महासरोवर थी, जिसमें एक नागराज रहता था। इस नागराज को मध्यांतिक अर्हत् ने दमन करके इसे लोगों के रहने लायक बनाया इत्यादि। बुद्धिल ने बतलाया—"यह समझना आसान है कि जिस भूमि की चारों तरफ पहाड़ हों और पानी के निकास का रास्ता आज की तरह नीचा न हो, तो वहाँ किसी समय महान् जलाशय रहा होगा। लेकिन, अर्हतों का काम सरोवरों को सुखाना, पहाड़ों को चूर-चूर करना नहीं है। मध्यान्तिक स्थविर अशोक राजा के समय मौजूद थे। जिस समय मौद्गलिपुत्र तिष्य ने भिन्न-भिन्न देशों में धर्म-प्रचार के लिये धर्मदूत भेजे, उसी समय मध्यान्तिक स्थविर को उनके साथियों के साथ हिमवान् (हिमालय) की भूमि में भेजा गया। उन्होंने कश्मीर में पहले-पहल तथागत के धर्म का सन्देश पहुँचाया। यहाँ के लोग अपने प्रथम आचार्य के प्रति गौरव प्रदर्शित करें, यह स्वाभाविक है। जब हम जानते हैं कि मध्यान्तिक की रोपी हुई इस वाटिका ने हमें कश्मीर जैसे विद्या के केन्द्र को प्रदान किये तो मध्यान्तिक के कामों के लिये हम क्यों न कृतज्ञ होंवे।"

इसी कश्मीर में कनिष्क राजा ने तथागत की देशनाओं के संग्रह और स्पष्टीकरण के लियें एक महासंगीति (महापरिषद्) बुलाई थी। अशोक के समय तथागत की देशना जिस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तरह लोगों में प्रचलित थी, उसमें बहुत परस्पर-विरोधी बातें मालूम होने पर अशोक राजा ने भिक्षुसंघ की एक महासंगीति बुलाकर मौद्गलि-पुत्र तिष्य के संचालन में तथागत के उपदेशों का संग्रह करवाया। कनिष्क ने भी जब इस तरह के मतभेदों को देखा तो अपने गुरु भदन्त पार्श्व की सम्मति से एक महापरिषद् बुलाने का निश्चय किया। कनिष्क के निमंत्रण पर पूर्व और पश्चिम, सारे गन्धार के बहुत से विद्वान् और विपश्यना-युक्ताँ भिक्षु आये। स्थान के वास्ते पहले गन्धार के लिये कहा गया, लेकिन वहाँ गर्मियों में बहुत गर्मी पड़ती है, वर्षा में भी बहुत कष्ट होता है, इसलिये महासंगीति को कश्मीर में करने का निश्चय किया गया। सारे विद्वानों में से 499 भिक्षु चुने गये जो सभी त्रैविद्य और सभी षड्भिज्ञ थे। भदन्त वसुमित्र अभी भी पृथक् जन थे, जबकि वह विहार के द्वार पर भिक्षु के भेस में आये। बुद्धिल ने बतलाया कि तथागत के निर्वाण की पहली ही वर्षा में जो महासंगीति आयुष्मान् महाकाश्यप के नेतृत्व में राजगृह की सप्तपर्णी गुहा में हुई थी, उसमें आनन्द को भी इसी तरह पृथक् जन बतला अन्त में अर्हत बन संगीति में शामिल होने की बात की जाती है। वहां बात वसुमित्र के बारे में भी यहाँ दोहराई गई है। जो भी हो, वसुमित्र इस महासंगीति के नायक स्थविर थे। बहुत महीनों तक बैठकर परिषद् ने बुद्ध के उपदेशित सूत्रों, विनयों और अभिधर्म तीनों पिटकों का संग्रह किया, फिर एक-एक के ऊपर शतसहस्र श्लोकों के बराबर एक-एक विभाषाएँ तैयार कीं जिनमें सूत्रों, फिर विनयों और अभिधर्म के तत्वों की व्याख्या की गई है। संगीति के समाप्त होने के बाद कनिष्क ने विभाषाओं और त्रिपिटकों को ताँबे के पत्रों पर लिखवाकर पत्थर की पेटियों में रख एक स्तूप के भीतर डाल दिया। मैं सोचता था, कहीं वह ताम्रपत्र के ग्रंथ पढने को मिलते? लेकिन अब तो यह भी बतलाना मुश्किल है कि वे ताम्रपत्र किस स्तूप में रक्खे गये। यद्यपि यह असम्भव नहीं है, लेकिन बुद्धिल का इस पर कम ही विश्वास है। कहते हैं, कनिष्क ने भी संगीति के बाद सारे कश्मीर को भिक्षु-संघ को अर्पित कर दिया। जगह-जगह अस्थिधातु, दन्तधातु, केशधातु, पात्रधातु, चीवरधातु को देखते-देखते और बुद्धिल की बातों को सुनते-सुनते मुझ पर भी उसका प्रभाव पडने लगा था, यद्यपि मैं ऐसे किसी भी पवित्र और पुरातन स्थान को छोड़ना नहीं चाहता था। लेकिन जब कश्मीर में तथागत के दन्तधातु के स्तूप के बारे में बतलाया गया, तो मुझे उस पर पूरा विश्वास नहीं हुआ। दन्त-विहार से दो-ढाई कोस दक्षिण एक छोटे से विहार में बोधिसत्व-अवलोकितेश्वर की खड़ी मूर्ति है, जिसकी भी कितनी ही अद्भुत महिमाएँ बतलाई जाती हैं। इससे दक्षिण-पूर्व एक योजन से कुछ ऊपर (6 मील पर) एक बड़ा सुन्दर पुराना विहार बड़ी टूटी-फूटी अवस्था में है, जिसके एक कोने में एक दुमंजिला मकान है। कहते हैं, इसी विहार में रहकर आचार्य संघभद्र ने अभिधर्म के ऊपर अपने "अभिधर्मन्यायानुसार शास्त्र" की रचना की, जिसमें उन्होंने वैभाषिक परम्परा के सिद्धान्त से कुछ विरुद्ध होने के कारण वसुबन्धु के "अभिधर्मकोश" का बडे विस्तार के साथ खंडन किया। विहार के आस-पास सैकड़ों छोटे-बड़े स्तूप हैं, जिनमें यहाँ के पुराने स्थविरों और विद्वानों की अस्थियाँ रक्खी हुई हैं। दन्त-विहार से डेढ़ कोस से कुछ ऊपर (2 मील) पूर्व-उत्तरी पहाड़ की ढलान में एक छोटा-सा विहार है, जिसमें आचार्य स्कंदिल ने अपने ग्रंथ "विभाषा प्रकरणपाद" अभिधर्मावतारशास्त्र को रचा था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजधानी से उत्तर-पश्चिम 8 योजन पर वणिक्वन विहार है, जहाँ पर आचार्य पूर्ण ने विभाषा की व्याख्या लिखी थी। राअधानी से 5-6 योजन पश्चिम महानदी की उत्तर तरफ पहाड़ के दक्षिण पार्श्व में महासांघियों का एक विहार है जिसमें महासांघिक आचार्य बोधिल ने रहकर अपने ग्रंथ रचे थे।

गन्धार की तरह कश्मीर ने कितने ही बड़े-बड़े विद्वान् पैदा किये। उसकी रमणीय उपत्यका में जगह-जगह विहार और स्तूप बने हुये हैं। विभाषा और वैभाषिक दर्शन की भूमि होने के कारण दूर-दूर के लोग यहाँ अध्ययन के लिये आया करते हैं। आज इन विहारों की कितनी हीन अवस्था है? कितने तो खंड-स्फुटित और परित्यक्त हो गये हैं, दीवारें गिर पड़ी हैं या आधी खड़ी हैं, छतों पर घास जम आई हैं। वह कुछ समय की मेहमान मालूम होती हैं। इतनी जीर्णता क्यों? "अनित्या वत संस्कराः" (सभी बने-विगड़ने वाले) की तथागत की उक्ति आखिर सब के ऊपर घटने वाली है। इसका दोष केवल मिहिरकुल को नहीं देना चाहिये। आखिर लोगों में यदि उत्कट श्रद्धा होती, तो गिरे या टूटे-फूटे विहारों को फिर से तैयार कर देने में क्या देर लगती? वैभाषिकों (सर्वास्तिवादियों) को हम हीनयानी कहते हैं और अपने को महायानी। लंका को छोड़ सभी जगह महायान का पल्ला भारी हो रहा है। यह हीनयान के अठारहों निकायों को अपने पेट में हजम करता दिखाई पड़ता है। महायान का दर्शन मुझे बहुत पसन्द है, लेकिन हीनयान का विनय, उनके भिक्षुओं का विनयानुपालन और सरल वेश-भूषा, सीधी-सादी पाठ-पूजा तथा अत्यन्त प्राचीन परम्पराएँ मुझे बहुत आकृष्ट करती हैं। जब मैं ख्याल करता हूँ कि यह एक दिन नाममात्र शेष रह जायेंगी तो हृदय में बड़ी ठेस लगती है। लेकिन पुराने को जीर्ण होना ही पड़ता है, उसे नवीन के लिये अपना स्थान खाली करना ही पड़ता है? धर्मों के ऊपर भी यही नियम लागू होता है? हजार वर्ष बाद तथागत के धर्म-विनय के लुप्त होने की भविष्यवाणी क्या सच होकर रहेगी? क्या सचमुच तथागत का शासन लुप्त हो जायेगा? भारी परिमाण में विहारों और चैत्यों को शून्य तथा जीर्ण-शीर्ण देखकर मेरे हृदय में यह प्रश्न उठते। मैं मानता हूँ कि मैं श्रद्धाप्रधान हूँ, बुद्धिल की तरह बुद्धिप्रधान नहीं। तथागत और उनके श्रावकों के किसी प्राचीन स्थान को अच्छी अवस्था में न देखकर मैं अपने आँसुओं को नहीं रोक सकता था। बुद्धिल का कहना था: पुरानी पीढ़ी का हाड़-मांस नहीं, बल्कि उसका अर्जित ज्ञान और अनुभव अधिक नहीं, तो वासना के रूप में आगे चलता रहता है; वह आने वाली पीढ़ियों का पथ-प्रदर्शन करता है। मैं श्रद्धा को प्रधान स्थान देना चाहता था और बुद्धिल बुद्धि अर्थात् प्रज्ञा को। वह प्रज्ञा को अमर मानते और मैं श्रद्धा को अमरत्व दिलाना चाहता था।

पुणच—आश्विन पूर्णिमा पूरा करके कश्मीर से हम लोग निकले। वर्षा में पहाड़ या मैदान में यात्रा करना सुखकर नहीं होता। रास्ते टूटे रहते हैं, पुल कितने ही भग्न होते हैं, पहाड़ों के टूटने का भी डर होता है, इसलिये वर्षा में भिक्षुओं को यात्रा नहीं करनी चाहिये, यह नियम बनाकर तथागत ने अपनी करुणा का परिचय दिया। कश्मीर की उपत्यका चारों ओर पहाड़ों से घिरी, केवल उसी तरफ खुली है, जिधर वहाँ की नदी पहाड़ फोड़कर निकलती है। हमें कुछ दूर तक उसी के किनारे नीचे की ओर जा फिर पहाड़ को लाँघना पड़ा। यदि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और देर करके आते, तो हो सकता है, इन पहाड़ों के ऊपरी भागों में बर्फ भी मिलती। दुर्लंध्य पहाड़ों को पार कर कश्मीर राजधानी के दक्षिण-पश्चिम में अवस्थित इस छोटे प्रदेश में पहुँचे। अपने सौन्दर्य तथा फल-फूलों की समृद्धि में यह कश्मीर का मुकाबला न कर सकता, लेकिन द्राक्षा छोड़ करके कितने ही फल यहाँ पैदा होते हैं। अनाज भी होता। उदुम्बर, कदली की बगिया लोगों ने अपने-अपने घरों के पास लगा रक्खी है। आम भी पैदा होता है जिससे सिद्ध है कि यहाँ की जलवायु गरम है। लोग अधिकतर सूती क पहिनते हैं। तथागत के शासन का यहाँ बहुत प्रसार और प्रचार है। भिक्षुओं के बहुत से सं राम हैं, जिनमें से कुछ ध्वस्तप्राय हैं और भिक्षुओं की संख्या भी कम है। लोग बड़े साह तथा सरल हैं।

पुणच में हम रहना भी नहीं चाहते थे और वहाँ हमारे लिये आकर्षण रखने वा कोई चीज भी नहीं थी। हम तो अब मध्यमंडल की ओर बढ़ने के लिये उतावले थे।

पुणच से हम नीचे की ओर बढ़ते राजपुरी (राजौरी) में पहुँचे। यह भी एक पह प्रदेश है। इसके बाद ही पहाड़ समाप्त होकर नया संसार सामने आ जाता है :—सम भूमि, दूर तक फैले खेत या जंगल, लोगों की वेश-भूषा और रीति-रिवाज में भी अन्त कपिशा से राजपुर तक के लोग जिस तरह पहाड़ों के निवासी हैं, उसी तरह उनके स्वभा भी समानता मिलती है। वह सीधे-साधे और कहीं-कहीं कुछ रूखे, लड़ने-भिड़ने में आगे, विद्या में पिछड़े हुये, लेकिन साथ ही उनमें कृत्रिमता नहीं दिखाई पड़ती। ये सीधे लोग चाहे नागरिता में पीछे हों, लेकिन अपनी बात के पक्के होते हैं। अतिथि-सत्कार में सबसे आगे बढ़े हुये हैं।

कान्यकुब्जको

(542-43 ई०)

राजपुरी पहाड़ उतरकर अब हमारा रास्ता दक्षिण-पूर्व की ओर था। दो-तीन चलने के बाद चन्द्रभागा नदी आई, जिसे पार कर हम शाकला की ओर बढ़े। शाकला मि कुल की राजधानी थी, जहाँ वह जाड़ों में आकर रहता था। किसी समय यह नगरी और बड़ी थी, जब कि मिहिरकुल राज्य जमुना और नर्मदा के किनारे तक फैला हुआ था। पर के बाद प्राण लेकर उसे भागना पड़ा। तब से उसने अधिकतर अपना निवास कश्मीर बनाया। कहते हैं, शाकला में रहते ही भिक्षुओं के किसी बर्ताव से रुष्ट होकर मिहि तथागत के धर्म के उच्छेद करने का निश्चय कर लिया, और उसने अनेकों विहार और नष्ट कर दिये। जो भिक्षु उसके हाथ मरने से बचे, उन्हें देश छोड़ जाना पड़ा। लेकिन समझता हूँ, बौद्धों पर नाराज होने का असली कारण यह नहीं था, बल्कि अपने पित दिग्विजयों को दोहराने के लिये जब वह मध्यमंडल की तरफ बढ़ा, तो उसका मुका नरसिंह बालादित्य से हुआ। पहले उसे कुछ सफलता मिली, किन्तु अन्त में हारकर बाला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के हाथ में बन्दी बनना पड़ा। बालादित्य की माँ को दया आ गई। उसने बेटे से कहकर उसे छुड़वा दिया नहीं तो मिहिरकुल को इतना अत्याचार करने का मौका न मिलता। मध्यमंडल के स्वामी राजा बालादित्य के साथ मुकाबिला करते समय वहां के बौद्धों ने युद्ध में जो वीरता दिखलाई थी और मध्यमंडल के साथ गंधार, कश्मीर और कपिशा के लोग भी जो भक्ति रखते थे, वह मिहिरकुल को बहुत खटकी। उसका विश्वास अपने यहाँ के भिक्षुओं पर से भी उठ गया जिस पर उसने इतना संहार किया। मिहिरकुल जब पूर्व से हारकर राजधानी शाकला (स्यालकोट) में पहुँचा, तो देखा, उसके बन्दी होने की खबर पाकर छोटे भाई ने गद्दी सँभाल ली है। लड़कर सिंहासन को हाथ में लेने की जगह उसने कश्मीर में शरण लेना ही अच्छा समझा। वहाँ के राजा ने अपने महाप्रभु का बड़ा स्वागत किया, जिसका बदला कृतघ्न मिहिरकुल ने उसे मारकर स्वयं राजा घोषित करके दिया। इसी समय उसने भिक्षुओं के खून से खुलकर हाथ रँगना शुरू किया। कहते हैं, उसने 1600 स्तूप और संघाराम तोड़वाये। मेरे देश छोड़ने से पहले ही (547 ई०) मिहिरकुल ने मरकर नर्क का रास्ता ले लिया था।

शाकला को देखते वहाँ के प्राचीन इतिहास की कितनी मधुर स्मृतियाँ सुनने में आईं। मिहिरकुल ने अन्तिम (23वें) संघस्थविर सिंह को मरवाया था, यह अभी कुछ ही वर्षों पहले की बात थी। लेकिन शाकला किसी समय मिहिरकुल से भी बड़े शक्तिशाली राजा मिलिन्द (मिनान्दर) की राजधानी थी जो यवन (यूनानी) होते भी तथागत के शासन पर बहुत भक्ति रखता था और जिसे लोग अशोक और कनिष्क की तरह धर्मराज कहते हैं। अर्हत् नागसेन ने मिलिन्द को जो धर्मोपदेश दिये थे, उस 'मिलिन्दप्रश्न' को बुद्धिल की कृपा से मैंने अभी-अभी कश्मीर में पढ़ा था। यवनों की उसी महान् राजधानी शाकला को मैं अपनी आँखों देख रहा था। अब भी वहाँ एक बड़ा संघाराम था जिसमें आचार्य वसुबन्धु ने "परमार्थ सत्त्वशास्त्र" की रचना की थी। नागसेन भी इसी विहार में रहे थे। भद्रकल्प के चार बुद्धों ने यहाँ से उपदेश किये थे। उनके पदचिह्न भी मौजूद हैं।

पहाड़ से उतरते ही हमारा रास्ता निरापद नहीं था। बड़े-बड़े जंगल थे जिनके भीतर सिंह और व्याघ्र घूमा करते। पशु शत्रु से भी भयंकर मानव शत्रुओं का वहाँ डर रहता था और सौ-दो-सौ के हथियारबन्द बड़े-बड़े सार्थ के साथ ही यात्रा की जा सकती थी। कभी-कभी तो जंगल कई दिन चलने पर खतम होते। सुरक्षित बाहर निकलने पर लोग आराम की साँस लेते थे, मानो वह काल के मुख से निकले हों। केवल नगरों में ही व्यापारी और यात्री अपने को सुरक्षित समझते थे। हम दोनों को न कभी सिंह-व्याघ्र का सामना करना पड़ा, और न दस्युओं का, लेकिन इसे संयोग ही कहना चाहिये। शाकला से आगे बढ़ते हुये हम चीन-भुक्ति में पहुँचे। उस समय मुझे क्या मालूम था कि मुझे अपना अन्तिम जीवन महाचीन देश में बिताना पड़ेगा। मुझे यह नाम कुछ विचित्र-सा मालूम हुआ। लोग यहाँ के समृद्ध हैं, खूब अनाज होता है, मैदानी वृक्ष भी बहुत हैं, शिल्प और कला में भी वह निष्णात हैं। तथागत के श्रावक और तीर्थिकों के भी अनुयायी हैं। चीनभुक्ति के नाम पड़ने के बारे में मैं बतला चुका हूँ, महाचीन के राजा के पुत्र को राजा कनिष्क पकड़ लाये। अपने यहाँ लाकर उसके साथ उन्होंने बहुत सम्मान और स्नेह दिखलाया। उसी राजकुमार के खर्च के लिये यह भुक्ति (जिला) दे। इसी से इसका नाम चीनभुक्ति पड़ा। जाड़ों में चीन-राजकुमार यहीं रहा करता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था। नासपाती और दूसरे कितने ही फूल-फल चीन से मँगवाकर इसी राजकुमार ने लगवाये। नासपाती को इसी के कारण चीन-राजपुत्र भी कहा जाता है। चीन का नाम पहले पहल मुझे सुनने में नहीं आया था। उद्यान में कभी-कभी चीनी भिक्षु आया करते जिनको मैं भी देख चुका था। किन्तु एक मुक्ति (जिला) का नाम चीन पड़ जाना सुनकर हृदय में अवश्य कौतूहल पैदा हुआ। मैं सोचने लगा— जब चीन राजपुत्र सारे कष्टों सहकर अपने देश से यहाँ रह सकता था तो मैं तो भिक्षु हूँ, चारिका और घूमते रहना मेरा काम है। शायद मै भी कभी चीन देश में जाऊँ। लेकिन वह उस समय दूर का मालूम होता था।

चीनभुक्ति के मुख्य नगर से दक्षिण-पूर्व 20 योजन जाने के बाद हम पहाड़ों के भी तमसावन संघाराम में पहुँचे। यह प्रसिद्ध और अत्यन्त प्राचीन विहार है। अब भी यहाँ सौ सर्वास्तिवादी भिक्षु रहते हैं जो अपनी विद्या और विनय के पालन लिये बहुत प्रसिद्ध कात्यानी-पुत्र ने तथागत के निर्वाण के 300 वर्ष बाद इसी जगह अपने शास्त्र का नि किया था। अशोक धर्मराज ने 60 हाथ ऊँचा एक स्तूप इन्हीं पहाड़ों में बनवाया था।

तमसावन से 6 योजन उत्तर-पूर्व जलन्धर देश है। जलवायु गरम होते यह धन-धान्य-सम्पन्न देश है। यहाँ पचासों संघाराम तथा हजारों भिक्षु रहते हैं जो हीनयान महायान दोनों ही के मानने वाले हैं। इनके अतिरिक्त पाशुपत (शैव) धर्म के भी अनु बहुत हैं। जलन्धर नगर में तीन देवालय हैं, जिनमें सैकड़ों साधु रहते हैं। जलन्धर क्यों पड़ा? जलन्धर तो कश्मीर और केदारखंड के बीच की हिमालय की भूमि का नाम है से शतद्रु (सतलज), विपाशा (व्यास), इरावती (रावी) और चन्द्रभागा (चनाब) महानदियाँ निकलती हैं, इसलिये यथा नाम तथा गुण इस पर्वत-भाग को जलन्धर कह सकता है। नीचे की भूमि भी किसी समय जलन्धर के राजा के अधीन थी, जिसके इसका यह नाम पड़ गया।

जलन्धर से हम पूर्व-दक्षिण की ओर बढ़ते जमुना के किनारे पहुँचे। अब हम मंडल में प्रविष्ट हो श्रुघ्न (सुघ) नगर में पहुँचे जो जमुना के पश्चिमी किनारे पर लेकिन इसका राज्य (सहारनपुर) पूर्व में गंगा के किनारे तक फैला हुआ। उत्तर की पहाड़ है। श्रुघ्न में पाशुपत और दूसरे धर्मों का बहुत प्रसार है। भिक्षु संघाराम बहुत से हैं जो सभी हीनयानी हैं। यहाँ के भिक्षुओं की विद्या की ख्याति दूर-दूर तक है। और दर्शन के उनमें कितने ही अच्छे-अच्छे पंडित हैं, जिनके पास पढ़ने के लिये लोग से आते हैं। राजधानी के दक्षिण-पूर्व नगर के पूर्व-द्वार के बाहर जमुना के पास अशो बनवाया स्तूप है। तथागत ने चारिका करते हुए यहाँ आकर उपदेश दिया था। इस पास और भी कितने ही स्तूप हैं, जिनमें अग्रश्राक सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की धातुएँ हैं। यहाँ भी तथागत के केश और नख-धातु रक्खी हुई हैं। श्रुघ्न से 32 योजन हैं। गंगा यहाँ पर्वत से नीचे उतरती हैं। स्नान से धर्म मानने वाले लोग यहाँ स्नान आते हैं, कितने ही अपने अनेक जन्मों के पापों को धोने के लिये गङ्गा में डूबकर प्राण हैं। जिनको वह सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ, उनकी हड्डियाँ लाकर यहाँ गङ्गा में डाल दी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं। कनखल (मायापुरी) के नाम से प्रसिद्ध यह स्थान पाशुपतों के लिये परम पवित्र है।

शतद्रु के पूर्व आने पर ही मेरी श्रद्धा जाग उठी। मुझे बार-बार ख्याल आता था : मैं मध्यमंडल की उस पुण्य भूमि में चल रहा हूँ जहाँ लोकनायक शरीर में रहते हुये प्राय: विचरा करते थे। उनकी चरण-धूलि अब भी यहाँ मौजूद है। यहीं जमुना और गङ्गा के बीच कुरुओं की भूमि है जिसमें तथागत ने अनेक गम्भीर उपदेश दिये थे। "प्रतीत्य समुत्पाद" और "महानिदान" जैसे तथागत के दर्शन-सारभूत सूत्र यहीं पर उपदिष्ट हुए थे। कुरु की भूमि से तथागत की जन्मभूमि काफी दूर है। यहाँ श्रावस्ती, वैशाली, राजगृह और वाराणसी पहुँचने में महीनों लगते हैं। लेकिन सबसे गम्भीर उपदेशों को तथागत ने कुरुभूमि में दिया था। इससे इस भूमि का महत्व मालूम होता है। बुद्धिल हीनयान और महायान दोनों के सूत्रों और विनय के ज्ञाता थे। वह बतलाते थे : पुराने आचार्यों ने इन सूत्रों की व्याख्या करते हुये लिखा है कि कुरुदेश की भूमि इतनी सुन्दर, वहाँ की जलवायु इतनी अनुकूल है जिसके कारण यहाँ के लोग बड़े बुद्धिमान और विद्याव्यसनी होते हैं। यहाँ की पनहारिनियाँ भी पनघट पर पहुँचकर गम्भीर धर्म और दर्शन की चर्चा करती हैं। उन्होंने यह भी बतलाया कि जिस भूमि में भगवान् ने अपने अनात्मवाद के गम्भीर दर्शन का उपदेश दिया, उसी भूमि में उनसे कुछ ही शताब्दियों पहले प्रवाहण और याज्ञवल्क्य ने आत्मवाद का उपदेश दिया था। आत्मवाद (उपनिषद् का तत्वज्ञान) जहाँ से निकला, उसी भूमि में आकर तथागत ने अनात्मवाद का सिंहनाद किया।

हम लोगों का ज्ञान एकांगी होता है क्योंकि हम अपने ही शास्त्रों और बौद्ध-परम्पराओं को जानते हैं। बौद्ध-परम्पराओं में भी बल्कि हम केवल महायान तथा सर्वास्तिवाद का ही परिचय रखते हैं। बुद्धिल का ज्ञान बहुत व्यापक था। ब्राह्मण कुल में पैदा होने से ब्राह्मण-शास्त्रों और परम्पराओं का उनका अच्छा ज्ञान था। हीनयान के अनेक निकायों के ग्रन्थों का उन्होंने अवलोकन किया था। यद्यपि वह बहुत बातों में अविश्वासी थे, बहुत-सी धारणाओं को वह मूढ़ विश्वास कहकर हँस देते थे, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति के प्रति उनका बर्ताव बड़ा ही कोमल और मधुर होता था। वह जिस तरह का पथ लोगों को ग्रहण करने के लिये कहना चाहते थे, उसके बारे में तो मुझे निराशा ही निराशा थी, किन्तु बुद्धिल को निराशावाद छू नहीं गया था। वह कहते थे—सत्ययुग पीछे नहीं बीता, वह आगे आने वाला है। ज्ञान के प्रकाश से लोगों की आँखें खुलती जा रही हैं। अज्ञान-अन्धकार दूर जितना-जितना होता जायेगा, उतना ही उतना जनहित के लिये रास्ता प्रकाशमान होता जायेगा। इतिहास के बीते कालों के अध्ययन और संवाद में उनका मन बड़ा लगता था। मैं अपने को इसके लिये सौभाग्य-शाली समझता हूँ कि ऐसे मित्र का सम्पर्क मेरा कई सालों तक रहा।

श्रुघ्न का राज्य कुरु का राज्य भूमि में फैला हुआ था, यद्यपि उसकी राजधानी जमुना के बायें तट पर न होकर दाहिने तट पर थी। गङ्गा पार पंचाल देश था। पंचाल का नाम हमने सूत्रों में पढ़ा था। बुद्धिल ने उसके बारे में हमें और भी बातें बतलाई : कुरु-पंचाल जोड़े नाम हैं, जिसका अर्थ है दोनों जनपदों के जन कभी एक कुल से सम्बन्ध रखते थे, अथवा साथ-साथ रहते थे। दोनों में युद्ध भी होते रहे। इसके नाम के बारे में कहावत है : भूम्यश्व राजा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के पाँच पुत्र थे, जिनमें उसने अपने राज्य को बाँट दिया था। पाँच पुत्रों का आलय होने से इसका नाम पंचाल पड़ा। सबसे बड़े लड़के का प्रपौत्र दिवोदास था जिसका पुत्र सुदास। इन्हीं राजाओं के समय वशिष्ट, विश्वामित्र और भरद्वाज जैसे ऋषि पैदा हुये, जिन्होंने वेदों के सबसे पुराने मन्त्रों की रचना की। सुदास ने दस राजाओं से युद्ध करके अपने राज्य और प्रताप का विस्तार किया। किन्तु बुद्धिल का कहना था, सुदास इरावती परुष्णी) तट का राजा था। किसी समय कुरु और पंचाल विद्या और समृद्धि में जम्बू-द्वीप में अद्वितीय थे। आज भी यहाँ की भूमि बड़ी हरी-भरी है, यहाँ बहुत से ग्राम और नगर हैं, पर आज के प्रतापी राजा मध्यमंडल के पूर्व में रहते हैं, उनका केन्द्र मगध और कोसल है। वहीं नन्द, मौर्य, शुंग और गुप्त जैसे प्रतापी राजवंश हुये। अब फिर समय ने पलटा खाया और एक बार पंचाल लक्ष्मी और सरस्वती का केन्द्र बना, यहीं उसकी राजधानी कान्यकुब्ज (कन्नौज) है।

बुद्धिल ने बतलाया कि पहले पंचाल उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में जमुना तथा गङ्गा की दोनों तरफ़ बसा हुआ था, लेकिन पांडवों के समय उनके गुरु द्रोणाचार्य ने पंचालराज द्रुपद को हराया और उसके पास केवल दक्षिण-पंचाल रहने दिया। उत्तर-पंचाल को द्रोणाचार्य ने ले लिया। तब से पंचाल उत्तर और दक्षिण दो भागों में बँट गया और दोनों की राजधानियाँ अहिच्छत्रा और काम्पिल्य हुईं। पीछे काम्पिल्य का महत्त्व भी घट गया और अब तो कान्यकुब्ज केवल दक्षिण-पंचाल या सारे पंचाल का ही नहीं, बल्कि प्रायः सारे मध्यमंडल की राजधानी है। कुरु, पंचाल, कोसल, काशी, वज्जी, विदेह, वत्स और शूरसेन (व्रज) और दशार्ण (बुंदेलखंड) आदि कान्यकुब्ज के राजा मौखरी ईश्वरवर्मा के अधीन हैं।

गंगा पार हो हम उत्तर-पंचाल (रुहेलखंड) की समृद्ध, सस्य-श्यामला भूमि में चलने लगे। हमारा रास्ता कणखल से प्रायः दक्षिण की ओर था। भूमि सारी समतल थी। जाड़े के दिनों में जौ और गेहूँ के हरे-हरे खेतों का समुद्र दिखाई पड़ता जिसके साथ क्रीड़ा करती हवा छोटी-छोटी लहरें उठाती थी। अहिच्छत्र में अब भी एक छोटा-सा राजा रहता था जो अपने को कान्यकुब्ज के अधीन समझता था। नगर अब भी अस्तित्व रखता है, लेकिन उसका पहले का वैभव कहाँ ? यहाँ पाशुपत और बौद्ध दोनों धर्मों के लोग रहते हैं ? सम्मितीय निकाय के दसियों संघाराम हैं जिनमें हजार से ऊपर भिक्षु रहते हैं। पशुपति के कितने ही मन्दिर हैं जिनमें बहुत से पाशुपत-साधु रहते हैं। राजधानी के बाहर नागसरोवर है जिसके किनारे अशोक का बनवाया एक स्तूप है। कहते हैं, तथागत ने यहाँ नागराजा को सात दिन उपदेश दिया था। पास ही भद्रकल्प के चारों बुद्धों के आगमन की स्मृति में चार स्तूप हैं। विहारों में शक-क्षत्रप फरगुल का बनवाया एक विहार भी है जिसमें पीछे भी लोग दान करते थे। बुद्धिल ने एक पाषाण-मूर्ति पर "भिक्षुस्य धर्मघोषस्य फरगुलविहारो च्छत्राया।" पढ़कर कहा—तथागत ने भिक्षुओं को अपरिग्रही बनने के लिए कहा था, सोना-चाँदी छूना मना था और शरीर की आठ चीजों के अतिरिक्त किसी सम्पत्ति के रखने का अधिकार नहीं था। लेकिन, भिक्षु धर्मघोष तथागत की शिक्षा को पानी में बहाकर सोने-चाँदी का प्रदर्शन फरगुल विहार में एक कुटिया बनाकर करते हैं। हम फरगुल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में ही ठहरे। यहाँ के भिक्षुओं में विद्या का मान ज्यादा है, इसलिए हमारे तरुण साथी की उन्होंने बड़ी आवभगत की। यद्यपि हम महायान के अनुयायी थे, लेकिन भिक्षुओं के लिए महायान का कोई अपना विनय-पिटक नहीं है, इसलिए वह विनय में किसी न किसी हीनयानी निकाय को मानते हैं। हम लोग मूल-सर्वास्तिवाद के विनय के अनुयायी थे। वैसे होता तो निकाय-सम्बन्धी संकीर्णता का हमें सामना करना पड़ता, लेकिन महायान की उदार शिक्षा तथा और उससे भी अधिक वसुवन्धु और दिग्नाग का प्रमाणशास्त्र लोगों की संकीर्णता को दूर करता जा रहा है जिसके कारण कम से कम विद्वानों में अधिक समदर्शिता और स्नेह का भाव दिखाई पड़ता है। फरगुल विहार के पुराने स्तूप, प्रतिमा-गृह तथा प्रतिमायें भी लाल पत्थर की हैं और बाद की चीजें मटमैले पत्थर की। बुद्धिल कह रहे थे: शक-क्षत्रपों की राजधानी मथुरा थी, जिसके पास लाल पत्थर बहुत मिलते हैं, इसीलिए उन्होंने उसी पत्थर को इस्तेमाल किया। कितनी ही मूर्तियाँ वहीं मथुरा के ही प्रस्तरशिल्पी बनाते थे जिन्हें नावों से दूर-दूर तक पहुँचाया जाता। गुप्त राजवंश की राजधानी पाटलिपुत्र और साकेत (अयोध्या) थी। उनके समय में गङ्गा के दक्षिण वाले विंध्यपर्वत के पत्थरों का काम ज्यादा बढ़ा। पुराने नगरों और राजधानियों, पुराने विहारों और स्तूपों की हीन दशा देखकर मुझे वहुत दुःख होता था। अहिच्छत्रा में भी चारों तरफ उदासी सी छाई थी। बुद्धिल का तो कहना था—"विनाश के विना उत्पादन कहाँ? संहार के बिना सृजन कहाँ?" मैं कभी-कभी खीजकर कहता—"तुम्हें तो संहारवादी कहना चाहिये?" वह हँसकर कहते—संहारवाद, क्षणिकवाद, सर्वानित्यवाद एक ही चीज है जिससे बौद्ध होने के नाते आप इन्कार नहीं कर सकते। लेकिन, केवल संहारवाद आदमी को निराशवादी बनाता है। तथागत ने दुःख को माना है, लेकिन वह केवल दुःखवादी नहीं थे क्योंकि उन्होंने दुःख को लक्ष्य नहीं, बल्कि दुःख से निकलने के मार्ग को लक्ष्य माना। उसी तरह सँहार नहीं, बल्कि उसके अनन्तर ही होने वाला सृजन हमारे लिये इष्ट वस्तु है।"

अहिच्छत्रा में हम दोनों कितनी ही बार पाशुपत परिव्राजकों के मठों में भी गये। बुद्धिल को प्रतिष्ठा और सम्मान की कोई भूख नहीं थी, लेकिन वह जहाँ भी जाते, प्रतिष्ठा उनके पैरों के नीचे पाँवड़े बिछाती, फूलमाला से उनका सत्कार करती। उनकी विद्या, वय और उससे भी वढ़कर मधुर वर्ताव के कारण विरुद्ध मत रखने वाले पाशुपत परिव्राजक भी उनका सम्मान करते। घण्टों सत्संग चलता। परिव्राजक या भिक्षु, चाहे तथागत के सामने सिर झुकाने वाले हों या पशुपति के सामने सभी पर्यटक होते हैं, भिन्न-भिन्न देशों में घूमे रहते हैं। पर्यटन उनको एक दूसरे का भाई बना देता और धार्मिक मतभेद उनके बीच भेद डालने में असमर्थ होता है। पाशुपत परिव्राजक सफेद भस्म धारण किये बड़ी-बड़ी जटाओं के साथ अपनी तितिक्षा और व्रत में रत रहते हैं। वर्णाश्रम धर्म के मानने वाले होने से उनका उच्च वर्णों में मान भी अधिक है। अपने साम्प्रदायिक भावनाओं के अनुसार वह हम बौद्धों को हीन जाति वाले समझकर तुच्छ निगाह से देख सकते थे। पर, वह जानते हैं कि बौद्ध बड़े विद्वान् होते हैं, प्रमाण और युक्ति उनके सामने हाथ बाँधे खड़े रहते हैं। कभी-कभी कोई मनचला पाशुपत पंडित बुद्धिल से शास्त्रार्थ करने के लिए भी तैयार हो जाता। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि बुद्धिल के विशाल ज्ञान और अद्‌भुत तर्क-शक्ति के कारण उसे जल्दी ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चुप हो जाना पड़ता। लेकिन बुद्धिल को कभी इससे संतोष नहीं होता। वह अपनी विद्वत्ता का दिखावा नहीं करना चाहते थे। वह तो हरेक के भीतर गुणों को ग्रहण करते थे। "दोषों का ग्रहण करने वाला हमेशा अपने हृदय को जलाता घाटे में रहता है।" वह प्रायः कहा करते थे। "शास्त्र पढ़ने से आदमी की आँखें खुलती हैं, लेकिन उसकी कूपमंडूकता दूर करने के लिए देशाटन भी आवश्यक है। देश और काल से परिचित होकर ही हम जान सकते हैं कि संसार में किस तरह परिवर्तन हुआ करते हैं।"

फरगुल कोई शक था जिसके नाम से अहिच्छत्रा का यह विहार बना। सभी प्राचीन पवित्र स्थानों में शकों के बनवाए विहार मिलते हैं। शक और उनसे कुछ समय पहले यवन जब हमारे देश की भूमि में आये तो उन्होंने तथागत के धर्म में ही समानता और समदर्शिता का भाव पाया। वह यहाँ लाखों की संख्या में बस गये, लेकिन ब्राह्मण अपनी वर्ण-मर्यादा या वर्ण-संकीर्णता के कारण उनके साथ शासक के तौर पर दण्ड के भय से सिर झुकाने के लिए तो तैयार थे, किन्तु उन्हें दिल से समान मानना नहीं चाहते थे। तथागत ने वर्ण, जाति और कुल के भेद को मिटाकर मानवमात्र को समान बतला सब में भाईचारे का भाव भरा, जिसके कारण बौद्ध-विहारों और बौद्ध-कुलों में ही शकों, यवनों ने आत्मीयता पाई। इसी कारण फरगुल विहार जैसे सैकड़ों विहार शकों ने बनवाए। राजदण्ड जिसके हाथ में हो, वह इच्छा रखने पर उच्च कुल की क्षत्रिय-ब्राह्मण-कन्याओं से ब्याह कर सकता है। समय बीतता गया और वर्ण-धर्म के पक्षपातियों को भी अपनी मूर्खता का पता लगा। आज तो मालूम होता है शक और यवन अब हमारे देश में हैं ही नहीं हैं। क्यों नहीं, लेकिन अब उनमें से बहुतेरे क्षत्रिय हो गये, कितने ही ब्राह्मण भी बन गये—सूर्य के अर्चक बनकर स्वयं पूजे जा रहे हैं। आज भी उनके सूर्य घुटनों तक जूता पहने मन्दिरों में पूजे जा रहे हैं। यह वही जूते जिनको पहनकर शक लोग अपने ठंडे देश से भारत में आये थे। कितनी पीढ़ियों तक वह हर समय नहीं तो विशेष अवसरों पर गरम देशों के अनुकूल होने पर भी इन्हीं जूतों को पहना करते थे। आज इन जूतों को देखने के लिए तुखार और कम्बोज देश की यात्रा करनी होगी। हमारा कोई देवता मन्दिर में जूता पहनकर भला बैठ सकता है? यह सूर्य-पूजक शक-ब्राह्मण आज क्या अपने देवता के सामने जूता पहनकर जा सकते हैं, या किसी को जाने दे सकते हैं? लेकिन इनके पूर्वजों ने जब पहले-पहल जूताधारी सूर्य की पूजा इस देश में आरम्भ करवाई तो वे जूतों के साथ अपने मन्दिरों में जा सकते थे। अत्यन्त शीतल देश में, जहाँ क्षण भर नंगा रखने पर पैर हिमजड़ हो जाते हैं, नंगे पैर देवालय में जाने की व्यवस्था निरी मूढ़ता होती। देश-काल के अनुसार व्यवस्था में परिवर्तन करना आदमी के लिए आवश्यक हो जाता है। शक-यवन और ये था (श्वेत हूण) बहुत गोरे थे। उनके जैसा कपिलवर्ण और पिंगलकेश पतंजलि के[1] समय (ईसा पूर्व दूसरी सदी) ब्राह्मणों में बतलाया जाता है। चार-चार पाँच शताब्दियों तक हमारे देश में रहते अब उनके रूप पर भी देश का रंग चढ़ने लगा है।

बुद्धिल ने बतलाया: "हमारा वंश शक-ब्राह्मणों का है। मथुरा की तरह उनको उज्जयि

1. "गौरः शुच्याचारः कपिलः पिंगलकेश इत्येमादि अभ्यन्तरान् ब्राह्मण्ये गुणान् कुर्वन्ति" (महाभाष्य 2।2 6)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नगरी भी शताब्दियों तक शक-क्षत्रपों और महाक्षत्रपों की राजधानी रही। वहाँ के ब्राह्मणों ने उन्हें सबसे पहले उच्चकुलीन मानना शुरू किया। आज उनके वंश वाले विशुद्ध ब्राह्मण हैं और उनके पुराने यजमान विशुद्ध क्षत्रिय। जिस समय वह इस देश में आये थे, उस समय शकों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का भेद नहीं था। इच्छानुसार कोई भी देवताओं की पूजा का काम हाथ में ले सकता था। सभी युद्ध में खड्ग धारण करते और शान्ति के समय पशुपालन करते। वह उसी तरह घुमन्तू थे जैसे उद्यान और कपिशा के येथा आज हैं। हाँ उनमें सामन्त और साधारण जन का भेद अवश्य था। मैं तो कहूँगा कि जो शक ब्राह्मण या क्षत्रिय बने, वह इन्हीं सामन्तकुलों के थे। उनके बहुसंख्यक लोग गाय-भैंस या घोड़ा चराते इधर-उधर घूमते रहे, फिर वह किसान बन गये। आज राज्य-शक्ति निकल जाने पर उनका प्रताप और धन क्षीण हो गया। अब उन्हें साधारण वैश्य या शूद्र-सा समझा जाता है। उनके भीतर आज भी तथागत के धर्म का मान ज्यादा है, लेकिन उच्च वर्ग के लोग अब अधिकतर तथागत के धर्म को छोड़ ब्राह्मणों के अनुयायी बन गये हैं, क्योंकि हमारा धर्म मनुष्य-मनुष्य को समान कहकर समानता का अधिकार दिला सकता था, किसी को ऊँची जाति और किसी को हीन जाति का कहना उसके लिये संभव नहीं था। मेरा ही कुल अब जो ब्राह्मण बनकर सर्वत्र आदर-सम्मान पाता है, क्या तथागत के धर्म को पकड़े रहने पर वह यहाँ पहुँच सकता था? क्षत्रियों, विशेषकर राजाओं में तो अब सबसे अधिक संख्या शक-संतानों की होती जा रही है। इसे उलटी गङ्गा कह सकते हैं। मनुष्य-मनुष्य में समानता का प्रचार करके अब फिर वर्ण और जाति की विषमता फैलाई जा रही है।''

अहिच्छत्र में हम कुछ अधिक ठहरे। हमें यह भूमि और लोग भी पसन्द आये। परिव्राजक और गृहस्थ दोनों में शालीनता, सहानुभूति और विद्या-प्रेम दिखाई देता था। अहिच्छत्र से हम गङ्गा पार हो पश्चिम की ओर उस भूमि में पहुँचे, जो बुद्धिल के अनुसार दक्षिण-पंचाल थी। काम्पिल्य अब एक गाँव रह गया था, जिसके आसपास पुराने नगर के ध्वंस दूर तक फैले हुये थे। बुद्धिल के कथनानुसार तथागत यहाँ आये थे। उस समय इसे किम्बिला कहा जाता था। वहाँ से आगे बढ़ते हम संकास्य गये। यह भी अपने अतीत के वैभव को खो चुका है। काम्पिल्य, संकास्य (संकिसा), अहिच्छत्रा जैसे कितने ही प्राचीन नगरों के वैभव को छीनकर कान्यकुब्ज आज समृद्ध बना हुआ है। संकास्य गंगा से दूर एक छोटी सी नदी के किनारे बसा हुआ है। यह छोटी नदी कान्यकुब्ज के पास गंगा में मिल जाती है। इसमें बरसात छोड़कर और समय बड़ी-बड़ी नावें नहीं आ सकतीं, इसलिए बारहों महीने नदी द्वारा व्यापार नहीं हो सकता था। कान्यकुब्ज गंगा के किनारे होने से इस बारे में अधिक भाग्यशाली है। जैसा कि काम्पिल्य नगरी किसी समय थी। संकास्य बौद्धों के लिए एक पुनीत भूमि है: तथागत स्वर्गलोक में अपनी माता मायादेवी को उपदेश देने के लिए जाकर एक वर्षावास बसे, फिर देवलोक से दाहिने और बाँये ब्रह्मा तथा इन्द्र द्वारा छत्र-चामर धारण किए इसी संकास्य में उतरे। बुद्धिल के अनुसार यह सारी गप्प है, यद्यपि वह इसे कहकर संकास्य के भिक्षुओं को अपना शत्रु बनाने के लिए तैयार नहीं थे। अहिच्छत्र की तरह यहाँ भी सम्मितीय निकाय के भिक्षु रहते और उसी तरह यहाँ भी पाशुपतों के कितने ही मठ और देवालय हैं। संकास्य का मुख्य विहार बड़ा ही सुन्दर है। यहाँ वह तीन सीढ़ियाँ भी पाँती से दक्षिण से उत्तर की ओर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चली गई हैं, जिनसे तथागत त्रयशृंत्रिश देवलोक से उतरे थे। "सुधर्मा देवसभा और त्रयः त्रिंश देवलोक जिस भूगोल पर अवस्थित थे, उस भूगोल को ही आर्यभट्ट ने तोड़ फेंका" यः बुद्धिल का कथन था। हाँ, वहाँ वृषभारुढ़ अशोक-शिलास्तम्भ दर्पण की तरह चमकता जरूर बतलाता है कि अशोक के समय भी देवावतरण की कथा मानी जाती थी।

कान्यकुब्ज—संकास्य से हम नदी के किनारे-किनारे कान्यकुब्ज नगरी की ओर चले पंचाल उत्तर का हो या दक्षिण का, दोनों ही धन धान्य-सम्पन्न देश हैं। रास्ते में जंगल शाः ही कहीं दिखाई पड़ा, सब जगह गाँव ही गाँव और खेत थे। जौ-गेहूँ के खेत दूर-दूर तक गाँव के पास आम की अमराइयाँ हैं। राजधानी के निवासियों ने दूर-दूर तक अपने लगा रक्खे हैं। राजा, राजकुमार, रानियों के उद्यान और उनके भीतर छोटे-छोटे किन्तु सुन्द प्रासाद नगरी से कोसों दूर तक मिलते हैं। राजधानी लक्ष्मी का आवास होती है, लेकिन ही शत्रु-राजा जब चढ़ दौड़ता है, तब मृत्यु की लीला और संहार सबसे अधिक यहीं दिख पड़ता है। कान्यकुब्ज एक नगर तौर पर पहले भी गङ्गा के पश्चिमी तट पर मौजूद था, लेकि उसे राजधानी बनने का सौभाग्य मौखरियों द्वारा ही प्राप्त हुआ। पाटलिपुत्र या साकेत छो ड़कर मौखरी क्यों यहाँ राजधानी बनाने आये? वाराणसी, कौशाम्बी जैसे और भी प्राचीन भव्य नगर मौजूद थे। बुद्धिल से पूछने पर उन्होंने बतलाया। मध्यमण्डल के सबसे प्रचण्ड (पश्चिम में) थे, जिनके साथ मुकाबिला करने के लिए सबसे अधिक तैयारी राज्य के पश्चि भाग में करनी पड़ती थी। यवन और शक इधर ही से आये थे, उनसे लोहा लेने के पाटलिपुत्र बहुत दूर पड़ता था और गंगा के किनारे तथा पश्चिमी सीमान्त के नजदीक हों कान्यकुब्ज एक बड़ा स्कन्धावर बनने योग्य था। स्कन्धावार (सैनिक छावनी) के रूप में इस नगर का आरम्भ हुआ जो शताब्दियों तक स्थायी हो कर एक बड़ी नगरी में परिणत गया। येथा मध्यमण्डल में संहार करने वाले अभी हाल के शत्रु हैं जिनका सामना स्थाण्वी के राजा करते रहे। मौखरियों ने भी अपने वंश की स्थापना करते हुये इसी को नगरी बनाया।

—तो तुम्हारे विचार में मध्यमण्डल के प्रचण्ड शत्रु पश्चिम से आते हैं, इसी राजधानी पश्चिम की ओर खिसकती आई। तब तो पूर्व को मध्यमण्डल की राजधानी का सौभाग्य नहीं प्राप्त होगा और कान्यकुब्ज गंगा जैसी महानदी के किनारे बसने के सदा के लिए मध्यमण्डल की राजधानी रहेगा।

—सदा के लिए किसी को राजधानी या किसी और बात का ठेका नियति ने नहीं रक्खा है। हम इतना ही कह सकते हैं कि यह सेना और व्यापार दोनों की दृष्टि से बड़े अनु स्थान पर अवस्थित है। मौखरियों के सैनिक बल को देखकर पश्चिम से कोई शत्रु कान्य की ओर लोभ भरी दृष्टि से देखने की हिम्मत सहसा नहीं करेगा। राजधानी केवल धन सम्पत्ति की खान नहीं होती। यदि ऐसी होती तो उसे शत्रु की बाँहों से बहुत दूर रखने कोशिश की जाती। वह हथियारबन्द प्रचण्ड बल का स्कन्धावार भी होती है, इसलिए निर्णायक युद्ध-क्षेत्र के समीप रखने की आवश्यकता होती है। ऐसा निर्णायक युद्ध-क्षेत्र पश्चि शत्रुओं के लिए स्थाण्वीश्वर के आस-पास की भूमि है, इसलिए जब तक महानदियाँ सभी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के यातायात के सबसे सुगम साधन हैं, तब तक के लिए कान्यकुब्ज को मध्यमण्डल की राजधानी रहना पड़ेगा।

गुप्तों ने जब अपनी पश्चिमी स्कन्धावार का मुख्य सेनापति बनाकर हरिवर्मा को कान्यकुब्ज में बैठाया था, उस समय किसको पता था कि यह मौखरी स्कन्धावार राजधानी का रूप लेगा। शक्तिशाली सामन्त और सेनापति राजवंश के दुर्बल होने पर उसका स्थान लेते हैं, यह कोई अनोखी बात नहीं है। सामन्त और परमभट्टारक महाराजाधिराज एक ही वर्ग के हैं, इसीलिए हरिवर्मा के पुत्र आदित्यवर्मा की रानी गुप्तवंशजा थी। इन दोनों का पुत्र ईश्वरवर्मा (524—50 ई०) तो गुप्तों का दौहित्र था। मिहिरकुल को परास्त करने में मालवराज यशोवर्मा के साथ-साथ मौखरी ईश्वरवर्मा का भी खास हाथ था। हूणों की पराजय में ईश्वरवर्मा का सहभागी होना कन्नौज के उत्कर्ष का कारण हुआ। मगध में अवस्थित गुप्तवंशी कुमारगुप्त III का अब भी दावा है कि ईश्वरवर्मा मेरा सामन्त है, लेकिन सामन्त जबान से कोई नहीं होता। इसका फैसला तो तलवार करती है। यशोवर्मा के अवसान के बाद ईश्वरवर्मा की शक्ति और बढ़ गई। कुमारगुप्त से उसकी झड़प हो चुकी है। कान्यकुब्ज वाले अपने नगर के इतिहास को बहुत प्राचीनकाल तक ले जा सकते हैं, लेकिन उसके वैभव का आरम्भ मौखरी-सेनापति हरिवर्मा के समय से होता है, इसमें सन्देह नहीं।

नगर बड़ी तेजी से बढ़ रहा है। गंगा के किनारे कोसों दूर तक वह फैल चुका है, समय के बीतते-बीतते और भी बढ़ेगा। उसके चारों तरफ ऊँचे नगर-प्राकार हैं, सैकड़ों सौध और प्रासाद खड़े होते जा रहे हैं जिनके देखने ही से मालूम होता है कि नगर नया है। उपनगर के पुराने बाग अब सेठों और सामन्तों के महलों के रूप में परिणत होते जा रहे हैं और उद्यान दूर तक लगते जा रहे हैं। बागों में छोटे-छोटे किन्तु सुन्दर मकान, स्वच्छ सरोवर और पुष्पवाटिकायें हैं। हम लोग अपने पहाड़ के प्रकृति के हाथों सँवारे निराले सौंदर्य को आसपास देखने के अभ्यस्त हैं। मैदानी लोग भी सौंदर्य से प्रेम करते हैं और उसके बनाने में प्रकृति की अपेक्षा वह अपने हाथों का अधिक भरोसा रखते हैं। देवालय और विहार भी नगर की शोभा हैं, इसलिए उनकी संख्या भी बढ़ती जा रही है। यहाँ निर्ग्रन्थ (जैन) और पाशुपत देवालय तथा मठ जहाँ हैं, वहाँ हीनयान और महायान दोनों के अनेक विहार हैं जिनमें सैकड़ों भिक्षु रहते हैं। कान्यकुब्ज की स्थापना के बारे में भिक्षुओं ने बतलाया प्राचीनकाल में पंचालराज ब्रह्मदत्त के पास कोई ऋषि आया जिसे राजा ने अपनी कन्यायें प्रदान की। राजकन्याओं ने ऐसे कुरूप ऋषि से ब्याह करना पसन्द नहीं किया, केवल सबसे छोटी कन्या ने पिता के अमंगल के डर से विवाह स्वीकार किया। ऋषि को जब यह बात मालूम हुई, तो उसने इन्कार करने वाली राजकन्याओं को शाप दे दिया और वह कुब्जा (कुबड़ी) हो गईं। कन्या-कुब्जा के सम्बन्ध से नगर का नाम कान्यकुब्ज पड़ा। ब्राह्मण इस नगर का पुराना नाम महोदय बतलाते हैं। पंचालराज ब्रह्मदत्त की जगह राजा कुशनाभकी सौ कन्याओं को दुर्व्यवहार के कारण वायु ऋषि ने शाप दिया जिससे कन्यायें कुब्जा हो गईं। इसी के कारण महोदय का नाम कान्यकुब्ज पड़ गया। तथागत के जीवनकाल में नगर का नाम कान्यकुब्ज ही था, बुद्धिल ने विनय पिटक का उद्धरण देते हुए बतलाया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नगर के पश्चिमोत्तर अशोक-स्तूप है। यहीं पर तथागत ने धर्मोपदेश किया था। यहाँ एक छोटे स्तूप के भीतर तथागत के केश और नख-धातु रक्खी हुई हैं। कान्यकुब्ज का वैभव आज भी स्पृहणीय है, यद्यपि प्राचीन होते हुये भी इसको एक मुख्य नगर बनने का अवसर मिले एक शताब्दी से अधिक नहीं हुआ। मैंने कपिशा और कश्मीर के नगरों को भी देखा, जम्बू द्वीप (भारत) के भी पाटलिपुत्र, उज्जयिनी आदि पुरियों को देखा। इनके राजपथ गगनचुम्बी अट्टालिकाओं की पाँतियों के बीच से अवश्य जाते हैं। अन्त:पुर के राजभवनों को देखकर आँखों में चकाचौंध हो जाती है। नगरों पान्त में उद्यान-प्रासाद भी स्वर्ग के टुकड़े मालूम होते हैं। उच्च-वर्ग की शालीनता, स्वच्छता, साहित्य, कला, धर्म-प्रेम भर अद्भुत है। शायद मेरी नजरें इन्हीं को देखतीं और दीपक के नीचे काली छाया है, इसकी ओर मेरा ध्यान न जाता; किन्तु बुद्धिल दूसरी ही प्रकृति के थे। वह बुद्धि का पदानुसरण करते थे, तो भी उनका हृदय अपार करुणा से भरा था अपरिचित होने पर भी उनके शांत सुन्दर मुख और तरुणाई के कारण अपेक्षा से अधिक उन्हें भिक्षा मिल जाती। भोजन करके उसमें से कितना ही बच जाता, जिसे वह अपने लोहे के भिक्षा-पात्र में लिए चलते। जहाँ भी कोई भूखा, विशेष कर बालक उन्हें मिलता, उसे खिलाये बिना न रहते। वह कहते—दुनिया में अपार दु:ख है, यह सत्य है। बुद्ध ने इसे स्वीकार किया है। लेकिन, दु:ख अकारण अर्थात् निसर्ग से नहीं होता, किन्हीं कारणों (समुदयों) से ही वह अस्तित्व में आता है, तथागत का कहा हुआ यह दूसरा सत्य भी निर्भ्रन्त है, जो मनुष्य के हृदय में आशा का संचार करता है। अगर दु:ख अकारण होता, तो उसे हटाने के लिए प्रयत्न करना बेकार होता। दु:ख किन्हीं कारणों से होता है। इसके साथ भगवान् ने यह भी कहा कि दुनिया में कोई चीज नित्य नहीं है। दु:ख के कारण भी नित्य नहीं हैं, इसलिए इन कारण कर का नाश (निरोध) होना संभव है। तीसरा यह सत्य भी यथार्थ है। दु:ख के नाश का मार्ग भी है, उपाय भी है। तथागत ने अपने उपदेशित धर्म को बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय कहा, लेकिन संसार में हम क्या देखते हैं। सौ में से सत्तर लोग दु:ख में पड़े हुए हैं। यदि हमें दुनिया में बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय कुछ करना है तो सबसे अधिक कष्ट में पड़े लोगों के दु:खों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। थोड़े से लोग अपार वैभव में पल रहे हैं। उनके लिए दुनिया स्वर्ग है। कहा जाता है इस स्वर्ग को पाना उनके अपने पुरबिले कर्म का फल है। यदि दस आदमियों के सुख-वैभव को जुटाने के लिए 90 आदमियों को पशुवत् काम करना है जिनमें 20 आदमियों का पशु की तरह ही मालिक के हाथों क्रय-विक्रय होना है, यदि कर्म के विधान के लिए यह भीषण विषमता आवश्यक है, तो तथागत-कथित दु:ख के नाश करने का मार्ग गलत हो जायेगा। तथागत ने सबसे अधिक दु:ख-विभूति मनुष्यों ही नहीं प्राणियों तक की सेवा को सबसे बड़ा धर्म कहा। जातकों में हम इसी का सब जगह उदाहरण पाते हैं।"

बुद्धिल को ही इसका श्रेय देना चाहिये जो मेरी आँखें भव्य अट्टालिकाओं की तरफ नहीं, बल्कि टूटी झोपड़ियों की तरफ आकृष्ट होतीं। मेरा ध्यान हृष्ट-पुष्ट, सुभूषित और सुपरिधानित गुलाबी मुखों की तरफ नहीं जाता था, बल्कि बाल्य और तारुण्य में ही वृद्ध हो गये, चर्म और अस्थि-कंकाल मात्र रह गये नंगे-भूखे, जीर्ण-शीर्ण लोगों की ओर अधिक जाता। मैं अपने दोषों को जानता हूँ। मैं बिल्कुल स्वार्थशून्य रहा, यह नहीं मानता और जि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धर्मव्रतों को मैंने स्वीकार किया, उनका सदा अनुपालन किया, यह भी बात नहीं है। परन्तु, मेरा हृदय सदा किसी के दु:ख को सहने में असमर्थ रहा, इसे मेरा गुण समझें या निर्बलता। कितनी ही बार मेरा मन करता, यदि मेरे जीवन का एक-एक क्षण, मेरे शरीर का एक-एक अंग संसार के इन दु:खों के थोड़े से अंश को भी दूर कर सकता तो मैं बड़ी प्रसन्नता से उन्हें अर्पण कर देता। लेकिन तथागत के धर्म द्वारा आलोकित पथ पर चलते हुये भी मैं सर्वत्र अन्धकार देखता हूँ। दु:ख के रास्ते को छोड़कर बहुजन कैसे सुख को अपनी आँखों के सामने देखेंगे? अट्टालिकायें इन्हीं भूखे मरते हाथों ने बनाई हैं। देवेन्द्र शक्र का वैभव जिसे मैंने कान्यकुब्ज के राज-प्रासाद में राजमहिषी का निमंत्रण पाने के समय जाकर देखा था, उसके सृजन करने वाले इन्हीं भूखे-नंगों के हाथ हैं। गाँवों में हम पास ही पास गड़हा और ऊँचे मकान देखते हैं। इन ऊँचे मकान के उठाने के लिए गड्ढों को बनना पड़ा। वैभव, सुख, निरोगता सब जगह होनी चाहिए। वह कुछ मुट्ठी भर लोगों के कर्म में लिखी नहीं होना चाहिए।

तथागत ने बिना अपवाद के दुनिया की हरेक वस्तु को अनित्य बतलाया है, सभी क्षणिक हैं। मनुष्य के पास बुद्धि है, वीर्य और पराक्रम है। वह अपने इन साधनों द्वारा भवितव्यता को बदल सकता है। तथागत ने बदला, उन्होंने दु:ख के सागर में शान्ति, उत्सर्ग का द्वीप स्थापित किया। जब भी कोई मनुष्य अपने स्वार्थों से ऊपर उठकर सोचता है तो उसे सबके सुख में ही सुख मिलता है। बोधिसत्व ने जिस वक्त भूखी व्याघ्री को अपने शरीर को देने का संकल्प किया और व्याघ्री ने अपने तीक्ष्ण दाढ़ों को उनकी तरफ बढ़ाया तो उन्हें भय और दु:ख नहीं, बल्कि परमशान्ति और परमसुख मिला था। इसीलिए तो इसे पारमिता (पराकाष्ठा) कहा गया। यदि तथागत ने दु:ख के नाश की सम्भावना बतलाई, उसका मार्ग भी है, इसे प्रकट किया, तो अवश्य वह उस मार्ग पर चलने वाले पुरुष पैदा होंगे। वह समय कभी आवेगा जब कि यह जगती सुखावती बनेगी, यहाँ के मानव दिव्य और समान होंगे। हमारे उद्यान में भी विषमता है, दु:ख है, लेकिन यहाँ जिस विषमता को विशाल प्रासादों और जीर्ण-शीर्ण झोपड़ों के बीच में, आढ्यों-कुलीनों और अन्त्यजों-अकिंचनों के रूप में मैं देख रहा था, उसका हमारे यहाँ कोई पता नहीं था। एक ओर धनी और निर्धन का भेद था तो दूसरी ओर जाति-भेद भी यहाँ भीषण था। ब्राह्मण-क्षत्रिय, राजा-पुरोहित अपने को पृथ्वी का स्वामी समझते, दिव्य भोग भोगना अपना अधिकार मानते जब कि शूद्र और चांडाल मनुष्य कहलाने के भी अधिकारी नहीं हैं। तथागत ने इस विषमता का विरोध करते बतलाया कि जाति से न कोई ब्राह्मण होता, न कोई कुलीन। यह शील और सदाचार ही है जो आदमी को बड़ा बनाता है।

कभी-कभी इन बातों पर हम दोनों ने आपस में चर्चा की, कभी-कभी जाति-पाँत के पक्षपाती ब्राह्मणों से भी हमारा वाद हुआ। वह सिद्ध करना चाहते थे कि ऊँच-नीच का भेद निसर्गत: है। वह कहते, इसीलिए तो उच्च कुल वाले गोरे होते हैं और नीच कुल वाले काले। यह ठीक है कि उच्च वर्ण वाले जम्बू-द्वीप में गोरे होते हैं, लेकिन कभी-कभी उनमें कोई-कोई साँवले और काले भी दिखाई पड़ते हैं। पशु की तरह बिकने वाले दास-दासियों में तो कितने ही गोरे होते हैं। गोरे दास-दासियों को दूर-दूर के देशों से बड़े मूल्य पर खरीद कर लाया जाता है। फिर उद्यान और कपिशा की तरह भी दुनिया में देश हैं जहाँ के सभी लोग गोरे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होते हैं और मध्यमंडल वालों से बहुत अधिक गोरे। हमारे लोगों जैसे सुनहली या नीली आँखों और भूरे बालों वाले नर-नारी यहाँ बहुत कम मिलते हैं। फिर मैंने अवारों और तुर्कों में देखा, वहाँ निसर्गत: कोई रंग-भेद या आकृति-भेद नहीं, महाचीन में भी दास-दासी होते हैं, गरीब-अमीर होते हैं, लेकिन उनमें वर्ण और आकृति का वैसा भेद नहीं। यह सच है कि जम्बू-द्वीप में अधिकांश दास-दासी काले या साँवले होते हैं। लेकिन, इसके कारण यह कहना ठीक नहीं मालूम होता कि सभी काले लोग दास-दासी और शूद्र-चाँडाल बनने के लिए हैं।

जब मैं तथागत की चरणधूलि से पवित्र स्थानों में जाता, वहाँ रक्खी हुई पवित्र धातुओं में सबके सच्ची होने पर विश्वास न करने पर भी उन्हें देख मेरा हृदय गद्गद् हो जाता, तथागत यहाँ आये थे, यहाँ घूमे थे, यहाँ बैठे थे, यहाँ उन्होंने दु:खी प्राणियों को आदिकल्याण, मध्यकल्याण, पर्यवसान-कल्याण वाले उपदेश दिये थे। कितनों ने उस उपदेश को सुनकर अपनी स्वार्थ की मात्रा कम की और दूसरों के लिए वैद्य और औषधि बने। इस ख्याल के आने पर मैं कुछ समय के लिए आसपाम की पीड़ाजनक बातों और दृश्यों को भूल जाता। जन्मभूमि छोड़ने के बाद पहली बार मैंने एक सबसे वैभवशाली नगर—कान्यकुब्ज—को देखा और उसी समय मेरे मन में इस तरह के भाव जागृत हुये।

मगध की ओर

(544—45 ई०)

कान्यकुब्ज से हम दोनो आगे बढ़े। गर्मियों के दिन थे, लेकिन हम दो-तीन घड़ी दिन रहने ही पर चलते और कोशिश करते कि अन्धेरा होने से पहले आगे किसी विहार में पहुँच जायें। कश्मीर, कपिशा, तक्षशिला, स्रुघ्न, कान्यकुब्ज, संकास्य में जगह-जगह के इतने भिक्षु मिले थे कि हम चाहते तो रास्ते के विहारों की सूची बना सकते थे। मोटे-मोटे गंतव्य स्थानों का पता हमने जरूर कर लिया था, लेकिन आगे के रास्ते को वहाँ पहुँचने के बाद के लिए छोड़ रक्खा था। कान्यकुब्ज से हमारा लक्ष्य कौशाम्बी थी। कान्यकुब्ज, काम्पिल्य, संकास्य, आलविका (आलंभिका) पंचाल देश ही में पड़ते हैं। अगला दर्शनीय स्थान हमारे लिये आलविका था। बुद्धिल ने बतलाया कि यहाँ का यक्ष (देवता) आलवक पंचालचंड के नाम से प्रसिद्ध था, वह बड़ा ही क्रोधी था। उसने अपने क्रोध को एक बार बुद्ध पर भी प्रयोग करना चाहा, लेकिन उसे परास्त होना पड़ा। कश्मीर छोड़ने के बाद हमें अब समतल भूमि से ही गुजरना पड़ता था। शत्रुघ्न, कणखल (कनखल) तथा कुछ आगे तक उत्तर में हिमालय कभी-कभी दिखाई पड़ता था, लेकिन अब हम उससे बहुत दूर हो चुके थे। हमारे रास्ते में और आसपास जहाँ-तहाँ गाँव मिलते थे, जिनके पास आम और दूसरे वृक्ष पाये जाते। बड़े नगरों के क्रीड़ोद्यानों में नारंगी, सेब, अंगूर-जैसे मेरे चिर-परिचित फलों के वृक्ष भी थे, लेकिन उनमें वह स्वाद कहाँ? विहारों के उद्यानों को भी सुन्दर और सुफल रखने की कोशिश की जाती थी। गर्मियों में हरियाली केवल बड़े-बड़े वृक्षों के रूप में अथवा ऊख और कुछ साग-सब्जी के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खेतों की शकल में ही देखने को मिलती थी। इनके अतिरिक्त गाँवों के खेतों के बाहर पलाश, करौंदे और दूसरी तरह के वृक्ष मिलते थे। जंगल काफी थे, लेकिन हाथी, बाघ, सिंह और चीता-जैसे भयंकर जन्तुओं का रहना बड़े-बड़े जंगलों में ही होता था जो अधिकतर हिमालय और विन्ध्यपर्वत के नजदीक थे। इन जंगलों में पचासों-सैकड़ों आदमियों के सार्थ के साथ जाना पड़ता था इसलिये अधिक डर नहीं था।

हम अब तक बराबर स्थल-पथ से आये थे। कान्यकुब्ज में सलाह हुई कि आगे जमुना के तट पर पहुँच कर वहाँ से कुछ जल-यात्रा भी पूरी की जाये, इसलिये आलविका (अरवल) से हमने जमुना का रास्ता लिया। गंगा से जाने पर प्रयाग पहुँच फिर जमुना के ऊपर की ओर जाना पड़ता। यद्यपि सभी मनुष्यों के बारे में वैसा नहीं कहा जा सकता, लेकिन तो भी मध्यमंडल के लोग भिक्षुओं के प्रति बड़ा सम्मान दिखलाते हैं। वणिजसार्थ चाहे जल-पथ से जाते हों या स्थल पथ से, प्रव्रजितों (साधुओं) की हर तरह से सहायता करने के लिए तैयार रहते हैं। आलविका से हमारा रास्ता अधिकतर दक्षिण-पूर्व की तरफ था। यहाँ गंगा और जमुना के बीच की भूमि बड़ी सुहावनी है। यह दोनों नदियाँ पुण्यतोया समझी जाती हैं उनके कारण यदि यहाँ के निवासियों को अपने देश का अभिमान हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। वस्तुत: अपनी जन्मभूमि के प्रति प्रेम और अभिमान मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। जब अपने ही जन्म ग्राम के आसपास आदमी रहता है, तो उसका यह प्रेम अपने ग्राम में केन्द्रित होता है। दूर हटने पर अपना जनपद मधुर मालूम होता है। जिस वक्त हम जमुना-गंगा के बीच (अन्तर्वेद) में पर्यटन कर रहे थे, उस समय न जाने कितनी बार उद्यान मुझे याद आता था। वह सीधे खड़े सदा हरे रहने वाले देवदार, और वह घर-घर और कल-कल करके चलने वाली शीघ्रगामिनी नदियाँ। लेकिन, मध्यमंडल के लोग भी अपनी विशाल और शान्ततोया नदियों का अभिमान कर सकते हैं। वहाँ की गर्मी हमारे लिये अप्रियकर हो सकती थी, लेकिन जो ऐसे ही देश में बराबर से रहते चले आये हैं उनके लिए वह वैसी नही हो सकती थी। गर्मी के दो अन्तिम मास मेरे लिए असह्य हो जाते और भरसक मैं इस समय यात्रा नहीं करना चाहता था। गरम हवा लग जाने से बीमार क्या, मरने का भी डर था। आज महाचीन में जब मैं इन बातों को लिखने बैठा हूँ तो मुझे सारा उद्यान, कपिशा, मगध—अर्थात् सारा जम्बू-द्वीप—एक समान प्रिय मालूम होता है। कितनी ही बार उत्कट इच्छा हो जाती है कि एक बार फिर उन स्थानों को देखूँ, जहाँ मैंने अपने बाल्य और तारुण्य में विचरण किया था। लेकिन, अब तो वह स्वप्न में ही खंडित रूप से जब-तब हो सकता है। न पैरों में उतनी शक्ति है, न आयु उतनी अवशिष्ट है, न हृदय में उतना साहस और उत्साह है। फिर आयु के साथ आदमी के दृष्ट स्थानों की संख्या भी बहुत बढ़ जाती है जिसके कारण यह निश्चय करना मुश्किल हो जाता है कि कहाँ जायें और किसे छोड़ें। मनुष्य की स्मृति भी कितनी मधुर और बहुमूल्य होती है। लेकिन, वह कितने भंगुर पात्र में रक्खी हुई है। हरेक शरीर के नाश के साथ ऐसी असंख्य मधुर स्मृतियाँ हमेशा के लिए लुप्त हो जाती हैं। चीनी पुरुषों को मैं इसके लिए साधुवाद दूँगा कि वह ऐसी स्मृतियों की कदर करते हैं, उन्हें सुरक्षित रखते हैं। मेरे जन्म से 18-20 वर्ष पहले फ़ा-शीन (फा-हियान्) ने अपनी अद्भुत और विशाल यात्रा कर उसे लेखबद्ध करके रख दिया। यदि उन जैसे चीनी परिव्राजकों की यात्रायें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैंने न पढ़ी होतीं तो मुझे अपनी यात्राओं के लिख छोड़ने का ख्याल नहीं होता। फा-शीन अभी ही विस्मृत होने लगे। समय आयेगा, उस वक्त लोगों को यह भी पता नहीं होगा कि फा-शीन किस जगह रहते थे। लेकिन, उन्होंने जो विवरण लिख छोड़ा है, वह चिरस्थायी रहेगा।

हम एक सप्ताह थोड़ा-थोड़ा चलकर जमुना के तट पर पहुँचे। मनुष्य को एक जगह से दूसरी जगह जाने की सुविधाओं का ध्यान होता है। हम भिक्षु स्थल-मार्ग में घोड़े, गाड़ी, पालकी या दूसरे तरह के वाहन का इस्तेमाल नहीं कर सकते और यदि इस्तेमाल करने की अनुज्ञा होती, तो भी में तो उसे कभी नहीं पसन्द करता। पादचारिका में आदमी पृथ्वी को अपने पैरों से नापता कितने भिन्न-भिन्न दृश्यों को एकान्त मन से देखता, उनके सौन्दर्य का आनन्द लेता है, यह बात सवार चलने से नहीं हो सकती। वस्तुतः यह भी एक लालच था, जिसके कारण हमने नदी-पथ से चलना नहीं पसन्द किया था। जब दो सहयात्री यात्रा के सम्बन्ध में कम-से-कम बिल्कुल एक जैसा विचार रखते हों दोनों की रुचियाँ एक सी हों, तो यात्रा में कितना आनन्द आनन्द आता है, इसे वही जानते हैं, जिनको कभी इसका तजुर्बा हुआ हो। हम दोनों ऐसे ही साथी थे। यदि चाहते तो सत्रुघ्न से ही हम जमुना की नावों से कौशाम्बी चले आते, लेकिन तब हम बहुत से स्थानों को देखने से वंचित हो जाते। शायद जमुना के किनारे जिस स्थान पर हम पहुँचे, उसका नाम चन्द्रपुर था। जमुना कुछ-कुछ गंगा की तरह ही विशाल है, लेकिन इस जगह उसके किनारे के घाट कुछ अधिक ऊँचे हैं। चन्द्रपुर एक अच्छा खासा बाजार है, जिसके घाट पर व्यापारियों की नौकायें बराबर आती-जाती रहती हैं, इस लिये वहाँ पहुँचने पर हम इस बात से निश्चिन्त थे कि नीचे की ओर कौशाम्बी जाने वाली नाव के मिलने में दिक्कत नहीं होगी। आखिरी दिन हमें बहुत सी गाड़ियाँ भी मिलीं, जिन पर लदा हुआ कितना ही माल चन्द्रपुर की नौकाओं के लिये ही था।

जहाँ बड़े-बड़े व्यापारी रहते हों, या कोई अच्छा धनी सामन्त हो, वहाँ अच्छे खासे विहार या परिव्राजकाराम का होना आवश्यक है। चन्द्रपुर में एक अच्छा बिहार था, जिसके भिक्षु कुछ स्मृति-चिन्हों को दिखलाकर यह बतलाना चाहते थे, कि शाक्य मुनि ही नहीं, बल्कि भद्रकल्प के और भी कितने ही बुद्ध यहाँ आये थे। यही बातें हर जगह दोहराई जातीं, फिर बुद्धिल का सत्संग था, जिसके कारण मैं ऐसी बातों पर सहसा विश्वास नहीं कर सकता था।

आवासिक भिक्षुओं ने हमारा बड़ा स्वागत किया। बुद्धिल जहाँ भी पहुँच जायें, नये दोस्तों के बनाने में उन्हें देरी नहीं लगती थी, और दोस्ती भी ऐसी, जो जितना ही अधिक सहवास हो, उतनी ही बढ़ती जाती थी। आखिर मनुष्य को जो वाणी मिली है, उसमें यदि मधु घोल दी जाये, तो वह किसको बस नहीं कर सकती? बुद्धिल के मुख मंडल पर हर वक्त मुस्कराहट खेला करती थी, वह सचमुच अजात-क्रोध थे। उन्होंने यद्यपि मुझे पढ़ाया था, लेकिन वह बराबर मुझे अपने वयस्क मित्र के समान ही मानते थे। उन्होंने कभी मुझे उपदेश देने की कोशिश नहीं की, लेकिन उनके आचार-व्यवहार को देखकर मैंने न जाने कितनी बातें सीखीं। उन्होंने मुझे अपने आचरणों द्वारा बतलाया कि पर्यटक को किस तरह का होना चाहिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चन्द्रपुर के आवासिक भिक्षुओं ने इस बात का प्रयत्न किया कि हम ऐसे सार्थवाह की नाव से जायें, जिसमें हमें कोई कष्ट न हो। कौशाम्बी के बड़े श्रेष्टियों में सुफल श्रेष्टी भी थे, जिनकी पण्यद्रव्यों से लदी नौकायें पूर्व-समुद्र (बंगाल की खाड़ी) से गंगा, जमुना, सरयू, अचिर-वती (राप्ती) और मही (गंडक) से होकर उनके उन घाटों तक जाती थी, जहाँ पहाड़ आकर उनका रास्ता नहीं रोक देता। उसके कार्यकर्त्ता, सभी बड़े-बड़े नगरों में मौजूद थे। यदि हम चाहते, तो कान्य-कुब्ज में भी उससे बातचीत कर लिये होते, लेकिन उस वक्त हमें इसकी जरूरत नहीं थी। चन्द्रपुर बिहार के स्थविर (महन्त) ने बतलाया, कि सुफल श्रेष्टी मथुरा से लौटकर आजकल चन्द्रपुर में आये हुये हैं। स्थविर ने बढ़ा-चढ़ाकर हम दोनों का गुण-गान सुफल श्रेष्टी के सामने किया। श्रेष्टी वैसे भी बुद्धश्रावकों का भक्त था। उसे यह अभिमान था कि वह घोषित श्रेष्ठी का वंशज है, जिसने तथागत का कौशाम्बी में कितनी ही बार आतिथ्य किया था और घोषिताराम बनाकर भिक्षु-संघ को अर्पित किया था। स्थविर से हमारे बारे में सुनकर उसने अगले दिन हमें भोजन का निमंत्रण दिया, और इस बात की बड़ी इच्छा प्रकट की कि हम श्रेष्टी के साथ उसी की नाव में चलें। श्रेष्टी के साथ एक सप्ताह की यात्रा सुखपूर्वक हुई, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। साथ ही वह बड़ी ज्ञानवर्द्धक भी थी। जिस तरह भिक्षु और परिव्राजक अपना जीवन विचरण करने में बिताते हैं, श्रेष्टी लोग भी अपनी सफलता के लिए वैसा करते रहते हैं। विश्वासपात्र कर्मियों द्वारा अपने वाणिज्य को वह चला सकते हैं, लेकिन उसे और सफलतापूर्वक चलाने के लिये आवश्यक है कि श्रेष्टी स्वयं भी उन-उन राजाओं और सामन्तों का दर्शन और भेंट-पूजा करे, जिनके राज्य में उसे व्यापार करना है। यद्यपि वाराणसी से शत्रुघ्न तथा मौखरी परमभट्टारक महाराजाधिराज ईश्वर वर्मा का ही राज्य है और उनके साथ सुफल श्रेष्टी का बहुत परिचय नहीं, बल्कि बन्धुत्व है, लेकिन केवल परमभट्टारक के साथ का ऐसा सम्बन्ध पर्याप्त नहीं है, उपरिकों (प्रदेशपतियों), कुमारामात्यों (विषयपतियों, जिलाधीशों) को यदि प्रसन्न न रक्खा जाये, तो बना काम भी बिगड़ सकता है। इसीलिए श्रेष्ठि को हर साल किसी न किसी ओर की यात्रा करनी पड़ती है। श्रेष्टी का व्यापार मगध और अवन्ती के राज्यों में भी होता, इसलिए वह वहाँ भी जाता था।

सूर्योदय से पहले ही उस दिन हमारी नौका जमुना पर चल पड़ी। रास्ता प्रवाह की ओर था। पतवारों के चलाने का मतलब यही था कि वह और द्रुतगति से चले। लेकिन, उसकी आवश्यकता हमें नहीं पड़ी, क्योंकि उस ऋतु में चलने वाली पछुआ हवा अपने आप पाल को उड़ाये लिये जा रही थी। जल में रहते भी गर्मी का मध्याह्न सुखकर नहीं होता, किन्तु श्रेष्ठी की अपनी नाव एक छोटे-मोटे प्रासाद जैसी थी, जिसमें हर तरह के आराम का प्रबन्ध था। गर्मी बढ़ने पर चँदवा टँगने वाली छत पर खस बिछाकर पानी का छिड़काव होता रहता, खिड़कियाँ और दरवाजों में भी उसका प्रबन्ध था। यह सामान्य माल ढोने वाली नौका नहीं, बल्कि विलास नौका थी, जिसमें आराम के साथ हरेक चीज को बड़े कला पूर्ण रूप से सजाया गया था। श्रेष्ठी 50 वर्ष के करीब के थे, उनकी पत्नी उनसे पाँच-सात वर्ष छोटी होगी। घर का काम ज्येष्ठ पुत्र ने सँभाल लिया था, इसलिए उनको उतनी चिन्ता नहीं थी। श्रेष्ठी-पत्नी तो अब सारा समय पूजा-पाठ और कथा-उपदेश में बिताती थी। यात्रा में जहाँ भी मालूम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होता, कि यहाँ पर तथागत का कोई पद चिह्न है, तो वह वहाँ दर्शन के लिये अवश्य जाती और भिक्षुओं को दान तथा सहाय देने में बड़ी उदारता दिखलाती। श्रेष्ठी की नाव के साथ चार और नौकायें चल रही थीं, जिनमें उनके रक्षी और परिचारक थे। जहाँ सम्पत्ति हो, वहाँ भय होना भी स्वाभाविक है। यद्यपि मौखरी ईश्वर वर्मा का शासन बड़ा दृढ़ और शान्तिपूर्ण है, लेकिन जब तक सुख और सम्पत्ति थोड़े से मनुष्यों के भाग्य में वदी है, तब तक चोर और दस्यु बिल्कुल नष्ट कैसे हो सकते हैं? फिर वाणिज्य सार्थों की तो अपनी परम्परा होती है, जो शान्त और अशान्त हर तरह के शासन में चलती ही रहती है। जल-सार्थ हो या स्थल-सार्थ, सार्थवाह इस बात की पूरी तैयारी करके यात्रा करते हैं कि रास्ते में दस्युओं से मुकाविला होने पर अपनी रक्षा कर सकें। वाणिज्य नौकायें भी इसीलिए एक-दो नहीं वल्कि बीसियों एक साथ चलती हैं, जिनमें आवश्यकतानुसार कुछ सशस्त्र योद्धा तथा सभी लोग हथियार बन्द होते हैं। श्रेष्ठी की नौका के साथ भी पचास से ऊपर लड़ने वाले आदमी थे और जहाँ भी भय होता, वह रात की यात्रा नहीं करते।

वर्षा काल में नदियों में पानी वहुत बढ़ जाता है, उनकी धार भी तीव्र और कहीं-कहीं भयानक हो जाती है। अधिक बाढ़ में कितने ही वृक्ष उखड़कर नदी में वह चलते हैं, जिनसे सावधानी के साथ नौकाओं को चलाना पड़ता है। पूछने पर श्रेष्ठी ने वतलाया—"जाड़ों और गर्मियों की अपेक्षा वर्षा में नौका-यात्रा विपद्ग्रस्त हो जाती है, लेकिन मनुष्य का जीवन कब ऐसा है, जब कि उसमें किसी तरह की विपद् का भय न हो। वर्षा काल में तो वाणिज्य के लिए हमें अधिक दूर तक नौका-यात्रा की सुविधा मिलती है। कितनी ही क्षुद्र नदियों में भी इतना पानी हो जाता है कि हमारी बड़ी-वड़ी नावें उनसे होकर बहुत से स्थानों में पहुँच सकती हैं। बड़ी नदियों की अपेक्षा क्षुद्र नदियाँ ही अधिक हैं। यदि वर्षा में उनकी सहायता न ली जाये, तो हमें बहुत सी जगहों पर केवल शकटों या बैलों से ही पण्यका क्रय-विक्रय करना पड़े। स्थल-पथ की अपेक्षा जल-पथ कम खर्च का है और कितनी ही बार उसमें समय भी कम लगता है, इसीलिए वर्षा में हमारी नावों की सरगर्मी ज्यादा वढ़ जाती है।"

जहाँ कोई काम न हो, वहाँ श्रेष्ठी को नावों के ठहराने की आवश्यकता नहीं थी। चन्द्रपुर से कौशाम्बी के बीच में ठहरने की जगहें कम ही थीं। तो भी शाम-सवेरे कुछ समय के लिए हमारी नाव किनारे पर खड़ी होती। ऐसी कम ही जगहें थीं, जहाँ श्रेष्ठी के अपने कर्मी या परिचित न होते। पहले जाने वाली नौकाओं से उन्हें खबर मिल जाती, और वह ठीक समय पर घाट पर उपस्थित रहते। नौयात्री को गर्मियों के धूप से त्राण पाने के लिए किसी वृक्ष की छाया नहीं मिल सकती थी। इसलिये हम अपने नौका गृह की कृत्रिम शीतल छाया में ही पड़े पड़े आगे वढ़ते रहते। भोजनोपरान्त मध्याह्न का समय विश्राम का था। हम दोनों भिक्षुओं के लिए श्रेष्ठी ने अपनी दो कोठरियों में से एक को दे रक्खा था। कभी हम वहाँ सो जाते और कभी वार्तालाप करते। इसके बाद के समयों में कभी श्रेष्ठी और श्रेष्ठी-पत्नी दोनों मेरे या बुद्धिल के उपदेशों को सुनते, या किसी वात के बारे में पूछते। श्रेष्ठी-पत्नी को तथागत की जीवनी और सूक्तियों के सुनने का बड़ा शौक था। इसके लिए उन्होंने अलग समय निर्धारित करा लिया था, जो अपरान्ह में फल-पान कराने के वाद होता था। श्रेष्ठी-पत्नी स्वयं भी सूत्रों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation; Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और जातकों का नियमपूर्वक पारायण करती थीं। लेकिन, जब बुद्धिल के कहने पर महाकवि अश्वघोष के बुद्धचरित का अर्थ सहित पाठ किया, तो वह इतनी प्रसन्न हुई, कि बिना नागा हर रोज समय से पहले ही उसके लिए तैयार हो जातीं। मैंने भी बुद्ध चरित के अनेक पारायण किये हैं। कवि का चमत्कार ही समझिये, जो वह हर बार अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहा। लेकिन बुद्धिल के कथा करने का ढंग ही दूसरा था। वह मूल संस्कृत को बड़े मधुर स्वर में पढ़ते, उसके बाद भाषा (प्राकृत) में उसका ठीक-ठीक अर्थ करते इतना अच्छे ढंग से समझाते, कि मालूम होता तथागत जिस दुनिया में चल रहे थे, वह हमारे सामने सजीव खड़ी है।

यह मैं कहूँगा, कि बुद्धिल की सारी बातें हमारी आज की परम्परा के अनुसार नहीं होती थीं। जब मैं पूछता, तो बुद्धिल कहते—यह जमुना जहाँ सनातन हिमानी से निकलकर पहाड़ों में हहास करती चलती है, उस समय यह वैसी ही होती है, जैसी तुम्हारी सुवास्तु अपने उद्गम स्थान के पास, लेकिन आगे उसमें भिन्न-भिन्न तरह की नदियाँ आकर मिलती जाती हैं, जिनके कारण उसके रूप और आकर में कितने ही परिवर्तन होते जाते हैं। परम्परा की भी बात यही है। वह भी काल बीतने के साथ-साथ नई गढ़ी हुई परम्पराओं से मिलकर परिवर्तित रूप स्वीकार करती है। सिंहल की महाविहार की मौखिक नहीं, लिखित परम्परा को ही ले लें। वह कश्मीर-गन्धार की सर्वास्तिवादी परम्परा से भिन्नता रखती है, और इन दोनों का यदि महायान-परम्परा से तुलना करें तो परिवर्तन और भी अधिक दीख पड़ता है। सभी परम्पराओं में कुछ समानतायें भी हैं। मानना पड़ेगा, वही सबसे प्राचीन परम्परा है। बुद्धिल ने महाविहार (स्थविरवाद) और सर्वास्तिवाद के ही पिटकों और अर्थकथाओं-विभाषाओं का पारायण नहीं किया था, बल्कि सम्मितीय, महासांघिक आदि निकायों के पिटकों का भी अवलोकन किया था। महायान के तो वह पण्डित थे। लेकिन, वह किसी बात के लिए दुराग्रह नहीं रखते थे। अपने ही धर्म वालों के प्रति नहीं, बल्कि बाह्य धर्मियों के सम्बन्धों में भी वह तटस्थता और सहज सहानुभूति रखते थे, इसलिए सभी उनका बड़ा सम्मान करते थे। उन्हें मूर्तिकला, चित्रकला और काव्यकला का भी अच्छा ज्ञान तथा अभ्यास था, यद्यपि उनको सबसे अधिक पसन्द प्रमाण शास्त्र था, दिग्नाग के वह अनन्य भक्त थे। कहते थे : हमें पोथियों और परम्पराओं का अन्धानुसरण न करके विवेक बुद्धि का पथ-प्रदर्शन स्वीकार करना चाहिए।

बुद्ध चरित की कथा करने के समय वह कभी अतिलौकिक घटनाओं और असंभव कथानकों का सहारा नहीं लेते थे। इसके कारण तथागत के मुख मंडल के चारों तरफ फैला प्रभामंडल जरूर लुप्त हो जाता था, लेकिन उसकी वजह से तथागत खर्व नहीं मालूम होते थे, बल्कि उनका पुरुषोत्तम रूप शतगुण भव्य हो जाता था। श्रद्धावती सेठानी को और भिक्षुओं की कथाओं से बुद्धिल की कथा में विचित्रता मालूम होती थी, लेकिन वह उसके लिए कम आकर्षक नहीं थीं। कथा में जहाँ बुद्धिल कपिल वस्तु और वैशाली का वर्णन करते हुये वहाँ के राजा-विहीन गणराज्यों का वर्णन करते, वहाँ साथ ही वह अपनी यात्रा के विशाल अनुभवों का भी उपयोग किये बिना नहीं रहते। सेठानी को और सेठ को भी यह सुनकर आश्चर्य हुआ, कि उनके बुद्धकालीन पूर्वज दादा-दादी वेश-भूषा भाषा-रुचि में आज की अपनी सन्तानों से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बहुत भेद रखते थे। बुद्धिल ने विदिशा (साँची) के चैत्य स्तूप और दूसरे प्राचीन विहार चैत्यों (भरहूत, श्रीपर्वत आदि) की मूर्तियों की प्रतिकृति बनाकर जब उन्हें दिखलाया, तो उन्हें विश्वास हो गया कि तरुण भिक्षु का कहना बिल्कुल ठीक है। बुद्धिल ने बारीक मिट्टी लेकर कुछ मूर्तियों को आँखों के देखते-देखते जरा देर में हाथों के चमत्कार से इतना सुन्दर रूप दे दिया कि सचमुच लोग चकित हो जाते थे।

हमारी सात दिन की नौका-यात्रा हम दोनों को छोड़कर सभी के लिए अतृप्तकर थी। श्रेष्ठी और उनकी पत्नी के आग्रह के कारण कौशाम्बी के घोषिताराम में हमें एक सप्ताह की जगह दो सप्ताह रहना पड़ा। कौशाम्बी कितनी प्रसिद्ध और पुरानी नगरी है? अनेक सुन्दर कथानकों का नायक वत्सराज उदयन यहीं रहता था। तथागत के जीवनकाल में यह एक बड़ी समृद्ध नगरी थी, लेकिन आज वह बहुत कुछ उजाड़ सी हो गयी है। प्रयाग ने इसकी समृद्धि को कुछ-कुछ छीना, कान्यकुब्ज और उससे पहले पाटलिपुत्र के पास यहाँ की लक्ष्मी रूठकर चली गयी। अब भी एक बड़े जल-पथ पर होने के कारण इसमें कुछ-कुछ प्राण दिखाई पड़ता है, नहीं तो कब की मर कर विस्मृत हो गई होती। जब नगर की यह अवस्था हो, तो यहाँ के दसियों संघारामों को खंडहर के रूप में हम देखें, तो इसमें आश्चर्य क्या? जहाँ कभी उदयन का अन्तःपुर था। वहाँ भी सब जगह काल की ध्वंस-लीला दिखाई देती है। एक बौद्ध-मन्दिर 40 फुट ऊँचा अब भी मौजूद है, जिसके भीतर स्थापित चन्दनकाष्ट की बुद्ध-मूर्त्ति के बारे में बतलाया जाता था: इसे राजा उदयन ने तथागत के जीवन काल में उनके रूप को देख कर शिल्पियों द्वारा बनवाया था। बुद्धिल इस पर विश्वास नहीं करते थे। वह कहते थे कि वैदिश गिरि और दूसरे प्राचीन चैत्यों में बुद्ध-मूर्त्ति बनाने का कहीं भी पता नहीं लगता। इसकी जगह वहाँ पीठासन या चरण के रूप में भगवान को उपस्थित किया जाता है, इसलिए उदयन के तथागत के जीवन के समय ऐसी मूर्त्ति का बनाया जाना असंभव है। श्रद्धालुओं को वंचित करने के लिए किसी ने यह दन्तकथा गढ़ी है। नगर के दक्षिण-पूर्व कोने में श्रेष्ठी घोषित का घर था, जहाँ खंडहरों के बीच एक बुद्ध-मन्दिर में केश और नख-धातु की पूजा होती है। घोषित श्रेष्ठी ने जिस घोषिताराम को बनवाया था, वह नगर के बाहर दक्षिण-पूर्व कोने पर है। उसके पास डेढ सौ हाथ के करीब ऊँचा अशोक-स्तूप है। तथागत अनेक बार आकर इस आराम में ठहरे थे, इसमें सन्देह नहीं। यहाँ पर भी एक स्तूप में केश-नख धातु रक्खी हुई है। घोषिताराम के दक्षिण-पूर्व में एक दोमंजिला ईंट का मकान है, जिसके कोठे पर वह कोठरी अब भी मौजूद थी, जिसमें रहते आचार्य वसुबन्धु ने अपनी "विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि" (विंशिका, 'त्रिंशिका) की रचना की थी। घोषिताराम से पूर्व एक आम्रवन में वह मकान है, जिसमें आर्य असंग ने अपने महान् ग्रंथ "योगाचार भूमि" का निर्माण किया था। नगर से एक कोस उत्तर-पश्चिम छोटा सा पहाड़ है, जिसकी प्लक्षगुहा में तथागत का आना-जाना होता था। इसी के पास देवकृत-श्वभ्र (प्राकृति कुंड) है। हिमालय के बाद जमुना और गंगा के बीच में यही एक छोटी सी पहाड़ी देखने में आती है। यहाँ सभी धर्मों के संघाराम और मठ हैं, जो किसी समय बड़ी अच्छी अवस्था में होंगे. लेकिन उनका अवअलब कौशाम्बी नगरी जब सूख गई, तो भिक्षु और परिव्राजक यहाँ कैसे अधिक रह सकते थे?

कौशाम्बी नगरी और उसके आस-पास के प्राचीन स्थान उजड़े से थे। यद्यपि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हमारे श्रेष्ठी बड़ी उदारता से संघारामों का पोषण और संवर्द्धन करते थे, लेकिन एक श्रेष्ठी कहाँ तक कर सकता है, जब कि उसका भी एक पैर कान्यकुब्ज में जम रहा हो।

कौशाम्बी से 7 योजन (38 मील दूर) प्रयाग हम नौका द्वारा भी जा सकते थे, लेकिन हमने उसकी जगह स्थल-मार्ग से जाना ही पसन्द किया। रास्ते में घना जंगल है, जिसमें हाथी और सिंह-व्याघ्र रहते हैं। किसी समय इस जंगल में ग्राम-निगम रहे होंगे, जो कौशाम्बी के वैभव के छिन जाने पर नष्ट हो गये। धरती के भाग्य में यही बदा हुआ है: कभी वहाँ हँसती नगरी और प्रफुल्लित ग्राम वसें, और कभी उजड़ कर वहाँ ऐसे जंगल तैयार हो गये जहाँ जाना भी आदमी के लिए प्राण-संकट का कारण बन सकता है। प्रयाग किसी समय जंगलों वाला एक छोटा सा गाँव रहा, यह रामायण (वाल्मीकि) के वर्णन से मालूम होता है। उसके पास जमुना-गंगा पार प्रतिष्ठान (झूँसी) अवश्य कुछ महत्व रखता था और अब भी उसकी स्थिति उतनी गिरी हुई नहीं है, जैसी कि कौशाम्बी की। लेकिन, अब तो जान पड़ता है, प्रयाग का भाग्य चमकने वाला है। यहाँ गंगा-जमुना के संगम पर स्नान से धर्म मानने वाले हजारों नर-नारी आते हैं। दो-तीन बौद्ध-संघाराम हैं, लेकिन ब्राह्मणों के देवालय उनसे कहीं अधिक हैं। वह सबसे अधिक यहाँ के एक बटवृक्ष को पवित्र मानते हैं, जो एक देवालय के सामने संगम से नातिदूर है। लोग बट के ऊपर चढ़कर कूदकर आत्महत्या करते हैं। समझते हैं कि इस तरह उनके सारे पाप धुल जायेंगे और स्वर्ग से उनको लेने के लिए विमान आयेगा। मरे हुये लोगों की कितनी ही हड्डियाँ इस वृक्ष के नीचे पड़ी हुई दिखाई पड़ती हैं। गंगा-जमुना के संगम में डूबकर मरने को भी भारी पुण्य का काम समझा जाता है। बुद्धिल ने खीझकर उस समय कहा था—'कैसी ध्वस्तप्रज्ञता है: मनुष्य आत्म हनन को पुण्य मान रहा है और कैसा वह धर्म है, जो लोगों को इस तरह मूर्ख बनाता है।" नगर के दक्षिण-पश्चिम में अशोक का बनवाया एक पुराना स्तूप है, जिसके पास भी केशनख धातु का एक छोटा सा चैत्य है। इसी स्तूप के पास के एक पुराने संघाराम में आचार्य नागार्जुन के शिष्य आर्यदेव ने अपने "चतुःशतक शास्त्र" की रचना की थी।

अब हमारा आगे का लक्ष्य वाराणसी थी। तथागत के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले चार प्रधान स्थानों में यह एक है। हमारा रास्ता पूर्व की ओर था। राज्यपथ होने से इसके दोनों तरफ आम के वृक्ष लगे हुए थे। आम के फल काफी बड़े हो चुके थे, जो बतला रहे थे कि वर्षा का समय बहुत दूर नहीं है। वर्षावास के लिए हमें अपनी यात्रा स्थगित करनी पड़ती। हम चाहते थे कि वर्षा के दो महीनों को जेतवन-श्रावस्ती में बिताया जाये। इसलिए अब हम सवेरे और शाम दोनों वक्त चलकर रोज तीन योजन की मंजिल पूरा करना चाहते थे। वाराणसी (बनारस) भी प्राचीन और विशाल नगरी है। एक नगर की भाग्यलक्ष्मी के बनने का मतलब ही है दूसरे नगर का नाश। वाराणसी यद्यपि कोई राजधानी नहीं है, लेकिन उसकी अवस्था वैसी दीन-हीन नहीं है, जैसी कि कौशाम्बी की। इसका कारण एक तो यह है कि वाराणसी अब भी एक अच्छा वाणिज्य-केन्द्र है, दूसरे बौद्ध, जैन तथा ब्राह्मण धर्मियों का यह बहुत पवित्र स्थान है। नगर में पशुपति के अनेक देवालय हैं, जिनमें एक को बहुत पवित्र माना जाता है। वाराणसी के शिल्पी अपने सुन्दर वस्त्रों तथा दूसरी चीजों के बनाने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में अद्वितीय माने जाते हैं। पाटलिपुत्र, कान्यकुब्ज तथा दूसरे नगर अपने वैभव को उतना चिरस्थायी नहीं बना सके, जितना कि वाराणसी।

हम वाराणसी से उत्तर धर्मचक्र प्रवर्त्तन बिहार (सारनाथ) में ठहरे। यही पुराना ऋषि-पतन मृगदाव है, जहाँ तथागत ने अपने आदिकल्याण, मध्यकल्याण, पर्यवसानकल्याण धर्म का सबसे पहले उपदेश दिया। सुदूर महाचीन और द्वीप-द्वीपांतरों के निवासी तथागत के श्रावक कितनी लालसा रखते हैं, इस पुनीत स्थान के दर्शन करने की ? तथागत ने बुद्ध होकर अपनी पहली वर्षा यहीं बिताई, यहीं उन्होंने पाँच भिक्षुओं को सबसे पहले अपने धर्म में दीक्षित करके भिक्षु-संघ की नींव डाली। जिस स्थान पर पाँचों भिक्षुओं को उन्होंने अपने धर्म का उपदेश दिया, उस जगह अशोक राजा ने एक विशाल स्तूप बनवा दिया। उनके पास ही भगवान् के निवास की गन्धकुटी थी, जिसके पास उसी राजा ने शिलास्तम्भ गाड़ दिया। अशोक को गुजरे अभी हजार वर्ष भी नहीं हुए, लेकिन इस शिलास्तम्भ पर उत्कीर्ण लिपि को अभी से लोग पढ़ने में असमर्थ हैं। ऋषिपतन में अनेक संघराम हैं, इसे संघारामों का नगर कहा जा सकता है। बुद्धिल ने बतलाया : यहाँ की सबसे पुरानी मूर्त्तियाँ लाल पत्थर की हैं, जिन्हें राजा कनिष्क के समय में बनवाया गया था। आज भी यहाँ नई मूर्त्तियाँ बनती तथा स्थापित होती हैं। मैं कहूँगा कि आज के शिल्पी अपनी कला और सौन्दर्य-सृष्टि में अपने पूर्वजों से आगे बढ़े हुए हैं।

वाराणसी से हमने साकेत (अयोध्या) का रास्ता लिया, जहाँ पहुँचने में हमें सात-आठ दिन लगे। रास्ते में यहाँ भी श्वापदों से आकीर्ण कितने ही जंगलों को पार करना पड़ा, कई छोटी-बड़ी नदियाँ उतरनी पड़ीं। आखिर हम साकेत पहुँचे। इसे वाल्मीकि अपने रामायण में अयोध्या कहते हैं। यह कोई वैभवशाली नगरी नहीं है, यद्यपि आसपास के खँडहरों से मालूम होता है कि किसी समय यहाँ की समृद्धि आज से अच्छी रही होगी। साकेत महाकवि अश्वघोष की जन्मभूमि है। उन्हें अपनी माता और मातृभूमि से अपार प्रेम था, इसीलिए वह अपने नाम के साथ "साकेतक आर्यसुवर्णाक्षी-पुत्र" लिखा करते थे। तथागत के समय यह नगरी बहुत समृद्ध थी, तभी तो विशाखा के पिता अर्जुन श्रेष्ठी ने श्रावस्ती न जाकर इसी को अपना निवास-स्थान बनाया था, यद्यपि उस समय कोसल देश की राजधानी साकेत नहीं श्रावस्ती थी। यहाँ से श्रावस्ती (सहेट-मेहेट) 7 योजन रह गई थी, इसलिए हमें विश्वास हो गया कि वर्षोपनायिका (आषाढ़ पूर्णिमा) तक हम अवश्य वहाँ पहुँच जायँगे।

अब परिपक्व आम मिलने लगे थे। साकेत के पास सरयू को पारकर हम उत्तर की तरफ श्रावस्ती के रास्ते पर चले। यह रास्ता ऐसे प्रदेश से जा रहा था, जहाँ जङ्गल कम और ग्राम-निगम अधिक थे। बुद्धिल के लिए वह कोई नई चीज नहीं थी, लेकिन मेरे लिए तो आम परम दुर्लभ और प्रिय फल था। भिक्षुओं को मध्याह्न के बाद भोजन करना वर्जित है, लेकिन फलरस वह ले सकते हैं, इसलिए मुझे भोजन के बाद भी शाम को आम के रस पीने में बड़ी प्रसन्नता होती थी। साकेत से श्रावस्ती को जाने वाला राजपथ बराबर जनाकीर्ण रहता है। शकटों (बैलगाड़ियों) और बैलों पर जहाँ व्यापारी अपने पण्यको ले जा रहे थे, वहाँ कितने ही सवार और पैदल पथिक भी चल रहे थे। श्रावस्ती का वैभव कौशाम्बी की तरह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही यद्यपि क्षीण हो गया है तो भी हिमालय के चरण तक फैले हुये देशों तक पहुँचने के लिए अभी भी श्रावस्ती का कुछ महत्त्व है, यह राजपथ पर चलने से मालूम होता था। हमें आशा थी कि श्रावस्ती को कौशाम्बी से बेहतर हालत में पायेंगे, लेकिन विशाल नगरी के कुछ ही अंश आवाद हैं, पूर्वाराम और जेतवन जैसे अत्यन्त पवित्र और प्रसिद्ध विहार भी अधिकतर ध्वस्तप्राय हैं। नगर से दूर-दूर तक टूटे-फूटे संघारामों को देखा जा सकता है। नगर-प्रकार अधिकतर ध्वस्त हो चुका है। उसके उत्तर-पूर्व और दक्षिण के प्रसिद्ध दरवाजे अब नाममात्र रह गये हैं। दक्षिण दरवाजे के बाहर कुछ हटकर जेतवन है और पूर्व द्वार के बाहर विशाखा का बनवाया पूर्वाराम। नगरी के भीतर के राजकाराम, राजप्रासाद, अनाथपिंडक और विशाखा के घरों का पता अब संकेतचिन्हों से ही मिलता है। हमने अपना निवास जेतवन में रक्खा। तथागत के समय "जेतवन रम्य" था। हमारी भावनाओं में वह अब भी वह रम्य था। वृद्ध होने के बाद उन्होंने अपने जीवन के 46 वर्षावासों में 26 यहीं बिताये। सैकड़ों उपदेश उन्होंने यहीं दिये। अब भी वह गन्धकुटी हमारे सामने मौजूद थी, जिसमें तथागत ने इतनी वर्षाओं को बिताया था। पास में वह स्नानकोष्ठक भी था, जिसमें वह स्नान किया करते थे। जिस जगह भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिका शाम के वक्त तथागत के मुख से धर्मोपदेश सुनने के लिए एकत्रित हुआ करते थे, वह जगह भी मौजूद थी। जेतवन में घूमते-घूमते हमें तथागत के जीवन की एक-एक घटना याद आती थी। सबसे अधिक प्रभाव हमें जेतवन के जताघर के दर्शन से हुआ। यहीं पर साथियों द्वारा परित्यक्त रोगी भिक्षु तिष्यको ले जाकर तथागत ने गरम पानी से भिगोकर शरीर को मल-मलकर नहलाया था और अपने आचरण द्वारा उपदेश दिया था कि दूसरों के दुःख में सहायता करना हमारा सबसे पुनीत कर्त्तव्य है।

जेतवन विहार में सम्मितीय भिक्षुओं का अधिपत्य है, लेकिन जेतवन को तो तथागत ने आगत-अनागत चातुर्दिश भिक्षु संघ के लिए लिया था, इसलिए यहाँ पर चारों दिशाओं से आने वाले भिक्षुओं का एक समान आतिथ्य किया जाता है। अनाथपिंडक सुदत्त श्रेष्ठी की लक्ष्मी बहुत दिनों नहीं ठहरीं, लेकिन उसका कार्षापणों को बिछाकर खरीदा यह जेतवन हमेशा के लिए स्थायी है। जेतवन के भीतर बनाये अनेक विहार ध्वस्त हो चुके हैं या हो रहे हैं। हो सकता है, किसी समय यह भी जंगल के गर्भ में चला जाये, लेकिन अमर तथागत के सम्बन्ध के कारण जेतवन भी अमर है। जेतवन के पूर्व द्वार पर अशोक के प्रायः 50 हाथ ऊँचे दो शिलास्तंभ हैं, जिनमें बायें ओर के स्तम्भ पर धर्म चक्र के साथ बैल की मूर्ति है। जेतवन के पूर्वोत्तर कोण पर उस जगह भी एक स्तूप है, जहाँ पर भगवान् ने रोगी भिक्षु को अपने हाथों से स्नान कराया था।

वर्षावास के लिए जेतवन में दो सौ भिक्षु एकत्रित हो गये थे। पूर्वाराम में उनकी संख्या 50 के करीब थी। कभी इन संघारामों में हजारों भिक्षु रहा करते थे। उस समय आज के उजड़े या गिरे-पड़े मकान कितने भरे-भरे से लगते होंगे। तब यहाँ के भिक्षुओं को बुद्ध के वचन "सब अनित्य है" का अर्थ समझ में न आता होगा। आज हम जेतवन में कहे गये तथागत के सूक्तों को जब वहीं पढ़ते थे, तो आँखों में बर्बस आँसू आये बिना नहीं रहते थे। यद्यपि सुदत्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनाथपिंडक और विशाखा मृगारमाता जैसे परम धनी सेठों का अब यहीं निवास नहीं था। लेकिन श्रावस्ती नगर तथा आस-पास के गाँवों के लोग जेतवन की पुनीतता को भूले नहीं थे। वह भिक्षुओं के खान-पान का पूरा ध्यान रखते थे। सावन और आधे भादों तक काँवरों पर भर-भर के आम हमारे यहाँ आते। यहाँ के भिक्षु आम को वही महत्व नहीं देते, जो कि हम ऐसे देशों के भिक्षु, जहाँ आम का नाम सिर्फ पुस्तकों में ही पढ़ा जाता है। आकाश निरभ्र रहने पर श्रावस्ती से हमें हिमालय के पहाड़ दिखलाई पड़ते। उस समय अनेक बार मुझे अपनी जन्मभूमि याद आती। यही काले और उनके पीछे के सफेद हिम वाले पहाड़ तो हमारे उद्यान तक चले गये हैं। कभी-कभी मैं सोचता एक बार यहाँ से चलकर हिमवान् की सैर कर आऊँ लेकिन हम दोनों तो कई और भी पुनीत स्थानों का दर्शन करते ताम्रपर्णी (सिंहल) तक जाने का संकल्प कर चुके थे।

× × × ×

वर्षावास समाप्त हुआ। महाप्रावारणा (आश्विन पूर्णिमा) के दिन श्रावस्ती और जेतवन के खंडहरों में एक बार फिर उत्सव का दृश्य दिखाई देने लगा। भिक्षुओं की भेंट के लिए नर-नारी अपने घरों से बनाकर नाना प्रकार के भोजन लाये थे। कितनों ने अपने हाथ से सिले चीवर प्रदान किये। यहाँ हमें कपिलवस्तु और लुम्बिनी की ओर जाने वाले और भी साथी मिल गये। जेतवन से निकल कर हम अचिरवती (राप्ती) पार हुये। कातिक का महीना था। रास्ते के दोनों तरफ हरे-भरे धान के खेत खड़े थे, जिनमें कितने ही बहुत अच्छे किसिम के गंधशालि (वासमती) के थे। वर्षा के हाल ही में समाप्त होने के कारण खेतों तथा छोटे-बड़े जलाशयों में खूब पानी था। श्रावस्ती या कौशाम्बी को जैसी दीन दशा में हम देख चुके थे, तथा जमुना, गंगा के बीच और वाराणसी तथा साकेत के बीच की भूमि में बस्तियों की जगह बहुत से उजड़े गाँव खड़े देखे, वह हालत यहाँ नहीं थी। युद्धों का ऐसा ही परिणाम होता है, विशेषकर यदि आक्रमणकारी विदेशी हो, जिसकी सहानुभूति लोगों के साथ कुछ भी न हो। हेफ्तालों (श्वेत हूणों) के घोड़ों की टापों की यह बरक्कत थी। तोरमाण और उसका पुत्र मिहिरकुल वहीं तक पहुँचे थे। श्रावस्ती की हड्डियों से उन्हें कुछ लेना नहीं था, इसलिए इधर के लोग बच गये।

युद्ध भी एक भीषण महामारी है, जिसके आने पर बस्तियाँ उजड़ जाती हैं। एक बार उजड़ी बस्तियों को फिर से आवाद होने में देर लगती है, क्योंकि चिड़ियों की तरह मनुष्य भी जब दूसरी जगह जाकर नया घोंसला बना लेता है, तो उसके दिल से पुराने का मोह चला जाता है। यहाँ की हरी-भरी भूमि और आवाद गाँवों को देखकर हमारे मन में बड़ी प्रसन्नता होती थी। कुछ गाँव तो उन्हीं लोगों के थे, जो अपनी जन्मभूमियों को छोड़कर यहाँ आबाद हो गये थे। कुशल किसान, चतुर शिल्पी और विद्वान् पुरुष इस उथल-पुथल के कारण एक जगह से दूसरी जगह फेंक दिये गये थे। जेतवन और पूर्वाराम को वह आवाद नहीं कर सके, क्योंकि वह लाखों-करोणों के खर्च की बात थी, लेकिन गाँवों में नये-नये छोटे छोटे किन्तु सुन्दर विहार बन गये। थे। कपिल वस्तु पहुँचने तक दो-चार ही ऐसे बड़े गाँव मिले, जिनमें ईंटों के कुछ बड़े-बड़े घर थे, नहीं तो कच्ची मिट्टी की दीवारें और फूस की छतों वाले छोटे-छोटे घरों के झुरमुट गाँवों के रूप में दिखाई पड़ते थे। उनके खेतों में ही हरियाली नहीं थी, बल्कि छतों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर भी कद्दू, लौकी और दूसरी बेलें चढ़ी हुई थीं। यह समय ऐसा था, जबकि ग्राम सुधान्य होते हैं। साठी का चावल देखने में उतना भले ही न हो, किन्तु बहुत मीठा होता है। तेवन के लिए आजकल कोई कठिनाई नहीं थी। छोटी-बड़ी मछलियाँ बहुत सुलभ थीं। मैं अभी मछली-मांस खाने से विरत नहीं हुआ था, और गृहस्थ निमंत्रण या भिक्षाटन के समय हमारे पात्रों में उसे जरूर देते थे। हाँ, यह समय था, जबकि लोगों को जूड़ी की बीमारी हो जाया करती है। कभी-कभी तो वह इतने जोर से फैलती है, कि लोगों के काम बन्द हो जाते हैं, परन्तु इस साल खैरियत थी। दूसरा कष्ट हमें रात को सोने के वक्त का था, जबकि मच्छर नींद हराम कर देते थे। हमारे पास मशककुटी (मसहरी) नहीं थी, जिससे कि उनका निवारण करते। यहाँ धनी लोग ही उसका उपयोग करते हैं। गाँवों और खेतों की बहुतायत होने के बाद भी यहाँ जंगलों की कमी नहीं थी। हम जितना ही पूर्व की ओर अधिक बढ़ रहे थे, उतनी ही वह और बढ़ते जा रहे थे।

हम पाँच सहयात्री थे, जिनमें हम दोनों के अतिरिक्त एक मगध के भिक्षु सुरत और दो सिंहल के थे। सिंहल के स्थविर सुनन्द वृद्ध और बहुश्रुत थे। उन्होंने श्रद्धा से प्रेरित होकर 70 वर्ष की उमर में यह यात्रा शुरू की थी, जो जलपथ को छोड़कर बराबर पैदल की थी। इसमें शक नहीं, स्थविर सुनन्द का शरीर स्वस्थ था, लेकिन 70 वर्षों का बोझ भी तो बहुत होता है। हम बराबर उनके आराम का ध्यान रखते थे, और केवल अपरान्ह में ही एक योजन की यात्रा करते थे। विश्राम करने का समय हमारा व्यर्थ नहीं जाता था। कभी वह उपासक-उपासिकाओं को धर्मोपदेश करते, और कभी हमें पुराने आख्यानों को सुनाते। दूसरे दिन हमें वह नदी मिली, जो किसी समय कौसलराज प्रसेनजित् और शाक्यों के राज्यों की सीमा थी। आजकल तो छोटी-सी-छोटी नदी सर्वथा सूखी नहीं थी, लेकिन उनको पार करना मुश्किल नहीं था। कहीं लोगों ने पानी को रोकने के लिए बाँध बाँध दिये थे, और कहीं बाँस और लकड़ी के अस्थायी सेतु। नदी के पार हमने शाक्यों की प्राचीन भूमि पर जिस वक्त पैर रक्खे, तो कुछ ही कदमों पर एक वटवृक्ष (बरगद) मिला। स्थविर सुनन्द गद्‌गद् होकर बोलने लगे—यही वह वटवृक्ष है, जिसके नीचे देव मनुष्यों के शास्ता एक दिन बैठे थे। छिदरी छाया होने के कारण उनके शरीर पर धूप भी पड़ रही थी। शाक्यों का नाती कोसलराज विरूढ़क दासी-पुत्र के लांछन का बदला लेने के लिए अपनी सेना सहित यहाँ पहुँचा। तथागत को देखकर उसने कहा—भन्ते, ऐसी धूप के समय इस कबरी छाया वाले वृक्ष के नीचे क्यों बैठे हैं। इस घनी छाया वाले वटके नीचे बैठें।

—ठीक है महाराज, लेकिन ज्ञातियों की छाया ठंडी होती है।

विरूढ़कने भगवान् के भाव को समझ लिया। उस समय वह लौट गया, लेकिन अन्त में शाक्यों का संहार करके बदला लिया ही।

स्थविर को विश्वास था, कि वही पुराना वटवृक्ष है, जिसने तथागत को छाया प्रदान की थी। मेरा और बुद्धिल का विश्वास था कि वह वृक्ष सौ वर्ष से अधिक पुराना नहीं होगा। लेकिन तो भी हमने उनकी श्रद्धा का सम्मान किया। मुझे इस सम्बन्ध में कितनी ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नई बातें बुद्धिल और स्थविर की कृपा से मालूम हुईं। शाक्यों में राजा का शासन नहीं, बल्कि गण का शासन था। उनकी एक संस्था (गणपंचायत) हुआ करती थी, जो सभी बातों का निर्णय करती थी। जिस विशाल आगार में यह संस्था बैठती थी, उसे संस्थागार कहते थे। एक बार आने पर युवराज विरूढ़क को शाक्यों ने इसी संस्थागार में ठहराया था। ऊपर से उसके प्रति सम्मान प्रदर्शन करते, भीतर से हरेक शाक्य के मन में महानाम शाक्य की दासीपुत्री के पुत्र के प्रति अपार घृणा थी। मेहमानों के चले जाने पर एक दासी ने विरूढ़क के बैठने से अपवित्र हो गये पीठ को धोते हुए कहा था—"दासीपुत्र ने भ्रष्ट कर दिया, इसमें कितनी मेहनत करनी पड़ रही है।" विरूढ़क का एक सैनिक अपने भाला ले जाना भूल गया था। उसने आकर दासी की बातों को सुन लिया और जाकर विरूढ़क के पास आग लगा दी। बुद्ध ने दास और आर्य, शूद्र और ब्राह्मण का भेद मिटाकर एक मानव-जाति स्थापित करने के लिए उपदेश दिया था। जैसे समुद्र में नाना दिशाओं से आकर नदियाँ मिलकर एक हो जाती हैं, उसी तरह नाना देशों और नाना जातियों के लोग बुद्ध के धर्म में सम्मिलित हो एक हो जाते हैं। इसी दृष्टान्त को दिखलाने के लिए तो चीन-महाचीन, पूर्व गन्धार-पश्चिम गन्धार, पूर्व-कम्बोज, पश्चिम कम्बोज सभी देशों और वहाँ की सभी जातियों के लोग जब किसी संघाराम में आते हैं, तो एक तरह की अद्‌भुत आत्मीयता का अनुभव करते हैं। अनुरुद्ध, आनन्द जैसे कितने ही शाक्य-पुत्रों ने तथागत के संघ में प्रवेश किया और उनके शासन (धर्म) को आगे बढ़ाने में बहुत काम किया। उपालि शाक्यों का नापित (हजाम) था। जब अनुरुद्ध आदि शाक्यपुत्र भिक्षु बनने लगे, तो उन्होंने उपालि की सबसे पहले उपसम्पदा (भिक्षुदीक्षा) करवाई, जिसमें कि संघ में ज्येष्ठ होने के कारण वह उपालि का अभिवादन करें और इस प्रकार उनके हृदय में जाति-अभिमान घुसने न पाये। पर यह भावना सारे शाक्यों के मन में कैसे आ सकती थी?

मेरे और बुद्धिल के बीच शाक्यभूमि में रहते समय कितनी ही बार ऐसी चर्चा हो उठती। राजतन्त्र जितना ही विशाल और शक्तिशाली हो, उसी के अनुसार उसमें मनुष्य-मनुष्य में असमानता देखी जाती है। मध्यमंडल में तो बड़ी-छोटी जाति में रंग का भी कुछ भेद मिलता है, लेकिन मैंने बहुत से ऐसे देश देखे हैं, जिसमें मनुष्य-मनुष्य की विषमता मौजूद है, परन्तु उनके रंगरूप में कोई भेद नहीं। महाचीन में यही बात है, त्युरोक (तुरुष्क) में भी यही बात है। खुद मेरी अपनी जन्मभूमि उद्यान में हमारे लोग सभी एक रंग रूप के होते हैं, लेकिन, विषमता है, जो अधिकतर सम्पत्ति और प्रभुता के कारण है। त्युरोकों, शकों, हेपतालों में आपस में एक तरह की समानता देखने में आती है। हेपताल-राजा मिहिरकुल कश्मीरों गन्धारों के सामने चाहे कितनी ही देवातिदेव बनता हो, लेकिन अपने हेपतालों में वह भाई-चारे का प्रदर्शन करना चाहता है। मौखरी परमाभट्टारक ईश्वर वर्मा ऐसा नहीं कर सकते।

बुद्धिल ने बतलाया : शाक्यों का गण विषमताशून्य नहीं था, यह तो इसी से मालूम होगा, कि उनके यहाँ दास-दासी थे, पशुओं की तरह क्रय-विक्रय होता था। उनको अपनी जाति का इतना अभिमान था, कि कोसलराज प्रसेनजित्‌को भी नीच समझ उसे अपनी कन्या नहीं देना चाहते थे और महानाम ने अपनी दासी-पुत्री वार्षभक्षत्रिया का प्रसेनजित् से ब्याह किया, जिससे विरूढ़क पैदा हुआ। तो भी शाक्य भूमि के जितने भी शाक्य थे, वह भाई-भाई

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थे। सम्पत्ति में विषमता रहने पर भी शासन में उनका मत समान था। गणराज्य का शब्द पहलेपहल मुझे इसी वक्त सुनने में आया। शाक्यभूमि से हम भिक्षुओं का कितना सम्बन्ध है, यह इसी से मालूम है, कि हमें शाक्यपुत्रीय कहा जाता है। इस चर्चा से मुझे मालूम हुआ कि भिक्षु-संघ में हर काम को एक व्यक्ति की आज्ञा के अनुसार नहीं, बल्कि सारे संघ की सम्मति के अनुसार किया जाता है, उस पर भी इसी गण-संस्था की छाप है। तथागत स्वयं एक गणराज्य में पैदा हुये थे। उन्होंने बचपन से ही गणों की रीतिरिवाजों को देखा। पीछे मगध, कोशल, वत्स जैसे बड़े-बड़े राज्यों में गये ! वहाँ के राजाओं ने उनका देवोपम सम्मान किया, किन्तु उनकी व्यवस्था उन्हें उतनी पसन्द नहीं आई, जितनी की गणसंस्था की इसीलिये उन्होंने संघसन्निपात (संघ की बैठक), छन्द ग्रहण (वोट लेना), छन्द-शला (वोट की लड़की) का वितरण तथा यद्भूयसिक (बहुमत) के निर्णय को मान्य करना आदि नियमों को संघ के लिए स्वीकार किया। संघ में उन्होंने वह समानता भी स्थापित की, जो गणराज्यों में भी दिखाई नहीं पड़ती थी, अर्थात् वैयक्तिक (पुद्गलिक) सम्पत्ति प्रत्येक भिक्षु अपने शरीर की आठ चीजों तक ही सीमित रहे, बाकी गृह,आराम तथा दूसरी चीजें संघ की सम्पत्ति हों। यह ठीक है, कि आज वह समानता संघ में उतनी नहीं पाई जाती, जिसका कि विनय में विधान है, पर तो भी वह वहाँ देखने में आती है। कहाँ-कहाँ के हम पाँचों भिक्षु शाक्यभूमि में इकट्ठा चल रहे थे और हम आपस में कितनी बन्धुता अनुभव कर रहे थे।

हमारी बड़ी इच्छा थी; कि शाक्यों की भूमि में आकर तथागत के वंश के शाक्यों से मिलें, किन्तु जान पड़ता है विड़ढ़ब (विरूढ़क) ने सचमुच ही शाक्यों का सर्वसंहार करा दिया है। एकाध उनमें से भिक्षु के रूप में हमें जरूर मिले, लेकिन शाक्य-परिवार देखने में नहीं आये। सुना जरूर कि उत्तर के हिमवान् के पहाड़ों में वह भागकर जा बसे हैं और बहुत थोड़े वहाँ से लौटकर कहीं-कहीं रहने लगे हैं। शाक्यों की भूमि में अब भी जंगल ही अधिक हैं। वहाँ के निवासियों में विशेषकर पर्वतसानु के पास के घने जंगलों में किरात लोग रहते हैं। ये अधिकतर आखेट और पशुपालन पर गुजारा करते हैं। उस समय मुझे उनके बिना मूँछ-दाढ़ी के मुँह, फूली हुई पपनियों वाली टेढ़ी-टेढ़ी आँखों और चिपटी नाकों को देखकर कुछ विचित्रता मालूम होती थी, लेकिन पीछे की अपनी यात्राओं में मैंने देखा कि तुरुष्क, अवार, चीनी भी उसी तरह की मुखमुद्रा वाले होते हैं। किरात अब भी वन्य-जीवन को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। उनमें तथागत के शासन का विस्तार बहुत अल्प हुआ है।

श्रावस्ती से 12 योजन जाने के बाद हमें वह स्थान मिला, जहाँ हमारे भगवान् गौतम बुद्ध से पहले के क्रकुच्छन्द बुद्ध पैदा हुये थे। वहाँ एक स्तूप और अशोक का खड़ा किया शिला-स्तम्भ है। यहाँ से एक योजन और जाने पर कोनागम बुद्ध का जन्मस्थान मिला। अगले दिन हम कपिलवस्तु पहुँच गये। वहाँ क्या देखा—श्रावस्ती और कौशाम्बी में तो अब भी कुछ लोग रहते हैं, कुछ अट्टालिकायें खड़ी हैं, लेकिन इन खँडहरों में पूछने पर ही मालूम होता, कि यहाँ शुद्धोदन का प्रासाद था। लोगों ने वहाँ सिद्धार्थ कुमार और उनकी माँ मायादेवी की मूर्तियाँ स्थापित कर दी हैं। किसी खँडहर को बतलाया जाता था : कि यहाँ सिद्धार्थ कुमार के लिए ग्रीष्म-प्रासाद बना था और यहाँ हेमन्तप्रासाद। वह स्थान भी देखा जहाँ नगर के पूर्व द्वार से निकल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर उद्यान जाते हुये सिद्धार्थ कुमार ने जहाँ रोगी पुरुष को देखा था और वहाँ से रथ लौटा अपने महल में चले आये थे। उस स्थान को भी बतलाया गया है, जहाँ सिद्धार्थ ने धनुष औ शस्त्र चलाने में अपने हस्तलाघव का परिचय दिया था। बुद्ध होने के बाद पहले-पहल जि जगह अपने पिता को उन्होंने दर्शन दिया था, उस स्थान पर भी हम गये। नगर से कुछ हटकर वह स्थान भी हमें मिला, जहाँ पर अनेक शाक्यकुमार उपालिको लेकर बुद्ध के पा गये और उन्होंने भिक्षु-दीक्षा ग्रहण की। जिस स्थान पर विडूढ़ बने शाक्यों के खून से अप हाथ को रँगा, उसको भी हमने देखा।

किन्तु, वहाँ कपिलवस्तु नगर कहाँ था? उसकी जगह ईंटों और मिट्टी के ढूह दिखला पड़े। इतना अलौकिक पुरुष जिस नगर में हुआ, उसकी यह अवस्था।

कपिलवस्तु से चलकर हम अगले दिन लुम्बिनी पहुँचे। "यहीं पर बुद्ध शाक्य-मु पैदा हुये।" जिसे अशोक राजा ने एक शिलास्तम्भ खड़ा करके उस पर उक्त वाक्य उत्की कर दिया। मायादेवी आसन्नप्रसवा होकर कपिलवस्तु से अपने पिता के कोलिय (देव दह नग को जा रही थीं, रास्ते में ही लुम्बिनी के उद्यान में उन्हें प्रसव-पीड़ा हुई और यहीं वह अलौ किक बालक पैदा हुआ, जिसने सारे संसार से दुःख और अंधकार के दूर करने का संक किया। वैशाख की पूर्णिमा थी। लुम्बिनी वन हरे पत्तों और फूलों से सजाया हुआ था। उद्या पुष्करणी का निर्मल नील जल स्वच्छ था, "पुष्करणी आज भी वहाँ मौजूद है।" उस उत्तर में उस जगह शालवृक्ष की शाखा पकड़े मायादेवी की एक मूर्ति स्थापित है, जहाँ सिद्धा कुमार ने जन्म लिया था। पास में एक कुआँ भी है, जिसके बारे में बतालाया जाता है कि नवजात शिशु को इसी के जल से स्नान कराया गया था। आज हमने भी इस पवित्र कूप औ पुनीत पुष्करणी के जल का आचमन करके अपने को कृतकृत्य समझा।

कपिलवस्तु जनशून्य घोर वन में परिणत हो गया है। उसे और लम्बिनी की यात्र करते समय बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है, क्योंकि इन घने जंगलों में हाथी औ सिंह वहुतायत से रहते हैं।

स्थविर सुनन्द की आँखों से अविरल अश्रुधारा बह चली थी, जब वह इन पुनीत स्थानों का दर्शन कर रहे थे। उन्होंने लुम्बिनी में भगवान् को उस अन्तिम वचन को दोहराया जिसे कि मृत्यु शय्या पर पड़े-पड़े उन्होंने कहा था—

"आनन्द! श्रद्धालु कुल-पुत्र के लिए यह चार स्थान दर्शनीय, संवेजनीय (वैराग्यप्रद हैं। कौन से चार? (1) यहाँ तथागत उत्पन्न हुए (लुम्बिनी) यह स्थान श्रद्धालु०। (2) यहाँ तथागत ने अनुत्तर सम्यक्-संबोधि को प्राप्त किया (बुद्धगया)०। (3) यहाँ धर्मचक्र प्रवर्तित किया (सारनाथ)०। (4) यहाँ तथागत अनुपादि-शेष निर्वाण-धातु को प्राप्त हुये (कुसी नारा) ०।० यह चार स्थान दर्शनीय० हैं। आनन्द! श्रद्धालु भिक्षु-भिक्षुणियों उपासक-उपा सिकायें यही सोचते भविष्य में आवेंगी, यहाँ तथागत उत्पन्न हुये, ० यहाँ तथागत ० निर्वाण को प्राप्त हुये।..."

लुम्बिनी से हम अधिकतर घने जंगलों केभीतर से होते कितने ही दिनों तक दक्षिण की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ओर चले। इन्हीं जंगलों में रामग्राम का स्तूप मिला, जहाँ कि तथागत की अस्थि-धातु के अष्टमांश को लाकर वहाँ के लोगों ने एक स्तूप बनवाया था। अशोक राजा ने बाकी सातों जगहों के स्तूपों की अस्थियों के अधिकांश भाग को इकट्ठा कर अपने विशाल राज्य के बहुत से नगरों और प्रसिद्ध स्थानों में स्तूप बनवा उसे उनमें रक्खा, लेकिन परम्परा बतलाती है, कि रामग्राम के स्तूप को उन्होंने नहीं छूआ। कभी जहाँ रामग्रामवालों के गणराज्य की राजधानी थी, अब वहाँ घोर जंगल है।

कुसीनगर (कसया)—लुम्बिनी से 15 दिन चलने के बाद हम तथागत के महापरिनिर्वाण-स्थान कुशीनगर में पहुँचे। मैंने भी कई निकायों के महापरिनिर्वाण सूत्रों को पढ़ा था और बुद्धिल तो और भी जानकारी रखते थे। स्थविर सुनन्द ने अपने निकाय के महापरिनिर्वाण सूत्र का यहाँ पर हमारे लिए पारायण किया। तथागत ने जहाँ अपनी जीवन-लीला समाप्त की, उस पुण्यभूमि को देखने के समय हमारे हृदय में यदि बहुत खेद और उद्वेग हो, तो इसमें सन्देह क्या? कुसीनगर तब अच्छा खासा नगर था, जहाँ मल्लों का गणराज्य था। बुद्ध के अन्तिम संस्कारों को करने का सौभाग्य उन्हीं को प्राप्त हुआ। उन्हीं के नगरोपरान्त में दो शाल वृक्षों के बीच में सिंह शय्या लगाकर तथागत का परिनिर्वाण हुआ। यहीं उन्होंने सुभद्र को अपना अन्तिम शिष्य बनाया था। कुसीनगर अब ध्वस्तप्राय है। कुछ थोड़े से घर वहाँ मौजूद हैं। हाँ युग्मशालों के स्थान में बने परिनिर्वाण-स्तूप के पास भिन्न-भिन्न निकायों के कितने ही छोटे-छोटे विहार अवश्य हैं, जिनमें उनके भिक्षु रहा करते हैं। जिस स्थान (मुकुट बंधन) पर तथागत की दाह-क्रिया हुई थी, उस स्थान का भी हमने दर्शन किया।

कुसीनगर से हम वैशाली के लिए रवाना हुये, जो 22 योजन पर बतलाई जाती थी। हमारा रास्ता दक्षिण-पूर्व की ओर था। दो दिन चलने के बाद मध्यमंडल की पाँचवी महानदी मही (गंडक) हमने पार की। भूमि और ग्राम यहाँ के उसी तरह के थे, जैसे कि लुम्बिनी से हम देखते आये थे। खेतों में धान के अधिक थे, जिनमें सुनहरी पक्वशाली उस वक्त हवा के झोकों से लहरा रही थी। वर्षा अधिक होने पर बाढ़ जब भीषण रूप लेती, तो सारी फसल बरबाद हो जाती और यहाँ दुर्भिक्ष हो जाता है। लेकिन इस साल सुभिक्ष था। किसानों के चेहरे प्रसन्न दीखते थे। हम पाँचों भिक्षु अब भी साथ-साथ चल रहे थे। स्थविर सुनन्द को इस भूमि को देखकर बार-बार अपने सिंहलद्वीप के ग्राम याद आते थे। भाषा में काफी अन्तर था, तो भी मेरे उद्यान की भाषा की अपेक्षा मगध-कोसल के लोग उनकी भाषा को अच्छी तरह समझ लेते थे। शाक्यों की भूमि में प्रवेश करते ही प्राचीन गणराज्यों की बातें सुनने के बाद मेरे मन में विचारों का ताँता लग गया था। इसे मेरे हृदय की कमजोरी समझ लीजिए कि मैं किसी को दुखी देखकर कातर हुये बिना नहीं रहता, दुःखी का आर्तनाद मेरे हृदय को पिघला देता है और वह जोर से रोकने पर भी आँखों के रास्ते आँसू बनकर निकल पड़ता है। अवस्था बीतने के साथ इसमें और भी वृद्धि होती गई। अपने पास जो कुछ होता, मैं भरसक उससे दुखी-दरिद्रों की सेवा करना चाहता, लेकिन एक आदमी और सो भी अल्पसाधन कहाँ तक उसे कर सकता है। तथागत ने दुःख, उसके कारण, उसके विनाश और विनाश के रास्ते का निर्देश किया। समझदार व्यक्ति के लिए उससे लाभ भी हुआ और अब भी हो रहा है, किन्तु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संसार में तो, अपार दु:ख-समुद्र उमड़ रहा है, उसमें से एक-एक बूँद उलीचने से क्या बनता है ? मैं समझता हूँ, भगवान् को भी केवल बिन्दु-बिन्दु उलीचने का ख्याल नहीं रहा होगा। वे भी चाहते होंगे कि संसार में दु:ख की मात्रा कम हो जाये और अधिकांश लोग सुखी रहें। इसीलिए तो उन्होंने बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय अपने शासन का प्रसार किया, अपने श्रावकों (शिष्यों) के सामने भी वही लक्ष्य रक्खा।

राजा के राज्य में बहुत देखता-सुनता आया था, लेकिन गणराज्य, एक जन नहीं बहु-जन का राज्य अब सुनने को मिला था। हम उस भूमि से चल रहे थे, जहाँ आज से हजार वर्ष पहले गण का राज्य था। शासक-राजा अपने और अपने परिवार के सुख की सबसे अधिक परवाह करता है, उसके बाद वह दूसरे के सुख-दु:ख की ओर निगाह डालता है। मुझे विश्वास है, गण का राज्य बहुजन-हिताय बहुजन-सुखाय रहा होगा। कोसल और मगध की सीमा पर उस समय अनेक गणराज्य थे। मल्लों और लिच्छिवियों की सीमा यही मही नदी थी, जिसे हमने अभी-अभी पार किया था। वैशाली का राज्य शक्ति और समृद्धि में शिरोमणि था। सारा शरीर घुमा कर नागावलोकन करके तथागत ने वैशाली को अन्तिम बार देखते हुये आनन्द से कहा था।

“आनन्द! रमणीय है वैशाली, रमणीय है उसका उदयन-चैत्य, गोतमक-चैत्य, सप्ताम्रक-चैत्य, बहुपुत्रके-चैत्य, सारंदद-चैत्य।” ये चारो चैत्य वैशाली नगरद्वार के बाहर क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पच्छिम और उत्तर दिशाओं में देवस्थान तथा वनपुष्करिणी सहित रमणीक भूभाग थे। लिच्छवि भगवान् के दर्शन के लिए वैशाली नगरी से कुछ दूर दक्षिण में अवस्थित अम्बपाली वन में पहुँचे। उन्हें देखकर बुद्ध ने कहा था,—“देखो भिक्षुओं! लिच्छवियों की परिषद् को, इसे त्रायस्त्रिंश देवताओं की परिषद् समझो।”

वैशाली रमणीय कभी रही होगी, किन्तु आज तो वह ढंढ-मंड है, उसका वह संस्थागार पता लगाने से भी मालूम नहीं होता, जिसमें बैठकर लिच्छवि अपना राजकाज करते थे। वृजियों (वैशाली गणराज्य वालों) के न्याय की तथागत प्रशंसा करते नहीं थकते थे। अपराधी का विनिश्चय महामात्य (न्यायाधीश) विचार करता, अपराधी न होने पर छोड़ देता, अपराधी होने पर अपने दंड न दे व्यवहारिक (उच्च-न्यायाधीश) के पास भेज देता। वह भी अपराधी न सिद्ध होने पर छोड़ देता और अपराधी होने पर उसे सूत्रधार के हाथ में देता। वह अष्टकुलिकों को, वह सेनापति को, वह उपराज (उपगणपति) को और वह गणपति को देता। गणपति भी अपराध का प्रमाण न पाकर छोड़ देता और अपराधी होने पर अपने मन से नहीं दंड देता, बल्कि प्रवेणी पुस्तक (दंड-विधान) को देखकर उसके अधुसार दंड देता। न्याय के लिए कितनी छानबीन वैशाली वाले करते थे? तथागत क्यों न उन लोगों की सराहना करते? वुद्धिल ने बतलाया : हमारे भिक्षु-संघ का संगठन और उसके क्रियाकलाप वैशाली के गणराज्य के अनुसार ही तथागत ने निश्चित किए थे। ‘वैशाली के उत्तर में कूटागारशाला है, जहाँ तथागत अनेक बार रहा करते थे और अपने जीवन की अन्तिम वर्षा को उन्होंने यहीं बिताई। वहीअशोक ने एक शिलास्तम्भ स्थापित किया। अब भी वह महावन है, जो कि तथागत के समय में था। वैशाली की चारों दिशाओं में उद्यान-पुष्करिणी सहित चार प्रसिद्ध चैत्य (देवस्थान)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पूर्व में उदयन-चैत्य, दक्षिण में गौतमक-चैत्य पश्चिम में सप्ताम्रक-चैत्य और उत्तर में बहुपुत्रक-चैत्य हैं। अब भी वह हैं, लेकिन अच्छी अवस्था में नहीं है। इनके अतिरिक्त और भी कोरमट्टक, चापाल आदि चैत्य थे। पश्चिम द्वार के पास चापाल-चैत्य में ही तथागत ने आनन्द से कहा था। आज से तीन महीने बाद मेरे जीवन की समाप्ति होगी। प्रधान चैत्यों के स्थानों में अब पाशुपतों के मन्दिर खड़े हैं। बुद्ध के शासन में पहिले स्तूपों, पदचिन्हों, पीठों या बोधिवृक्ष को तथागत के जीवन का प्रतीक मानकर पूजा जाता था और अब उनका स्थान बुद्ध-प्रतिमाओं ने ले लिया है। अब तो बल्कि भिन्न-भिन्न प्रकार की बोधिसत्व-प्रतिमायें भी बढ़ गई हैं। ब्राह्मण कभी यज्ञ और हवन द्वारा पूजा किया करते थे, अब वह पशुपति (शिव) और दूसरे देवताओं की प्रतिमाओं की पूजा में सबसे आगे-आगे हैं। वैशाली की चारों दिशाओं के पशुपति-देवालयों में पशुपति और गौरी की मूर्त्तियों का स्थान मुखलिंगों ने लिया है। लिंग (शिश्न) की पूजा, सचमुच आश्चर्य की बात मालूम होती है। आजकल लिंग-पूजक पाशुपतों की यहाँ प्रधानता देखी जाती है। इन लिंगों में किसी-किसी में चारों दिशाओं, तीन दिशाओं या एक दिशा में घोर, शान्त आदि मुद्रा वाले महेश्वर के मुख बने रहते हैं और कुछ तो निरे लिंग होते हैं, जिनकी एक तरफ तीन रेखाओं द्वारा शिश्न के रूप को और स्पष्ट कर दिया जाता है।

वैशाली रमणीय थी और उससे भी ज्यादा बात यह थी कि वहाँ के बहुजन सुखी थे। वह वीर थे, लेकिन आपस की फूट के कारण मगधराज अजातशत्रु के शिकार बने। यह न भी होता, तो भी अनेक छोटे-छोटे राजाओं को निगलकर विशालकाय बने महाराज्यों के सामने छोटा-सा गणराज्य कितने दिनों तक टिक सकता था। राजाओं में एक दूसरे को निगल कर अपनी शक्ति और सीमा बढ़ाने की परम्परा है, गण केवल अपने वंश के लोगों की भूमि तक ही अपने को सीमित रखना चाहते थे, इसलिये वह अपनी शक्ति और सीमा बढ़ा नहीं सकते थे। अजातशत्रु का स्थान लेने वाले चन्द्रगुप्त और अशोक कपिशा से ले सारे जम्बू-द्वीप के एकच्छत्र राजा थे, इतने बड़े जनसमूह को वह अपने शत्रु के विरुद्ध भेज सकते थे। वैशाली गणराज्य था, जहाँ गणराज्य के सभी तरुण और प्रौढ़ जन हथियार उठाकर अपने शत्रु से वीरतापूर्वक लड़ सकते थे। लेकिन, उनकी संख्या कुछ हजार तक ही होती और मगध का राजा उनके खिलाफ लाखों की सेना भेज सकता था। आपस में फूट न होने पर हो सकता है, वैशाली गण अजातशत्रु और उसके वंश के शासन तक अपने को स्वतंत्र रख सकता, लेकिन नन्द-वंश का मुकाबिला वह कैसे कर सकता था? बुद्धिल के इन तर्कों को सुनकर मुझे बड़ी निराशा हुई। मैं समझता था, यदि राजा के शासन की जगह गण का शासन स्थापित कर दिया जाये, तो फिर बहुजन सुखी हो सकें। लेकिन, मैं यह तो जानता ही था कि राज्य तलवार की धार पर स्थापित होता है। जिधर तलवार की प्रचंड शक्ति हो, उधर ही जयलक्ष्मी अपना मुँह फेरती है। एक पुरानी सुन्दर स्मृति जैसे आदमी के चित्त को प्रसन्न करती है, वही बात गणराज्यों की रानी वैशाली मेरे लिए करती थी। तो क्या बहुजन का भाग्य सदा के लिए अन्धकाराछन्न है? उसे कोई आशा नहीं? इसका उत्तर कौन दे सकता है? मेरा मन तो यही चाहता है कि ऐसा न हो। मानवमात्र, प्राणिमात्र सुखी हो जायें।

मैंने बैशाली के पुराने लिच्छवियों के वंशजों को देखा। अब भी उनमें निर्भीकता है,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किन्तु अब वह साधारण किसान या मौखरियों के सैनिक होने की ही आशा रख सकते हैं। जिस तरह कोसलों के अत्याचार से भागकर मल्ल-शाक्य उत्तर में हिमवान् के पहाड़ों में जा बसे, वैसे ही कितने लिच्छवियों ने भी नैपाल में जा अपना राज्य स्थापित किया। यह सुनकर जब मैं प्रसन्नता प्रकट करने लगा, तो बुद्धिल ने कहा—उनका राज्य वैशाली के गणराज्य जैसा नहीं है, बल्कि वह भी गुप्तों और मौखरियों जैसा एकच्छत्र निरंकुश राज्य है।

वैशाली से तीन दिन चलने के बाद हम गंगा के तट पर पहुँचे। यहाँ पाँच नदियों का संगम बतलाया जाता है, लेकिन उनमें दो बहुत छोटी-छोटी हैं। मही, गंगा और सोंणा तीन ही वस्तुतः बड़ी नदियाँ हैं। गंगा के इस पार वृजियों की भूमि और उस पार मगध है। नाव से गंगा पार होते समय हमें वह कथा याद आई। आनन्द इसी धारा में मृत्यु को प्राप्त हुये। उनके शरीर के दावेदार मगध और वृजी दोनों देशों के लोग थे। गंगा के दाहिने तट पर ही दूर तक पाटलिपुत्र नगरी बसी हुई है। तथागत के अन्तिम समय में यह अभी पाटलिग्राम था, नगर बनाने का अभी आरम्भ ही हुआ था। फिर वह जम्बू-द्वीप का एक महान् नगर बन गया, जबकि सारे जम्बू-द्वीप के अधिपति चन्द्रगुप्त और अशोक यहाँ से शासन करते थे। गुप्त नृपतियों की पाटलिपुत्र ही राजधानी रही। अब वह राजलक्ष्मी कई टुकड़ों में बँट गई है। उसी के अनुसार वैभव भी पाटलिपुत्र, कान्यकुब्ज और दूसरी राजधानियों में बँट गया है। अब भी मौर्यों के बनवाए कुछ और गुप्तों के तो बहुत से प्रासाद मौजूद हैं। मौर्य प्रासादों के विशाल स्तम्भों और दूसरी चीजों को देखकर सचमुच मन विश्वास करने लगता है कि यह मनुष्यों के हाथों के नहीं बने हो सकते, इन्हें जरूर असुरों ने बनाया होगा।

मगध की भूमि परम पावन है। यहीं वज्रासन (बोधगया) में सिद्धार्थ ने बुद्धत्व प्राप्त किया। यहीं राजगृह है, जहाँ पर तथागत ने कितनी ही बार निवास करते अनेक धर्मोपदेश दिये। यहीं तथागत की चरणधूलि पवित्रित गृध्रकूट, नालन्दा आदि अनेक स्थान हैं। हमने यहाँ की यात्रा कर लेना पर्याप्त नहीं समझा, बल्कि नालन्दा में अच्छे-अच्छे विद्वानों को देखकर वहाँ रह कुछ पढ़ने का निश्चय किया। चन्द्रगोभी, चन्द्रकीर्त्ति जैसे महापण्डितों के चरणों में बैठकर विद्या पढ़ने का ऐसा सौभाग्य कहाँ मिलता ?

सिंहल में

(547 ई०)

मैं और बुद्धिल दोनों ही जन्मजात यायावर थे, हमें बराबर घूमते रहने में ही आनन्द आता था। उद्यान में भिक्षु बनकर विहार में कई वर्ष एक जगह रहना तो इस कारण हुआ था कि मैंने अभी विपुला पृथिवी का आकर्षण नहीं देखा था। घुमक्कड़ी का चस्का लग जाने पर भी नालन्दा में तीन वर्ष बिताने के लिए मैं कैसे तैयार हो गया, यह आश्चर्य की बात थी। लेकिन, विद्या का आकर्षण मेरे लिए घुमक्कड़ी से कम नहीं था और वही बात बुद्धिल में थी। इसीलिए नालन्दा में विद्या के अथाह समुद्र को लहरें मारते देखकर हम अपने पैरों को रोकने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में समर्थ हुये। बीच-बीच में पैर उखड़ना चाहते थे, लेकिन किसी तरह वह फिर जम जाते। हमने यहाँ असंग के योगाचार दर्शन का, दिग्नाग और वसुबन्धु के प्रमाण (तर्क) शास्त्र का अध्ययन किया। इन तीन वर्षों में मुझे जितना पढ़ने का अवसर मिला, उतना जीवन में कभी नहीं मिला। मैं जानता था कि ऐसा अवसर और ऐसा स्थान फिर दुबारा नहीं मिलेगा।

स्थविर सुनन्द के साथ हम राजगृह, नालन्दा और वज्रासन (बोधगया) तक रहे। उसके बाद वह अपने देश लौट गये। उनका बहुत आग्रह था कि हम सिंहल अवश्य आयें। उनके आग्रह से भी अधिक महासमुद्र के बीच में बसे सिंहल द्वीप को देखने की हमारी अपनी निजी इच्छा थी। नालन्दा छोड़ते समय हमने सिंहल द्वीप जाने का निश्चय किया। सैकड़ों योजनों की यात्रा थी। इसमें शक नहीं, जलपथ से जाने में वह अधिक सुखकर और जल्दी पूरी हो जाती, लेकिन हमने जल और स्थल उभयपथ को ग्रहण करना पसन्द किया। ताम्रलिप्ति पूर्व समुद्र पर विशाल तीर्थ (बन्दरगाह) है। वहाँ पहुँचने पर हमने नाना देशों के सार्थवाहों की नौकायें नाना देशों के मनुष्य देखे। कितने ही महाचीन के व्यापारी भी वहाँ थे। यवद्वीप, सुवर्णद्वीप (सुमात्रा), कम्बोज ही नहीं, पारसीक, यवन (ग्रीस), रोम आदि पश्चिमी देशों के भी नाना रूप-रंगों के आदमी वहाँ मिले। यात्रा का जिसे चस्का लग गया हो, उसे वह जितनी ही कठिन और दूर की हो, उतनी ही अच्छी मालूम होती है। हमारे लिए ताम्रलिप्ति में पहुँचकर गंतव्य स्थान का निश्चय करना मुश्किल था। यदि हमने ताम्रपर्णी (सिंहल) जाने का पहले से ही निश्चय नहीं कर लिया होता, तो क्या जाने हम इसी समय यवद्वीप होते चीन पहुँच जाते। हम धान्यकटक और श्रीपर्वत स्थल-मार्ग से पहुँच सकते थे। जहाँ तक मानव दस्युओं का सम्बन्ध है, उनका अभाव नदियों या समुद्रों में भी नहीं है। लेकिन, स्थलपथ के बराबर जलपथ भयानक नहीं होता, क्योंकि यहाँ मानव-दस्युओं के अतिरिक्त सिंह, व्याघ्र, हाथी जैसे भीषण जन्तुओं से भरे घोर जंगलों में पैरों से धरती नापनी पड़ती है। ताम्रलिप्ति से कुछ पोत आंध्रदेश के धान्यकटक नगर को जा रहे थे, जिनमें श्रीपर्वत के तीर्थयात्री कुछ भिक्षु तथा उपासक-उपासिकायें भी थे। हमने उसी में जाने का निश्चय किया। कलिंगदेश न देखने का अफसोस हमें अवश्य हुआ।

वर्षा हमने नालन्दा में बिताई थी। ताम्रलिप्ति पहुँचते-पहुँचते जाड़ा शुरू हो गया था। अपनी जन्मभूमि में यह तो मैंने देख लिया था कि पर्वतों में जितना ही ऊपर की ओर जायें, उतनी ही सर्दी बढ़ती जाती है और जितना ही नीचे की ओर जायें, उतनी ही गरमी। लेकिन, पहले पहल इसी यात्रा में मुझे मालूम हुआ कि जितना दक्षिण जायें, उतनी ही गर्मी बढ़ती है और जितना ही उत्तर को जायें, उतनी ही सर्दी। आन्ध्रदेश में हम जाड़े में पहुँचे थे, लेकिन वहाँ सर्दी नाममात्र को थी। ताम्रपर्णी के लोग तो जाड़ा क्या चीज है, इसे जानते ही नहीं। तुरुष्कों और अवारों की भूमि के उत्तरी सीमा पर पहुँच कर मैंने देखा कि वहाँ गर्मियों में भी उतनी सर्दी पड़ती है, जितनी नालन्दा में जाड़ों में नहीं पड़ती। धान्यकटक दक्षिणापथ की एक महानगरी है या थी। राजधानी के होने और हटने का नगरों पर क्या प्रभाव पड़ता है. यह मैं मध्यमण्डल के अनेक महानगरों को देखकर जान चुका था। धान्यकटक में जब इक्ष्वाकु-वंश शासन करता था तो वह बड़ी समृद्ध नगरी थी। समुद्र से कृष्णा नदी में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होकर यहाँ तक बड़े-बड़े पोत पहुँचते थे। राजा की राजधानी के साथ-साथ वह सेठों की भी राजधानी थी। एक विशाल राज्य की राजधानी अब वह नहीं रही। उसका वैभव कांची ने छीन लिया है, जहाँ पल्लव-वंश शासन कर रहा है। जिस तरह मौखरी किसी समय गुप्तों के सामन्त थे और पीछे उनकी राजलक्ष्मी को लूटने में समर्थ हुये। फिर कान्यकुब्ज ने पाटलिपुत्र को पीछे छोड़ दिया, वही बात इक्ष्वाकुओं के सामन्त पल्लवों ने की राजधानी कांची ने धान्यकटक के साथ की। पुराना वैभव अब भी धान्यकटक तथा श्रीपर्वत के महान् चैत्यों के देखने से प्रकट होता है। श्वेत पाषाण में कितने सुन्दर मानव-पशु-पक्षी-वृक्ष-लता-पुष्प-वास्तु बने हुये हैं। मैं न चित्रकार था, न मूर्तिकार, लेकिन भिन्न-भिन्न जगहों में घूमते मैंने कपिशा और गन्धार की कला को देखा था, मथुरा-कौशाम्बी-श्रावस्ती-पाटलिपुत्र में उसका अवलोकन किया था। यहाँ की उन्हीं चीजों को देखकर मैं समझ सकता था कि कलाकारों ने यहाँ कितना कौशल दिखलाया है? मालूम होता था, उनकी छिन्नियाँ पत्थर पर नहीं, मक्खन पर चल रही हैं, तभी तो वह इतने कोमल और गम्भीर भावों को दिखलाने में सफल हुये। मूर्तिकला से कम उन्होंने चित्रकला में अपनी दक्षता का परिचय नहीं दिया है।

धान्यकटक से हम पहाड़ों के भीतर श्री पर्वत गये। कुछ दूर तक कृष्णा में नाव के द्वारा जाकर फिर घोर जंगल में से श्री पर्वत पहुँचे। आर्य नागार्जुन यहाँ बहुत समय तक रहे, इसलिये भी यह पुनीत स्थान था, किन्तु जान पडता है उनसे पहले से भी इस रमणीय पर्वतस्थली को भिक्षुओं ने पसन्द किया था। उत्तर में भी बहुत से प्राचीन संघारामों और विहारों को ध्वस्तावस्था में हमने देखा था। इधर तो और भी उनकी बहुतायत थी। इसमें शक नहीं, अपनी-अपनी कीर्ति को अमर करने की लालसा से नये-नये विहारों का बनाना भी इसका एक कारण था। आखिर जीवितों से मरों की संख्या अधिक होती है। सभी मरों की कीर्त्तियों को अच्छी अवस्था में रखना जीवितों के लिये सम्भव नहीं रह जाता। यह भी इन संघारामों के निर्जन होने का कारण है। एक कारण और भी है। पहले की अपेक्षा सामन्तों और श्रेष्ठियों पर अब ब्राह्मणों का प्रभाव अधिक है। इसका कारण मुझे समझ में नहीं आता था, कि पाशुपत धर्म की ओर श्रेष्ठी-सामन्त क्यों इतने झुके हैं। ब्राह्मणों के लिये तो वह इसलिये हो सकता था, कि पुरोहित होने के कारण उनकी आमदनी का यह एक बड़ा साधन था। हम दोनों कितनी ही बार इस पर मिलकर विचार करते। बुद्धिल का कहना था: श्रेष्ठी सामन्त ऊँच-नीच जाति-व्यवस्था के पोषक हैं। यवन, शक जब इस देश में आकर अपना राज्य स्थापित करने में सफल हुये। उस समय इन्हें म्लेच्छ कहा जाता था। तथागत इस तरह की जाति-व्यवस्था को नहीं मानते थे। वह आर्य या म्लेच्छ, ब्राह्मण या शूद्र सबको समान स्वीकार करते थे। उस समय नवागत यवनों और शकों को तथागत के शासन को स्वीकार करने में अधिक लाभ था, क्यों कि ब्राह्मण उन्हें म्लेच्छ और नीच ही बनाये रखना चाहते थे। ब्राह्मणों ने पीछे अपनी इस भूल को समझ लिया, और उन्होंने सबको क्षत्रिय बना दिया। तथागत शासन नीच-ऊँच के भेद तो मिटा सकता है, और ब्राह्मण इसको कायम रखते नीच समझी जाने वाली जातियों को—विशेष कर विदेशियों और धन-शक्ति-सम्पन्नों को—ऊँची जाति का बना सकते थे। इसी का परिणाम है, जो सामन्त और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रेष्ठी ब्राह्मणों के चरणों में दौड़े-दौड़े जा रहे हैं।

धान्यकटक लौट कर समुद्र के रास्ते हम फिर दक्षिण की ओर बढ़े और नदी के भीतर से कुछ दूर जाकर कांचीपुरी में पहुँचे। कांचीपुरी पल्लव-राजा की राजधानी धान्यकटक के सौभाग्य को लूटने में आगे रही। दक्षिणापथ में पल्लव-नृपति सबसे शक्तिशाली राजा हैं। कांचीपुरी केवल राजधानी होने के कारण ही इतनी समृद्ध नहीं है, बल्कि बड़े-बड़े स्थल और जल-सार्थवाह यहाँ रहते हैं, जिनका व्यापार द्वीप-द्वीपान्तरों में होता है। राजा की पाशुपत-धर्म पर अत्यन्त आस्था है; इसलिये पाशुपत देवालयों और मठों के बनाने में यहाँ के हरेक राजा ने होड़ लगाई है। बौद्ध और जैन भी यहाँ पर हैं। उनके संघराम और उपाश्रय भी हैं, किन्तु वह उतने श्रीसपन्न नहीं हैं। हम समझते थे, कि दिग्नाग की जन्मभूमि में पहुँचकर वहाँ अच्छे-अच्छे प्रमाणशास्त्रियों से मिलेंगे, किन्तु हमें निराश होना पड़ा। मालूम हुआ कावेरीपत्तन में अच्छे-अच्छे बौद्ध आचार्य रहते हैं। कांची से फिर हम समुद्र के रास्ते कावेरीपत्तन गये। समुद्र के तट पर यह विशाल पत्तन है, जो ताम्रलिप्तिकी तरह ही द्वीप-द्वीपान्तरों के व्यापार के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ हमें कुछ अच्छे विहार मिले, जिसमें महाविहार निकाय के भिक्षु रहते थे। उनका ध्यान अपने त्रिपिटक और उनकी अट्ठकथाओं के पढ़ने की ओर अधिक है। सभी बौद्ध भिक्षुओं से वह विनय-नियमों के पालन करने में भी अधिक तत्पर होते हैं और इस बात की कोशिश करते हैं कि पुरानी परम्पराओं में मिलाया-जुलाया न जाये। मुझे उनके थोड़ें ही से ग्रंथो के पढ़ने का अवसर मिला, लेकिन बुद्धिल उनमें निष्णात थे। उनका कहना था: अमिश्रित परम्परा कोई हो ही नहीं सकती। सभी निकायों की तरह इनके पिटक भी पहले कंठस्थ चले आये थे। जब पीढ़ियों तक कंठस्थ करने की परम्परा चल रही हो, तो जाने-अनजाने कुछ पुरानी बातों का छोड़ देना, कुछ नई बातों को ले लेना साधारण सी बात है। विशेषकर लाभ और लोभ के वश में पड़कर ऐसा करना कोई अनहोनी बात नहीं थी।

दक्षिणापथ की यात्रा से मुझे निश्चय हो गया, कि प्रमाणशास्त्र की भूमि उत्तर होने जा रही है, यद्यपि उसका आरम्भ गन्धार (पेशावर) के वसुबन्धु ने, और संवर्धन इसी द्रमिल भूमि के दिग्नागने किया। सिंहल के विनयनिष्ठ भिक्षुओं को हमने पहले भी देखा था और उनके प्रति हमारे हृदय में सम्मान भी था, किन्तु हमारी सिंहल-यात्रा ज्ञान-पिपासा नहीं, बल्कि यायावरी इच्छा की तृप्ति के लिये थी।

कावेरीपत्तन से हम पोत में चढ़कर सिंहल के द्वीप के तट पर जम्बुकोलपत्तन में जा उतरे और वहाँ से धीरे-धीरे चलते एक सप्ताह में सिंहल की राजधानी अनुराधपुर पहुँच गये। राजधानी में तीन बड़े-बड़े और कितने ही छोटे-छोटे संघाराम हैं। हम अभयगिरि में जाकर ठहरे। महाविहार यहाँ का सबसे पुराना और सबसे पूज्य विहार है, जिसे अशोक-पुत्र स्थविर महेन्द्र ने स्थापित किया था। हमारे यहाँ के हिसाब से यह सबसे कठिन जाड़ों के दिन थे, लेकिन अनुराधपुर में जाड़े का कहीं पता नहीं था। मच्छर-मक्खी के लिए चाहे चादर ओढ़ ली जाये, नहीं तो शरीर ढाँकने की भी जरूरत नहीं थी। सिंहल का राजा कुमार धातुसेन महाविहार वालों का भक्त था, लेकिन अभयगिरि को भी वह श्रद्धा से देखता था। यहाँ के विशाल स्तूप अपने आकार-प्रकार में ही छोटी-मोटी पहाड़ी जैसे नहीं मालूम होते, बल्कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनके सजाने में भी बड़ी साखर्ची से काम लिया गया था। यवन, मिस्र, यवद्वीप आदि देशों के लोग राजधानी में देखे जा सकते थे। इनमें से कितनों के तो वहाँ अपने-अपने मुहल्ले बसे हुये थे। गर्मियाँ आई। हमने मध्यमण्डल की कई गर्मियाँ बर्दाश्त की थीं। यहाँ की गर्मी उतनी कठोर नहीं थी, लेकिन, तो भी बर्फानी प्रदेश के रहने वाले मेरे जैसे आदमी उसे प्रिय नहीं समझ सकते थे।

यवद्वीप जाने की आकांक्षा जब-तब बलवती हो जाती थी, तो भी हम दोनों का निश्चय तुषारदेश होते उत्तर की भूमि देखने का था। गर्मियों का अन्तिम महीना बीत रहा था, वर्षावास करके हम सिंहल को छोड़ने वाले थे। मालूम हुआ, राजधानी के दक्षिण वाले पहाड़ शीतल हैं। वहाँ बस्तियाँ अधिक नहीं हैं, किन्तु जहाँ-तहाँ कुछ छोटे-छोटे विहार हैं। ऐसे उष्ण देश में इस तरह की शीतल भूमि देखने की आकांक्षा हमारे मन में हो आई और हम उधर चल पड़े। दो दिन की यात्रा के बाद हम पहाड़ में चलने लगे और फिर रास्ता घोर जंगल से था। कई बार दो-दो तीन-तीन योजनों तक कोई गाँव न मिलता। हमारे साथ यात्रियों का एक अच्छा खासा सार्थ था। राजधानी में ही हम सुन चुके थे कि इन पहाड़ों में वन्य व्याधा (वेद्दा) रहते हैं जो बड़े खूनखार होते हैं, इसीलिए भारी संख्या में लोगों को सजग होकर जाना पड़ता है। रास्ते में जो बस्तियाँ हमें मिली थीं, वह बड़ी सुखी मालूम होती थीं। सुनते-सुनते हमारा विश्वास व्याधों की रोमांचक कहानियों पर नहीं रह गया और न वह कभी हमें दिखाई पड़े। जितनी ही ऊपर की ओर हम बढ़ते जा रहे थे, उतनी ही गर्मी दूर भागती जाती थी। दस दिनों की यात्रा के बाद हम पहाड़ों के बीच में एक विशाल सरोवर के किनारे पहुँचे, जिसमें से एक नदी निकलती थी। यहाँ एक छोटा सा निगम था, जिसमें जंगल की वस्तुओं के व्यापारी और उनसे अधिक किसान रहते थे। इस सारी यात्रा में मैंने कहीं पर भी बस्तियों से दूर एकान्त किसी विहार को नहीं देखा था और न अकेला-दुकेला कोई बनवासी भिक्षु मिला था। इससे लोगों की बात पर विश्वास करने का मन तो करता था। व्याघ्रों का हर वक्त डर रहता है, इसलिए भिक्षु यहाँ अकेले नहीं रह सकते। सरोवर के पास एक छोटा सा किन्तु सुन्दर संघाराम था। उसके चारों ओर के पहाड़ वृक्षों और लताओं से ढँके थे, जिनकी डालियाँ सरोवर की ओर लटकी हुई थीं। इन जंगलों में हाथी भी रहते हैं, पर व्याघ्र-सिंह जैसे जन्तु नहीं पाये जाते। समुद्र के बीच में ऐसे मनोरम स्थान को देखकर मेरा मन बहुत संतुष्ट हुआ। यद्यपि यहाँ गगनचुम्बी देवदार के वृक्ष नहीं थे, न हिम से ढँके पर्वतशिखर, तो भी जो दृश्य हमारे सामने था, वह बड़ा आकर्षक था। बुद्धिल भी मेरी ही तरह इस तरह की सौन्दर्य-भूमि को पसन्द करते थे। लोगों के सावधान करने पर भी हम न हाथियों की पर्वाह करते, न व्याधों का डर मानते और कभी पूर्वाह्न में और कभी अपराह्न में किसी स्थानीय भिक्षु को लेकर दूर-दूर घूमने चले जाते। यहाँ के भिक्षु सभी महाविहार निकाय के थे और उनकी दृष्टि में हमारा भिक्षुपन प्रामाणिक नहीं था। महायान के वैपुल्य पिटक को वह निरी जालसाजी मानते थे। लेकिन, बुद्धिल की विद्या और उससे भी बढ़कर मिलनसारी ऐसी थी, जो रास्ते चलते अपने घनिष्ट मित्र पैदा कर लेती थी। महाविहार के कुछ अच्छे विद्वान् भिक्षु उनके सुपरिचित हो गये थे, जिनके द्वारा हमें यहाँ के भिक्षुओं से परिचय प्राप्त करने का मौका मिला।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पूर्वाह्न का समय था। हमने सूर्योदय के समय ही चौबीस घड़ियों का निराहार व्रत तोड़ते पेट भर भोजन कर लिया था। मध्याह्न के बाद भिक्षु भोजन नहीं ग्रहण कर सकते, शायद लौटने में मध्याह्न बीत जाये, इसलिए हमने पाँच भिक्षुओं और साथ चलने वाले उपासक के लिए काफी भोजन साथ ले लिया था। आज हम कुछ और दूर तक धावा बोलने वाले थे। हमारा रास्ता दक्षिण पश्चिम की ओर बहुत घने जंगलों में से था, जिसका पता पाना हमारे लिए केवल इसी कारण सम्भव हुआ कि हमारे साथ चलने वाला उपासक और एक भिक्षु भी कई बार इस भूभाग में आखेट तथा व्याधों के साथ वस्तु-विनिमय के लिए आ चुके थे। दोपहर तक हम चलते चले गये। भोजन का समय हो गया और एक छोटी सी नदी के किनारे वृक्षों की शीतल छाया में हम बैठ गये। सरोवर से यह स्थान दो योजन से कम न रहा होगा। रास्ते में कई जगह चढ़ाई-उतराई करनी पड़ी थी और कहीं-कहीं वह बहुत दुर्गम भी थी, जो हमारे साथी सिंहल-भिक्षु के लिए भले ही त्रासदायक हों, पर मेरे लिए वह बात नहीं थी। उद्यान के पहाड़ी रास्ते इससे भी भयंकर होते हैं। थोड़ी देर विश्राम करके हमने भोजन किया। उस समय मेरे साथी मेरे मुख से उद्यानभूमि की बातें बड़े चाव से सुन रहे थे। बुद्धिल भी बीच-बीच में अपनी बातों से सबको हँसा रहे थे। लेकिन उपासक के चेहरे पर वह प्रसन्नता नहीं दीख पड़ती थी, जो हम सबों के चेहरे पर थी। उसने कई बार शंका प्रकट की, यद्यपि सरोवर से चलने के समय वह बहुत प्रसन्नतापूर्वक आया था। आशंका का स्थान तो था, क्योंकि हम सिंहल के ऐसे घोर जंगल में थे, जहाँ कोई गाँव या बस्ती नहीं, जहाँ की भूमि ने कभी हल और कुदाल नहीं देखी। पहाड़ में पहुँचने पर बस्तियाँ बहुत कम थीं। उनके आसपास खेती थी। जहाँ-तहाँ उजड़ी बस्तियाँ और खेतों के भी चिन्ह मिले थे। परन्तु यह तो आदिकाल से अक्षुण्ण चला आता महावन था, जिसमें वन्य-जन्तुओं के पाखाने-पेशाव के चिन्ह कहीं मिलते और कहीं बानर डालियों पर फुदकते दीखते।

उपासक के कान हर वक्त खड़े हो जाते। जरा भी कोई खटका होता कि वह चौकन्ना हो जाता। उसके पास कुठार और धनुष-बाण था। हम पाँचों भिक्षु हथियार नहीं रख सकते थे। रास्ते की थकावट और भोजन करने के बाद लेट जाने की इच्छा हुई और लेटते ही हमको नींद ने आ चपेटा। हम बहुत देर तक नहीं सोये होंगे, एकाएक चिल्लाहट सुनकर मेरी नींद खुल गई। देखा बीसेक व्याधा हमें चारों ओर से घेर कर खड़े हैं। उनके शरीर पर कोई कपड़ा नहीं था। कद में वह छोटे, किन्तु उनका जामुन जैसा काला शरीर सुसंगठित था। धनुष-बाण को उन्होंने अपने कन्धों पर लटका रक्खा था। उनके हाथों में चौड़ी धार के तीक्ष्ण कुठार थे। उपासक की हालत सबसे बुरी थी, मानो उसके चेहरे पर मृत्यु नाच रही थी। हमारे तीनों साथी-भिक्षुओं की भी हालत कुछ ही बेहतर थी। व्याधा चीखते-चिल्लाते ज्यादा थे और जो बोलते भी थे, उसका एक शब्द भी हमें समझ में नहीं आता था। पर उनकी चेष्टाओं से मालूम होता था कि हम काल के जबड़े में पड़ चुके हैं। व्याधों के देश में आने का हमने अपराध किया था।

उन्होंने हमें ज्यादा सोचने-विचारने का मौका नहीं दिया और उपासक के हथियारों को लेकर एक तरफ चलने का संकेत किया। चारों तरफ हमें घेरे वह तेजी से दक्षिण-पश्चिम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की ओर चलने लगे। जंगल तो पग-पग पर मालूम होता था और भी बीहड़ होता जा रहा है। मैं अपने सामने चलने वाले दो व्याधों को देख रहा था। उनमें से एक का नंगा शरीर वैसा ही था, जैसा उसके साथियों का, किन्तु वह अपेक्षाकृत अधिक बलवान् मालूम होता था। जन्म के साथ पैदा हुये उसके बालों में फूलों-पत्तों और पंखों का विशेष श्रृंगार भी उसे औरों से भिन्न बतलाता था। शायद वह इस प्रदेश के व्याघ्रों का राजा था। साथ के तरुण का उसके साथ क्या सम्बन्ध था, यह हम नहीं समझ सकते थे। लेकिन, उसका शरीर सबसे अधिक सुघड़ मालूम होता था। जान पड़ता था, किसी कुशल मूर्तिकार ने अपनी सारी कला लगाकर काले पाषाण में उसको गढ़ा है। रंग सबको अपना-अपना पसन्द होता है। मेरे बाकी पाँचों साथियों में बुद्धिल काफी हलके रंग के थे तो भी हमारे उद्यान में उनको साँवला ही कहा जाता। दो सिंहल-भिक्षु भी गेहुँआ रंग के थे, बाकी एक भिक्षु और उपासक का रंग व्याघ्रों से कोई फर्क नहीं रखता था। पकड़ते वक्त ही व्याधों ने मेरी ओर संकेत करके क्या-क्या आपस में कहा था। मैं इतना ही समझ सकता था कि उनका संकेत मेरे गोरे रंग और नीली आँखों की ओर है। उस वक्त मुझे क्या मालूम था कि मेरी यह विशेषता उपकार के रूप में मेरा महान् अपकार करेगी।

सूर्यास्त को बहुत थोड़ा समय रह गया था, जब हम एक अपेक्षाकृत एक बड़ी पहाड़ी नदी के किनारे पहुँचे। यहाँ एक प्राकृतिक विशाल गुफा थी, जिसके द्वार पर 25-30 व्यक्ति दिखाई पड़े। उनमें अधिकांश स्त्रियाँ, बच्चे और दो-चार बूढ़े थे। बूढ़ों के भी बाल काले थे, केवल उनके चेहरे और शरीर की झुर्रियों से ही उनकी उम्र जानी जा सकती थी। गुफा में पहुँचने से पहले ही हमारे साथ के व्याधों ने तुमुलध्वनि की। वैसे वह सारी यात्रा में हल्ला-गुल्ला करते चल रहे थे, शायद वह ऐसा करसे वन्य जन्तुओं को भगाना चाहते थे। उपस्थित लोगों ने बड़े कोलाहल के साथ उनका स्वागत किया। उनका उद्देश्य हमें पकड़ने का नहीं, बल्कि शिकार करने का था। उन्होंने कितने ही खरगोश और हिरन मारे थे, खाल में मधु जो भरी हुई थी, वह इसी यात्रा का सुफल था। इसी समय अकस्मात् उनका हमारे साथ साक्षात्कार हुआ। गुफा में ले जाकर रस्सी से हमारे हाथ-पैर बाँध दिये गये, और पाँच शस्त्रधारी व्याधे हमारी देखभाल के लिये नियुक्त कर दिये गये।

हम निसर्गजात मानव-सन्तानों के बीच में थे। उनकी भाषा का एक भी शब्द हमें मालूम नहीं था, और उनके संकेतों को भी हम बहुत कम समझ पाते थे। भाषा न समझने पर भी ग्राम्य और नागरिक जीवन की कितनी ही बातें सभी जातियों में एक सी पाई जाती हैं, जिससे हम अपनी उस परिस्थिति का कुछ अन्दाजा लगा सकते थे। हम केवल इतना हीसमझ थे; कि जीवन के दिन अब शीघ्र ही समाप्त होने के हैं। बुद्धिल ने मेरे ऐसा विचार प्रकट करने पर कहा: दिन नहीं, घड़ियाँ कहो, क्यों कि दिनों रखकर उन्हें या तो हमें भूखा मारना पड़ेगा या अपनी संचित सामग्री में से देना होगा। उपासक का भी कहना था। वह हमें अब जीता नहीं छोड़ेंगे। व्याधों को सिंहल नागरिकों और ग्रामीणों से हथियार छोड़कर और किसी चीज के लेने-देने की जरूरत नहीं। वह नहीं जानते,लोहा कहाँ से आता है, लेकिन उनके पूर्वजों ने लोहे के हथियारों को अपने गर्दन, पीठ और हाथ पर पकड़ने के बाद समझ लिया कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन कपड़ेधारियों के पास यह एक ऐसी चीज है, जिसे लिये बिना हमारी खैरियत नहीं। इसके बाद न जाने कब बिना कुछ बोले हुये यह समझौता हुआ कि अपने शिकार किये हुये जानवर या मधु को किसी ऐसे स्थान पर रख देंगे, जहाँ वस्त्रधारियों का आना-जाना होता रहता है। मुफ्त लेने का मतलब होता, आगे से उन चीजों से वंचित होना, इसलिये व्याधों की चीजों के बदले लोग लोहे के कुठार, कटार, दाव या वाण के फल रख देते, जिन्हें व्याध उठा ले जाते। इस प्रकार क्रय-विक्रय करने वालों से साक्षात् सम्पर्क हुये बिना ही उनमें चीजों के विनिमय का सम्बन्ध स्थापित हुआ। जङ्गलों के राजा व्याधा थे और बस्तियों के राजा कपड़ेधारी सिंहल लोग, जिनकी भाषा मध्यमण्डल की भाषा से मिलती-जुलती है। किसी समय सिंहल में अपार जङ्गल रहा होगा, लेकिन मनुष्य तो अपनी खूनी लड़ाइयों और महामारी का शिकार होने पर भी बराबर बढ़ता ही जाता है। उसे और खेतों तथा गाँवों की आवश्यकता होती है, फिर उसने जङ्गल के राजा की भूमि की ओर लोभ की दृष्टि डाली। जङ्गल के राजा अपनी अधिकार को यों ही कैसे छोड़ सकते। दोनों में संघर्ष उत्पन्न हुआ, जो कभी उग्र हो उठता और कभी शान्त पड़ जाता, पर बराबर ही चलता रहता।

हमारे भाग्य में क्या बदा है, यह बहुत कुछ निश्चित था। उस रात को उन्होंने हमें उसी गुहा में रहने दिया। बाहर दो-तीन जगह आग जल रही थी, जिसमें पहले वह अपने शिकार को भूनकर खाते रहे, फिर उनका नाच-गाना देर तक जारी रहा। आधी रात के बाद नीरवता छा गई। गुफा भीतर की ओर बहुत लम्बी-चौड़ी थी, लेकिन उसका दरवाजा संकीर्ण था या पत्थरों को रख कर संकीर्ण बना दिया गया था। यमदूत की तरह हथियार लिये वहाँ पहरेदार बैठे थे। हममें किसी की इच्छा भागने की नहीं थी। वह सम्भव भी नहीं था। उपासक तो पहले ही मर चुका था। उसे रोना आँसू बहाना छोड़ और कुछ नहीं आता था, यद्यपि उसके शरीर पर दो-चार ही डंडे पड़े थे।

सूर्योदय हुआ। मृत्यु की छाया में करुणामय निद्रा ने हमारा साथ नहीं छोड़ा था। उपासक की सूख गई आँखें सूर्य की किरणों को देखते ही फिर बहने लगीं। वह और एक भिक्षु व्याधों को देखे हुये वतलाये जाते थे, लेकिन उन्होंने वस्तुतः अनुराधपुर के कुछ दास-व्याधों को ही देखा था। जिस तरह हाथियों को पकड़ कर अच्छे दामों पर बेचा जाता है, उसी तरह वन के इन मुक्त मानवों को भी पकड़ कर बेचना सिंहल के कितने ही लोगों का व्यवसाय है। मुक्त व्याधा अपनी खुशी से तो उनके हाथ में पड़ने के लिए तैयार नहीं होते। वह प्राणपन से अपने बचने की कोशिश करते, जिनमें कितने ही मारे जाते या घायल होकर बुरी मौत मरते। सिंहल के दास-शिकारी लड़कों और स्त्रियों को पकड़ना अधिक पसन्द करते क्योंकि सयाने व्याधा दासता के जीवन को बर्दाश्त नहीं करते, वह जल्दी ही मर जाते हैं। हम उसी समाज के व्यक्ति थे, जो व्याधों के साथ ऐसा क्रूर बर्ताव करता है, फिर हम कैसे उनकी दया के पात्र हो सकते थे ?

सूर्योदय के साथ ही हम हर वक्त अन्तिम घड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे। लेकिन, वह घड़ी दुःसह से दुःसहतर होती और भी टलती जा रही थी। मैं और बुद्धिल यही मना रहे थे कि किसी तरह अन्तिम छुट्टी मिले। व्याकुलता बढ़ती जाने पर भी हमारे दूसरे साथियों की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्तिम आशातन्तु टूटी नहीं थी। पहर भर दिन तक, जब हमारे पास पहरेदारों के सि और कोई नहीं आया, तो बेचैनी और बढ़ी, क्षण-क्षण काटना मुश्किल हो गया। इसको हटा के लिए ही बुद्धिल ने बातें शुरू की— "मानव-मानव में वास्तविक बन्धुता और उदारता बिना हर घड़ी ऐसी घटनाओं के होने की सम्भावना है। मैंने ऐसे लोगों के बारे में भी सु है जो मनुष्य को मारकर खा जाते हैं। सिंहल द्वीप के व्याधा मनुष्यभक्षी नहीं हैं। य उन्होंने हमें इसके लिए पकड़ा होता, तो मुझे तो बड़ा संतोष होता। आखिर इस शरीर एक दिन मरना ही है, अगर उससे 10-20 की भूख की तृप्ति हो जाये, तो इससे बढ़ इसका उपयोग क्या? हम इनको दोष कैसे दे सकते हैं? हम जो नागरिक हैं, अपने ज्ञान औ संस्कारों में इनसे उन्नत हैं, आहार निद्रा-भय-मैथुन में ही अपने जीवन की इतिश्री नहीं मानते बल्कि अपने को इससे भी आगे बढ़े हुये मानते हैं। तो भी हम वन्य पशुओं की तरह इन्हें घे कर पकड़ते तथा हाटों में ले जाकर सबसे अधिक दाम देने वाले के हाथ में बेच देते हैं पशुओं में भी अपने सजातियों का प्रेम होता है। यह चाहे कितनी ही हीन अवस्था में हों किन्तु ये अपनी सन्तानों, अपने बन्धुओं का स्नेह हृदय में रखते हैं। हमारे पास लोहे के तीक्ष कृपाण हैं। इनसे कहीं अधिक अच्छे-अच्छे हथियार हैं। ये तो बेचारे मँगनी में हमसे कु हथियारों को पाकर अपनी आत्मरक्षा करते, आखेट कर जीवन-यात्रा चलाते हैं। यह मुश्कि से सौ-पचास को मुकाबिले के लिए जमा कर सकते हैं और हम हजारों को जमा कर सक हैं। हमारे सामने यह हाथी के सामने चींटी की तरह हैं, लेकिन चींटी भी अपने सर्वनाश बदला लेती है। व्यक्ति एक सीमा ही तक अपराधों से मुक्त समझा जाता है, जब सीमा पा हो जाता है, तो अपराध का जिम्मेवार सारे समाज को माना जाता है। हम छः आदमी जिनके प्राण इनके हाथों में है, यह कहकर अपराध-मुक्त नहीं हो सकते कि हमने इनको को हानि नहीं पहुँचाई। मनुष्य साँप को देखते ही मार डालता है, क्या कभी वह ख्याल करत है कि इस सामने आये साँप ने हमारा कुछ नहीं बिगाड़ा। वैसे ही हम कपड़ेधारियों का सार समाज इनके सामने अपराधी है, क्योंकि हम इनके साथ अपने आदमियों का अत्यन्त कठो और सर्वनाशी बर्ताव सह्य मानते हैं।

कुछ भी हो, आदमी कुछ उदार भावनाओं को लेकर ही भिक्षु होता है, इसलि हमारे साथी बाकी तीनों भिक्षु भी इस वार्तालाप को अधिक ध्यान से सुन रहे थे। लेकि उपासक को बड़ी रात तक रोते नींद आ गई थी, उसके टूटते ही वह फिर आँसू बहाने लगा हमारी बातचीत मध्यमंडल की भाषा (प्राकृत) में हो रही थी, जिसके शब्दों को मुश्किल ही वह कहीं-कहीं समझ सकता था। सिंहल-भिक्षु उसे बहुत समझाते : रोने से कोई फायद नहीं, इस वक्त धैर्य रखने की आवश्यकता है। लेकिन, बेचारा किस आशा पर धैर्य रखे कहता था—"यदि तलवार के एक हाथ से साफ कर देते, तो भी मैं धैर्य करता, लेकिन य बड़ी क्रूरतापूर्वक हमें मारेंगे। शरीर में भाले चुभायेंगे, एक-एक अंग काटकर तड़पायेंगे या जलती आग में डाल देंगे।" उपासक ने इन व्याधों के बारे में जो कुछ सुन रक्खा था, उन्हें सुनाते हुये वह और भी भयभीत हो रोने लगा। बुद्धिल ने कहा—"कम से कम इनके सामने हमें अपनी दीनता नहीं दिखलानी चाहिये। यदि वह हमें इतना भीरु समझेंगे, तो और भी सासत करके मारेंगे।" उपासक कुछ भी सुनने के लिए तैयार नहीं था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बुद्धिल हममें सबसे ज्यादा शान्त थे। मालूम होता था, उनके लिए कुछ हुआ या होने वाला ही नहीं। मैं अपने बारे में उतना ही दृढ़ नहीं कह सकता था, लेकिन तो भी मुझे मृत्यु का उतना भय नहीं था। कई बार अपने जीवन में मृत्यु के संकट से मैं बाल-बाल बचा था। देशाटन और पंडितों के सत्संग के लिए मेरे हृदय में इतनी उत्कट चाह थी कि मैं हर वक्त प्राणों की बाजी लगाने के लिए तैयार था। मैं समझता था, पहले से चिन्ता करके तड़पने की क्या आवश्यकता ? जिस घडी या जिस क्षण तड़पना होगा, उसी वक्त तड़प लेंगे। मैं गुहा के द्वार पर बैठे उन व्याघ्रा तरुणों की ओर देख रहा था, जो इतनी सावधानी से हमारी ओर देख रहे थे, मानों वह हमारी सारी बातों को समझ रहे हो। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कुछ घड़ियों बाद हमारे पहरेदार बराबर बदलते रहे। गुहा के भीतर रहते हम उन्हीं को देख सकते थे, यद्यपि और भी मनुष्यों की आवाज हमारे कानों में आ रही थी। मुझे यही इच्छा होती थी कि देखूँ यह क्या कर रहे हैं। हम तो गुहा के द्वार पर जाने की हिम्मत भी नहीं कर सकते थे, क्योंकि वैसा करने पर वह जरूर हमें अपने भालों से भोंक देते। पहर दिन हो जाने पर मेरी जिज्ञासा की कुछ-कुछ तृप्ति हुई, जब कुछ बच्चे और स्त्रियाँ झाँककर हमें देखने के लिए आईं। बच्चों के हाथ में हरिन या खरगोश की मांस लगी हड्डियाँ थीं, जिन्हें वह चिचोड़ रहे थे। स्त्रियाँ भी हड्डी या कोई और चीज पर मुँह लगाती हमें देख रही थीं। उनके लिए हम तमाशा थे। हमारे नगरों में अगर यह नंगी काली मूर्तियाँ जातीं, तो हमारे लिए भी ये तमाशा बन जातीं।

कुछ समय और बीता। गुहा के दरवाजे पर जो थोड़ी सी खाली जगह थी, उसमें वृद्धों और वयस्कों की एक मंडली आ बैठी, जिनके बीच में हमारी तरफ मुँह किये एक बूढ़ा बैठा था। लोगों के चेहरे के भावों और संकेतों से मालूम होता था कि वह बूढ़े की इज्जत करते हैं। लोग जोर-जोर से बातें कर रहे थे, लेकिन हमें उसका कोई अर्थ समझ में नहीं आता था। वह आपस में झगड़ नहीं रहे थे, इतना हम कह सकते थे। बूढ़ा कभी-कभी बड़े जोर-जोर से सिर हिलाता। उसके काले बाल, जो बहुत जिन्होंने ही कम पानी देखा होगा, कभी-कभी खड़े हो जाते। उसकी आँखें लाल थीं। घनी काली दाढ़ी वाले चेहरे पर पड़ी झुर्रियाँ उसे और भी भयंकर बना रही थीं। उसने कुछ देर नशे में या पागल जैसे जोर-जोर से कुछ बातें कीं। फिर उठकर गुहा के दरवाजे पर भीतर घुस हममें से एक-एक को गौर से ही नहीं, बल्कि सिर, पीठ और हाथों को टटोल कर देखा। उपासक के होश उड़ गये। उसकी कातर मुखाकृति को देखकर जोर का लात पीठ पर मारते हुए बूढ़े ने कुछ कहा।

उसके बाहर जाने के बाद ही सारी मण्डली उठकर चली गई। हमें भूख भी थी, लेकिन मृत्यु के सामने वह कैसे अपना सिर ऊँचा कर सकती थी ? प्यास से तलवा सूखा जा रहा था। पहरेदारों के सामने पानी का संकेत करना बेकार था, लेकिन थोड़ी देर में हमारे पास एक पुरुष खाल में पानी भर कर लाया। हमने तृप्त होकर पिया। इसी समय वह उपासक को हमारे भीतर से पकड़ कर ले गये। वह बहुत छटपटाया, न जाने का प्रयत्न करता रहा, किन्तु उसका फल दो-चार और लात-मुक्के खाने के सिवा और कुछ नहीं हुआ। बुद्धिल ने कहा—इसे ही प्रथम बलि बनाया गया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

—देवता के सामने बलि चढ़ायेंगे ?

देवता के सामने भी बलि चढ़ा सकते हैं। भय-भैरव ही तो देवताओं की सृष्टि करता है, जो हमसे भी अधिक इनके हृदय में है—बुद्धिल ने कहा—लेकिन, मुझे भय है कि इसके कायरता-प्रदर्शन का परिणाम बहुत बुरा होगा। वह उसे बहुत सासत के साथ मारेंगे। चाहे कितने ही जंगली हों, लेकिन हमारे बीच के भेदों का इनको कुछ-कुछ परिज्ञान जरूर होगा। हमारे पीले कपड़े उपासक के सफेद कपड़ों से भिन्न हैं। उपासक के सिर पर लम्बे बाल, मुँह पर दाढ़ी और मूँछें हैं। जबकि हम मुंडित हैं। इसका कोई कारण होगा, यह वह जरूर सोचते होंगे। हमारे लोग हर साल सैकड़ों की तादाद में जिन व्याधों को फँसाकर बन्दी बनाते हैं, उनमें से भी कोई-कोई मुक्त हो अपने लोगों में लौटने में सफल होता होगा। इनके पास भाषा है, चाहे वह उतनी समृद्ध न हो, जिसमें शास्त्र और धर्म की चर्चा हो सके; लेकिन वह इतनी पर्याप्त जरूर है कि हमारी दासता से मुक्त हुआ व्याधा हमारे बारे में उन्हें सारी बातें समझा सके।

सिंहल-भिक्षुओं में जो सबसे अधिक प्रौढ़, ज्ञान और वृत्ति में बहुत गम्भीर थे, उन्होंने भी इस मसय बड़े धैर्य का प्रदर्शन किया था। वह कहने लगे—"व्याधों के फँसाने वाले हमारे दास-व्यापारी तरुण-तरुणियों और प्रौढ़-प्रौढ़ाओं को भी पकड़ते हैं, लेकिन उन्हें वह कावेरीपत्तन, काँची या दूसरे दूर के देशों में ले जाकर बेंचते हैं। सिंहल में लोग इनके लड़के-लड़कियों को ही खरीदते हैं। कारण स्पष्ट है—तरुण या प्रौढ़ बराबर अपने स्वच्छन्द वन्य-जीवन का स्मरण करते रहते हैं और मौका पाते ही जंगल का रास्ता लेते हैं। यद्यपि सिंहलों में भी इनके जैसे रूप-रंग का बिल्कुल अभाव नहीं है, किन्तु इनकी चालढाल से लोग पहचान लेते हैं। अनुराधपुर से भागे व्याधा को तो मुश्किल से ही दो-चार गाँवों से अधिक दूर तक भागने का अवसर मिलता है, और वह पकड़ा जाता है।

मैं कहने लगा—हमारे बीच पाँच-सात वर्ष रह जाने पर तो यह हमारी भाषा भी अच्छी तरह सीख लेते होंगे। शायद इनमें भी कोई ऐसा हो।

—बहुत कम सम्भावना है, क्योंकि बच्चे बच्चियों को ही सिंहल में रखते हैं, जो जल्दी ही अपने समाज को भूल हमारी बातें सीख लेते हैं, खान-पान, रहन-सहन, वेषभूषा उनकी हमारे दूसरे दासों जैसी हो जाती है। वह साथ ही अपने लोगों की हीन अवस्था को घृणा की दृष्टि से देखना भी सीख जाते हैं। जरा भी भागने का भय हुआ, तो स्वामी उन्हें वैदेशिक दासवणिक के हाथ में बेंच देते हैं। सिर्फ एक एकाध ही ऐसे दास को भाग कर जंगल में जाने में सफल होता सुना है।

मैं सोच रहा था, यदि दासता से मुक्त ऐसा कोई व्याधा मिलता, तो शायद हमें अपने भाग्य के बारे में अधिक जानने का अवसर मिलता, या हम इनके बारे में अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकते। मैं मानता हूँ, जिस स्थिति में हम वहाँ थे, उसमें इस तरह की जिज्ञासा उपहासास्पद थी, लेकिन मनुष्य बुभुक्षा-पिपासा के साथ-साथ जान पड़ता है, जिज्ञासा को लिये पैदा हुआ है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपासक के ले जाने के बाद दो तरुण सिंहल-भिक्षुओं को वह एक साथ ले गये और अब हम तीन वहाँ यमदूतों की प्रतीक्षा के लिये रह गये। जितना समय पहले के बाद लगा था, उससे मुझे ख्याल आया, शायद दो घड़ी और हमें संसार में जीना है। सिंहल-स्थविर से हमने किसी बुद्ध सूत्र के पारायण करने के लिये कहा। उन्होंने बड़े स्वर के साथ धम्मपद की कुछ गाथायें गाईं, फिर महापरिनिर्वाण के लिये भगवान् की राजग्रह से पाटलिग्राम और वैशाली होते कुसीनगर तक की यात्रा और अन्तिम संस्कार तक के वर्णन करने वाले सूत्र का उन्होंने पारायण किया। हमें उससे इतनी सान्त्वना मिल रही थी कि डर लग रहा था, कहीं अधूरा ही उसे न छोड़ना पड़े। पारायण समाप्त होने के थोड़ी ही देर बाद वह मेरे दोनों साथियों को एक साथ ले गये। मुझे उस वक्त इसका अपार दुःख हो रहा था कि बुद्धिल और मुझे साथ क्यों नहीं ले गये। हम दोनों इतने एक-दूसरे से मिल गये थे कि ज्ञान-वैराग्य की बातें करते हुये भी अपने बिछोह को सहन नहीं कर सकते थे।

गुफा के भीतर मैं अब अकेला था। कल्पना दौड़ रही थी—वह उन्हें वध्यस्थान पर ले जा रहे हैं। अब उन्होंने उनको बैठाया होगा। शायद सबसे पीछे ले जाने के कारण उन पर कुछ विशेष दया दिखलायें और कृपाण से एकदम मार कर सिर से धड़ अलग कर दें। ख्याल दौड़ रहे थे। मालूम होता था सारा दिन बीत गया, शाम होने को आ रही है। लेकिन वस्तुतः यह मेरा भ्रम था। संकट की घड़ियाँ लम्बी होती हैं। मेरी एक ही लालसा थी, वह जल्दी आकर मुझे भी ले जायें। यदि वह पूरी हुई होती, तो इन पंक्तियों को कौन लिखता? मैंने देखा, मेरे अन्तिम दोनों साथियों के ले जाने के बाद पहरे के लिये अब वहाँ गुहाद्वार पर एक ही आदमी रह गया था। शाम से पहले ही मुझे वह गुहा से निकाल कर बाहर ले गये। वहाँ बहुत से स्त्री-पुरुषों और बच्चों ने मुझे घेर लिया। मेरे साथियों का रंग भी उनसे भिन्न था, विशेषकर बुद्धिल और दो भिक्षुओं का, लेकिन मैं उनके लिये एक विलक्षण जन्तु था। शायद उन्होंने मेरे जैसे गौर रंग के आदमी को देखा नहीं था। लड़के उँगलियों में थूक लगाकर मेरे शरीर को रगड़ कर देखना चाहते थे, कि मैंने कोई रंग तो अपने शरीर में लेप नहीं रक्खा है। रंग लेपना या शरीर पर स्थायी या अस्थायी चिह्न अंकित करना वह भी जानते थे। उन्होंने देखा, मेरे शरीर में कोई रंग नहीं पुता है। मेरी आँखें भी नीली थीं और उससे भी विचित्र लगते थे मेरी भौहें, जो सुनहली थीं। केश सात दिन के मुड़े होने से अभी छोटे ही छोटे थे, लेकिन उनके देखने से भी उनका सुनहला रंग स्पष्ट हो जाता था। शरीर में उनके लम्बे से लम्बे जवान से भी मैं बड़ा था। उन्होंने आपस में मेरे बारे में क्या-क्या कहकर बहुत हास-परिहास किया। मेरे शरीर के साथ खेल करने में भी उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं थी, लेकिन वह मेरे शरीर को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहते थे। अन्धेरा होने से पहले ही उन्होंने भुने हुये मांस और चमड़े में पानी लाकर मेरे सामने रक्खा। मेरे हृदय में एकदम छुरी सी चुभने लगी: "क्या यह मुझे मारना नहीं चाहते? बुद्धिल जैसे मित्र को खोकर क्या मुझे जिन्दा रहना होगा।" यह सोचते हुये भी मेरा हृदय काँपने लगा। मैं आज दिन भर अन्न से वंचित रहने के कारण भूखा था, पर तो भी विकाल भोजन में करके अपने भिक्षु-नियम को तोड़ने के लिये तैयार नहीं था। प्यास बुझाने से भी अधिक मैंने पानी जरुर पी लिया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रात का अन्धकार विश्व में फैल रहा था, जो मेरे लिये और निविड़ तथा अनन्त मालूम होता था। मेरे दिल में अब कोई आशा और आकांक्षा नहीं रह गई थी। वह बिल्कुल सुन्न सा बनता जा रहा था।

पहर भर रात गई होगी, पर मुझे तो युग बीता मालूम होता था, जब कि किसी आदमी ने सिंहल भाषा में उसी तरह मुझे सम्बोधित किया, जैसे दास सम्बोधित करते हैं। मैं इस तरह के सम्बोधन का आदी नहीं था। "भन्ते" (स्वामी) सुनते-सुनते मालूम ही नहीं हो रहा था, कि मुझे कोई सचमुच बुला रहा है। मैं ऐसी स्थिति में पहुँच गया था, जब कि स्वप्न और जागृत अवस्थाओं की सीमा रेखा मिट जाती है। मुझे नींद कहाँ आ सकती थी? अपनी मानसिक चिन्ताओं को भुलाने के लिये प्रार्थना करता था : निद्रादेवी स्वर्गलोक से उतर कर मेरी आँखों में छा जाओ। पर, वैसा सौभाग्य कहाँ ? लेकिन, जिस समय मैंने सिंहल शब्दों को सुना, मुझे विश्वास हो गया, कि मैं जरुर स्वप्न देख रहा हूँ। दो-चार बार बोलने पर भी जब मैंने कोई उत्तर नहीं दिया, तो बोलने वाले को मालूम हो गया, कि मुझे नींद लग रही है। इस पर उसने बड़ी कठोरता से मेरा हाथ से पकड़ कर हिलाया। मैं यों ही लेटा हुआ था। मैं उठ बैठा। आदमी का चेहरा साफ दिखाई नहीं पड़ता था, यद्यपि हम अभी-अभी उगे चाँद की रोशनी में थे। तो भी मुझे विश्वास हो गया, कि यह सिंहल नहीं है। उसका नग्न शरीर भी इसकी साखी दे रहा था। उसकी सभी बातों को समझना मेरे लिये मुश्किल था, क्योंकि सिंहल भाषा का अभी उतना परिचय नहीं हो पाया था, तो भी मध्यमण्डल की भाषा से सुपरिचित होने के कारण मैं उसके भावों को समझ सकता था। उसने पहली बात यही बतलाई—तुमको नहीं मारा जायेगा। मैंने पूछा—और मेरे साथियों का क्या हुआ ?

—वह कब के मर चुके, उनके शरीर को भी दूर ले जाकर नदी में फेंक दिया गया।

—मुझे क्यों जिन्दा छोड़ते हो, मुझे भी मार डालो। मुझे जीने की इच्छा नहीं है।

—नहीं, तुम हमारे शत्रु नहीं हो, तुम इस देश के नहीं हो। हम किसी निरपराध को नहीं मारते।

—तो मेरा तुम क्या करोगे ?—मैंने पूछा।

—कल हम तुम्हें ले जाकर सबसे नजदीक के गाँव के पास छोड़ आयेंगे। तुम जाकर हमारे दुश्मनों से कहना, कि हम तुम्हारे जैसे नीच नहीं हैं। तुम हम निरपराधों को जबर्दस्ती पकड़ कर मनुष्य से पशु बनाते हो। हम उसका अगर बदला भी लेते हैं, तो तुम्हारी तरह जिन्दगी भर पशु की तरह सासत करके नहीं, बल्कि तड़ाक-फड़ाक।

मैं उससे और भी कुछ बातें जानना चाहता था, लेकिन उसके व्यवहार से मालूम होता था, कि वह मुझसे अधिक बातें नहीं करना चाहता या उसके लिये उसके पास शब्द नहीं थे। उसने कहा, कल सूर्योदय के बाद हम तुम्हें छोड़ने ले चलेंगे। फिर खाने के लिये पूछा। मैंने कहा—चलते समय ही दे देना।

मुझे मरना नहीं जीना है, यह समाचार दूसरे समय सुखद हो सकता था, लेकिन उस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रात को बुद्धिल का शान्त चेहरा बार-बार मेरी आँखों के सामने घूम रहा था। न जाने किस समय नींद आई। मैं बुद्धिल के मुख को देख रहा था। वह बड़े प्रसन्न वदन, मुस्कुरा नहीं, हँस रहे थे। पहले वह दिग्नाग के "प्रमाणसमुच्चय" की कुछ बातों की व्याख्या करते रहे। मुझे वह स्थल कठिन मालूम होते थे, जिन्हें बुद्धिल ने बहुत सरल और विशद करके समझाया। हमारी बात किस स्थान पर हो रही थी—कपिशा, जेतवन या महाविहार में, यह मैं नहीं कह सकता। फिर वह यात्रा की बातें करने लगे। उन्होंने हमारी पहले की चर्चा को दोहराते हुये कहा—"सिंहल से हमें अब चल देना है। हमें बड़ी यात्रा करनी है। महाचीन चलना चाहिये, लेकिन उसके पहले अपनी जन्म-भूमियों को एक बार देख लेना चाहिये। यहाँ से हम दक्षिणापथ के कुछ विहारों को देखते उज्जयिनी चलें। कालिदास की उज्जयिनी मेरी जन्मभूमि मुझे बड़ी प्रिय है। जन्मभूमि किसको नहीं प्रिय होती? फिर वहाँ से हम दोनों तुम्हारी जन्मभूमि देखने चलेंगे, और फ़िर जम्बू द्वीप से अन्तिम बिदाई लेंगे। हिमवान् के उत्तुंग शिखरों को पार करके महाचीन चलना है। समुद्र के रास्ते हाथ-पैर बिना डुलाये पोत पर बैठ कर जाना हमें शोभा नहीं देता।"

बुद्धिल ने न जाने कितनी देर तक मुझसे बातें की। मैं उस वक्त कल की घटनाओं को बिल्कुल भूल गया। सचमुच ही मैं अपने मित्र से जागृत अवस्था में बातचीत कर रहा था। सूर्योदय कब हुआ, इसका मुझे पता नहीं। अन्त में उसी परिचित स्वरवाले पुरुष ने मुझे फ़िर हिला कर उठाया। मैं उठकर बैठ गया। एक भूना हुआ मांस का बड़ा टुकड़ा, कुछ सूखे फल और पानी की मशक पास में रक्खी थी। आदमी ने कहा—"खा लो, चलना है, भूख लग जायेगी।" मेरे पूछने पर उसने नदी के किनारे चलने की सहमति दी। वह मांस और मशक को उठाकर मेरे साथ चला। नदी के पास जाकर मैंने हाथ-मुँह धोया। फ़िर मांस को खाकर पानी पी लिया। उसके कहने से मालूम हुआ, कि वह मुझे यहीं मुक्त कर सकते हैं, लेकिन इन घनेजंगलों में रास्ता पाना मुश्किल होगा, और डर है, कि मैं व्याधों के किसी दूसरे झुँड के हाथों में पड़ जाऊँगा।

तीन आदमी मेरे साथ थे, जिसमें वह भूतपूर्व दास भी था। बोलने-चालने से आदमी के भीतरी गुणों का परिचय मिलता है। वह समझदार मालूम होता था। रास्ता चलते उसने अपनी कथा सुनाई—लड़कपन में मुझे पकड़ ले गये थे। अनुराधपुर के एक ब्राह्मण ने मुझे खरीद लिया। मैं पकड़े जाते वक्त सयाना था। सभी बातें मुझे याद हैं। ब्राह्मण-ब्राह्मणी का मैं अकेला दास था। उनकी कोई सन्तान नहीं थी। यद्यपि मुझे एक दास लड़के की तरह ही काम करना पड़ता था, लेकिन उनका बर्ताव बहुत अच्छा था। मुझे उन्होने बड़े आराम से रक्खा, झिड़का भले ही कभी हो, लेकिन मेरे ऊपर हाथ नहीं उठाया। कह सकता हूँ, मुझे उन्होंने दास की तरह नहीं, बल्कि एक मुक्त कर्मकर की तरह रक्खा। उनका मुझ पर बड़ा विश्वास था। मैं नगर के जीवन का अभ्यासी हो गया था। उसमें आनन्द भी आ रहा था, पर मुझे अपने लोग याद आते, खास करके माँ याद आती थी। जंगल का स्वच्छन्द जीवन अनुराधपुर के जीवन से कहीं आकर्षक मालूम होता था। मैं जवान हो गया और वह आकर्षण मेरे हृदय में और भी बलवान् होता गया। ब्राह्मणी मर चुकी थी, ब्राह्मण ने घर-बार मेरे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऊपर छोड़ रक्खा था। मेरे भागने के लिये कोई बाधा नहीं। रह गई कितने ही दिनों तक मैं अपने को रोकता रहा। ब्राह्मण नेमुझे दासता से मुक्त घोषित कर दिया था, तब भी मुझे लोगों का जीवन खींच रहा था। मेरे रंग-रूप के आदमी वहाँ के लोगों में भी मौजूद थे। मेरी वेषभूषा और बातचीत से कोई कह नहीं सकता था, कि मैं व्याधा दास हूँ। ब्राह्मण कामुझ पर बहुत विश्वास था, कहना चाहिये, कि मेरे भाग जाने की उसको कोई शंका नहीं थी। उसने एक सप्ताहके लिए मुझे किसी काम पर समुद्रतट के पत्तनपर भेजा। मैंने उधर का रास्ताछोड़ जंगल का रास्ता लिया। डर लग रहा था, सीमा को कैसे पार करूँ। हमारी सीमायें कोई निश्चित नहीं हैं बीहड़ जंगल हम लोगों का है, बाकी भूमि कपड़े-धारियों की। मैं कपड़ाधारी था। कपड़ा पहने अपनों में पहुँचना मेरे लिये खतरे की बात थी। यदि कपड़ेंधारियोंकी पहुँच के भीतर कपड़ा छोड़ देता, तो वह फिर दास बनाने के लिये तैयार थे। मैंने अन्दाज से रात के वक्त सीमा के पास जाकर विश्राम किया और अन्धेरे में ही सिर्फ अपने मालिक के घर से लाये खड्ग को साथ रख बाकी चीजों कोवहीं फेंक दिया। शंकित हृदय से घोर जंगल में पैर बढ़ाने लगा।वहाँ हाथी का डर था,किसी अन्य श्वापद काभी खतरा था। अपने लोग भी मेरे साथ कैसा बर्ताव करेंगे यह मालूम नहीं था। फिर हमारे व्याधों के भी अलग-अलग गिरोह हैं, उनमें आपस में मार-काट हुआ करती है, इसका भी भय था। मेरा भाग्य था। जो मुझे अपने ही लोग मिले।

अब वह 35 साल के आस-पास का प्रौढ़ पुरुष था। शायद 20 वर्ष से ज्यादा का नहीं रहा होगा, जब कि उसने अपने दासता के जीवन को पीछे छोड़ा। इसका मतलब है पन्द्रह वर्ष से उसे सिंहल भाषा बोलने का मौका नहीं मिला था, लेकिन जैसे-जैसे वह बात करता जा रहा था, वैसे ही वैसे जान पड़ता था, भूले शब्द याद आते जा रहे हैं। उसे क्रूर स्वामी नहीं मिला था। इसलिये क्रूरता का वैयक्तिक अनुभव नहीं था। शायद यही कारण था, जो मेरे साथ उसने इतनी सहृदयता प्रकट की और खुलकर अपनी बातें बतलाईं। मध्याह्न से दो घड़ी और बीता था, जब कि वह एक जगह खड़ा होकर बोला—"अब यहाँ से हम आगे नहीं जायेंगे। आगे कपड़ेधारियों की भूमि है।" पहाड़ की टेकरी पर खड़े हो वहाँ से अँगुली से दिखाते। हुए उसने बतलाया—"वह जो घने वृक्षों से ढँकी पहाड़ी टेकरी है, उससे थोड़ा आगे जाने पर तुम्हें खेत मिल जायेंगे और फिर पास ही गाँव आ जायेगा।"

स्वदेश की ओर

(547–48 ई०)

स्नेह से वंचित होकर एक बार मैं मानसिक उद्वेग में फँस चुका था; उसके कड़वे अनुभव से मैं परिचित था, किन्तु वह मेरे हृदय को उतना चूर-चूर करने में सफल नहीं हुआ जितना कि बुद्धिल का मर्मान्तिक वियोग। अपने चार भिक्षु-साथियों को खोकर मुझे बड़ी लज्जा मालूम हो रही थी। लोगों को सारी बातें बताई। कुछ दिनों तक हित-मित्रों ने शोक प्रदर्शन किया। फिर सरोवर में पड़े डेले से उठी लहर की तरह वह शान्त हो गया। लेकिन,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मेरे हृदय को शान्ति कहाँ ? वर्षा के महीने आ गये थे, इसलिये वर्षावास के लिए सिंहल में ठहरने के लिए मैं मजबूर था, नहीं तो वहाँ से भाग कर कहीं नई जगह में जाने के लिए मन तड़फड़ा रहा था। मैंने विक्षिप्त की तरह वह तीन महीने बिताये। इसके लिए अपने को सौभाग्यशाली कहूँगा कि खुलकर अपने पागलपन का मैंने परिचय नहीं दिया। सिंहल के अवशिष्ट प्रवास में मैं क्या करता रहा, इसका भी मुझे पता नहीं। सारी बातें यंत्रवत् होती रहीं। रोज अपना काफी समय तो मैं वहाँ के तीन महास्तूपों और स्तूपाराम की परिक्रमा में बिताता। फिर अपना पात्र उठा भिक्षा के लिए निकल जाता। भरसक मैं निमंत्रित या विहार के भोजन से बचता था, जिसमें उतना कारण परम वैराग्य नहीं था, जितना कि अपने मन को किसी काम में लगाये रहने की वांछा। मेरी अवस्था से कुछ सहृदय भिक्षु खिन्न थे। वह तरह-तरह से मेरा शोक-विनोदन करना चाहते थे। कितने ही उपासक-उपासिकायें तो मुझे बड़ा ही कर्मनिष्ठ भिक्षु मानने लगे। मैं अपने मन में यही मानता था कि कब महाप्रावारणा (आश्विन पूर्णिमा) आयेगी और कब मैं यहाँ से प्रस्थान करूँगा। दोपहर तक का समय तो किसी तरह बीत जाता था, लेकिन दोपहर के बाद का बाकी दिन ही नहीं, बल्कि रात भी मेरे लिये पहाड़ थी। निद्रा ने भी अपनी दयालु छाया से मुझे वंचित कर दिया था, वह मुश्किल से दो-चार घड़ी आती। मैं इस समय सूत्रों और जातकों का पारायण करता रहता, लेकिन मेरे मानस-नेत्रों के सामने तो हर वक्त बुद्धिल की शांत और करुण मूर्ति खड़ी रहती। शायद ही किसी दिन सोते समय स्वप्न में बुद्धिल का साक्षात्कार न होता हो। मुझे उससे बड़ी सान्त्वना मिलती और यही मनाता रहता, कि क्या ही अच्छा होता, यदि मेरा यह सारा समय ऐसे स्वप्न में ही बीत जाता।

अनुराधपुर में देश-देशान्तरों के व्यापारी आते हैं। सिंहल में स्वयं भी कितने ही तरह के रतन निकलते हैं, इसलिए तथा अपने पण्यों को बेचने के लिए वह यहाँ पहुँचते हैं। कितनों की वहाँ अपनी कोठियाँ हैं। मैं सोचने लगा, कौन रास्ते लौटूँ। यह तो निश्चय कर चुका था कि अपने सुहृद के साथ जिस यात्रा का संकल्प किया था, उसे पूरा जरूर करना है और अपनी तथा उनकी जन्मभूमियों को देखकर ही उधर पैर बढ़ाना है। पहले होता, तो दोनों को जल्दी नहीं थी और दक्षिणापथ के बहुत जनपदों को देखते हम अवन्ती और उद्यान पहुँचते, लेकिन; अब मेरे पास उसके लिए साहस नहीं रह गया था। मैं यही सोचता था, कैसे उज्जयिनी देखकर उद्यान पहुँच जाऊँ और फिर अज्ञात मानव समुद्र में छलाँग मार दूँ। मेरे बर्ताव-व्यवहार से श्रद्धालु नर-नारी आकृष्ट हो रहे थे, यह बतला चुका हूँ। कई दिन भिक्षाटन के समय तथा विहार में भी एक लाट (गुजरात) देशीय सार्थवाह ने मुझे देखा। मेरे रूप-रंग की विभिन्नता भी लोगों को आकृष्ट करने के लिए पर्याप्त थी। उसने एक-दो बार भोजन के लिए निमंत्रित भी किया, लेकिन मैंने बतला दिया कि मैं निमंत्रण का अन्न नहीं खाता। इस पर उसने कहा—"तो भिक्षाटन के लिए आते समय मेरे द्वार को भी पवित्र किया करें"। मैंने इसे मान लिया।

श्रेष्ठी अधेड़ उमर का था। पत्नी के साथ उसे देखने पर मुझे कौशाम्बी का श्रेष्ठी याद आता था। उसने बतलाया—"मैं लाटदेश के भरुकच्छ नगर का हूँ। पत्नी के अस्वस्थ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होने के कारण वर्षा से पहले मैं यहाँ से लौट नहीं सका। वर्षा समाप्त होते ही मैं स्वदेश लौटूँगा। सेठानी भी कौशाम्बी की सेठानी की तरह—या सभी देशों की प्रौढ़ा सेठानियों जैसी धर्मपरायणा थी। वह सिंहल के धर्मस्थानों के दर्शन करने के लिए आग्रहपूर्वक अपने पति के साथ यहाँ आई थी। उसको बहुत अफसोस था कि मैं निमंत्रण स्वीकार करके उसके यहाँ भोजन नहीं कर सकता। लेकिन अपराह्ण के समय वह जरूर अपने पति के साथ द्राक्षा या किसी और फल का रस ले हमारे विहार में आती। उनकी प्रार्थना पर मैंने तथागतभाषित सूत्रों की कथा करनी स्वीकार की। दो-तीन घड़ी के लिए इससे मेरा भी मन बहल जाता था। दम्पती ढाई महीने तक बराबर आते रहे। मुझे कहने की आवश्यकता भी नहीं पड़ी। उन्होंने स्वयं प्रार्थना की कि आप हमारे साथ ही देश लौटें। इसे स्वीकार करने का मतलब था, सारे दक्षिणापथ को छोड़ समुद्र के रास्ते भरुकच्छ पहुँच जाना। उज्जयिनी जाने के लिए इससे जल्दी और सरल रास्ता नहीं हो सकता था। मैंने उसे स्वीकार कर लिया। यह कहूँगा कि इसके कारण मुझे काफी संतोष हुआ। प्रिय वियोग की असह्य वेदना अब भी बराबर काँटे की तरह हृदय में चुभती रहती थी, किन्तु कथा के समय और उज्जयिनी शीघ्र पहुँचने के ख्याल से मुझे काफी संतोष हो गया। मैं कह चुका हूँ, मेरी चेष्टा उस समय यंत्रवत् होती थी। दिन-रात की सभी घड़ियों के काम बँधे हुए थे, एक के कर लेने पर दूसरे शुरू हो जाते और कष्टकर घड़ियाँ प्रतीक्षा में नहीं बितानी पड़ती थीं।

× × ×

महाप्रावारणा के पाँच दिन बाद हमने अनुराधपुर छोड़ा। श्रेष्टी वड़ा भारी सार्थवाह था। भरुकच्छ से उसके वणिक्-पोत सिंहल, यवद्वीप (जावा) और पश्चिम के कितने ही देशों तक जाते रहते थे। उज्जयिनी में भी उसकी कोठी थी। उसका वैभव किसी राजा से कम नहीं था। अनुराधपुर से पश्चिम समुद्र तीर्थ पर उसके विशाल पोत खड़े थे। वहाँ पहुँचकर हमें कुछ दिनों प्रतीक्षा करनी पड़ी, क्योंकि अभी पोतों में पण्यद्रव्यों की लदाई पूरी नहीं हो सकी थी। यदि मैं प्रकृतिस्थ होता, तो सिंहल छोड़ते वक्त बहुत खेद होता, लेकिन मैं तो निर्लेप हो गया था, किसी से नया परिचय या नई मित्रता स्थापित करना मुझे अभीष्ट नहीं था। सिंहल तट छोड़ते समय बल्कि हृदय का भार कुछ हल्का मालूम हुआ—उस भूमि पर रहते मुझे बुद्धिल की स्मृति बेचैन करती थी, मैंने अपने जीवन के सबसे प्रिय व्यक्ति को यहाँ खोया था।

समुद्र की यात्रा में दो महीने बीते। श्रेष्ठी सीधे भरुकच्छ नहीं गया, बल्कि समुद्र-तट के कितने ही पत्तनों में उसका कारबार था, जहाँ चीजों के उतारने-चढ़ाने के लिए कई दिनों तक पोतों को रुकना पड़ता। श्रेष्ठी अपने कारबार को देखने के लिए शायद ही कभी आता है, इसलिए उसके कर्मी उसकी बड़ी आवभगत करते अपने कामों को दिखलाते। मुझे भी उतरना पड़ता। यदि वहाँ कोई विहार या योग्य भिक्षु होता, तो मैं दर्शन के लिए चला जाता। सारी यात्रा में कोई स्मरणीय बात नहीं हुई। दो-चार दिन के लिए एक बार समुद्र अशान्त हो गया था, जिसका कुछ प्रभाव मेरे ऊपर भी पड़ा और मैं भोजन नहीं कर सका।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तालपत्र पर लिखी पोथियाँ ज्यादा चिरस्थायिनी होती हैं। हमारे उद्यान में भूर्जपत्र पर पोथियों के लिखने का रवाज है, पर गरम देशों में भूर्जपत्र जल्दी टूट जाते हैं। तालपत्र हर जगह के लिए बहुत दृढ़ होता है। बोझा बढ़ाना अभीष्ट नहीं था, इसलिए मैंने और बुद्धिल ने अपने पास सीमित ही पुस्तकें रक्खी थीं। अब बुद्धिल की पुस्तकें भी मेरे पास थीं। सिंहल में आकर दिग्नाग के "प्रमाणसमुच्चय" को उन्होंने बड़े प्रेम से अपने लिये लिखा था। सिंहल में सुन्दर तालपत्र मिल रहे थे, जिससे वह अपने लोभ का संवरण नहीं कर सके। उस पर जहाँ-तहाँ उन्होंने टिप्पणियाँ भी की थीं। बुद्धिल के अक्षर बड़े सुन्दर होते थे। चालीस वर्षों से मैं सदा स्मरणीय मित्र की लिखी इस पोथी को अपने प्राणों से भी बढ़करके अपने पास रखे हुये हूँ। पहले जब इसकी पंक्तियों को देखता, तो बरबस आँखों में आँसू आ जाते, किन्तु अब मित्र की लिखी इन पंक्तियों को देखकर बड़ी सान्त्वना मिलती है।

जाड़ों का मध्य था, जब हम भरुकच्छ पहुँचे। शायद एक दो जाड़े से अधिक हमने ऐसे देशों में नहीं बिताये, जहाँ जाड़ा होता ही नहीं, तो भी भरुकच्छ में जब रात को कम्बल ओढ़ने की जरूरत पड़ी, तो ऐसा आनन्द आया, जैसे कोई खोई हुई चीज मिल गई। श्रेष्ठी ने हमें अपने पूर्वजों के बनवाये विहार में ठहराया। विहार के भिक्षु भी उपासक श्रेष्ठी की बातों से सुनकर प्रभावित हो चाहते थे कि मैं कुछ समय वहाँ रहूँ, लेकिन अब तो मैं रस्सी से बँधा आगे की ओर खिंचा जा रहा था। स्थलसार्थ यहाँ से बराबर उज्जयिनी जाया करते थे। समुद्रसार्थों के लिए तो निश्चित महीने हैं, जबकि हवा पोतों के चलने के लिए अनुकूल होती है, किन्तु स्थलसार्थ के लिए ऐसी कोई कठिनाई नहीं। जब मैंने अधिक रहना स्वीकार नहीं किया, तो श्रेष्ठी ने मुझे अपने सार्थ के साथ उज्जयिनी भेज दिया।

भरुकच्छ और उज्जयिनी का पुराना वैभव अब उतना नहीं रहा, जितना कि क्षत्रपों की राजधानी रहने के समय था। इसके कारण भरुकच्छ को अधिक हानि हुई है। कुछ समय वंचित रहने के बाद उज्जयिनी ने फिर एक राजधानी का रूप लिया है। अवन्तीपति और कान्यकुब्जपति दोनों ही किसी समय गुप्तों के सामन्त थे, लेकिन अब वह गुप्तों की राज्य-लक्ष्मी का अपने को उत्तराधिकारी मानते थे। मिहिरकुल के हराने के बाद उनमें से हरेक विजयलक्ष्मी की वरमाला अपने गले में डलवाना चाहता था। यदि अपने मित्र के साथ मैं उनकी जन्मनगरी में आज आया होता, तो कालिदास की इस प्रिय पुरी को देखकर मुझे कितनी प्रसन्नता हुई होती? बुद्धिल के भाई-बन्दों से मेरे मिलने का मतलब उनको दुःखी बनाना और अपने घाव को हरा करना छोड़ और कुछ नहीं था। तो भी मैंने इसे भद्रोचित नहीं समझा कि उनके मित्रों और सुहृदों से विना मिले ही उज्जयिनी से चला जाऊँ। बुद्धिल के जन्मगृह में जाने पर जब मालूम हुआ कि उनकी माता जीवित हैं तो मेरा पैर फिर पीछे की ओर हटने लगा, लेकिन तब तक मैं बुद्धिल के अनुज से कुछ बातें बतला उसके आँसुओं के साथ अपने आँसुओं को भी बहा चुका था। बुद्धिल की माता ने जब सुना कि मैं उनके सौभाग्यशाली पुत्र का अभागा मित्र हूँ, तो उनके हृदय में हर्ष उठने लगा, लेकिन जैसे ही अपने पुत्र के मरने की खबर मिली तो वह चीत्कार करके गिर पड़ीं। कुछ क्षणों के लिए तो मालूम हुआ कि वह अपने पुत्र का अनुगमन कर चुकी हैं, पर थोड़ी ही देर में उठकर उन्होंने अपने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आँसुओं को पोंछ लिया और भीतर अपार वेदना होते हुये भी बाहर से प्रकृतिस्थ होक कहा—मैं आपको ही अपना बुद्धिल समझती हूँ। मैंने बचपन में अपने बुद्धिल को ज्ञान औ साहस के लिए तैयार किया था। दस वर्ष की आयु में ही स्वयं ले जाकर कांचनवन विहार उसे भिक्षु-संघ को अर्पित किया था। भिक्षु उपसम्पदा प्राप्त करने तक बीस वर्ष की उमर तक वह यहीं रहा। उसकी विद्या और बुद्धि की प्रशंसा सुनकर मैं फूली नहीं समाती थी, जब देश-देशान्तरों की सुनी-सुनाई बातों को बड़े उत्साह के साथ वह मुझे सुनाता तो मैं जानती थी कि मेरा बेटा भी इन देशों को जाकर देखेगा। मैं उसके विचारों का अनुमोद करती थी, यह समझते भी कि इन यात्राओं में कहीं पर भी प्राणों पर संकट आ सकता है।

वृद्धा शोकसागर में डूब गई। शायद पुत्र के मरण का शल्य उसके हृदय से जन्म भ नहीं निकल सकेगा, लेकिन जब तक मैं उज्जयिनी में रहा, उसने कभी उसे मेरे सामने नह प्रकट किया और न मेरे प्रति पुत्र-वात्सल्य दिखाने में कोई कमी की। वह कहती थीं—ह शक लोग उत्तरापथ की ओर के किसी दूर देश से आये हैं। हमारे कम भाग्यशाली बन्धु इ बात को भूल गये हैं। बीस पीढ़ियों तक इस देश में रहते-रहते उन्हें इसका क्या पता हो सकता है? लेकिन, हमारा क्षत्रप-पुरोहितों का कुल है। हम भी राजसी वैभव भोगते अपन वंश-परम्परा का अभिमान करते हैं, इसलिए उसे हमारे घरों में सुरक्षित रक्खा गया है चष्ठन, नहपान जैसे अपरिचित नाम बतलाते हैं कि हमारे यजमान क्षत्रप इस देश के नह थे। मेरी बड़ी इच्छा थी कि मेरा पुत्र शकों की भूमि देख आये।

मैंने वृद्धा को बतलाया—बुद्धिल शकों की भूमि के पास तक चले गये थे, शायद ह दोनों में स्नेह न हुआ होता तो कपिशा (काबुल) से वह उसी ओर बढ़ते। मेरे साथ वह फि एक बार प्राय: देखी हुई भूमियों में विचरण करने के लिए लौट पड़े। लेकिन, हमने शकों भूमि में जाने का संकल्प कर लिया था, मित्र के न होने पर भी मैं उसके संकल्प को जरू पूरा करूँगा।

× × ×

अब मैं फिर मध्यमंडल में था, जहाँ के ग्राम-नगर, बोली-वाणी, रीति-रवाज सुपरि चित और आत्मीय जैसे मालूम होते थे। मौखरियों की सीमा के भीतर पहुँचने पर और सुव्यवस्था और शान्ति दिखलाई पड़ रही थी। जगह-जगह ग्राम, निगम और नगर थे औ जगह-जगह विहार। मुझे अकेले जाने में भी कोई दिक्कत नहीं थी और चलने वाले भिक्षु मिल जाया करते थे। वसन्त के आरम्भ तक धूप का भी उतना कष्ट नहीं था। उसके बाद सन्ध्या सबेरे को ही हम चल सकते थे। विदिशा में चैत्यागिर का दर्शन करना, वहाँ तथाग के अनुश्रावक सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की धातुओं पर बने चैत्यों का दर्शन करना जरूर था। वहाँ मैं पाँच रात रहा। चैत्य के सुन्दर तोरणों और उन पर बनी मूर्तियों को देखक फिर मुझे बुद्धिल जोर से याद आने लगे। उन्होंने कौशाम्बी के श्रेष्ठी के सामने ऐसे ही वेश भूषावाली मिट्टी की मूर्तियों को बनाकर बतलाया था,—"एक देश में भी हर बात में बराबर परिवर्त्तन होता रहता है। किसी समय तथागत की प्रतिमा नहीं होती थी, बल्कि पीठ, बोधि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वृक्ष और चैत्य को प्रतीक मान कर उनकी पूजा की जाती थी।"

विदिशा से गोपगिरि (ग्वालियर) होते मैं मथुरा की ओर बढ़ा। मथुरा में ही वर्षावास करने का निश्चय कर लिया था, लेकिन वहाँ वर्षा से दो महीने पहिले पहुँच गया। गर्मी तीव्र हो गई थी। इतने दिनों की यात्रा के कारण कुछ थकावट और उससे भी अधिक कुछ सान्त्वना मन को हो चुकी थी, इसीलिए मैंने वहीं वर्षावास करने का निश्चय किया। मथुरा भी शकों की राजधानी थी। मुझे कुछ विश्वास हो गया था कि शक और उद्यानवासी हम खस एक ही जाति के हैं, इसलिए शकों के पुराने स्थानों और उनके वंशजों को देखकर उनसे एक तरह की आत्मीयता मालूम होती थी। साथ ही मैंने यह भी देखा था कि शकों की तथागत के प्रति कितनी अपार श्रद्धा थी, जिसका परिचय उनके बनाये विहार और स्तूप कपिशा, नगरहार, तक्षशिला, कश्मीर, भरुकच्छ, उज्जयिनी आदि सभी जगहों पर अब भी मौजूद हैं। मथुरा से उनके राज्य को उठे डेढ़ सौ वर्ष से ऊपर हो गये, किन्तु अब भी कनिष्क और उसके उत्तराधिकारियों के बनवाये विहार मौजूद थे। मौजूद ही नहीं, बल्कि अच्छी अवस्था में थे, यद्यपि यही बात शक-प्रासादों के बारे में नहीं कही जा सकती। मथुरा की राज्यलक्ष्मी को लूटकर कान्यकुब्ज का संवर्द्धन किया गया। कान्यकुब्ज के राजधानी बनने से पहले अभी भी मथुरा की अवस्था उतनी हीन नहीं हुई थी। कनिष्क, कदफिस आदि शक राजाओं की पुरुष-मात्र सुन्दर प्रतिमाओं को देखकर मुझे विश्वास हो गया कि वह अवश्य उसी देश से आये होंगे, जहाँ से हेफ़्ताल (श्वेत-हूण)। तुषार और उसके उत्तर से आने वाले लोगों को मैंने अपनी जन्मभूमि तथा कपिशा में देखा था। उनकी वेषभूषा से इसमें बहुत समानता थी। घुटनों तक के जूते तो इन शक-राजाओं की मूर्तियों में ठीक वैसे ही थे, जैसे उन उत्तरी लोगों में।

उरुमुन्ड (गोवर्धन) पर्वत की महिमा और पुनीतता के बारे में मैं कब से सुनता और पढ़ता चला रहा था। जिस सर्वास्तिवाद निकाय ने मुझे भिक्षु बनाया था, यह क्षुद्र पर्वत कभी उसका केन्द्र स्थान था। आज भी वहाँ आर्य सर्वास्तिवाद निकाय के भिक्षुओं का पुराना विहार मौजूद था। मैंने वर्षावास किया। यहाँ सर्वास्तिवाद के ज्येष्ठ स्थविर साणवास का सन का एक चीवर रक्खा हुआ था। इस तरह की चीजों को देखते-देखते तथा बुद्धिल की बातों से सुनने के कारण मुझे अब ऐसी चीजों की सत्यता पर पूरा विश्वास नहीं रह गया था, लेकिन यह तो जानता था कि साणवास महास्थविर बड़े सरल और अकिंचन वृत्ति से रहा करते थे, इसीलिये उन्होंने कपास के सूक्ष्म वस्त्रों को न स्वीकार कर सन के बने हुए रूखे चीवर को धारण करना शुरू किया था। साणवास स्थविर केवल सर्वास्तिवादियों के ही पूज्य पितामह नहीं हैं, बल्कि सिंहल के महाविहार तथा दूसरे सभी स्थविर निकाय वाले उनको अपना परम गुरु मानते हैं। उरुमुंड पर्वत के आसपास दूर तक जंगल चला गया है, जिसकी शक-शासन के नाश के बाद कुछ वृद्धि हुई है, क्योंकि कुछ पुनीत चैत्यों को देखने के लिए जब सिंह-व्याघ्र वाले इस घोर जंगल में जाते तो हमें कहीं-कहीं उजड़े गाँवों और घरों के अवशेष मिलते। तुला (तराजू) की डाँड़ी की तरह एक तरफ जब बोझा भारी होता तो डाँड़ी का दूसरा सिरा उठ जाता। इसी तरह देशों, ग्रामों और जातियों के भाग्य की भी बात है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बुद्धिल से वंचित होने के बाद यह मेरा दूसरा वर्षावास था। इस बीच में यद्यपि मे मानसिक स्थिति में बहुत सुधार हुआ था, किन्तु अभी भी किसी बात में मन पूरी तौर लगता नहीं था। भदन्त उपगुप्त के लिए नट, वट दो उपासकों ने उरुमुंड पर्वत के पास इ नट-वट विहार को बनाया था, जिसमें 300 से ऊपर भिक्षु उस वक्त वर्षावास कर रहे थे। उनमें एक चीनी भिक्षु मेरे पास की ही कोठरी में रहते थे। उनसे मेरी घनिष्टता हो गई हम कितनी ही बार साथ-साथ इधर-उधर घूमने जाते। मेरी चीन जाने की इच्छा और बलवती हो गई।

पहले पहल देखने पर मेरे दिल में कुछ ख्याल तो आया, लेकिन वर्षों से देखते-देख वह मामूली बात हो गई। यहाँ के नगरों और निगमों में चांडाल जातीय कोई पुरुष जब प्रवे करता है तो उसके हाथ में एक डंडा होता है। किसी आदमी को पास देखकर वह डंडे जमीन पर पटक-पटक कर संकेत करता है, ताकि उसकी छाया से बचने के लिए आदमी ह जाये। चांडाल के स्पर्श से ही नहीं, छाया से भी आदमी अपवित्र हो जाता है! चीनी भिक्षु एक दिन बड़ी हैरानी के साथ इस बात पर टोक दिया। मैं सोये से जग उठा। सचमुच मनुष्य को इतना नीच समझना क्या ठीक है? हम भिक्षुओं को देखकर भी वह उसी तर डंडा पटकते थे। हम शाक्यपुत्रीय भिक्षु शाक्यमुनि की सन्तान कहे जाते हैं। शाक्यमुनि चांडाल और ब्राह्मण सबको समान माना। जन्म से मानवमात्र बराबर है, इसकी मुँह से घोषणा नहीं की, बल्कि अपने संघ में चांडाल जाति के नर-नारियों को समान रूप से भिक्षु भिक्षुणी बनाया। चीनी भिक्षु इसे देखकर संतुष्ट थे कि नट-वट विहार या और भी विहारों चांडाल जाति के भिक्षु रहते थे और संघ में उनका अधिकार सबके समान था। वहाँ न भेद बरता जाता था, न जाति-भेद। पर वह उतने से संतुष्ट नहीं थे: हमारा भिक्षु-संघ समुद्र में बूँद की तरह है। बूँद के भीतर इस समानता के बर्तने से क्या बनता है? बाहर चांडाल चांडाल ही है। उन्होंने बतलाया कि हमारे देश में यह बात नहीं देखी जा सकती वहाँ गरीब हैं, धनी हैं, उच्चकुलीन और नीचकुलीन का भी भेद माना जाता है, लेकिन कि के स्पर्श या छाया से आदमी अपवित्र हो जाता हो, यह देखने में नहीं आता।

यह खटकने वाली बात थी। तथागत के उपदेश के बीज को पड़े एक हजार वर्ष गये और अभी भी यह जातिवाद उनकी जन्मभूमि से दूर नहीं हुआ। मैं जब विचार कर तो मालूम होता, यह भेदभाव शायद इस भूमि से कभी हटेगा ही नहीं। तो क्या इस विष में तथागत का प्रयत्न सर्वथा असफल रहेगा? यह सोचते मन क्षुब्ध हो जाता। कभी सोचता इसका क्या कारण हो सकता है? हमारे उद्यान में भी यह बात देखने में नहीं आती। व जातियाँ तो कई हैं, उनमें धनी-गरीब, कुलीन-अकुलीन भी होते हैं, लेकिन किसी के साथ इ तरह का बर्ताव नहीं होता। चांडाल प्रायः सभी काले होते हैं, लेकिन कम या वैसी काले आदमी किसी जाति में भी मिल सकते हैं। उसके कारण ही क्यों किसी को पशुतुल्य समझ जाये। मेरी भावना बड़ी उग्र हो उठी थी, मैं वहाँ और आगे भी अपने परिचित भिक्षुओं से इसके बारे में बड़ी कठोरता से बात करता। यदि मुझे स्वदेश छोड़ना न पड़ता और मध्यमंडल में ही कहीं रहना होता तो इसमें सन्देह इस तरह के बर्ताव को हर तरह से हटाने की कोशि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करना, मैं अपने जीवन का उद्देश्य बनाता। मैं मानता हूँ, एक-दो आदमी इसके लिए कहाँ तक कर सकते हैं, किन्तु जिस चीज को बुरा समझ लिया, उसके हटाने की तो कोशिश करनी ही चाहिये।

मध्यमंडल के विहारों पर सामन्तों और राजवंशों के भाग्य पलटने का असर पड़ा दिखाई पड़ता है, इसके बारे में मैं पहले लिख चुका हूँ। लेकिन, अब भी नये विहारों का बनना बन्द नहीं हुआ है। नये या पुराने विहारों को श्रद्धालु भूमि बाग, फुलवाड़ी आदि दान देते हैं। राजाओं ने अपने पहले के राजाओं के दान को लोप नहीं किया। इसे वह बुरा मानते हैं। लेकिन जब कोई विहार ही उजड़ गया हो, तो उसके लिये दी हुई सम्पत्ति कैसे अक्षुण्ण रह सकती है।

जमुना के नातिदूर पश्चिम उरुमुंड (गोवर्धन) पर्वत में वर्षावास करते समय कितनी ही बार मुझे ख्याल आता: अब शायद फिर बुद्धों की भूमि को देखने का सौभाग्य नहीं प्राप्त होगा। जमुना और गंगा का नाम सुनकर यद्यपि वह बार-बार याद आयेगी। तथागत ने इस भूमि को पवित्र किया, और इसके लिये बहुत किया। पिछले हजार वर्षों में इस भूमि के दर्शन के लिये चारों दिशाओं से कितने ही लोग बड़ी भक्तिपूर्वक आते रहे। मुझे भी यदि आने का अवसर मिलेगा, तो बुद्धिल की याद फिर उसी तरह दुःखद हो उठेगी।

महाप्रावारणा के बाद उरुमुँड से और भिक्षुओं के साथ मैं मथुरा गया और अशोक के बनवाये तीनों स्तूपों की पूजा की। गुन्दवन में भी फूल चढ़ाये, जहाँ पर तथागत रह चुके थे। फिर मैंने उत्तराभिमुख प्रस्थान किया। जमुना हमारे दाहिने जा रही थी। भूमि हरी-हरी, गाँव सस्यसम्पन्न थे। यात्रा में साथी मिल ही जाते थे, किन्तु मैंने किसी को अपना स्थायी साथी नहीं बनाया। अब भी मेरे ऊपर मित्र-वियोग का प्रभाव था और दूसरों से बात करने की अपेक्षा अपने विचारों में डूबे रहना मुझे अच्छा लगता था। ऐसे साथी का साथ किसी के लिये सुखद नहीं हो सकता।

मथुरा से चलकर दो ही तीन दिनों के बाद हम यौधेयों की भूमि (हरियाना) में घुसे। अब भी यौधेय वीरों की गाथायें हमें सुनने को मिलती थीं। कपिलवस्तु और वैशाली की यात्रा की बातें मुझे याद आने लगीं, जब सुना, कि आज से डेढ़ सौ वर्ष पहले यौधेयों का एक शक्तिशाली गणराज्य यहाँ था, जिसे समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त ने बड़ी क्रूरता के साथ ध्वस्त किया। आज गुप्त-सम्राटों का प्रताप-सूर्य अस्त सा हो गया है, लेकिन समुद्रगुप्त-चन्द्रगुप्त को यौधेयों को उच्छेद करते समय क्या पता था, कि उन्हें स्वयं भी एक दिन उच्छिन्न हो जाना पड़ेगा।

रास्ते में हमें जमुना के तट पर इन्द्रप्रस्थ गाँव मिला। प्रस्थ (पत) नामवाले न जाने कितने गाँव इस भूमि में मिलते हैं, जिनमें से कुछ से होकर मुझे गुजरना पड़ा। इन्द्रप्रस्थ किसी समय पांडव युधिष्ठिर की राजधानी थी। उस समय शायद यह नगर रहा हो, लेकिन आज तो वह एक बड़े गाँव से बढ़ कर कुछ नहीं है। यौधेय उसको कोई महत्व नहीं देते, लेकिन पूर्व से जब-जब उनकी भूमि पर आक्रमण हुआ, तब-तब इन्द्र-प्रस्थ में ही उनके शिविर लगे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आजकल तो यौधेय-धूमि का सबसे बड़ा नगर स्थाण्वीश्वर (थानेसर) नगरी है, जहाँ के राजा अपने को मौखरियों का समकक्ष मानते हैं। सरस्वती के किनारे बसे हुये इस विशाल नगर का महात्व गुप्तों के ह्रास के बाद बढ़ चला है। हेफ्तालों (श्वेत-हूणों) के साथ प्रतिरोध करने के लिए गुप्त-राजाओं ने जिस सामन्त को यहाँ रक्खा था, वह अब स्वतन्त्र राजा हो गया। मौखरियों की तरह स्थाण्वीश्वर का वंश बाहर से आया नहीं, बल्कि यौधेयगण के किसी प्रमुख की सन्तान है। अपनी गण-व्यवस्था को खोकर भी यौधेय अब भी युद्धवीर हैं। यदि रास्ते में वह न होते, हूणों को बड़े वेग से आगे बढ़ने को कोई रोक नहीं सकता था। स्थाण्वीश्वर के पास ही वह कुरुओं का धर्मक्षेत्र है, जहाँ कौरवों और पांडवों में लड़ाई हुई थी। कौरव और पांडव आज केवल कथाओं में सुने जाते हैं, स्थाण्वीश्वर के राजाओं को तो उनमें भी शायद ही याद किया जाये।

× × ×

स्थाण्वीश्वर की सरस्वती-उपत्यका मध्यमंडल की सीमा है, जिससे पश्चिम चलने पर अब हम उत्तरापथ से चल रहे थे। पहले भी इस भूमि से हम गुजर चुके थे, लेकिन अब की स्थाण्वीश्वर से स्रुघ्न पहुँच कर हमने पहले का रास्ता पकड़ना नहीं पसन्द किया और कितने दिनों तक चलते तीन बड़ी और कितनी ही छोटी नदियों को पार कर चन्द्रभागा के किनारे शाकला (स्यालकोट) में पहुँचे। वहाँ से पुराना रास्ता पकड़ लिया। जाड़ों का मध्य था, कितने ही वर्षों बाद अब हम फिर हिमवान् के पहाड़ों के भीतर घुसे। काश्मीर नगरी में कुछ दिनों ठहरना जरूरी था, क्योंकि उद्यान की ओर जाने वाले घट्ट (डाँड़े) हिमपात के कारण अब बन्द हो चुके थे। राजा मिहिरकुल के मर जाने पर हूणों की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई थी। उनके सभी सामन्त अपने को परमभट्टारक महाराजाधिराज घोषित कर रहे थे। यह बाहरी शत्रुओं को आक्रमण करने के लिए निमन्त्रण देना था। लेकिन, यह बातें तो बराबर ही दोहराई जाती हैं। अपने स्वार्थों के सामने दूरदर्शी बनना आदमी के बस की बात नहीं है। मिहिरकुल ने अपने जीवन के अन्तिमकाल में यद्यपि तथागत के शासन के प्रति अपने द्वेष-भाव को हटा ही नहीं दिया था, बल्कि विहारों को दान-दक्षिणा देने में उदारता भी दिखलाई थी। पिछली बार कश्मीर नगरी से जाते समय मैंने जैसा छोड़ा था, उससे अब कहीं के विहारों की अवस्था बेहतर थी। पुराने सामन्त वंशों में से कुछ शक्ति सम्पन्न होने में सफल हुए थे, जिनकी उदारता को विहारों में देखा जा सकता था।

वसन्त कश्मीर-उपत्यका को फूलों का उद्यान बना देता है और सुप्त प्रकृति अट्टहास करती उठ खड़ी होती है। अभी हिमाच्छादित घट्टों के खुलने में देर थी। लेकिन, मैं हिमभूमि का शिशु था। हम ऐसे घाट्टों के भी पार करने के आदी हैं, यदि वह हमारी जन्मभूमि में हों। कश्मीर से जाने में किसी साथी के साथ जाना आवश्यक था। मिहिरकुल के मरने के बाद शासन-व्यवस्था अब उतनी सुव्यवस्थित नहीं थी, जिसके लिए भी ऐसा करना जरूरी था।

मैं बड़ी उत्कण्ठा से रास्ता खुलने की प्रतीक्षा करता रहा। मैं अपनी जन्मभूमि देखने जा रहा था। वस्तुतः अपने जीवन की सबसे बड़ी और अन्तिम यात्रा के लिए तैयार हो चुका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था। हिमवान् के उत्तर के देशों के जो भी भिक्षु या दूसरे आदमी मुझे मिलते, उनसे मैं वहाँ के बारे में जानकारी प्राप्त करने की पूरी कोशिश करता। यह ज्ञान को कण-कण करके जमा करना था। अपनी आँखों से देखी चीजों का वर्णन करना भी हरेक के वस की वात नहीं, तो भी प्रत्यक्षदर्शी की बातें अधिक प्रामाणिक होती हैं। सुनी-सुनाई बातों में अतिरंजन से बहुत काम लिया जाता है और उससे सच-झूठ का पता लगाना कठिन हो जाता है। कश्मीर के विहारों में कांस्यदेश, कूचा और दूसरे देशों के भिक्षु पढ़ने के लिए आया करते हैं, इसलिये जहाँ तक कांस्यदेश का सम्बन्ध था, उनसे मुझे कितनी ही बातें मालूम हुईं। वह अपने से उत्तर के खूनखार जातियों की सुनी-सुनाई बहुत सी बातें कहते थे। अवारों की क्रूरता की जो कथायें उन्होंने सुनाईं, उन्हें सुनकर साधारण तौर से आदमी उनके देश की ओर जाने का संकल्प न करता, लेकिन मेरे लिए तो वही यात्रा सब से प्रिय और आकर्षक थी, जो सबसे अधिक संकटापन्न हो। वैसे मेरी अब तक की यात्रा भी अकेले नहीं हुई थी। कई वर्षों तक बुद्धिल की छाया में मैं चलता रहा और उसके बाद जब तब, जहाँ-तहाँ के लिए साथी मिल जाते थे, किन्तु आगे की यात्रा के लिए मैंने सब सुनकर निश्चय कर लिया था कि कुछ स्थायी साथियों को लेना आवश्यक है। जब अपनी जन्मभूमि से निकला था, उस समय मैं नवतरुण था, मेरा बाल्य अभी समाप्त नहीं हुआ था। देशाटन और इतना काल मुझे वयस्क बनाने के लिए पर्याप्त था, लेकिन उसमें बुद्धिल के वियोग ने सम्मिलित होकर मुझे अकाल ही में प्रौढ़ बना दिया था। मेरे रूप-रंग पर उसका प्रभाव भले ही न पड़ा हो, किन्तु व्यवहार और बात-चीत से मैं अब प्रौढ़ मालूम होता था। इसका यह लाभ मुझे जरूर हुआ कि मेरी बात का मूल्य अब बढ़ गया।

मैं पहले ही से इस बात का प्रयत्न कर रहा था कि सिन्धुनद की तरफ जाने वाला कोई सार्थ मिल जाये तो यात्रा में सुभीता हो। उद्यान के लोग भी व्यापार करते हैं, लेकिन वह छोटे-छोटे व्यापारी हैं, जो स्वतन्त्र अपना सार्थ नहीं संचालित कर सकते। संयोग से एक कश्मीरी श्रेष्ठी से मेरा परिचय हो गया, जिसके द्वारा कम्बोज जाने वाले एक सार्थ का पता लग गया। मेरी जन्मभूमि के पास ही कम्बोज देश था। इस यात्रा से पहले मैं नहीं समझता था कि पूर्व में कोई और भी कम्बोज देश है। अब जानता हूँ कि वहाँ केवल एक दूसरा कम्बोज देश ही नहीं, बल्कि गन्धार देश भी है। नामों की आवृत्ति हुआ ही करती है। अपनी जन्मभूमि से दूर गये लोग अपने यहाँ के नामों को वहाँ के पर्वतों, नदियों, ग्रामों और जनपदों को देते हैं। साथ के सार्थवाह को भी मैंने अपने अनुकूल पाया, यद्यपि वह बड़ा चिड़चिड़ा आदमी था। श्वेत-हूणों के सम्बन्ध के कारण उसने अपनी जन्मभूमि कपिशा छोड़ कश्मीर में अपना कारबार शुरू किया और अब वह यहाँ के सबसे बड़े सार्थवाहों में था। सीमान्त की भूमि क्रूर घुमन्तुओं से आक्रान्त थी। वहाँ बड़े हिम्मत वाले ही जा सकते थे। सार्थवाह बड़ा निर्भीक आदमी था, इसे कहने की आवश्यकता नहीं।

हम कश्मीर भूमि से निकल एक बड़े डाँड़े को पार कर कितने ही दिनों चलने के बाद सिन्धुनद के तट पर पहुँचे। सिन्धुनद का यह मेरा अन्तिम दर्शन था। इसी सिन्धु ने पश्चिम के देशों और उनके कारण चीन में भी हमारे देश को अपना नाम दिया था—पारसीक इसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महानद के कारण हमारे देश को हिन्दु (सिन्धु) देश कहते और उन्हीं से सुनकर महाचीन के लोग भी इन्दु कहते हैं।

देश-प्रत्यावर्त्तन (548 ई०)

सात वर्षों की तीर्थयात्रा के बाद 29 वर्ष की उमर में मैं उद्यान की भूमि में लौटा। इतने समय तक मेरे पैर ही भारत और सिंहल की भूमि को नहीं नाप रहे थे, बल्कि मैं जहाँ गया, वहाँ विद्या पढ़ने के किसी अवसर को हाथ से जाने नहीं दिया। उद्यान में यद्यपि हीनयान की प्रधानता थी, लेकिन भारत और भारत से बाहर महायान की बाढ़ जिस तरह आई, उससे उद्यान अछूता कैसे रह सकता था? मेरे ऊपर तो उसका खास तौर से प्रभाव पड़ा था। प्रथम पहाड़ी घाटी और फिर सुवास्तु नदी को पार कर मैं उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ मेरे गाँव वाले जाड़ा बिताया करते थे। मेरे पिता स्वस्थ और प्रसन्न मिले। गाँव के बन्धुओं ने मेरा बड़ा स्वागत किया और रहने का बहुत आग्रह किया। जाड़े का मध्य था और यद्यपि सुभूमि विहार का रास्ता बन्द नहीं था, लेकिन तो भी अपने जातिबन्धुओं की बात को मानकर मैं वहीं ठहर गया।

सात सालों तक मैं गरम देशों में घूमता रहा, इसलिये उसका कुछ प्रभाव मेरे रूप-रंग पर पड़ना जरूरी था। तथागत की पवित्र धातुओं और उनके चरणस्पर्ण से पुनीत स्थानों का दर्शन करके मैं अपने को कृतकृत्य समझता था, तो भी उद्यान की प्यारी भूमि माता की गोद की तरह मुझे प्रिय लगी। अभी उद्यान के एक छोर ही पर मैं पहुँचा था, लेकिन अभी से वहाँ के हरेक खान-पान में ऐसा रस मिलने लगा, जिससे मैं इतने दिनों तक वंचित था। उद्यान की भाषा बोलने में भी मुझे एक प्रकार के रस की अनुभूति होती थी। सात वर्ष बहुत नहीं कहे जा सकते, लेकिन इसी बीच कितने ही नये चेहरे दुनिया में आकर खेल-कूद रहे थे, कितने ही परिचित चेहरे दुनिया से विदाई ले चुके थे। अब भी येथों का शासन मौजूद था, लेकिन एक ही साल पहले राजा मिहिरकुल मर चुका था। मिहिरकुल को मैंने उसके हाथ से निकल गये देशों में बहुत क्रूर होने की बात सुनी थी, लेकिन जहाँ तक उद्यान का सम्बन्ध था, हम उसकी कुछ कामुक वृत्तियों को छोड़कर और कोई शिकायत नहीं कर सकते थे, कामुकता तो राजाओं और सामन्तों में थोड़ी बहुत सभी जगह होती है। मिहिरकुल का नाम लिए जाने पर भद्रा की याद आनी स्वाभाविक थी, लेकिन अब वह मेरे लिए अपरिचित नारी सी थी।

देश में लौटकर क्या करना है, इसके बारे में मैंने बहुत विचार नहीं किया था, तो भी अपने विहार में जाना तो निश्चित था और चिरकाल के बाद लौटने के कारण उसके प्रति अधिक आकर्षण भी मालूम होता था। मेरे गाँव वालों का आग्रह था कि मैं पयार पर उनके डेरों में वर्षा बिताऊँ। बचपन का प्यारा पयार मेरे लिए अब भी बहुत भारी आकर्षण रखता था। मैंने पिता और दूसरे बन्धुओं से आने का पक्का वचन तो नहीं दिया, लेकिन इन्कार भी नहीं किया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाड़े को एक-एक दिन करके बीतते देरी नहीं लगी। ऊपर से यहाँ आये उद्यानी अपने गाँवों की ओर लौटने की तैयारी करने लगे। मेरे गाँव वाले भी स्वात (सुवास्तु) नदी के किनारे-किनारे चले। रास्ते में (मंगलोर) आस-पास के कई पवित्र स्थानों के दर्शन मैंने फिर किये। महावन (विहार) के दर्शनों के लिए मुझे दो दिन का रास्ता काटना पड़ा। मंगलपुर को उद्यान का केन्द्र नहीं कह सकते, लेकिन जहाँ तक पवित्र स्थानों का सम्बन्ध है, इसके चारों ओर वह भारी संख्या में बिखरे हुए हैं। उद्यान के भिक्षुओं के लिए तथागत के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले मध्यदेश के पवित्र स्थानों की यात्रा असाधारण सी बात नहीं है। हमारे लोग वहाँ की गर्मी और साँपों से बहुत घबराते हैं, तो भी तीर्थयात्रा से अपने को वंचित नहीं रखना चाहते। भिक्षु और कितने ही गृहस्थ नर-नारी भी इन यात्राओं पर जाते हैं। हमारे लोगों ने इस कमी को पूरा करने के लिए अपने पास-पड़ोस के कपिशा, गन्धार और कश्मीर जैसे शीत-प्रधान प्रदेशों में बहुत से पवित्र स्थान स्वीकृत कर लिये हैं, जहाँ वह हर साल हजारों की संख्या में जाया करते हैं।

घूमते-घामते मैं वर्षारम्भ से एक महीना पहले सुभूमि में पहुँचा। मैंने अपने बन्धुओं को निश्चित वचन इस वजह से नहीं दिया था, कि इतने वर्षों बाद विहार में लौटने पर आचार्य और उपाध्याय इसके लिए आज्ञा दे सकेंगे, इसका मुझे विश्वास नहीं था। वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि इसी जाड़ों में महास्थविर गुणवर्द्धन और मेरे गुरु तथा चचा भदन्त जिनवर्मा का देहान्त हो गया। विहार के नये नायक स्थविर शीलस्कन्ध मेरे पुराने परिचित थे। उन्होंने भी मेरे प्रति कम स्नेह नहीं दिखाया, किन्तु यह निश्चित ही था कि उनकी ओर से मेरे पयार में वर्षावास में बाधा नहीं होगी। विहार मेरा स्वागत करने के लिए तैयार था, इसलिये लौटकर विहार में ही मुझे रहना था।

प्रस्थान करके वर्षोपनायिका (आषाढ़ पूर्णिमा) से पहले ही मैं अपने गाँववालों के डेरों पर पयार के ऊपर पहुँच गया, मेरे साथ धर्मयश तथा तीन और भिक्षु भी थे। भिक्षुओं का वर्षावास डेरों में कैसा होता है, इसका मुझे पता था। इतने वर्षों तक गरम देशों में रहने के बाद पयार में तीन महीने रहना मेरे लिये स्वर्गवास जैसा मालूम हो रहा था।

भिक्षुओं का सम्मान गृहस्थ देवता की तरह करते हैं, जिसमें सभी के भाव केवल चित्त-प्रसाद प्राप्त करने तक ही सीमित नहीं होते। वह आशा रखते हैं कि अपनी दिव्य शक्ति से भिक्षु हमारे कष्टों को दूर कर देंगे। सभी जगह लोगों की भावनायें बहुत कुछ एक जैसी होती हैं। दुःख कहाँ नहीं होता? वस्तुतः सुख तो दुःख के अनन्त समुद्र में एक द्वीप की तरह कभी-कभी प्राप्त होता है। मैंने प्रमाणशास्त्र का अध्ययन किया था। दिग्-नाग की प्रखर बुद्धि का चमत्कार ही उसमें नहीं देखा था, बल्कि उसके कारण कितनी ही बातों से मेरा विश्वास भी उठ गया था, लेकिन आदमी के भीतर कितनी परस्पर-विरोधी भावनायें रह सकती हैं, यह मुझे अपने अतीत और वर्तमान के जीवन को देखने से अच्छी तरह मालूम होता है। मैंने कितनी ही बार "किं करिष्यन्ति तारकाः" को कहते हुये ज्योतिष के फल भाखने को झूठा बतलाया, मन्त्र-तन्त्र पर भी मेरी आस्था विचलित हो चुकी थी। नागार्जुन के माध्यमिक दर्शन के अध्ययन के बाद और भी बहुत सी बातों से मेरा विश्वास डिग गया और देवी-देवता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा दूसरे दिव्य पुरुषों का ख्याल गलत मालूम होने लगा। लेकिन अब सोचने पर मालूम होता है कि ऐसा समय शायद कभी नहीं हुआ, जबकि मैं किसी बात को एकान्ततया असत्य कह सकता था और किसी बात को एकान्ततया सत्य।

मनुष्य अपनी कमजोरियों का मारा हुआ है। वह जबर्दस्ती ऐसी बातों को करने के लिए मजबूर होता है, जिसके करने में उसकी रुचि नहीं होती। गृहस्थों के रोग की चिकित्सा करने का मुझे कुछ सफल तजुर्बा भी था और उस पर मेरा पूरा विश्वास था, किन्तु जब वह किसी बाधा को दूर करने के लिए मन्त्र-तन्त्र के प्रयोग के लिए कहते तो मैं इन्कार भी नहीं कर सकता था। उनकी असहाय अवस्था देखकर इन्कार करने में मुझे निष्ठुरता दिखाई पड़ती। उनका विश्वास था, इसलिये वैसा करने से उनके हृदय को कुछ सान्त्वना मिल जाती है। इसी विचार से मैंने अपनी वर्तमान यात्रा में मगध और दूसरे स्थानों में कितने ही प्रसिद्ध मन्त्रज्ञ भिक्षुओं से कुछ मन्त्र सीख लिये थे, जिनका प्रयोग करने में पहले संकोच भले ही होता हो, लेकिन अब मैं उनके प्रयोग में हिचकिचाता नहीं था। सूत्र-पाठों से पुण्य प्राप्त करना तो तथागत के समय से ही चला आता था, लेकिन मुझे यह पसन्द नहीं था कि लोग सूत्रों का पाठ कराने की जगह हमसे मन्त्रों का पाठ करायें। बिना अर्थ वाले मन्त्रों के दोहराने से कोई ज्ञान या शिक्षा तो प्राप्त नहीं हो सकता।

हम पाँचों भिक्षु पयार पर तीन महीने वर्षावास के लिए रहे। मेरे और दूसरे गाँव के पयार-प्रवासी रोज सन्ध्या के समय एकत्रित होते और प्रायः रोज ही मुझे उपदेश देना पड़ता। उपदेश का जो ढंग मैंने यात्रा में देखा था, वह हमारे उद्यान के पुराने ढंग से कुछ विलक्षण था। महायान का प्राबल्य बढ़ने के कारण ऐसा होना स्वाभाविक भी था, क्योंकि तथागत के मानवोचित चरित्र की अपेक्षा बोधिसत्त्वों की चमत्कारपूर्ण कथायें लोगों को अधिक प्रिय थीं। मैं यह तो नहीं कह सकता कि तथागत के मानवोचित चरित्र मेरे लिये अप्रिय नहीं रह गये, लेकिन केवल अपनी मुक्ति के लिए प्रयत्न करना, अर्हत् होकर संसार सागर से पार हो जाना मुझे कुछ अच्छा लक्ष्य नहीं मालूम होता था। अवदानों की कथाओं को सुनते मुझे पहले यही अच्छा लगता था कि मनुष्य अपने सुख और मुक्ति के लिए न जीवे, बल्कि वह दूसरों के हित के लिए अपने को भूल जाये, यही मानव-जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य हो सकता है। इन यात्राओं में नालन्दा जैसे बड़े-बड़े विहारों में मैं जाकर रहा था, जहाँ के पंडितों का लोहा सर्वत्र माना जाता था। पर्वतों की कितनी ही गुहाओं में गया था, जहाँ पर बड़े-बड़े ध्याननिष्ठ भिक्षु रहा करते थे। सभी जगह मैंने यही बात सुनी—बोधिसत्त्वों का मार्ग ही एकमात्र महान् मार्ग (महायान) है। केवल अपनी मुक्ति को लक्ष्य बनाना हीनमार्ग (हीनयान) है। मैंने इस विषय पर बहुत से ग्रन्थ पढ़े थे, बड़े-बड़े वाग्मियों के उपदेश सुने थे, वाद-विवाद में महायान के समर्थकों को विजय प्राप्त करते देखा था, इसलिये मेरे मन में बैठ गया था कि यही मार्ग सर्वश्रेष्ठ है। इस वर्षावास के समय मैंने जो उपदेश दिये उनमें बोधिसत्त्वों और उनके मार्ग की महिमा ही अधिक थी। लेकिन, उद्यान की स्थिति को देखकर मैं नहीं कह सकता कि उपासकों और उपासिकाओं को मांस-भक्षण का सर्वथा त्याग करना चाहिये। मध्यमंडल में मांस भोजन से विरत लोगों को मैंने देखा था, लेकिन भिक्षु-संघ ने उसे कहीं वर्जित नहीं ठहराया था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu-Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपदेशों के अतिरिक्त पयार में हरेक बीमार को देखना और उसकी चिकित्सा का काम भी मेरे ऊपर था। सबसे अरुचिकर काम था भूत-प्रेत झाड़ना, मन्त्र-तन्त्र का प्रयोग करना। जिन लोगों का इन बातों पर विश्वास था, वह तर्क और युक्ति को मानने के लिए तैयार नहीं थे। घन्टों या दिनों तक मत्थापच्ची करने की जगह यही बेहतर था कि वहाँ जाकर कुछ मन्त्र जप दिये जायें। लाभ हो गया तो अच्छी बात है, न हो गया तो उसके लिए भी लोग बुरा नहीं मानते थे।

मैं अभी जवान था। उद्यान में एक जाड़ा तथा पयार में कुछ समय बिताने के बाद ही मेरा रंग-रूप और स्वास्थ्य पहले की अपेक्षा भी अच्छा हो गया। हमारे उद्यान में भिक्षु से फिर गृहस्थ बन जाना मामूली बात थी। भिक्षु-जीवन में आदमी जो शिक्षा और अध्ययन करता है, उसका गृहस्थ जीवन में उतना उपयोग नहीं है, तो भी शिक्षित होने के कारण भिक्षु से गृहस्थ हुये व्यक्ति का मूल्य बढ़ जाता है। उद्यान की सुन्दरियों को तो तरुण भिक्षुओं को अपनी ओर खींचने में बड़ा आनन्द आता है। वह अपनी सफलता पर उसी तरह सन्तुष्ट होती हैं, जैसे कोई शिकारी शिकार करने में सफल होने पर। मेरे साथियों में, अधिकांश मुझसे अधिक उमर के थे, जन्म और उपसम्पदा दोनों के ख्याल से, लेकिन अपनी विद्या और तजर्बे के कारण मुझे ही मुख्य माना जाता था। एक शक-कुमारी के प्रेमपाश में बँधकर मैं बाल-बाल बचा और नहीं चाहता था कि फिर उस तरह की कोई कठिनाई में पड़ना पड़े। काषाय वस्त्र इस तरह के फंदे से बचाने में अधिक सहायक होता है। उसे शरीर पर रखते ही गृहस्थ, विशेष कर स्त्रियों से घनिष्टता स्थापित करने के सभी रास्ते बन्द हो जाते हैं। नाचना-गाना वर्जित, साथ बैठकर खान-पान निषिद्ध, एकान्त सेवन भी असम्भव। लेकिन, अगर वह इतना असम्भव होता, तो समय-समय पर होने वाली कितनी ही घटनायें कैसे घटित होतीं ? हमारे गाँव वालों के डेरों के पास ही येथा लोगों का भी एक डेरा था। येथा प्रायः सभी घुमन्तू थे और शकों तथा खसों की तरह अभी उनके स्थायी गाँव नहीं बस पाये थे। वह चाल-व्यवहार और शिक्षा-दीक्षा में बहुत कुछ दूसरों जैसे होते जा रहे थे। तो भी, अभी उनमें यावरों की स्वच्छन्दता अधिक मात्रा में थी। यायावरों के धार्मिक विश्वास किसी दर्शन पर आधारित नहीं होते। भोले बच्चों-जैसा धार्मिक विश्वास सभ्यता में आगे बढ़े लोगों को पसन्द नहीं आते, इसलिये शिक्षा-दीक्षा में आगे बढ़ने का मतलब होता है, आगे बढ़े हुये लोगों के धार्मिक विश्वास को स्वीकार करना। येथा लोगों में अब तथागत के धर्म का प्रचार था, विशेषकर उद्यान जैसे तथागत के एकान्त भक्त देश में तो वह अब हमारे लोगों जैसे ही हो गये थे। कश्मीर में मैंने येथा सरदारों को सूर्य और महेश्वर का पूजक देखा था। गोपगिरि (ग्वालियर) में मैंने अपनी आँखों मिहिरकुल के पिता तोरमाण द्वारा बनवाये पाषाण के सुन्दर सूर्य देवालय को देखा था। ब्राह्मणों का धर्म हमारे यहाँ प्रधानता नहीं रखता था।

हमारे पास के डेरे में एक येथा कुमारी कितने ही समय से भूत द्वारा पीड़ित थी। मैंने जहाँ-तहाँ मन्त्र-तन्त्र के प्रयोग किये, जिसमें कुछ सफलता मिली थी। इसलिये लड़की के घरवालों ने मुझसे आग्रह किया और मुझे वहाँ जाना पड़ा। उसकी आयु 18 वर्ष से अधिक की नहीं थी। भूतबाधा के कारण उसका शरीर कृश मालूम होता था, लेकिन उससे उसके सौन्दर्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में कोई कमी नहीं हुई थी। उसके चेहरे को देखकर मेरे हृदय में भद्रा की स्मृति जाग उठी और साथ ही मेरा मन सशंक हो गया। मैं वहाँ से भागना चाहता था, लेकिन उसका कोई बहाना नहीं था। एक उपासक की कन्या को इस तरह कष्ट में पड़ा देखकर बिना कुछ उपचार किये मैं वहाँ से कैसे निकल सकता था ? आखिर मुझे मन्त्र जाप करना ही पड़ा। तरुणी पहले अन्यमनस्क सी अधिकतर आँखें नीचे किये बैठी रही, फिर एक बार उसने मेरी ओर देखा। उसकी नीली पुतलियाँ चमक उठीं, भौहों तक पड़े अपने पीले बालों को हटाने की उसमें सुध आ गई। घर वालों ने इसे मेरे मन्त्र का भारी चमत्कार समझा। मुझे अगले दिन फिर बुलाया गया। लड़की पहले से अधिक प्रकृतिस्थ थी। मेरे वहाँ पहुँचने के समय उसकी माँ वहाँ मौजूद थी, लेकिन वह भी किसी काम के बहाने से वहाँ से हट गई। हम दोनों ही झोपड़ी के कोने में रह गये। अभी निश्चित संख्या में मन्त्र जाप नहीं कर सका था, और मैं शंकित हृदय से जल्दी-जल्दी भुनभुनाते यही मना रहा था कि उसकी माँ जल्दी आ जाये। लेकिन वह इतनी जल्दी कब लौटनेवाली थी ? मेरे हृदय की घबराहट का प्रभाव शायद मेरे चेहरे पर था, अथवा मेरी किंकर्त्तव्यविमूढ़ता से उसको पता लग गया। वह कुछ देर तक मेरे चेहरे की ओर एकटक देखती रही। मुझे अपने मन्त्रबल का इतना विश्वास नहीं था, किन्तु अब उसका चेहरा बिलकुल खिला हुआ था। मानसिक अस्वस्थता ही तो थी, जिसका प्रभाव कुछ शरीर पर भी पड़ा था, लेकिन आज उसका सौन्दर्य पूरी तौर से निखरा हुआ था। मेरी ओर ताकती उसकी आँखों में असाधारण स्नेह के साथ-साथ एक तरह की करुणा झलक रही थी, जैसे मूकवाणी से वह मुझसे कोई याचना कर रही हो। मेरी ओर से किसी तरह का उत्तर या संकेत न पाकर उसने संकोच हटाकर कहा:

—आप उपदेश जितना मधुर देते हैं, उतना मधुर हृदय नहीं रखते।

मुझे पहले जवाब देने के लिए कोई शब्द नहीं सूझा। मैं उसके लिये तैयार होकर आया भी नहीं था। बोधिसत्वों के परोपकारमय जीवन पर भाषण देते मैंने कितनी ही बार कहा था, कि दूसरों के दु:ख को हटाने के लिये बोधिसत्वों और उनके मार्ग पर चलने वाले के लिए कुछ भी अदेय नहीं है। तन प्राण सबका उत्सर्ग बोधिसत्व-पथ के पथिक के लिए जब साधारण सी बात है, तो मैं बचन से भी सान्त्वना न दूँ, यह कब ठीक कहा जा सकता है। तरुणी के वाक्य को सुनकर मेरा मन अपने भीतर उलझ गया। मैं समझ गया, कि उसके यह वाक्य किन भावों से प्रेरित होकर निकले हैं। मुझे यह भी सोचने में देर नहीं लगी, कि इस तरह का उत्सर्ग मेरे लिए न वांछनीय है और न सम्भव। फिर भी मुझे उत्तर तो देना ही था और साथ ही ऐसे शब्दों में, जिनसे उसके हृदय को ठेस न लगे। मेरे मुँह से जवाब निकलने में कुछ क्षण जरूर लगे, लेकिन मैंने अपने ऊपर संयम करके जहाँ तक हो सका कोमल शब्दों में कहा :

—मुझे यह जानकर प्रसन्नता है, कि तुम्हारा रोग हट गया।

—रोग हट गया, नहीं कहिये, आपके आने से वह कुछ समय को खिसक गया, लेकिन यदि आपने मेरी ओर से मुख मोड़ा, तो मेरी फिर वही हालत हो जायगी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

—मैंने तुम्हारे भूत को निकालने के लिए मन्त्रजाप किया है, वह अब फिर तुम्हारे पास नहीं लौटेगा।

—आप बहुत भोले हैं। मैंने तो सुना था, आपने बहुत से देश देखे हैं, बहुत विद्या पढ़ी है। मेरा भूत इस तरह जानेवाला नहीं है।

मैं समझ तो गया था, लेकिन यों ही टालना चाहता था। मेरे मुँह से कोई शब्द न निकलते देख तरुणी ने कहा:

—भद्रा के साथ ही आपके प्रेम का स्रोत सूख गया क्या? मैं सुन्दरता में भद्रा का मुकाबिला नहीं कर सकती, लेकिन प्रेम में मैं वैसी नहीं निकलूंगी।

—तुम भद्रापर नाहक दोष लगा रही हो।

—यदि भद्रा ने प्रेम किया होता, तो इतनी आसानी से दूसरे की नहीं बन जाती। मुझ पर विश्वास रक्खो। तुम्हारे गुणों को मैं बहुत सुन चुकी हूँ, और बहुत समय से हृदय के भीतर-भीतर ही तुम्हें चाहती हूँ। मेरे घरवाले कभी बाधक नहीं होंगे।

—लेकिन सुमुखी, तुमते ठीक कहा, मेरे प्रेम का स्रोत सूख गया है। कृत्रिम प्रेम दिखलाकर मैं अपना और तुम्हारा दोनों का अकल्याण करुँगा।

—मैंने एकाएक आवेग में आकर तुम्हारे साथ प्रेम की स्वीकृति नहीं प्रकट की। मैं प्रतीक्षा करने के लिए तैयार हूँ। यदि तुम केवल इतना कह दो, कि मैं इस समय तुम्हारे प्रेम को ठुकरा नहीं रहा हूँ, मैं इसके बारे में फिर सोचकर जवाब दूँगा, तो मुझे संतोष हो जायगा।

मैंने उसी वक्त दो टूक इन्कार करना चाहा, लेकिन फिर उसमें सफल न होकर निराशा का पलड़ा भारी करते हुये भी विचार करने का वचन दिया, और वहाँ से चला आया। लड़की के स्वास्थ्य-लाभ को देखकर लोगों की श्रद्धा मेरे मन्त्र के ऊपर अधिक बढ़ गई, लेकिन मेरे लिए तो वहाँ अब एक दिन भी ठहरना मुश्किल हो गया। पर, अपने चारों साथियों के साथ रहते हुये मैं अपने वर्षावास को तोड़ कैसे सकता था? बाद में अपने उपदेशों में उस तरुणी को मैं बराबर देखता था। वह बड़े ध्यान से मेरे मुँह की ओर देखा करती। उसकी आकृति में कोई परेशानी न देखकर मुझे आत्मग्लानि होती: वह मुझ पर विश्वास कर रही होगी, और मैं उसे धोखा दे रहा हूँ।

महाप्रावारणा एक महीने बाद आई। एक ओर उसके नजदीक आने से हृदय पर रक्खा भार कुछ हल्का होता दिखाई पड़ता था, किन्तु दूसरी ओर यह सोचकर वह बढ़ता भी जा रहा था कि अधिक सूझ और समझ रखते हुये भी मैं वंचना कर रहा हूँ। बोधिसत्त्वों के परोपकार-मय जीवन के बारे में उत्साहपूर्ण व्याख्यान देना अब मेरे लिये मुश्किल हो गया था। यदि हर तरह से दुःख दूर करना ही हमारे जीवन का उद्देश्य होना चाहिये, तो मैं इस अलहड़ तरुणी की हृदय वेदना को हटाने की कोशिश क्यों नहीं करता? लेकिन, क्या इस तरह बोधिसत्त्व व्रतका पूरा करना व्यवहार्य है? क्या हरेक की हृदयवेदना दूर करना एक आदमी के बस की बात है?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और इस प्रयास का फल क्या होगा ? हजारों और लोगों की तरह मैं भी गृहस्थ बन जाऊँगा फिर बाल-बच्चों तथा कुटुम्ब के पालन में सारा जीवन बिताना पड़ेगा। उस समय मैं कैसे अपने तन-मन-धन को बोधिसत्त्व-व्रत के पालन में लगा सकूँगा। अवश्य कोई सीमा-रेखा खींचनी होगी, यह मुझे साफ दिखाई पड़ने लगा। मेरा हृदय कहने लगा, इस तरह का निस्सीम बोधिसत्त्व-व्रत पालन करना खतरनाक भी हो सका सकता है। मैंने आन्ध्र में ऐसे महायान का भीतर ही भीतर प्रसार होते देखा था, जिसमें बोधिसत्त्व के परोपकारमय जीवन की आड़ में उन्मुक्त कामनाओं की तृप्ति की जाती थी। अभी उसके लिये सूत्र और शास्त्र नहीं बने हैं, लेकिन कौन जानता है, मनुष्य की इस तरह की प्रवृत्ति उससे क्या-क्या नहीं क रवायेगी।

पयार में रहने का बाकी एक महीना ही नहीं, बल्कि पीछे भी कितने ही समय तक इस विचार में मग्न रहता था : शील और सदाचार का निर्वाह करना बोधिसत्त्व के निस्सीम व्रतमें आवश्यक है या नहीं ? निरी कामुकता और स्वार्थलिप्सा तथा इस प्रकार के निस्सीम व्र को कैसे अलग-अलग पालन किया जा सकता है ? तथागत ने शील का प्रत्याख्यान कहीं नहीं किया है और बराबर शील, समाधि और प्रज्ञा के तीन स्कन्धों के पालन करने पर जोर दिया है। अपने और अपने साथियों के इतने दिनों के जीवन के अनुभव को देखते हुये मैं कभी-कभी निराश हो जाता। काम का रोकना, अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करना, विशेष कर तरुणाई में मुझे करीब-करीब असम्भव मालूम होता था। फिर सोचता था : तब ऐसी असम्भव बात पर इतना जोर क्यों दिया जाता है ? उच्च व्रत औरपरोपकारमय जीवन व्यतीत करने के लिये ग्रही बनना भारी बाधा है, यह मुझे अच्छी तरह समझ में आता था। वाल-बच्चों को रखते कैसे अपने और परायों के साथ समदर्शिता का बर्ताव किया जा सकता है ? आखिर अपनों की जिम्मेवारी अपने ऊपर जितनी है, उतनी परायों की नहीं है। मेरा-तेरा से ऊपर उठने के लिये ग्रही-जीवन का परित्याग जरूरी है। किसी को बीमार देखकर मैं जिस तरह प्राणपन से अपना सारा समय लगाकर उसकी सेवा अब कर सकता था, चार बच्चों का बाप हो जाने के बाद मैं वैसा कैसे कर सकता था ? मुझे जीविका-अर्जन के लिये मेहनत करनी होती। जहाँ तक अकेले अपनी जीविका का सम्बन्ध है, मैं आसानी से गुजारा कर सकता हूँ। अपनी विद्या, बुद्धि तथा सेवाओं के रूप में मैं बहुतेरों को अधिक दे सकता और रूखी-सूखी भिक्षा पर गुजारा कर सकता। अपनी अवश्यकताओं के सीमायें अत्यन्त संकुचित कर सकता लेकिन ग्रही बनने पर वह नहीं हो सकता।

बोधिसत्त्व के परोपकारमय जीवन को भी सीमा रहित न रखकर उसमें मध्यम मार्ग का ही बर्तना मनुष्य के लिये साध्य तथा उचित है, इस परिणाम पर मैं अन्त में पहुँच गया। अखण्ड ब्रह्मचर्य के बारे में कोई फैसला करना मेरे लिये हमेशा कठिन रहा, यद्यपि मैंने उसके पालन के लिये अपनी सारी शक्ति लगाई और मानसिक भावों को छोड़ देने पर मैं काफी हद तक उसमें सफल हुआ। यदि मैं इसमें सफल न होता, तो इतने दिनों तक अपने उन्मुक्त यायावर-जीवन को कायम न रख सकता था। यायावर (घुमक्कड़) का जीवन मुझे बहुत प्रिय है। 70 वर्ष की हड्डियाँ अब बहुत घिस गई हैं, मेरे पैरों में वह शक्ति नहीं रहीं जो दुर्लंघ्य पर्वतों और उत्तरंगित असीम समुद्रों को कुछ भी नहीं समझती थीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महाप्रावारणा के दिन पयार के उपासकों और उपासिकाओं ने हम पाँचों भिक्षुओं के लिये तरह-तरह के सुन्दर भोजन दिये जिसमें मांस की प्रधानता थी, यह कहने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने हमारे लिये अपने हाथ से बुने-कते सूक्ष्म कोमल ऊनी वस्त्र के रँगे चीवर प्रदान किये—मेरे लिये कठिन चीवर (विशेष महत्व रखने वाली ऊपर ली जाने वाली चादर) दिया। हमारे विहार के लिये उन्होंने बहुत सा मक्खन, मांस तथा दूसरी चीजें प्रदान कीं, जिन्हें वहाँ पहुँचाना उन्हीं का काम था।

हम लोग कार्तिक के मध्य तक सुभूमि विहार में लौट आये। मेरे आचार्य-उपाध्याय गुणवर्द्धन और जिनवर्मा अब नहीं थे, लेकिन भिक्षुओं का अपने विहार के साथ परिवार जैसा स्नेह हो जाता है और विहार वासी एक दूसरे के साथ बड़ी आत्मीयता रखते हैं। मैं वर्षावास के लिये वहाँ से गया था और मेरा वहाँ लौटकर आना निश्चित था। विहार के नये नायक स्थविर और दूसरे भिक्षु चाहते थे कि मैं मूल विहार में उसी कोष्टक में रहूँ जिसमें भदन्त जिनवर्मा रहते थे। मेरी भी इच्छा थी, कि विहार ने जिस तरह मेरी शिक्षा-दीक्षा दी, मैं भी उससे उऋण होने के लिये वैसा ही करूँ। उद्यान के दक्षिण बहुत दूर तक वर्षों यात्रा करके मैंने कुछ आत्मा-तृप्ति भी लाभ की थी, इसमें सन्देह नहीं। विहार में लौटकर अब मैं वहाँ अध्यापन का काम करने लगा। अपने ज्ञान को बढ़ाने में अब स्वाध्याय छोड़कर और कोई साधन नहीं था।

भिक्षुओं का सामूहिक जीवन अपने कितने ही दोषों और विकर्षणों के रहते भी बहुत आकर्षक होता है, खासकर ऐसे आदमी के लिये, जिसमें निजी स्वार्थसिद्धि और अहम्मन्यता की मात्रा अधिक न हो। ये दोनों बातें औरों की अपेक्षा मुझमें कम थीं जिसे मैं अपने बड़े सौभाग्य की बात समझता हूँ। दूसरों की मित्रता और सौहार्द्र लाभ करना मेरे लिये बड़े आनन्द की बात थी और उसका खोना दिनों नहीं सप्ताहों और महीनों की नींद हराम करने के लिये पर्याप्त था। एक बार जिसका सौहार्द्र प्राप्त कर लिया, उसे खोने के लिए मैं हर्गिज तैयार नहीं था। मैं उसकी रक्षा के लिये सब कुछ करने को तैयार था। चाहे दोष दूसरे का हो, किन्तु उसे मैं अपना दोष समझकर हर तरह से प्रतीकार करने के लिये तैयार हो जाता। इसी का फल यह था कि मैंने जीते जी शायद ही किसी मित्र को खोया और मरने के बाद भी जब उनकी स्मृतियाँ मेरे हृदय पटल पर एक के बाद एक प्रतिबिम्बित होती हैं, तो वह एक तरहकी मीठी टीस पैद करती हैं—मैं जीवन व्याप्त स्मृति परम्परा को अपनी अनमोल निधि समझता हूँ।

अपने विहार में पहले चार वर्ष रहते समय भी मेरा सम्बन्ध विहारवासियों से अच्छा था और अब तो उसमें और भी वृद्धि हुई थी। अपनी विद्या से मेरा गौरव जितना बढ़ा था, अपने मधुर बर्ताव से वह और भी बढ़ गया था। मेरे पास सबसे और अधिक विद्यार्थी आते थे। छोटे-से-छोटे श्रामणेर और काफी पढ़े हुये विद्वान् सभी को पद-प्रदर्शन करते हुये आगे बढ़ाना मैं अपना कर्त्तव्य समझता था। भिक्षु होने का मतलब यह नहीं कि आदमी सब तरह के दोषों से मुक्त हो। हमारे विहार में यद्यपि चुने हुये श्रामणेर और भिक्षु दीक्षित किये जाते, लेकिन तो भी इस जीवन के लिये अनुपयुक्त कितने ही व्यक्ति आ जाते। कितने ही पीछे वहाँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से हट भी जाते, लेकिन कुछ जैसे-तैसे बने रहते। ऐसों के कारण विहार के शान्त वातावरण में कभी-कभी अशान्ति फैलती। मैं अभी तरुण भिक्षु था। 70-70, 80-80 वर्ष के ज्ञान वयोवृद्ध भिक्षुओं के सामने मेरी क्या हैसियत थी, लेकिन मैं विहार में अजातशत्रु समझा जाता था और जिस कलह और विवाद को कोई नहीं शान्त कर सकता था, उसके निपटारे की जिम्मेवारी मुझ पर दी जाती थी जिसमें मैं सदा ही सफल होता।

विहार के भिक्षुओं की सेवा के लिये तो मैं तत्पर रहता ही था, साथ ही नदी पार के गाँव के लोगों में भी यदि किसी को कोई दुःख होता, तो वह मेरे पास पहुँचता। मैं बतला चुका हूँ, चिकित्साशास्त्र का ज्ञान मेरा मामूली था और हर तरह के रोगों के दूर करने की जिम्मेवारी मैं अपने ऊपर नहीं ले सकता था। सुभूमि विहार के मेरे गुरु वृद्ध चिकित्सक अभी भी जीवित थे और उनके हाथ में यश भी काफी था। उनके दो-तीन शिष्य भी कुशल वैद्य थे, लेकिन गाँव-वाले सबसे पहले दौड़े-दौड़े मेरे पास आते। उनको विश्वास था कि रोगी मेरे आशीर्वाद से जितना लाभ हो सकता है, उतना ओषधि से नहीं। मैं भी उनको निराश नहीं करता था। मुश्किल से दो साल मुझे विहार में रहने का मौका मिला, इसी बीच में मेरा परिचय और प्रभाव बहुत बढ़ गया। मेरे पास भेंट-पूजा भी बहुत आती थी जिसे मैं संघ के भण्डार में भेज देता। जब तक मैं विहार में रहता और जब तक जाड़ों के लिये परले गांव वाले नीचे नहीं चले जाते, तब तक मैं केवल भिक्षा पर ही गुजारा करता। गाँव में जाने पर स्त्रियाँ और बच्चे टकटकी लगाये मेरी वाट जोहा करते और मुझे कुछ ही घरों में इतनी भिक्षा मिल जाती कि मैं वहाँ से ही लौट आता। भिक्षा पात्र के पूर्ण हो जाने पर मैं फिर आगे नहीं बढ़ता और न भिक्षा लेता, यह सभी को मालूम था, इसलिये कोई आग्रह नहीं करता था। लेकिन सबकी श्रद्धा को पूरा करने के लिये मैं बारी-बारी से गाँव के भिन्न-भिन्न छोरों से भिक्षाटन करता और लोगों को भी समझाता कि अधिक मात्रा में भोजन मेरे पात्र में न डालें। यदि लोग मात्रा में कम करते, तो भोजनों में विशेष स्वाद बृद्धि कर देते। स्नेह का मूल्य मैं सम्मान से भी अधिक समझता था, इसलिए बाल-वृद्ध या नर-नारी के अकृत्रिम स्नेह के प्राप्त करने की मेरी कोशिश रहती। भिक्षाटन के समय यदि किसी को रुग्ण या अस्वस्थ सुनता, तो उसे देखने और सान्त्वना देने जरूर जाता। यदि किसी के घर में अन्न बिना उपवास होने की बात सुनता तो उसकी सहायता किये बिना नहीं रहता।

यह बतला चुका हूँ कि उद्यान के और विहारों की तरह हमारा सुभूमि विहार भी सर्वास्तिवादी अर्थात् हीनयानी विहार था। वहाँ सर्वास्तिवाद के विनय-नियम और परम्परा के पालन करने की कोशिश की जाती थी। परन्तु भीतर ही भीतर वहाँ भी महायान प्रवेश कर चुका था। आरम्भ में आने के समय मैं चाहता था, कि महायान का प्रचार करके अपने विहार को उसका गढ़ बना दूँ, किन्तु पयार में येथा सुन्दरी के साथ जो घटना घटी थी, उससे महायान के बारे में खुलकर मुँह खोलने में मुझे भारी संकोच होने लगा। वाणी की जगह मैंने उसे आचरण में लाना ही पसन्द किया। मैं नहीं कह सकता, अपने दो साल के जीवन में मैंने कभी महायान पर किसी श्रोतृमंडली में उपदेश दिया। वैसे पढ़ाते समय जहाँ प्रकरण आता, वहाँ महायान की बातें बतलाये बिना नहीं रहता, लेकिन तो भी मेरी कोशिश हीनयान और महायान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यान के समन्वय करने की ओर होती। मेरे विद्यार्थी सभी अध्यापकों से अधिक मुझसे संतुष्ट थे, यद्यपि मैं सदा अपने ज्ञान को दूसरों के मुकाबिले में कम बतलाता। अपने से वृद्धों के प्रति, चाहे वह विद्या में मुझ से बड़े न हों, मैं स्वाभाविक रीति से बहुत नम्रता दिखलाता। जिसका ही फल था कि इतने थोड़े समय में प्रभाव के बढ़ जाने पर भी मुझसे कोई ईर्ष्या नहीं करता था। विहार का छोटे से छोटा काम करने में मुझे न कभी आलस होता न संकोच। वर्चस्कुटी (पाखाना) को स्वच्छ रखना मैंने अपने जिम्मे लिया था और प्रतिदिन एक बार मैं चक्कर लगा आता था। हमारे ठंडे देश में शौच में पानी के इस्तेमाल करने की प्रथा नहीं है, लेकिन विनय-सूत्रों में इसका विधान है, इसलिये हमारे विहारों में भिक्षु उसका पालन करते हैं। मैंने अब तक जितने देशों की यात्रा की, वहाँ सभी जगह विहारों में वर्चस्कुटी बड़ी शुद्ध देखी थी। मैंने सिंहल द्वीप के महाविहार में जब एक सबसे बड़े भिक्षु को वर्चस्कुटी-शोधन को व्रत के तौर पर पालन करते देखा, उस समय से मेरा ध्यान इस ओर गया। कहीं पर भी कोई कूड़ा-कर्कट या गन्दगी मुझे पसन्द नहीं थी, जवानी और शारीरिक सबलता के कारण मुझे न थकावट का डर था, न आलस्य था। ऐसे आदमी के साथ विहारवासियों और दूसरों का कैसा सम्बन्ध होगा, यह आसानी से समझा जा सकता है।

बीच-बीच में देशाटन और चारिका के विचार मेरे हृदय में पैदा न होते हों, यह बात नहीं थी। लेकिन धीरे-धीरे मकड़ी के जाले की तरह मेरे चारों ओर स्नेह का जाल बिछता जा रहा था। ये था कुमारी को मुझे अपने निश्चय सुनाने की आवश्यकता नहीं पड़ी, जब कि अपने घर वालों से मेरी अद्भुतचर्या की बात उसने सुनी। विहार और उससे सम्बन्ध रखने वाले भिक्षुओं और उपासकों का जिस तरह का सम्बन्ध स्थापित होता जा रहा था, उससे मुझे तो यही मालूम हो रहा था कि मेरे पैरों में अब सोने की बेड़ियाँ पड़ चुकी हैं, वह दिन पर दिन और मजबूत होती जा रही हैं। मेरे पंख कटते जा रहे हैं। शायद अब मैं फिर कभी स्वच्छन्द विहार नहीं कर सकूँगा। कभी-कभी चारिका करने पर भी वह उद्यान और कश्मीर-गन्धार तक ही सीमित रहेगी। लेकिन घटनायें सदा ही क्रमबद्ध नहीं हुआ करतीं। कार्यकारण का नियम वैसा नहीं है, जैसा कि नैयायिक तथा दूसरे स्थिरतावादी कहते हैं। वह सर्पगति से नहीं, बल्कि मंडुकप्लुति (मेंढक-कुदान) से होता है, प्रतीत्यसमुत्पाद—इसके बाद यह होता—का नियम सर्वत्र व्यापक है। किसको मालूम था कि एक दिन वह मजबूत होती सोने की बेड़ियाँ, यह स्नेह जाल अपने आप छिन्न-भिन्न हो जायेंगे, मेरे पंख फिर जम जायेंगे।

एक दिन विद्यार्थियों को पढ़ाने के बाद संध्या के समय में मूल विहार से दक्षिण की ओर द्राक्षा-उद्यान की ओर घूम रहा था। मेरे साथ तीन-चार तरुण भिक्षु कुछ शास्त्र-चर्चा कर रहे थे। इसी समय हमारी दृष्टि अपने से दक्षिण की ओर के घने जंगलों में से उठते धुयें पर पड़ी। धुआँ बहुत अधिक नहीं था, लेकिन यह तो मालूम हो गया कि जंगल में आग लगी है। उस समय हमें किसी भय की आशंका नहीं हुई। हम विहार में लौटकर धुयें की बात भूल अपनी कोठरियों में सो गये। रात को अचेत सोते समय दक्षिण से बहुत तीव्र हवा चलने लगी, लेकिन हमको क्या पता था कि वह आग को बड़ी तेजी के साथ हमारे विहार की ओर ला रही है। अभी दो-तीन घड़ी रात बाकी थी, जब कि कोलाहल सुनकर मेरी आँख खुली। दरवाजा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खोलकर बाहर निकला, देखा चारों ओर दिन की तरह रोशनी है। वसन्त बीत चुका गर्मियों का पहला महीना था, तो भी अभी हमारे यहाँ उतनी गर्मी नहीं होती। बड़ी तेज मालूम हो रही थी। जल्दी-जल्दी नीचे उतर कर देखा आग विहार के पश्चिम वाले जंगल धाँय-धाँय करके जल रही है। हवाका वेग रुकना नहीं चाहता था। गीले दरख्त इतने सकते हैं, इसका मुझे कभी ख्याल भी नहीं था। उनकी तड़तड़ाती शाखायें अग्निवाण की दूर-दूर तक गिर रही थीं जिनके कारण आग और भी तेजी से बढ़ रही थी। हमारे उद्यान में लताओं को चढ़ाने के लिये लकड़ियों की थूनी और छप्पर सा बनाया गया था, उसने ईंधन का काम देना शुरू किया था। इस दृश्य को खड़े होकर देखने और उस पर करने का अवसर नहीं था। आग इतनी नजदीक आ गई थी कि किसी भी समय विहार अपने क्रोड़ में कर सकती थी। बिना एक क्षण की देर किये जितनी भी सामग्री बचाई जा उसे हमें बचाना था। रक्षा का स्थान नदी के परले पार वाला गाँव था। पहली टोली के जब चारपाई पर बहुत सी पुस्तकें तथा दूसरा सामान लाद कर हम दो भिक्षु गाँव में तो गाँव के सभी स्वस्थ स्त्री-पुरुष विहार की चीजों को हटाने के लिये दौड़पड़े। अब एक ओर आग और हवा थे और दूसरी तरफ विहार और गाँव के सारे लोग। विहार की नहीं हो सकती थी, यह सबको मालूम हो गया। एक प्राचीन स्तूप को छोड़कर बाकी इमारतें तो अधिकतर काष्ट की बनी थीं, और सो भी शताब्दियों के सूखे। उस अग्नि प्रकाश में हमने विहार की चीजें ढो-ढो कर परले पार पहुँचाना शुरू किया। काम की सभी चीजें हम ढो चुके थे और एक अष्टधातु की विशाल प्रतिमा के हटाने का प्रबन्ध कर थे, इसी समय उसी प्रतिमा-गृह पर एक जलती हुई शाखा छूटकर आ पड़ी। इसमें सन्देह कि हजारों मन भारी उस प्रतिमा को उठाकर हम परले पार पहुँचाने में सफल होते। हमें उस चिन्ता से भी मुक्ति मिल गई। विहार एक के बाद एक जलने लगे। हम परले जाकर केवल निराशा के साथ आँखें फाड़ फाड़कर उन्हें देख सकते थे। सूर्योदय होते-होते विहारों से बड़ी-बड़ी ज्वाला-की लपटें निकलने लगी। हवा अब बन्द हो गई, इसलिये सीधे ऊपर को उठ रही थीं। हवा की सहायता न होने पर भी आग इतनी प्रचण्ड थीकि सामने हमारा कोई बस न चल सकता था।

जो हो चुका, उसके लिए चिन्ता करना, छाती पीटना मेरे स्वभाव में नहीं है। भी मुझे अफसोस था कि अत्यन्त प्राचीनकाल से चला आता हमारा विहार और सुरक्षित कितनी ही प्राचीन वस्तुयें सदा के लिए जलकर राख हो गईं। मैं यह भी सोचता कि क्या वन की आग की रोकथाम नहीं की जा सकती थी। आखिर नदी ने बीच में गाँव की रक्षा कर ही ली, क्या इसी तरह विहार के पास वाले उत्तर और दक्षिण के को यदि बीच के वृक्षों को काटकर अलग कर दिया गया होता, पास वाले जंगल और कारण विहार की रक्षा नहीं कर सकते थे ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हिमालय पार

(550 ई०)

बात की बात में प्राचीन सुभूमि विहार बिल्कुल नष्ट हो गया। उसके साथ बहुत-सी चीजें बर्बाद हो गयीं, किन्तु जहाँ तक भिक्षुओं की जीवन-यात्रा का सम्बन्ध था, उसके लिए कोई कष्ट नहीं था। खाने-पीने की कुछ चीजें अपने भण्डार से बचा पाये थे, गाँव में भी वह सुलभ थीं और जब दूर-दूर के लोगों ने अपने पवित्र विहार के जलने की खबर सुनी, तो वह सब तरह से सहायता करने लगे। यदि हम पुराने विहार की जगह लकड़ी और पत्थर के साधारण ढाँचों से संतुष्ट रहना चाहते, तो उसका बनाना कोई मुश्किल नहीं था। प्राचीन प्राषाण-चैत्य को बहुत कम क्षति हुई थी। उसके शिखर पर कुछ काष्ट का उपयोग किया गया था, जो जल गया था और कहीं-कहीं कुछ पत्थर चटक गये थे जिनकी मरम्मत करने में देर नहीं लगी। लेकिन, हम सुभूमि विहार को फिर पहले जैसा देखना चाहते थे। हमारे विहार के महास्थविर ही नहीं, बल्कि देश के उपासक-उपासिका भी अपने विहार को और भी अधिक भव्य रूप में देखना चाहते थे। उद्यान अब कपिशा, गन्धार, कश्मीर तथा दूसरे देशों की तरह एक बड़े महाराजा के अधीन नहीं था। मिहिरकुल पहले ही अपने राज्य के बहुत से पूर्वी भाग को खो चुका था। कम्बोज तथा वक्षु पार का भाग तो उसके बाप के मरने के समय ही दूसरे येथासामन्त के हाथ में चला गया था। सभी जगह येथा-सरदारों ने अपने अलग-अलग छोटे-छोटे राज्य कायम कर लिए थे और कहीं-कहीं हमारे उद्यान की तरह पुराने राजवंशों ने अपनी प्रभुता फिर से स्थापित की थी। यदि तोरमाण के समय यह घटना हुई होती, तो उसके हुकुम की देर थी और सुभूमि विहार पहले से भी सुन्दर रूप में खड़ा हो सकता था। इस तरह की कोई सहायता की सम्भावना न रहने के कारण यदि हम अपने सपने को सत्य करना चाहते थे, तो हममें से हरेक को उसके लिए प्रयत्न करना था। सुभूमि विहार में कम्बोज, तुषार, सोग्द, कांस्य और कूचा देश के भी कुछ भिक्षु रहते थे। चारिका-प्रेमी होने से मैं उनसे वहाँ के बारे में कितनी ही बातें पूछता रहता था। मुझे मालूम था, कि उन देशों में सोने और रतन की भारी-भारी खानें हैं। मेरे मन में आया, क्यों न वहाँ चलकर द्रव्य-संचय किया जाय। मेरे विचार विहार के उच्च अधिकारियों को भी पसन्द आये और एक दिन चार और भिक्षुओं को साथ लिए मैं सुभूमि से चल पड़ा।

पृथ्वी अनन्त है या कि हमारे आजकल के आर्यभट्ट जैसे कितने ही ज्योतिषियों के विचारों के अनुसार वह शान्त है, इसक बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता। तो अपने तजुर्बे से इतना मैं जानता हूँ कि अपने देश से दस-बीस दिन के रास्ते पर अवस्थित भूभाग का भी हमें कितना धुंधला और अद्भुत-सा ज्ञान होता है। हम समझते हैं कि वहाँ हमारी तरह के मनुष्य नहीं रहते, बल्कि देवताओं और असुरों जैसे दूसरी तरह के कुछ प्राणी बसते हैं। वहाँ के वृक्ष-वनस्पति और दूसरी चीजें भी हमारे यहाँ के चीजो से बिल्कुल विलक्षण होती हैं। कानों और आँखों के बीच चार ही अंगुल का अन्तर है, लेकिन हरेक चीज आँखों द्वारा देखे जाने पर ही पूरे प्रकाश में आती हैं, कान से सुनी सुनाई बात वास्तविकता पर बहुत धुंधला प्रकाश डालती है। यही कारण है, जो हमारे प्रमाणशास्त्री कान से सुनी बातों (शब्द) को प्रमाण नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मानते। दिग्नाग और वसुबन्धु तो प्रत्यक्ष को ही एकमात्र स्वतः प्रमाण मानते हैं, अनुमान को भी वह उतनी ही हद तक मानने के लिए तैयार हैं जितना कि उसे प्रत्यक्ष का समर्थन प्राप्त है। हिमालय पार उत्तर के देश किस तरह के हैं, इसका पता लोगों से सुन-सुनाकर कुछ लगा। हमें कम्बोज का ही एक भिक्षु साथी मिल सका, दूसरे देशों के भी अगर मिल सके होते तो उनसे हमें बड़ी सहायता प्राप्त होती। हम पाँचों में एक को छोड़कर बाकी सभी उद्यान-वासी थे ! सभी की मेरे प्रति पूर्ण आस्था थी और हममें से कोई भी 40 साल से ज्यादा का नहीं था। कम्बोज भिक्षु तो 22-23 वर्ष का तरुण था जिसने हमारे ही विहार में उपसम्पदा ग्रहण की थी।

प्रस्थान का दिन आ गया। सुभूमि विहार से हम कुछ दूर नीचे की ओर उतरे फिर हमारा रास्ता ऊपर की ओर चला। उद्यान की एक नगरी (चित्रालय चितराल) में पहुँचने से पहले हमें कुनर नदी पार करना पड़ा। यह नगरी करीब-करीब उतने ही शीत स्थान में है जितनी हमारी सुभूमि, हाँ, यहाँ उपत्यका और अधिक चौड़ी है। आगे हमारा रास्ता पश्चिमोत्तर दिशा की ओर था। दो दिन तक हम एक छोटी सी नदी के सहारे ऊपर की ओर बढ़ते गये। मुझे मालूम हो रहा था कि जैसे हम किसी पयार (बुकयाल) की ओर जा रहे हैं, उसी तरह ऊँचाई के बढ़ने के साथ-साथ हमारे पैरों को चलने में थकावट हो रही थी, और अधिक साँस लेने में कठिनाई मालूम होती थी। उसी तरह साधारण वृक्षों के स्थान में केवल देवदारु-जातीय वृक्षों की प्रधानता होती जा रही थी। दृश्य वैसे ही रमणीय और हरियाली वैसी ही मोहक थी, जैसे कि उद्यान में बहुत जगहों पर देखी जाती है। अग्राम (नुकमान) डाँडे के काफी पहले ही वृक्ष खतम हो गये, लेकिन चढ़ाई अभी खतम नहीं हुई। कम्बोज भिक्षु सुमन ने बतलाया कि अब वृक्षों के जंगल को देखने का फिर कभी मौका नहीं मिलेगा, और साथ ही यह भी कि डाँडे पर डाकुओं का बराबर डर रहता है। हम भिक्षुओं को डाकुओं से बहुत डर नहीं था, क्योंकि हमारे पास कोई धन नहीं था। लेकिन इन दुर्गम पथों की यात्रा लोग सार्थ (कारवाँ) बनाकर ही करते हैं। हमारे सार्थ में पचास से अधिक आदमी और माल लादे बहुत से घोड़े-गदहे थे। उद्यान ही नहीं, गन्धार और कश्मीर के भी कितने ही व्यापारी एक उद्यान-निवासी सार्थवाह के नेतृत्व में चल रहे थे। अभी शाम नहीं हुई थी जबकि हम जंगल के छोर पर पहुँचे थे। यहाँ उद्यानियों के कुछ अस्थायी झोपड़े थे जो पशुओं और मनुष्यों के ईंधनचारे को बेंचने के लिए वहाँ रहते थे। रात के लिए हम वहीं ठहर गये। सबेरे सूर्योदय से बहुत पहले ही यात्रा करना इन डाँडों में आवश्यक समझा जाता है। पहले ही से मालूम था कि डाँडे के ऊपर की बर्फ कभी नहीं पिघलती और वह उद्याकन की ओर जितनी है, उससे कहीं अधिक परले पार होती है। यह भी मालूम था कि हमें सार्थ के आगे नहीं जाना चाहिए।

रात के वक्त कुछ बर्फ भी पड़ गई, लेकिन तीसरे पहर जब हम चलने लगे, तो आसमान निरभ्र था और चन्द्रमा की किरणें दूध की तरह चारों तरफ फैल रही थीं। विश्राम लेने के बाद चढ़ाई में हमारा उत्साह कुछ बढ़ गया। जवानी का खून भी हमारी नसों में जोर मार रहा था। हम यह इच्छा जरूर रखते थे कि सार्थ से अलग होकर आगे नहीं बढ़ेंगे।

हमारे डेरे के स्थान पर बर्फ नाममात्र की ही पड़ी थी, लेकिन आगे वह और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होती गई थी। सर्दी उतनी ही थी, जितनी सुभूमि विहार में जाड़ों में पड़ती। सर्दी के लिए हम पूरी तौर से तैयार थे। मोटे ऊनी कंटोप से घुटे हुये सिर और कान ढँके थे, ऊनी संघाटी और चीवर से हमने सारे सरीर को ढाँक लिया था और विशेष सावधानी के लिए तूलाजिन का अंसकूट (जाकट) पहन रक्खा था। पैरों में ऊपर रोम वाले और नीचे साधारण चमड़े का दोहरा जूता था। इस पोशाक में हम भीषण सर्दी को सह सकते थे। यद्यपि हम अपने पैर तेजी से नहीं बढ़ा रहे थे और आशा रखते थे कि सार्थ के लोग भी तुरन्त ही पहुँचने वाले हैं; लेकिन ध्यान से सुनने पर भी हमें पशुओं की घंटियों की आवाज नहीं सुनाई देती थी। शायद हम डेरे से बहुत पहले चल पड़े थे। अब बर्फ भी बहुत मोटी हो गई थी, चढ़ाई बहुत प्रखर नहीं थी, लेकिन हरेक पग उठाने में कलेजा मुँह को आता था। यदि ताजी बर्फ न पड़ी होती, तो शायद हमें रास्ते का पता लगता। कम्बोज भिक्षु तीन ही साल पहले इस रास्ते से गुजरा था। उसका अपनी स्मृति-पर पूरा विश्वास था। हम पाँचों साथ-साथ चलने की कोशिश कर रहे थे। थोड़ी ही देर में मैंने देखा कि हम चार ही रह गये हैं। पाँचवाँ भिक्षु कहाँ गया? सुमन ने बतलाया, इस डाँडे पर दैत्यों का बहुत जोर है, वह एक्के-दुक्के यात्रियों को भुलवाकर पथभ्रष्ट कर देते हैं और फिर उन्हें खा जाते हैं। हम नीचे की तरफ लौटे। कुछ ही कदम चलने पर दाहिनी ओर हमें अपने साथी के चिल्लाने की आवाज सुनाई दी। यदि कुछ हो क्षण और देर हुई होती, तो हम पाँच की जगह चार ही रह जाते। दानव ने हमारे साथी को पकड़ रक्खा था। मैंने पहुँच कर एक मन्त्र का जाप किया, शायद मन्त्र के जाप के या हम लोगों को पास देखकर वह होश में आया। उसे लेकर अब हम फिर ऊपर की ओर बढ़े। भिक्षु ने एक चट्टान के पास पहुँचने के बाद बतलाया कि यहीं चार आदमी हमें दूसरी ओर जाते दिखाई पड़े और मैं उनके पीछे-पीछे चल पड़ा। कुछ ही दूर के बाद वह अन्तर्धान हो गये। फिर मुझे सुमन की बात याद आई और मैं डर के मारे चिल्ला उठा। पाँचवें साथी को जीवित पाकर हम सबको बड़ी प्रसन्नता हुई, लेकिन खतरा तो अब भी सामने था। हमें मालूम था कि इस डाँड़े पर दैत्यों और डाकुओं का बराबर भय बना रहता है। सुमन यह भी नहीं बतला सकते थे कि हम ठीक रास्ते पर हैं या नहीं। थोड़ी देर तक बैठकर बाट जोहते रहे, लेकिन न सार्थ के जानवरों की घंटियों की आवाज सुनाई दी, न आदमियों की बोलचाल। हम पछता रहे थे अपने उतावलेपन पर। लेकिन, यहाँ बैठे रहने से तो कोई फायदा नहीं था। यदि सार्थ आगे चला गया, तो वह डाड़े के ऊपर पहुँचकर न हमारे लिये रुका रहेगा, न हमारी खोज-खबर लेने के लिए आदमी भेजेगा। ऐसे अवसर पर यह प्रथा मुझे पसन्द है कि चार के लिए चालीस के प्राणों की बलि न दी जाय। अन्त में हम लोग फिर उठकर ऊपर की ओर बढ़ने लगे। सुमन ने अन्दाज से हमारा पथ-प्रदर्शन किया। पर्वत का आरोहावरोह खड़ा नहीं था, इसलिये आगे बढ़ने में हमें बहुत बड़े संकट का सामना नहीं करना पड़ा।

हम रास्ते से काफी दूर हट गये थे। पहाड़ की रीढ़ पर पहुँचने के समय अब भी पह नहीं फटी थी। उतराई जहाँ कहीं से एकाएक करने के लिए हम तैयार नहीं थे। कहीं हम और किसी आफत में न पड़ जायें। अब पूर्व दिशा में सूर्य की लाली दिखलाई पड़ने लगी। सुमेरु से हमने चारों ओर नजर दौड़ाई। जिस स्थान को हम इतना ऊँचा समझते थे, वह उतना ऊँचा नहीं था। उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिम चारों दिशाओं में बर्फ से ढँकी स्तूपाकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चोटियाँ दिखाई पड़ रही थीं जिन पर सूर्य की प्रभातकालीन किरणें पड़कर उन्हें सोने का दे रही थीं। मैंने पढ़ा और सुना था कि उत्तर दिशा में सुमेरु पर्वत सारा सोने का है। लेकि सुमेरु तो एक सोने का शिखर है और यहाँ इस समय सैकड़ों सोने के शिखर दिखलाई रहे थे। उद्यानवासी होने के कारण मैं समझता था कि सूर्य की किरणों के पड़ने हिमशिखर सोने-चाँदी के बनते रहते हैं। यदि कहीं ये वस्तुतः सोने के होते और हम कि तरह वहाँ पुराने अर्हतों की तरह आकाश मार्ग से पहुँच जाते, तो विहार बनवाने के लि सोना ढूँढ़ते मारे-मारे फिरने की जरूरत नहीं थी।

हम सुमन को अपना मार्ग-दर्शक बनाये थे और वह निश्चय नहीं कर पा रहा था कहाँ से नीचे की ओर उतरा जाय। तो भी हम देर तक असमंजस में अपने को रख नहीं स थे। धूप हो जाने पर बर्फ के नरम हो जाने से उसके गिरने का डर रहता है। हमने अ भाग्य पर छोड़कर बुद्धि नहीं आँखों और पैरों के सहारे आगे बढ़ना शुरू किया। शायद घड़ी गये होंगे, इसी समय कुछ आदमियों की आवाज सुनाई दीं। बहुत प्रसन्न होकर सार्थ के मिलने की आशा से हम उधर लपके। इसी समय लम्बी-लम्बी तलवारों और वाण से सज्जित दस-बारह आदमियों ने हमें घेर लिया। सुमन उनकी भाषा समझता उसने कुछ इशारे और कुछ शब्दों में बतलाया कि यह कम्बौज के डाकू हैं। डाकुओं को जानकर बड़ी निराशा हुई कि हम पाँचों रास्ता भूले भिक्षु हैं। सुमन ने बतला दिया कि पास मामूली कपड़ों और भिक्षापात्र के अतिरिक्त कोई धन नहीं है। डाकू भिक्षुओं की शक्ति और मन्त्रबल पर विश्वास रखते थे, इसलिये उन्होंने हमारे साथ कोई कठोर बर्ताव नहीं किया। उनके सरदार ने बल्कि अपनी बीमार पत्नी के लिए मन्त्र पढ़ दें प्रार्थना करते हुए कोई यन्त्र माँगा। भूर्जपत्र और कलम-दावात हमारे पास थी, यन्त्र लिखकर दे दिया। डाकुओं ने बतलाया कि हम रास्ते से बहुत दूर पश्चिम की हट आये हैं। यहाँ से उस डाँड़े वाला रास्ता भी बहुत दूर नहीं है जिसके पास उद्यान सीमा में तप्तकुण्ड पड़ता है। पर हमें तो अपने सार्थ वालों का साथ पकड़ना था। वही भोजनादि का प्रबन्ध करके अपने साथ ले जा रहे थे। सरदार ने दो आदमियों को हमारे साथ कर दिया और दो घड़ी के बाद हम अपने रास्ते पर पहुँच गये। वहाँ आदमि जानवरों के ताजा पड़े पैरों के निशान बर्फ पर अच्छी तरह दिखाई पड़ते थे। दोनों को हमने आशीर्वाद दिया और वह हमें छोड़कर चले गये। दो-दो संकट से हम बचे थे, प्रसन्नता होनी ही चाहिये। अब सूर्य के प्रकाश में बर्फ ढँकी भूमि को पार कर लेने हमारा आत्मविश्वास और अधिक बढ़ गया। सुमन ने भी फुर्ती दिखलाई और पहर चढ़ते-चढ़ते हम नदी के किनारे एक खुली सी जगह में जाकर बैठे। सुमन के बतलाने यह मालूम ही था कि अब जंगलों और उनके वृक्षों के देखने की आशा नहीं रखनी चाहि

शरद् का अन्त हो रहा था, इसलिये सारी पर्वतस्थली हरियाली से बिल्कुल थी। वर्षा में इन पहाड़ों पर हरे रोयें की तरह दूर-दूर पर हाथ-डेढ़ हाथ ऊँची घा आती हैं जो अब बिल्कुल सूख गई थीं। आगे हमारे साथी मिले। सार्थ ने अपना डे दिया था। किसी ने तम्बू गाड़ लिये थे और कोई ऐसे ही आसमान के नीचे अपने लगाकर बैठे थे। हिमालय के इस पार लकड़ी का ईंधन अब सपने की बात थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मेंगनी ही यहाँ मिल सकते थे। सार्थों के पड़ाव जहाँ पड़ा करते हैं, वहाँ यह बहुतायत से मिलते हैं, किन्तु सार्थों के पशुओं के कारण आसपास की घास खतम हो गई रहती हैं और पशुओं को चरने के लिए दूर भेजना पड़ता है। सार्थ वाले हमारे पहुँचने पर बड़े प्रसन्न हुये। सभी व्यापारी भिक्षुओं के प्रति आस्था रखने वाले थे और उद्यानी तो हमारे सगे-सम्बन्धी थे, इसीलिये वह बड़े चिन्तित थे। उनको विश्वास हो गया था कि दैत्यों ने पाँचों भिक्षुओं को मारकर खा डाला होगा। लेकिन, उनका क्या कसूर था? उन्होंने तो बार-बार हमें साथ चलने के लिए कहा था। जब एक भिक्षु को दैत्य-मुँह से निकालने की बात सुनी, तो उन्हें जहाँ अपनी बात पर विश्वास हुआ, वहाँ साथ ही यह जानकर बहुत संतोष हुआ कि मैं दैत्य का मुँह चीर-कर प्राण बचाने की दिव्य शक्ति रखता हूँ। अब मेरे प्रति उनका भाव और भी अधिक बढ़ गया और डाकुओं को किस तरह हमने अपने वश में कर लिया, इसे सुनकर तो हम अब उनके लिए पूरे देवता बन गये। डाकुओं को यद्यपि सार्थ के संख्या-बल के कारण हिम्मत नहीं हुई थी, लेकिन लोग समझते थे कि यह भी हमारे ही साथ रहने का फल है जो कि धन और शरीर से अक्षत वह डाँडे को पार कर सके।

कश्मीर के गृहपतियों ने उस दिन गन्धशाली का बहुत स्वादिष्ट भात बनाया उद्यानियों ने बड़े प्रेम के साथ माँस पकाया। मध्याह्न के समय हम पाँच भिक्षुओं को बैठाकर जिस तरह भोजन कराया जा रहा था, उससे मालूम नहीं होता था कि हम किसी निर्जन बयाबान में बैठे हैं। आज की यात्रा बड़ी कठिन और पशुओं तथा मनुष्यों के लिए भारी मेहनत की थी, इसलिये सारे दिन और रात उसी जगह मुकाम करना पड़ा। अगले दिन फिर हम वहाँ से रवाना हुये। पहाड़ तो सब एक ही तरह के थे—जंगल और वृक्षों से शून्य तथा कहीं-कहीं पीली पड़ गई छोटी-छोटी घाँसें। उनमें पत्थर कम और मिट्टी अधिक दिखाई पड़ती थी। हमें बराबर नदी की धार के साथ नीचे उतरना पड़ रहा था। सारा दृश्य इतना समान था कि पहचान करना हमारे लिये मुश्किल था। हम जाड़ों में भी देवदार की हरी पत्तियों के देखने के आदी थे, इसीलिये कुछ दिनों तक तो हमें कुछ सूना-सूना सा दिखाई पड़ता रहा। इसी बीच हम ऐसी जगह पहुँचे, जहाँ से दो रास्ते फूट रहे थे, दाहिनी ओर काँस्य देश को जाने वाला रास्ता था और बाईं ओर कम्बोज नगर (बदख़शाँ) का। हमें दोनों जगहों में जाना था और यदि कुछ लोग काँस्य देश की ओर जाने वाले होते, तो निश्चय करने में कठिनाई होती। अब तो सभी को कम्बोज नगरी की ओर जाना था, उसी ओर कि नदी की धार हमें ले जा रही थी। शायद नीला रंग होने के कारण ही इस नदी का नाम नीलाप (कोकूचा) पड़ा था। नदी के आरपार हमें आगे दूर-दूर पर कहीं-कहीं गाँव भी मिल रहे थे, लेकिन मैंने इतने दरिद्र ग्राम कभी नहीं देखे थे। कपिशा में भी हरियाली कम है, लेकिन वहाँ के मकान सिर्फ मिट्टी और अनगढ़ पत्थरों के ढेर नहीं होते। बाजवक्त तो पास के पहाड़ और इन घरों में भेद करना मुश्किल हो जाता। कम्बोज लोग हमारे उद्यानियों से भी अधिक गोरे वर्ण के थे। गरीबी के कारण किसी-किसी के शरीर में खून और माँस कम भले ही दिखाई पड़ता हो, लेकिन वैसे वह बल और रूप में कम नहीं थे। उनके घोड़े तो सचमुच ही यथानाम तथागुण थे। अपने सुपुष्ट और ऊँचे कद, सुन्दर रूप के कारण यहाँ के घोड़े सभी जगह प्रसिद्ध हैं। ऐसी दरिद्र पहाड़ी भूमि में कैसे इतने सुन्दर घोड़े पैदा होते हैं? इन घोड़ों के रेवड़ों को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देखकर मुझे चकित होते देख सुमन ने बतलाया : ये घोड़े विश्व विजेता यवनराज अलिकसुन्दर के अपने घोड़े की औलाद हैं। उद्यानी व्यापारियों ने बतलाया : ये श्यामकर्ण घोड़े हैं जिनकी चीन और पारसीक तक बड़ी माँग है। कम्बोजों के गाँवों के अतिरिक्त हमें रास्ते में येथों के डेरे भी मिले। येथा हमारे उद्यान में भी हैं और अभी भी वह गाँव बसाकर बहुत कम रहते हैं, लेकिन यहाँ के येथा तो बिल्कुल बर्बर थे, उनमें दया और नम्रता का पता नहीं था। कम्बोज लोग भीरु नहीं होते, लेकिन इन येथों ने उनकी हिम्मत को कुचल दिया है। ये लोग घोडी के बाल के बने हुये अपने तम्बुओं में रहते हैं। इनका डेरा एक बाकायदा बसा हुआ गाँव सा मालूम होता था। हम जितने ही कम्बोजपुरी के नजदीक जा रहे थे, उतने ही गाँव भी नजदीक आते जा रहे थे, नदी का पानी और धार भी बढ़ती जा रही थी और खेती भी अधिक दीख पड़ती थी। कम्बोजपुरी में पहुँचने तक हमने अनेक येथों (हेफ्तालों) के अनेक डेरे देख लिये थे और उनके जीवन और स्वभाव से परिचित हो गये थे। उनकी तुलना हमारे उद्यान के येथों से नहीं की जा सकती थी। इनके ऊपर नागरिक और ग्रामीण जीवन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। सरदारों के डेरों में चीनी रेशम, भारतीय बारीक वस्त्र तथा एक से एक विलास की सामग्री देखने में आती थी। पोशाक बहुत कुछ अपनी रखते हुए भी वह बहुमूल्य थी, लेकिन वह अपने बयाबान के पशुपालन-जीवन को गर्व की बात समझते थे। उनको न विद्या से कोई मतलब था; न दर्शन तथा उच्च विचारों से।

कम्बोजपुरी में हम इसी ख्याल से आये थे कि वहाँ से हमारे विहार के लिए पद्मराग (लाल) और दूसरे रत्न प्राप्त होंगे। कम्बोज का पुराना राजा अब भी मौजूद था और तथागत के शासन में उसकी बड़ी श्रद्धा थी, किन्तु राजशक्ति अब येथों के हाथ में थी जिनका एक सेनापति पुरी और देश का सर्वेसर्वा था। कम्बोजराज उसके हाथ का खिलौना ही नहीं था बल्कि सम्पत्ति भी उसके हाथ से जाती रही थी। हेफ्तालों ने पुरी पर पहिले पहिल अधिकार करते समय बड़ी लूट-पाट मचाई थी और विहारों को उन्होंने अकिंचन बना दिया था। राजविहार की दीवारें और छतें अब भी खड़ी थीं, उसमें तीस-एक के करीब भिक्षु रहते थे लेकिन हेफ्तालों ने धन नाम की कोई चीज विहार में रहने नहीं दी थी। काँसे-पीतल की मूर्तियों तक को गलाकर उन्होंने बेंच दिया था, सोने के ताल पत्र पर लिखी पुस्तकों और सुन्दर चित्रों और फूल-पत्तों से अलंकृत सुनहली पट्टियों को इन वर्बरों ने ठोस सोना समझकर जला दिया। कितने ही समय तक देवालयों और विहारों में उनके सैनिक डेरा डाले पड़े रहे। कम्बोज के धार्मिकों ने बहुत से घोड़े और दूसरी चीजें प्रदान करके उन्हें उनसे खाली करवाया। तोरमाण के शासन में अवश्य अवस्था में सुधार हुआ, वह नागरिक जीवन के महत्त्व को समझता था। उसके मरने के बाद ही हिमालय के इस तरफ का राज्य मिहिरकुल के प्रतिद्वन्द्वी दूसरे हेफ्ताल राजा के हाथ में चला गया। आज तक कम्बोज की कालरात्रि उसी तरह चली जा रही है। यहाँ के सभी श्रेणी के लोग हेफ्तालों के लिए घोड़े की दूब जैसे भी नहीं हैं। उनमें इतना भी धैर्य और दूरदर्शिता नहीं है कि लोगों को कुछ संतोष के साथ रक्खें जिसमें वह अधिक धन-धान्य उत्पन्न कर सकें। कम्बोज किसी समय ऊँची जाति के अपने घोड़ों के लिए ही नहीं, बल्कि रत्न की खानों के लिए भी प्रसिद्ध था। यहाँ का पद्मराग (लाल) सारी दुनिया में मशहूर था। लोहे, सीसे, ताँबे, फिटकिरी, गन्धक, इगुर आदि की यहाँ बहुत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तें थीं, लेकिन जब शासन के नाम पर केवल लूट-खसूट चलती हो और लोगों के पल्ले कुछ पड़ता हो, तो कौन मेहनत करके धन पैदा करने की कोशिश करेगा ?

राज्यविहार के भिक्षुओं ने हमारा बड़ा स्वागत किया। भारतीय पंडित भिक्षु समझ-र वह मुझे सिर-आँखों पर बैठाने के लिए तैयार थे। उन्होंने देश की दुर्दशा, विशेषकर हारों और भिक्षुओं की दयनीय स्थिति की गाथा सुनाई। यदि कभी कोई बड़ा दान मिलता था, तो भी वह अपने विहार को सजाने और सँवारने की कोशिश नहीं करते थे, क्योंकि का मतलब था येथों को फिर लूट के लिए बुलाना। भारतीय भिक्षु और उनके बड़े गुरु के ने की बात सुनकर येथा सामन्त ने हमें एक दिन बुलाया। मैं अब तक जिन-जिन देशों में ा था, वहाँ सामन्त और राजा चाहे बुद्धभक्त हों, या तीर्थिकों के अनुयायी, भिक्षुओं को देखकर सन से उठकर अभिनन्दन और अभिवादन करते सम्मान प्रदर्शित करते थे, किन्तु इस येथा-दार को कोई पर्वाह नहीं थी। वह वैसे ही बैठा रहा और उसके अनुचर ने हमें वहाँ नीचे एक आसन पर बैठ जाने के लिए कहा। हम इसके लिये पहले ही से तैयार थे। विहार के भिक्षु मन्त्र-विद्या के लिए कुछ ख्याति रखते थे। उन्होंने मेरी भी महिमा गाई थी और न ने दैत्य के मुख से एक भिक्षु के बचाने की बात कहकर उनको ऐसा करने के लिए प्रेरणा ी थी। बीमार और दुखी कहाँ नहीं होते। विपत् और संपत् के झोंके बड़े-बड़े स्थानों पर बारी-बारी से पहुँचते रहते हैं। हेफ्ताल-सामन्त को अपने राजा के दरबार में कुछ नीचा ना पड़ा था। यद्यपि उसके अपने सैनिकों का वह निरंकुश राजा था, कहिये लुटेरों का दार था। फिर जब तक लूट की छूट रहे, तब तक अनुयायी हाथ से बाहर कैसे जा सकते लेकिन, पश्चिम का हेफ्ताल राजा दुर्बल होते हुये भी अभी काफी शक्ति रखता था, लिये इस हेफ्ताल सेनापति को रात को नींद नहीं आती थी। उसने अनिष्ट शान्ति के ए हमसे कहा और हमें भी मजबूर होकर कुछ पाठ-पूजा करनी पड़ी। हमारे आने के य की बात सुनकर उसने भी पद्मराग के कुछ कण के दिये, कम्बोज-राजा ने भी कुछ । हमने अपने उद्यान के सार्थवाह को यहाँ पाये इन रतन-खंडों को यह कहकर सौंप दिया वह उन्हें सुभूमि विहार में पहुँचा दें।

जल्दी ही हमारा मन वहाँ से ऊब गया। राजविहार के भिक्षु बहुत चाहते थे कि ों के लिए हम वहीं रह जायें। उन्होंने बतलाया: "जाड़ा सिर पर है, काँस्य देश के लिए वाला हर वक्त कोई सार्थ नहीं मिलता। अकेले दुकेले जाने का साहस करना मौत के में पड़ना है। आगे के लोग स्वयं जाड़ों में बड़े कष्ट में रहते हैं, उनके यहाँ आराम से का कोई प्रबन्ध नहीं हो सकेगा।" परन्तु, जब मन उचट गया, तो उसे फिर कैसे रोका कता है? खासकर यह मालूम करके हमने जल्दी ही प्रस्थान करने का निश्चय कर लिया ाड़ा ही नहीं, वसन्त तक पाँच-छः महीने हमें कोई सार्थ नहीं मिलेगा।

बालोर—अब हमें पामीर की ओर बढ़ना था, जिसे लोग आधे आकाश में टँगा ते हैं। नीलाप (कोकचा) नदी वक्षु में गिरती थी। वक्षु, सिन्धु, सीता ये संसार की बड़ी नदियाँ हैं, जिनके भीतर जाने वाले पानी इस भूभाग को आपस में बाँटे हुये हैं। लय के जिस बड़े डाँड़े को पार कर हम कम्बोज में दाखिल हुये थे, उसके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Gurgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सिन्धु में जाता है। हमारे दरद और उद्यान वाले तो सभी नदियों को सिन्धु कहा क
महासिन्धु हम कई बार पार कर चुके थे। उसके परिवार की छोटी-बड़ी नदियों
बहुत दूर तक बिछा हुआ है। उसी तरह इधर की सभी नदियाँ वक्षु में जाकर मिल
कम्बोजपुरी से अब हमें वक्षु की बड़ी धारा की ओर जाना था। अगर नीचे की ओर
तो बहुत सुभीते होते, गाँव अधिक मिलते, चढ़ाई की जगह उतराई अधिक पड़ती,
वक्षु के उद्गम की ओर बढ़ना था। अग्राम डाँडे के पार करने के बाद वक्षु तट और
देश को जाने वाले मार्ग को हम छोड़ आये थे। हमें उस रास्ते को फिर नापने की
नहीं थी। रास्ते में छोटे-मोटे डाँडे भी मिले जो कि वक्षु की शाखा-नदियों के सीमा
अवस्थित थे। सिन्धु और वक्षु की तरह सीता भी एक महानदी है जो कांस्यदेश
(कूचा) द्वीप में बहती है। हमें वक्षु के क्षेत्र से सीता के क्षेत्र में पहुँचना था। इन दो
नदियों के सीमान्त पर बहुत विस्तृत और ऊँचा मैदान है जिसे पामीर कहते हैं।
श्रेणी को चीन के लोग पलाँडु गिरि (चुंग-लिंग) कहते हैं जो हमारे हिमालय की तरह
दूर तक चला गया है। हिमालय पार करने में भी हमें कम कठिनाई नहीं पड़ी थी
पामीर (पलाँडुगिरि) को पार करने में जिन कठिनाइयों की बात हमने सुनी और
हमें स्वयं अनुभव हुआ, वह वर्णनातीत है। प्राकृतिक दृश्य उसी तरह का वृक्ष-वन
और दरिद्र।

हमें वक्षु तट पर अवस्थित वक्षुग्राम (किला-पंज) तक जाने के लिए वहीं
मिल गये; इसलिये जहाँ तक रास्ते का सम्बन्ध था, उसे भूलने का डर नहीं था।
में उतना आराम तो नहीं रहा जितना कि उद्यान से आते समय, किन्तु यह अपे
कह सकते हैं। आदमी अधिक कष्ट से भेंट होने पर पहले के कष्ट को भूल जाता है।
हम एक दिन वक्षुग्राम में पहुँच गये। येथों (हेफ्तालों) से पिंड छूटना भी एक आनन्द
थी। वह नाहक आदमियों को तंग करते हैं। हम भिक्षु तो इस तरह के बर्ताव
नहीं हैं। ग्राम वक्षु के तट पर है। वक्षु की बहुत सी शाखायें हैं जो हिमगलित हो
हैं। सभी शाखाओं के किनारे रहने वाले लोग अपनी नदी को मूल वक्षु बतलाते हैं
लोगों का कहना था कि वक्षु कही जाने वाली दूसरी किसी नदी में न इतना पा
बहुत दूर से आती है। इस उपत्यका का नाम वह वक्षु-उपत्यका (बखान) कहकर क
हैं कि मुख्य वक्षु यही है।

अभी हम इस इलाके के सबसे निम्न भाग पर थे और यह गाँव इस इलाके
बड़ा गाँव तथा स्थानीय राजा की राजधानी कहा जाता था। इन पहाड़ों में जिसके
सौ-दो सौ घर हो, उसे राजा कहलाने का अधिकार है। यह कोई धन-धान्य सम्पन्न
है, इसलिये हेफ्ताल लोग यहाँ बहुत कम आते हैं। स्थानीय राजा उनके पास भें
तथा कुछ दूसरी चीजें भेंट के रूप में पहुँचा देता है। अभी तो गेहूँ की फसल वा
हम थे, लेकिन एक ही दिन के रास्ते पर चलने के बाद गेहूँ की फसल नहीं पकती।
भूसी के जौ की खेती करते हैं। यहाँ का जौ हमारे जौ से दूना से भी अधिक बड़ा
रोटी भी उसकी स्वादिष्ट होती है। जौ के अलावा हरा-हरा छोटी कलाय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Tangaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होती है, लेकिन ये लोग खेती नाम मात्र के लिये करते हैं। इनकी मुख्य जीविका भेड़ें-बकरियों का पालन है। एक-एक घर में पाँच-पाँच छ-छ सौ भेड़ों का रेवड़ होना मामूली-सी बात है।

इस ग्राम से आगे बढ़ना जाड़ों के चार-पाँच महीनों के निवास के लिये अनुकूल नहीं था, इसलिये काँस्य देश की यात्रा को हमने तब तक के लिये स्थगित कर दिया, जब तक कि व्यापारियों के सार्थ चलने न लगें। यहाँ से उत्तर-पूर्व में कुछ दिनों के रास्ते पर सुवर्ण सरोवर (जरकुल के) बारे में बहुत सी बातें सुनीं। लोग बतला रहे थे : वहाँ जमीन मैदान जैसी दिखाई देती है। सरोवर का नाम यद्यपि सुवर्ण सरोवर है लेकिन उसका रङ्ग नीलम जैसा नीला होता है। गर्मियों में वहाँ लाखों हंस और दूसरे जल-पक्षी आकर रहते हैं। बर्फ पिघलते ही सब जगह घास निकल आती है। सरोवर को 12 योजन लम्बा और 7 योजन चौड़ा बतलाते यह भी कहते थे कि दक्षिण वाले जम्बु-द्वीप के वह बीचो-बीच में है। वहाँ अर्हत (मुक्त पुरुष) अब भी निवास करते हैं। महिमा सुनकर, उसे देख आने का निश्चय किया। हमने इस तरह की बातें बहुत सुनी थीं, और कहीं भी हमें अर्हतों के दर्शन में सफलता नहीं मिली थी, लेकिन कुछ बार की असफलतायें क्या आदमी की हिम्मत तोड़ सकती हैं। वक्षु ग्राम में भी एक विहार है। उपत्यका के लोग जीवन में बहुत पिछड़े हैं। उनके पास नागरिक विलास की कोई चीज नहीं है। उनका राजा भी खाल की पोशाक पहनता और देखने में लोगों जैसा दीखता है। लेकिन लोगों में तथागत के प्रति बड़ी भक्ति है। वह अपने पास जो कुछ भी हो, उससे भिक्षुओं का सत्कार करने के लिये तैयार रहते हैं।

विहार के एक भिक्षु ने बड़े उत्साह के साथ हमारा पथ-प्रदर्शन करना स्वीकार कर लिया। रास्ते के लिये खाने-पीने की चीजें हमने साथ बाँध लीं जिसके लिये तीन गदहे और चार आदमी हमें राजा ने दे दिये। रास्ता कठिन था, लेकिन एक दिन हम सरोवर के तट पर पहुँच गये। जाड़ा शुरू हो गया था, यहाँ कोई प्राणी नहीं दिखाई देता था। लेकिन, बतला रहे थे कि गर्मियों में यहाँ खूब घास होती है, कंकाल मात्र रह गया घोड़ा भी आये, तो बीस दिन की चराई में इतना मोटा हो जाता है कि उसके खाल के फटने का भय लगने लगता है। नीचे से बीमार होकर भी यदि कोई आदमी यहाँ पहुँचता है, तो उसका रोग छूमन्तर की तरह भाग जाता है। पानी की भी बड़ी महिमा है। हमें उद्यान के पयारों के जीवन का तजर्बा था, इसलिये पामीर के इस मैदान की महिमा को अतिशयोक्ति होने पर भी आसानी से समझ सकते थे। सरोवर अब भी हिममुक्त था। शाम को पूर्ण हम वहाँ पहुँचे थे, उस वक्त हवा चल रही थी, उसमें उठती बड़ी-बड़ी लहरों को देखकर मुझे सिंहल द्वीप का समुद्र याद आ रहा था। अगले दिन सवेरे हवा शान्त थी और सरोवर का स्थिर अभिनील जल देखने में सुन्दर मर्कतसा मालूम होता था। गर्मियों में डेरा डालने वाले पशुपालों के स्थान जहाँ-तहाँ दिखाई पड़ रहे थे। ईंधन के लिये हमें कोई कठिनाई नहीं उठानी पड़ी, क्योंकि कण्डे और मेंगनियाँ वहाँ बहुत थीं। सरोवर का दर्शन करके किसी अर्हत के भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त किये बिना हम फिर वक्षु ग्राम में चले आये। अब जाड़ों भर के लिये हमें यहीं विश्राम करना था।

उपत्यका के लोगों के सीधे-सादे जीवन और सच्चाई से मैं बहुत प्रभावित हुआ। लोग बाण चलाने में बड़े सिद्धहस्त और कुशल शिकारी हैं। लड़ने में भी संख्या में कम रहते ये

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किसी से डरते नहीं। इन्होंने अपने गाँव पहाड़ों में ऐसे दुर्गम स्थानों में बना रक्खे हैं, जहाँ वह शत्रु से अच्छी तरह मुकाबिला कर सकते हैं। पुरुषों की पोशाक छाले की होती है, स्त्रियाँ भी छाले का व्यवहार करती हैं, लेकिन उनका अन्तर्वासक सूती होता है और एक-एक में एक थान कपड़ा लग जाता है। जितना ही ज्यादा कपड़ा लगाये उतना ही उनके धन सौन्दर्य का प्रमाण मिलता है। कपड़ों की तह की तह लगाकर वह विकट नितम्बों को चाहती हैं जिसे मुख के सौन्दर्य से भी अधिक माना जाता है।

हमारा भोजन थोड़ा सत्तू या रोटी और अधिकतर मांस का था। शरद में ही लोग पाँच-छ महीने के खाने के लिये जानवरों को मारकर मांस जमा कर लेते हैं। बीच-बीच में शिकार भी वह करने जाते हैं और कोशिश करते हैं कि संचित मांस जल्दी खतम न हो। सर्दी के कारण मांस के सड़ने का डर नहीं। भेड़ों को नुकसान पहुँचाने वाले भेड़िये यहाँ हैं जिनके चमड़े को पोशाक के लिये इस्तेमाल किया जाता है। भात यहाँ नहीं पकता। दाल भी हमने अपने पयारों में भी यह देखा था।

कांस्य देश में

(551 ई०)

जाड़ों में सचमुच ही बहुत तकलीफ हुई। अधिवासी स्वयं गरीब थे। कृषि कार्य उनको बहुत कम था, और अधिकतर वह अपने पशुओं और शिकार पर निर्भर करते थे। हम कम्बोजपुरी में ही रह गये होते, तो अच्छा हुआ होता। पर अब क्या करना था! जाड़े के आ जाने से रास्ते बन्द हो गये थे। मैं और सुमन पीछे पैर रखने के विरोधी थे, हमारे साथी भिक्षु उतनी हिम्मत नहीं रखते थे। आदमी वैसे स्वभावतः यायावर है, किन्तु एक सीमा ही तक। हरेक के हृदय में अज्ञात देशों के देखने और अननुभूत कष्टों को झेलने की लालसा नहीं होती। फिर जब उसके साथ रोग का भी सामना करना पड़े, तो साधारण आदमी की हिम्मत टूट जाती है। बालोर में एक के बाद एक हमारे तीनों साथी पेट की बीमारी में बुरी तरह फँस गये। आगे चल कर खून का पाखाना होने लगा। तीनों के प्राण संकट में पड़ गये, किन्तु मृत्यु ने एक ही को साथ लिया। यदि हेमन्त समाप्त होने के बाद वसन्त उस साल जल्दी शुरू न हो गया होता, तो इसमें संदेह है कि हमारे बाकी दोनों साथी भी बचे होते। गरम दिनों के आने तक उनके शरीर में केवल हड्डियों का ढाँचा रह गया था। अपना विश्वास है कि हरेक देश के लोग अपने यहाँ की गर्मी-सर्दी के अनुरूप अपना भोजन छाजन रखते हैं। पीढ़ियों के तजर्बे के बाद वह जान लेते हैं कि भिन्न-भिन्न समयों में उन्हें किस तरह रहना चाहिये। हम भिक्षु अपने नियमों के कारण एक तरह की वस्त्र भूषा धारण करने के लिये मजबूर हैं, किन्तु तथागत ने भी सर्दी-गर्मी का ख्याल करके नियम बनाये थे। ठंडे देशों में उन्होंने विशेष प्रकार के जूते और कपड़े पहनने की अनुमति दी थी। हमारे उत्तर के भिक्षु वही वस्त्र नहीं पहनते जो सिंहल के। सिंहल वाले दाहिना कन्धा नंगा करके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहनते हैं और आशा करते हैं कि सभी भिक्षु इसी वेष में रहें। लेकिन, क्या उद्यान में एकांस-चीवर पहन कर कोई जाड़ों को पार कर सकता है? बालोर की सर्दी हमारे उद्यान से भी ज्यादा कठोर थी। जब मैंने वहाँ के भिक्षुओं को जाड़ों में कमरबन्द की जगह रोम-सहित चमड़े की पट्टी पेट पर बाँधते देखा, तो समझ लिया कि यहाँ के जाड़ों के लिये इसका कोई उपयोग है। सुमन ने भी मेरी बात का समर्थन किया और हम दोनों ने पहले ही से पट्टी बाँध ली। हमारे साथी इसके लिये तब तैयार हुये, जब सर्दी खाकर उनके पेट खराब हो गये। मेरे जैसा यायावरी में एकान्त निष्ठा रखने वाला व्यक्ति पद-पद पर मृत्यु का स्वागत भले ही करने के लिये तैयार हो, लेकिन वह जीवन के ऐसे ही बेकार फेंकने के लिये तैयार नहीं हो सकता। शायद इसी सावधानी का फल था जो कि मैं सभी तरह के देशों में घूमते हुये अपने को स्वस्थ और कर्मण्य रख सका।

आगे का रास्ता और भी कठिन था। हमारे दो भिक्षु इच्छा रहने पर भी इस अवस्था में नहीं थे कि यात्रा को पूरा कर सकें। उनका स्वास्थ्य कुछ सुधर गया और इस बात को पसन्द किया कि आगे न बढ़ कर वह अपने देश लौट जायें। वसन्त बीता हमारे उद्यान से भी पीछे शुरू होता है। मध्यमंडल में तो वह तीन महीने बाद आता है। ठंडे मुल्क वाले ही वसन्त के आनन्द को जानते, जब कि शरद् से ही नंगे हो गये वृक्ष हरी पत्तियों का वस्त्र पहनते हैं, जगह-जगह रंग-बिरंगे फूल खिलते हैं। वक्षु के इस ऊपरी छोर पर प्रकृति अपना दूसरा ही रूप रखती है। यहाँ वन्यवृक्ष है ही नहीं, हाँ, बर्फ पिघल जाने पर घास जरूर उग आती है और पशुओं के लिये वह बड़ी पुष्टदायक होती है। यहाँ के लोगों के लिये हरित तृण और कहीं-कहीं ताजे खिले फूल परमप्रिय वस्तु हैं।

देश बहुत छोटा और दरिद्र है, व्यापार-वाणिज्य के लिये भी तो पर्याप्त धन की अवश्यकता होती है जिससे कि यहाँ के लोग वंचित हैं, अतएव वह अपने देश के बाहर व्यापार करने के लिये नहीं जाते। हाँ, इनके जानवर बोझा ढोने का काम देते हैं। कोई-कोई चाकर और पथ-प्रदर्शक बन कर भी सार्थों के साथ जाते हैं। कांस्य देश जाने के लिये हमें कम्बोज, तुषार, बाह्लीक, कपिशा के सार्थवाहों की प्रतीक्षा करनी थी। अपने आने की खबर भी तो सार्थ खुद अपने साथ लाते हैं, इसलिये पहले सालों में जिन-जिन दिनों वह आते हैं, उन्हीं दिनों में आने की आशा थी। हरेक सार्थ हमको अपने साथ ले जाने के लिये तैयार होगा, इसकी भी आशा नहीं थी, क्योंकि हम उनके लिये बेकार के बोझ थे। हम उनके काम में कोई सहायता नहीं कर सकते थे, उल्टा हमारे खाने-पीने का भार उनके ऊपर पड़ता। लेकिन, मिलने वाले सार्थों में अधिकतर बुद्धभक्ति थे, वह विश्वास रखते थे कि भिक्षु के साथ रहने से हम देवी और मानवी विपत्तियों से बच; पुण्य अर्जित कर सकते हैं।

पहला सार्थ बाह्लीक लोगों का आया जिसके साथ एक भिक्षु भी थे। हमें उनसे परिचय प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। मेरे जैसे बहुपर्यटित तथा कुछ विद्या पढ़े भिक्षु से मिल कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके द्वारा सार्थवाह से भी हमारा परिचय हो गया। हम दोनों के पास पाथेय के लिये कुछ धन था, लेकिन नव-परिचित सार्थवाह ने बतलाया:

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"हम कांस्य देश तक आपको अच्छी तरह पहुँचा देंगे और वहाँ के लोग भिक्षुओं की बड़ी पूजा करते हैं।" अब हमें कोई चिन्ता नहीं रह गई। देश लौटने वाले भिक्षुओं को भी रास्ते के लिये कुछ चाहिये था। हमने यह भी अच्छा समझा कि यदि कुछ बच कर हमारे विहार में पहुँच जाये, तो अच्छा। कम्बोजपुरी के जाने वाले आदमी पहले मिल गये। तब तक हमारे भिक्षु कुछ चलने-फिरने लायक हो गये। उनके विदा हो जाने पर मुझे बहुत संतोष हुआ।

वाह्लीक-सार्थ के साथ अब हम वक्षु की एक शाखा के साथ पूर्व की ओर बढ़े। रास्ते की भूमि अब कई सप्ताहों के लिए एक सी थी। पहाड़ नंगे और छोटे-छोटे, उपत्यकायें चौड़ी जिनमें नदी की धारा पतली रेखा की तरह मालूम होती थी। पत्थर नदी की धारा के पास ही अधिक दिखाई पड़ते थे, पहाड़ों में उनकी अपेक्षा मिट्टी अधिक थी। हमारे सार्थ ने यहाँ के लोगों के बहुत से जानवर किराये पर लिए थे जिन पर उन्होंने घास, चारा और कुछ ईंधन भी लाद लिया था। चढ़ाई बहुत कठोर नहीं थी, लेकिन कहीं-कहीं रास्ता ऐसी जगह से था, जहाँ नदी शिलाओं को काटकर बह रही थी। ऐसी जगह रास्ता बहुत सँकरा और दुर्गम हो गया था। कहीं-कहीं ऐसी जगहों से बचने के लिए हमें दूर का चक्कर काटना पड़ता और कहीं सारे सार्थ को लग कर रास्ता बनाना पड़ता। दो ही दिन जाने के बाद आबादी खतम हो गई। अब आगे रास्ते में कोई गाँव नहीं था। पशुपाल घासों के जमने पर इधर से जाते हैं, इसलिए कंडों का हमें सुभीता था। घास पूरी तरह तो वर्षा में होती है, जो यहाँ बहुत कम होती है, तो भी वह एक बार प्रकृति को सजीव बना देती है।

अभी तक मेरी की गई यात्रा तैयारी की यात्रा थी। अब मैं अपनी वास्तविक यात्रा को आरम्भ हुये मानता था। रह-रहकर मुझे ख्याल आता—"कितनी आनन्दप्रद यह यात्रा होती, यदि आज बुद्धिल मेरे साथ होते।" सुमन का मेरे साथ स्नेह था, लेकिन उनसे मैं कुछ सीख नहीं सकता और न उनके सामने अपनी समस्याओं को खुलकर रख सकता था। पाँच ही सात दिन रहने के बाद मालूम हो गया, कि वाह्लीक भिक्षु भी सुमन की तरह ही अच्छे प्रकृतिका हैं। यात्रा में चिरकाल तक साथ रहने के लिए साथियों में कुछ खास गुणों की आवश्यकता है, तभी यात्रा सुखद होती है। मेरे दोनों साथी-भिक्षुओं में वह गुण मौजूद थे लेकिन वह मुझे अपना गुरु मानते थे। गुरु और शिष्य में, पिता और पुत्र में जो अन्तर होता है वह हमारे बीच में भी था जिसे मैं पसन्द नहीं करता था। बस यही अभाव मुझे खटकता था और बुद्धिल बराबर मुझें याद आते रहते थे। राज्यों की तरह नदियों का भी अपना राज्य होता है। राज्यों की सीमाओं को लाँघने के समय कितनी ही जगह मानवी बाधायें उपस्थित होतीं। वणिक-सार्थ राजा के लिए लाभदायक होते हैं; इसलिये वह उनके यातायात में बाधा नहीं डालते; किन्तु इन दुर्गम पहाड़ों में अवस्थित नदियों के राज्यों की सीमायें बड़ी दुर्गम होती हैं। हम सिन्धु के राज्य को पार करते वक्त जिस कठिनाई में पड़े थे, उसी तरह की कठिनाई की यहाँ भी सम्भावना थी।

वक्षु के राज्य को पार कर अब हम सीता (तरिम्) नदी के राज्य की ओर बढ़ रहे थे। चलने में बड़ी कठिनाई हो रही थी। बड़ी जल्दी साँस फूलने लगती; दोपहर बाद हवा चलने लगती, उस वक्त सर्दी बहुत तेज हो जाती। सबेरे के वक्त चलते, तो रास्ते में पानी जहाँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मिलता, जमा हुआ मिलता और वह मध्याह्न के करीब ही जाकर पिघलता। कभी-कभी बूँदें पड़तीं, तो वह भी पानी की जगह हिम के रूप में ही। बस्तियों के छोड़ने के बाद तीन-चार दिन तक चढ़ाई का रास्ता मिला। फिर हम एक डाँड़े को पारकर दूसरी ओर शुरू हुई एक छोटी नदी के किनारे पहुँचे।

बलोर से जो घास-चारा ढोकर लाया गया था, उसे खतम करके पिछले डाँड़े को पार करने के बाद ही वहाँ के लोग लौट गये थे। कुछ दूर तक हम उसके किनारे चले। फिर वह उत्तर की ओर घूम गई। हमारे दाहिने, पर पूर्व की ओर उसी तरह हिमाच्छादित शिखर-श्रेणियाँ दीख पड़ रही थीं, जैसी मेरी जन्मभूमि में उत्तर की ओर दीखती हैं। इसे खशगिरि कहते हैं, यह सुनकर मेरे मनमें ख्याल आने लगा, हमारी जाति के लोगों का क्या इन पहाड़ों से कोई सम्बन्ध था। कितने ही दिनों तक हम उसके साथ-साथ निर्जन भूमि में चलते रहे। कभी-कभी मेषपालों के डेरे मिल जाते, जिनसे हमारे सार्थ को माँस भर का लाभ होता। ये पशुपाल अपने साथ बहुत कम अन्न रखते थे जिसे किसी मूल्य पर भी वह देने के लिए तैयार नहीं थे। आगे बाईं ओर एक सरोवर मिला, हमारे पहले देखे हुए सुवर्णह्रद के सामने यह पुष्करिणी सा था। तो भी इतनी बड़ी जलराशि को देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उस पर बहुत से जलपक्षी तैर रहे थे, जो इस बात का परिचय दे रहे थे कि मध्यमंडल में अब आग की तरह गरम हवा चल रही होगी। इस सरोवर के पास जाने के पहले हमें दो हिमाच्छादित पर्वत-श्रेणियों के बीच में से होकर पूर्व की ओर बढ़ना पड़ा था। फिर हमारा रास्ता एक नदी के किनारे से चला जो हमें अपेक्षाकृत एक विशाल सरोवर पर ले गया जिसे शिलापति कहा जाता था। दो दिन पहले ही से सर्दी कम हो गई थी और सरवर के किनारे गर्मियों की ऋतु साफ दिखलाई पड़ती थी। तीन तरफ दूर-दूर खड़े पहाड़ थे जिनके पास तक कीं बालुका भूमि थी। इसी में यह सरोवर लम्बा चला गया था। बालुका भूमि के कारण सरोवर का कलेवर अवश्य कम हुआ है। यदि यह न होती, तो वह और भी बड़ा होता। एक बड़ा सा गाँव मिला। कई हफ्तों से पशु पेट भर कर खाना नहीं पाये थे, खशगिरि (काशगर) नगर अब दूर नहीं था। नगर में जाने पर खाने-पीने की चीजों का मोल बढ़ जाता और पशुओं को भी इतनी यात्रा करने के बाद कुछ आराम देना आवश्यक था, इसलिये सार्थवाह ने यहीं पाँच दिन रहने का निश्चय किया।

मुझे इससे बहुत संतोष हुआ, क्योंकि दुर्लंघ्य हिमवान् को पार कर अब मैं कांस्यदेश में पहुँच गया था। सार्थ के ठहरने की जगह से कुछ दूर पर सरोवर के किनारे एक विहार देखकर हमारी इच्छा वहाँ जाने की हुई। अगले दिन हम तीनों भिक्षु वहाँ गये। भारतीय भिक्षु समझ कर मेरा स्वागत होना स्वाभाविक था। जैसी वह कांस्यदेश के लोगों की भक्ति की प्रशंसा मैंने सुनी थी, वह वैसी ही मालूम हुई। कई घण्टों तक हमारी बातचीत होती रही। कांस्यदेश की एक भाषा नहीं, बल्कि भिन्न-भिन्न राज्यों की भिन्न-भिन्न भाषा थी, किन्तु, भिक्षुओं ने बतलाया—हमारे विहारों में दो भाषायें चलती हैं, अपनी और मध्यदेश (भारत) की। वहाँ के भिक्षुओं में बहुत विद्या प्रेम है। लोगों का भी हमारे उद्यानियों के रूप-रंग से फर्क इतना ही था कि उनमें हमारी अपेक्षा अधिक नीली आँखों और भूरे बालों वाले आदमी मिलते थे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिचय के बाद अब वहाँ के भिक्षुओं के आग्रह को हम ठुकरा नहीं सके और उसी दिन अपने सार्थवाह से बिदा लेने के लिए मजबूर हुये। आगे रास्ता आसान था, गाँव दूर-दूर थे, पर लोग आते-जाते रहते थे। पामीर की कठोर शीतल भूमि को हम पीछे छोड़ आये थे। अब यदि शिकायत हो सकती थी तो गर्मी की। लेकिन मैं भीषण गर्मी को देख चुका था। यह एक छोटा सा विहार था, इसलिये यदि मैं वहाँ सबसे बड़ा पंडित मालूम होता था, तो कोई आश्चर्य नहीं। लेकिन, कांस्यदेश में आने का एक उद्देश्य अपने जले विहार को फिर से बनवाने के लिए कुछ धन-संग्रह करना भी था। मैंने देश की स्थिति के बारे में पता लगाया, तो मालूम हुआ, वह ऐसी नहीं है जिससे कोई आशा की जा सके। हूणों के वंशज अवार पहले इस भूमि के अधिपति थे। खशगिरि (काशगर), कुस्तन (खोतन), कूची आदि की अपनी-अपनी भाषा और अपनी जाति के राजा थे, लेकिन सभी अवारों के अधीन थे। लोगों को घुमन्तू अवार अधिक से अधिक चूसना अपना कर्त्तव्य समझते थे। उनके प्रतिद्वन्द्वी तथा पहिले उन्हीं के अधीन त्योर्क (तुर्क तुरुष्क) अब उनके जान के ग्राहक बन गये थे। कई सालों से वह बागी हो अपने स्वामियों की शक्ति को क्षीण कर रहे थे। कांस्यदेश के लोग अवारों को पसन्द नहीं करते थे। सफेद नम्दे के तम्बुओं में रहने वाले ये बर्बर घुमन्तू अपने सामने किसी को कुछ लगाते नहीं थे, इसलिये यदि लोग उनका अहित चाहते हों, तो यह स्वाभाविक था। कई बार उनके यहाँ खबर उड़ी कि तुर्कों ने अवारों को हरा दिया, लेकिन अवार घोड़सवार उनकी बस्तियों में जब तक नोंच-खसोट करने के लिए आते रहते, तब तक वह कैसे विश्वास करते कि अवार पराजित हो गये। इस साल (551 ई०) की खबर कच्ची नहीं मालूम होती थी। मालूम हुआ, तुर्कों के सरदार तूमिन ने अवारों को बुरी तौर से पराजित करके उनका भारी संहार किया और अब वह इलिखान के नाम से गद्दी पर बैठा है। यह भी मालूम हुआ कि कूची के परे वाले प्रदेशों में तुर्क अब भारी लूट-खसूट मचा रहे हैं। भुक्खड़ घुमन्तुओं का नया राजवंश कायम हुआ था, फिर उन्हें सबसे पहले अपनी भूख शान्त करनी थी।

राज्य-परिवर्तन की खबर सुनकर मुझे मालूम होने लगा कि पहले से ही लुटे कांस्यदेश में किसी समय भी तुर्क पहुँच जायेंगे और उसकी वह हड्डियाँ भर ही रहने देंगे। अब कांस्यदेश के धन-प्राप्ति की आशा मैं नहीं कर सकता था। लेकिन मेरी यात्रा का धन-संग्रह ही उद्देश्य नहीं था। वस्तुतः देशाटन की लालसा मुझे यहाँ खींच लाई थी। मुझे अपने उद्यानी भिक्षुओं के लौट जाने से अब और भी प्रसन्नता हुई, क्योंकि उनके रहते मुझे धन-संग्रह की चिन्ता अधिक होती। सुभूमि विहार के लिए यदि मैं दो-चार तोला सोना या और कोई चीज संग्रह कर पाता, तो उससे बहुत कुछ बनने वाला नहीं था। मैंने अब अपने सामने केवल वही उद्देश्य रक्खा था जिसके बारे में मैं और बुद्धिल वर्षों बातचीत करते रहे।

शिलापति विहार में दो-तीन सप्ताह रहने पर वर्षा की फुहारें आईं। कांस्यदेश का वर्षावास शुरू होने वाला था, लेकिन विनय के अनुसार हम पाँचवें मास (श्रावण) के आरंभ की जगह छठें मास से भी उसे शुरू कर सकते थे। भिक्षुओं ने बहुत जोर दिया, किन्तु हमने खसगिरि में ही जाकर वर्षा बिताने का निश्चय किया। खसगिरि, वहाँ से उत्तर-पूर्व के कोण पर था। हम दो दिन की यात्रा करके वहाँ पहुँचे। नगर के आसपास के गाँव दरिद्र प्रकृति से घिरे, बहुत हरे-भरे थे। वहाँ मेवों के बाग और खेत दूर तक दिखलाई पड़ते थे। हरेक गाँव में वि-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और छोटा-मोटा विहार जरूर होता। विहारों के साथ द्राक्षा दूसरे फलों के बाग और फुलवाड़ियाँ रहतीं जो कि इस समय अपने सौंदर्य से आसपास की शोभा को बढ़ा रही थीं। कपास की खेती यहाँ बहुत होती है और लोग भी मध्यमंडल की तरह कपास के कपड़े अधिक पहनते हैं। हाँ जाड़ों में ऊनी कपड़ों की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि यहाँ मध्यमंडल जैसी कोमल सर्दी नहीं है। खसगिरि नगर खस नदी के तट पर बसा हुआ है। यहाँ के शिल्पी बड़े कुशल होते हैं। कपड़े, धातु या पाषाण की चीजें उनके हाथ में जाकर सौंदर्य की प्रतिमूर्त्ति बन जाती हैं लेकिन, खसगिरि की समृद्धि अपने कपास, अपने अंगूरों और अपनी शिल्पकला के कारण ही नहीं है। दुनिया भर के व्यापारिक यहाँ देखे जाते हैं। चीन का महार्घ रेशमी वस्त्र और दूसरी बहुमूल्य चीजें यहीं होकर पश्चिम के देशों में दूर-दूर तक जाती हैं। यहाँ से सोग्द जाने का अलग रास्ता है। उत्तरी घुमन्तुओं के देश में भी यहाँ से वाणिज्य-सार्थ जाया करते हैं। अभी तक मैंने पाशुपत, निर्ग्रन्थ (जैन) आदि धर्मों के ही देवालयों और विहारों को देखा था। कपिशा में पारसीक धर्मियों को देखने का मौका मिला था, लेकिन खसगिरि में और कितने ही नये-नये धर्मों के अनुयायियों और उनके पूजा-स्थान देखने को मिले। मसीही (नेस्तोरी) भिक्षुओं का यहाँ मठ है। पारसीकों के मानी निकाय के भी श्वेतपट भिक्षु-भिक्षुणी यहाँ मैंने देखे। दुर्लंघ्य पहाड़ों के पीछे ऐसे नगर के पाने की मुझे आशा नहीं थी, जहाँ के लोग इतने उदार, शिक्षित और विद्याप्रेमी हों। कांस्यदेश में यद्यपि और धर्मों के लोग भी रहते हैं, लेकिन तथागत के धर्म की ही प्रधानता थी। ऐसा होते हुये भी यह बात मुझे बहुत पसन्द आई कि वहाँ के लोगों में सँकीर्णता नहीं है। वह मसीही या मानी भिक्षुओं को भी आदर की दृष्टि से देखते हैं। कांस्यदेशीय तथागत के श्रावक अपने देशभाई मसीही या मानी भिक्षुओं के साथ पूरा बन्धुत्व रखते हैं। यहाँ का राजा और रानी की वेष-भूषा जम्बू-द्वीप के राजाओं से भिन्नता और येथा (श्वेत-हूण) सामन्तों की पोशाक से कुछ समानता रखती है। यहाँ की स्त्रियाँ सिर पर रंग-बिरंगी सूत या जरी का काम की हुई टोपियाँ पहनती हैं। उनके पैरों में पहने पाजामे को घुटने तक एक लम्बा जामा ढाँके रहता है जो गले के पास अपने छोरों को मोड़कर इतना खुला रहता है जिसमें भीतर की कंचुक पर उनके बहुमूल्य आभूषण दिखलाई पड़ते हैं। जामों पर हाथों से सुन्दर काम किया रहता है। उत्तरीय (चादर) वह अपने सिर पर नहीं रखतीं जिससे उनका हाथ और शरीर बहुत चुस्त मालूम होता है। राजा और दूसरे पुरुषों की भी पोशाक करीब-करीब वैसी ही है, फर्क केवल उनकी महार्घता में होता है।

खसगिरि के सबसे प्राचीन और सबसे बड़े राजविहार में हम वर्षावास के लिए ठहरे। यहाँ के लोगों की भाषा का परिचय वर्षावास के दो महीनों में कुछ हो गया; पर, सीता-उपत्यका में कई भाषायें चलती हैं जिसके कारण किसी एक भाषा से सब जगह काम नहीं चलता। विहारों में तो मध्यमण्डल की भाषा (प्राकृत) को जानने वाले मिल जाते हैं। यहाँ की लिपि करीब-करीब वही है जो कि मध्यभारत की। खसगिरि नाम से ही मुझे सन्देह हो गया था कि यह खसों की भूमि होगी। वहाँ की परम्पराओं ने इनकी पुष्टि कर दी। जान पड़ता है, पहाड़ ही पहाड़। हमारे पूर्वज खसी किसी समय यहाँ से ही दक्षिण की ओर गये थे। यहाँ के विहार में कनिष्क का बनवाया एक स्तूप है जिससे मालूम होता है कि जिस धर्मराजा की कृतियों को मैंने कपिशा से पाटलिपुत्र तक देखा था, उसका शासन यहाँ पर भी था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खसगिरि नगर में हर पाँचवें वर्ष एक बड़ा महोत्सव धूम-धाम से मनाया जाता है। उस समय तथागत की अस्थि-धातु की शोभायात्रा निकाली जाती है। सारे देश के लोग उसके दर्शन के लिए आते हैं। कुषाण-वंशक स्थान जैसे हमारे देश और सोग्द-वाह्लीक में येथों (श्वेत-हूणों) ने लिया, उसी तरह यहाँ पर भी उनकी प्रभुता रही। उनकी शक्ति क्षीण होने पर यहाँ के लोग अवारों और येथों दोनों की सत्ता मानते थे। विहार में कुछ चीन के भिक्षुओं से मेरी मुलाकात हुई जो वज्रासन (बोधगया) के दर्शन के लिए जा रहे थे। उन्होंने बतलाया, चीन में बुद्ध-शासन फैल रहा है, भारत की भाषा से पुस्तकों का अनुवाद हो रहा है। इसे सुनकर चीन जाने की मेरी इच्छा बलवती हो गई।

वर्षावास समाप्त कर हम अब आगे की ओर बढ़े। सीता (तरिम) उपत्यका बहुत विशाल देश है। इसके दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं जो ऊपर उठते-उठते हिमशिखरों की पंक्तियों में परिणत हो जाते हैं। बीच की भूमि पहाड़ के आस-पास उर्वर और अनूप की है, लेकिन आगे दिनों तक चले जाइये, बालू ही बालू मिलता है। इस वालुका-भूमि (तकला मकान) में सीता और उसकी कितनी ही शाखा-नदियाँ जाकर उसी तरह शुष्क मरुभूमि में विलीन हो जाती हैं, जैसा कि मैंने स्थाण्वीश्वर की सरस्वती के बारे में सुना था। खसगिरि हो, या यारकन्द, कुस्तन हो या कूची सभी मरुभूमि के छोर पर बसे हैं। इनका बहुत-सा भाग मरुभूमि से छीना गया है। राजा-प्रजा ने मिलकर नदियों से नहरें निकालीं और उनके पानी से सींच-सींच कर मरुभूमि को हरे-भरे खेतों और लहलहाते बागों में परिणत कर दिया। वस्तुतः यहाँ मनुष्य और मरु का संघर्ष चल रहा है। यदि मनुष्य ने जरा भी शिथिलता दिखलाई और अपनी कुल्याओं (नहरों) को बेरम्मत छोड़ दिया, तो इसमें सन्देह नहीं कि मरुराक्षस इन हरे-भरे ग्रामों और नगरों को निगल जायेगा। खसगिरि से कुछ दूर जाकर हम मरुभूमि में घुसे और उसे पार कर यारकन्द पहुँचे। मरुभूमि को किनारे से ही अंग-भंग करने की कोशिश नहीं की गई है, बल्कि उसके उदर में भी जहाँ-कहीं मिल सका है, कुछ हरे-भरे गाँव आबाद कर लिये गये हैं। इस देश में हरेक छोटे-से-छोटे गाँव में भी विहार होने की तो बात ही क्या, हरेक घर के सामने पूजा के लिए स्तूप होता है। भिक्षुओं का भी बहुत आदर-सम्मान है और एक जगह से दूसरी जगह जाने में हमें ऐसा ही मालूम होता था, जैसे टहलने के लिए जा रहे हैं।

कुस्तन (खोतन) की भूमि की महिमा मैं बहुत सुन चुका था। कुस्तन का अर्थ है पृथ्वी का स्तन जिससे यह समझा जा सकता है कि वहाँ दूध की नदियाँ बहती होंगी। इसमें शक नहीं, यहाँ की भूमि बड़ी समृद्ध है। बुद्ध-शासन का खसगिरि से भी यहाँ अधिक सम्मान है। गाँवों में घर एक जगह न होकर आकाश में बिखरे तारों की तरह छिट्फुट होते हैं जिससे यही सिद्ध होता है कि साधारण दस्युओं का यहाँ भय नहीं है। यहाँ भी हरेक घर के सामने स्तूप है जो शायद ही बीस हाथ से कम ऊँचे हों। पर्यटक या भिक्षु के आने पर लोग दिल खोल-कर उनका आतिथ्य करते हैं। विहारों के पास लोगों ने अभ्यागतों के ठहरने के लिए मकान बना रक्खे हैं। नगर में गोमती-विहार बहुत पुराना और राजकीय विहार है। उसके अतिरिक्त तीन और बड़े-बड़े संघाराम हैं। प्रतिवर्ष चौथे महीने (आषाढ़) के प्रथम दिन को नगर की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खूब सजाया जाता है, राजमार्गों पर जल का छिड़काव होता है। नगर के मुख्य द्वार पर राजा-रानी और उनके परिचारक लोग आ बैठते हैं। उस दिन गोमती-विहार से तथागत की यात्रा निकलती है। बाजा-गाजा के साथ आनन्द-मंगल मनाते लोग सड़कों पर चलते हैं। मूर्ति की स्थापना के लिए नगर से एक कोस बाहर 30 हाथ ऊँचा रथ सज्जित करके रक्खा जाता है जो चलता-फिरता प्रासाद सा मालूम होता है। इसके ऊपर रेशम का चँदवा और पताकायें लहराती हैं, बहुमूल्य रत्न उसकी शोभा बढ़ाते हैं। रथ के बीच में तथागत की मूर्ति होती है जिसके अगल-बगल में दो बोधिसत्व—अवलोकितेश्वर और मंजुश्री खड़े रहते हैं। गोमती-विहार यद्यपि विनय में सर्वास्तिवाद का अनुयायी है, किन्तु वहाँ के भिक्षु महायान के मानने वाले हैं, शायद इसीलिये बुद्धमूर्ति की अगल-बगल में सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की मूर्तियों को न रख कर बोधिसत्वों की मूर्तियाँ रक्खी जाती हैं। रथ में परिचारक के तौर पर चौदह-पन्द्रह और भी देवताओं की मूर्तियाँ रहती हैं। सभी मूर्तियाँ कला की दृष्टि से बड़ी सुन्दर और सुनहली-रूपहली होती हैं। जब रथ नगर॰ द्वार से सौ पग दूर रह जाता है, तो राजा अपने राजमुकुट को छोड़ सफेद नवीन वस्त्र पहने हाथ में पुष्पगन्ध ले नंगे पैर रथ के पास जाता है। उसके पीछे-पीछे दो पांतियों में उसके परिचारक चलते हैं। तथागत की प्रतिमा के पास पहुँचकर वह साष्टांग प्रणाम करके पूजा और पुष्प-वृष्टि करता है। जब रथ सिंहद्वार से नगर में प्रवेश करने लगता है, तो उसके ऊपर बैठी रानियाँ और उनकी परिचारिकायें चारों ओर से फूलों की वर्षा करती हैं। गोमती-विहार के रथ के बाद अगले दिन किसी दूसरे विहार का रथ आता है। इसी तरह चतुर्दशी तिथि तक उत्सव चलता रहता है॥ उसके बाद ही राजा-रानी अपने प्रासाद में लौटते हैं।

यहाँ के नगरों में हमें कितनी ही जगह भारतीय नर-नारी भी मिले। उनमें से कितने ही बहुत पीढ़ियों से यहाँ आकर बस गये हैं। उन्हें यह भी नहीं मालूम कि उनके पूर्वज कब इस देश में आये। उनकी भाषा करीब-करीब वही है जो कि मध्यदेश में बोलने-चालने और लिखने-पढ़ने के काम आती है। मध्यदेश की बहुत सी बातों का यहाँ प्रभाव देखा जाता है। यहाँ के नाप-तौल में भी कुछ-कुछ समानता है। प्रस्थ (अँजली) को यहाँ वाले प्रस्त कहते हैं कितने ही शब्द भी समानता रखते हैं, यद्यपि वह मध्यदेश की आज की बोली की अपेक्षा पुरानी बोली के नजदीक हैं। तीन को ये लोग त्रे कहते हैं और त्रयोदश (तेरह) को त्रोदस। यहाँ के कुछ नगरों में काम-काज के लिए भी भारतीय भाषा का प्रयोग यही बतलाता है कि कभी यहाँ पर भारतीयों की काफी बड़ी बस्ती थी जो धीरे-धीरे यहाँ के लोगों में सरिता-सागर की संगम की तरह मिलती गई। उपाधियों में भी मध्यदेश की छाप मिलती है, जैसे—महरयतिरप, महनुत्र, महरय (महाराजाधिराज महानुभाव महाराज) और महरज रजतिरज (महाराज राजाधिराज)।

कुस्तन में हम एक महीने रहे। यात्री को यदि उस देश का कोई सहयात्री मिल जाये, देश तो अपरिचित सा नहीं मालूम होता। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, जब भिक्षु संघिल से मेरी घनिष्ठता बढ़ गई। वह विद्या-प्रेमी थे। इसी के लिए वह भारत जाने की सोच रहे थे। मैं घर बैठे ही उन्हें मिल गया। वहाँ रहते कुछ प्रमाणशास्त्र उन्होंने मुझसे पढ़ा। अब आगे की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यात्रा के लिए तीन की जगह हम चार थे। हमें मालूम हो चुका था कि सीता की मुख्य धारा खसगिरि से पूर्व की ओर उत्तरी पर्वतमाला के समीप से जाती है, जहाँ कूचा की प्रसिद्ध नगरी है, जिसकी भी धर्म के बारे में बड़ी ख्याति थी, लेकिन अवार और तुरुष्क-संघर्ष की खबरें उधर से आया करती थीं, इसलिए हमने चीन की तरफ बढ़ने के लिए उत्तर का रास्ता न पसन्द कर मरुभूमि से दक्षिण के मार्ग को पसन्द किया था। रास्ता मरुभूमि के दक्षिणी छोर से जाता है। दक्षिणी हिमवान से निकल कर आने वाली नदियाँ इस हरी-भरी भूमि के जीवन का कारण थीं जो उत्तर की तरफ अनेक नहरों में विभक्त होकर मरुभूमि में सूख जाती थीं। अधिकतर हमें मरुभूमि से हटकर हरे-भरे गाँवों में होकर चलना पड़ता था, लेकिन कभी-कभी रास्ता रेगिस्तान में भी था।

दस दिन तक हमारा अधिकतर हरी-भरी भूमि में से था। जाड़ा आ गया था, इसलिए हरियाली अधिकतर उच्छिन्न हो गई थी। लोगों का यह काम से विश्राम का समय था। इस समय उत्सव पूजा ज्यादा होते थे। युद्ध की खबरें जब-तब सुनने को मिलती थीं जिसके कारण हमारे पैर जल्दी-जल्दी आगे नहीं बढ़ रहे थे। हम कृष्णा नदी (करामुरान) के तट पर उसी नाम के नगर में पहुँचे। मालूम हुआ, शायद आगे का रास्ता बिल्कुल बन्द है। लेकिन, जब तक दीवार से सिर न टकराये, तब तक हम अपनी गति को रोकने वाले नहीं थे। चार आदमियों की हमारी भी एक सशक्त सेना बन गई थी। यद्यपि हम सशस्त्र नहीं थे, लेकिन हममें से कोई भी हिम्मत हारने वाला नहीं था। ऐसा संयोग ही से होता है कि दो आदमियों के स्वभाव एक से हों। फिर हम तो चार और चार देशों के थे। हमारे स्वभावों में यदि कोई भेद रहा भी, तो उससे हमारे सम्बन्ध पर कोई प्रभाव पड़ने वाला नहीं था। मैं उपाध्याय था और वह तीनों मेरे अन्तेवासी (शिष्य)। जहाँ मन आता, वहाँ हम सप्ताह-दो सप्ताह के लिए ठहर जाते और जब मन करता आगे चल पड़ते। हमें मंजिल मारने की कोई जल्दी नहीं थी, इसलिए दिन में एक योजन से अधिक शायद ही कभी चलते। हम सोच रहे थे, शायद इस तरह देर करने से लड़ाई खतम हो जाये और महाचीन का रास्ता खुल जाये। हमारा विचार गलत था। अवारों और तुर्कों का भयंकर युद्ध खतम होकर फैसला तुर्कों के पक्ष में हो चुका था। अवार हारी बाजी लड़ रहे थे। घुमन्तू स्थायी वासियों के साथ भी बड़ी क्रूरता के साथ लड़ते, लेकिन घुमन्तुओं के बीच का युद्ध तो अत्यन्त भीषण और पाशविक होता है। जान पड़ता है, वह अपने शत्रु का नाम रहने देना नहीं चाहते।

हम उस बड़ी नदी के किनारे थे जो पूर्व के एक विशाल क्षार सरोवर (लोबनोर) में जाकर मिलती है। इस नदी के किनारे हरे-पीले रंग के स्फटिक समान पत्थर (जैड़) मिलते हैं जिससे चषक और दूसरे छोटे-छोटे सुन्दर पात्र बनाये जाते हैं। नदी के दोनों किनारों पर कितनी ही दूर तक या तो खेत हैं, या सरकंडे के जंगल। नगर के संघाराम में हम पन्द्रह दिन ठहरे। यहीं पहले-पहल मैंने कितने ही चीनी परिवार देखे। अब तक मैंने चीनी भिक्षुओं और भिक्षुणियों को ही देखा था। वैसे कांस्यदेश में वर्षा नाम-मात्र ही होती है और लोगों को पर्वत-शिखरों से निकलने वाली हिगलित नदियों के ऊपर ही अधिक आश्रित रहना पड़ता है, लेकिन इस भूमि में तो वर्षा आकाश से एक बूंद भी नहीं पड़ती। यहाँ का सर्वस्व यही नदी है जो कि दक्षिण के तुषाराच्छादित पर्वतों से निकल कर आती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हमें तो देशाटन की लालसा खींचे लिए जा रही थी जिसके कारण हम संकट और विपत्ति की बातों को सुनने के लिए तैयार नहीं थे। लेकिन व्यापारी हमारी तरह अपने प्राणों से निर्मोही नहीं थे, पर वह भी हमारी ही तरह धन-लाभ के लिए संकट-समुद्र की ओर खिंचते चले जा रहे थे। मनुष्य कभी-कभी इतना भयभीत देखा जाता है कि मालूम होता है, वह स्वभावत: ही भीरु पैदा हुआ है, लेकिन प्रकृत्या भीरु होने वाले व्यापारियों की ओर जब हम देखते हैं, तो हमें अपने विचारों को बदलना पड़ता है। यह ठीक है कि जम्बू-द्वीप के बड़े-बड़े नगरों के वणिजों की तरह वहाँ के जल और स्थल के सार्थवाह भीरु नहीं होते। उन्हें ऐसे संकटापन्न स्थानों से गुजरना पड़ता है, जहाँ सशस्त्र रक्षियों के बिना एक कदम भी नहीं चला जा सकता। ऐसे सार्थों के सार्थवाह केवल व्यापारियों के सरदार ही नहीं, बल्कि सेना के सेनापति होते हैं। उन्हें कभी-कभी दस्युओं की भारी संख्या से मुकाबिला करना पड़ता है जिसमें युद्ध के दाँव-पेंच काम में लाने होते हैं। महाचीन की सीमा और उसकी महादीवार अभी महीने के रास्ते पर थी, जहाँ पहुँच कर ही सार्थ क्षेमयुक्त स्थान में जा सकता था। इस बीच में उसे घुमन्तुओं के खूनी संघर्षों वाली भूमि में से गुजरना पड़ता, जहाँ पद-पद पर प्राण जाने का डर था। मैं सोचता था, यह देश-देशान्तरों की पण्यवस्तुओं से अपने पशुओं को लादे महाचीन की ओर इसीलिए जा रहे हैं, कि उनके बदले में वहाँ के महार्घ चीनांशुक और दूसरी चीजें ले आयें। कम मूल्य पर खरीदें और अधिक मूल्य पर बेचें, इस प्रकार लाभ उठा कर परिवार-सहित सुखी जीवन व्यतीत करें। हम देशाटन की लालसा से चल रहे थे और वह सुख की लालसा से, लेकिन दोनों के रास्ते संकटापन्न कंटकाकीर्ण भूमि से होकर जाते थे। शायद इसीलिए हमारे साथ सार्थ अच्छा बर्ताव करने के लिए तैयार थे। इस नगर (चेर्चेन) में बिना कहे ही एक सोग्दी सार्थवाह ने आग्रह पूर्वक हमें निमंत्रण दिया था कि हम उसके साथ चीन तक की यात्रा करें। मैंने उसे यों ही पूछ दिया : मार्ग इतना संकटाकीर्ण सुना जा रहा है, इसका तुम्हें ख्याल नहीं आता ?

सोग्दी सार्थवाह ने उत्तर दिया—जीवन में कौन सी जगह है, जहाँ संकट से आदमी का पिंड छूटता है ? घर में आराम से रहते भी घातक बीमारी में आदमी पड़ सकता है, अच्छी-भली छत ही आदमी के ऊपर गिर सकती, या पास की महानदी में ही स्नान के लिए जाने पर डूब मरने की सम्भावना हो सकती है। यह कृष्णा नदी है और हमारे सोग्द के उत्तर में इससे कहीं बड़ी कृष्णा नदी (सिर दरिया) है। बहुत गहरी और विशाल होने से उसका पानी हमेशा काला दिखाई पड़ता है। आपने वैसी नदी नहीं देखी होगी ?

—आपकी कृष्णा नदी मैंने नहीं देखी—मैंने कहा—वह बड़ी हो सकती है, लेकिन हिन्दू देश में जितनी बड़ी नदियाँ हैं, जैसे सिन्धु (हिन्दू), गंगा आदि उतनी बड़ी वह न होगी।

—मैं इसे नहीं मान सकता। मैं चीन से रोमक राज्य की सीमा तक व्यापार के सम्बन्ध से आया-जाया करता हूँ, मैंने अपनी कृष्णा नदी जैसी बड़ी नदी कहीं नहीं देखी, चीन के भीतर की पीत नदी (ह्वांग हो) को छोड़कर।

—आपके यहाँ वर्षा तो बहुत नहीं होती होगी ?

—काश्यदेश में हमारी जैसी वर्षा कहाँ होती ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैंने सोचा, इसने सुवृष्टि वाले देशों को देखा नहीं है। सोग्द में निश्चय ही वर्षा कु ही अधिक होती होगी। मैंने अपनी यात्रा में देखा था, कि कम वर्षा वाले देशों में लोग घ की छतें मिट्टी की बनाते हैं, काशी और पाटलिपुत्र की तरफ मिट्टी की छतें देखने में नहीं आतीं। वहाँ की वृष्टि में सचमुच ही ऐसी छतें एक दिन भी नहीं ठहर सकतीं। यह सोच क मैंने सार्थवाह से पूछा :—

—आपके घरों की छतें तो यहाँ की तरह मिट्टी की होगी और वह भी दो-तीन अं से मोटी नहीं ?

—हाँ, हमारे यहाँ साधारण लोगों के घरों की छतें मिट्टी की और दो-तीन अंगुल मोटी नहीं होती, पर धनी लोग अपनी छतों को पत्थर या दूसरी चीजों से बनाते हैं।

मैंने कहा—गंगा नदी ऐसे देशों से होकर जाती है, जहाँ की भयंकर वर्षा के का मिट्टी की छतें एक दिन भी नहीं ठहर सकतीं। तुम्हारे यहाँ नदियों को हिमगलित जल ऊपर रहना पड़ता है, और वहाँ तीन महीने तक आकाश जल की धारायें उड़ेलता है।

सार्थवाह को मालूम हो गया कि मैं दुनिया में वहुत दूर-दूर तक घूमा हुआ हूँ मुझे झूठ बोलने की कोई आवश्यकता नहीं, इसलिये उसने मेरी बात का प्रत्याख्यान न किया। जिस तरह उसे अपने काम के लिये चीन पहुँचना जरूरी था, वैसे ही मुझे भी और साथियों की सलाह से सोग्दी-सार्थवाह के साथ चलने का निश्चय कर लिया।

सार्थ के साथ चलने में हमारे लिये बन्धन था, रास्ते में हम अपनी नहीं, बल्कि की इच्छानुसार चल और ठहर सकते थे। पर, चार-छह ही दिन और हम इच्छानुसार सकते थे, आगे फिर मरुभूमि से अकेले नहीं जाया जा सकता। इसलिये हमने सार्थ के चलने का निश्चय किया था। क्षार-सरोवर तक हमारा रास्ता अधिकतर कृष्णा न किनारे-किनारे था, जिसमें आगे चलकर बस्तियों का अभाव सा हो गया। क्षार-सरोव पास एक बड़ा निगम (कस्बा) और दुर्ग मिला। आगे कुछ दूर तक सरोवर के उत्तर त करीब से जाना था, लेकिन भूमि बालुकामय थी। पीने के लिये खारा पानी का उपयोग और मनुष्य नहीं कर सकते, इसलिये सार्थ ऐसी ही जगह ठहरता, जहाँ मीठे पानी के होते। इस मरुभूमि में अनन्त बालुका राशि वाला धरती के भीतर मीठा पानी कहाँ जाता है ? यह सोचते हुये मुझे ख्याल आया—यदि मीठा पानी न होता, तो हमारा ही यहाँ से क्यों होता ? क्षार-सरोवर से आगे महीने भर का रास्ता ऐसी ही मरुभूमि से था, जिसमें केवल 27-28 जगह ही मीठे पानी के कुएँ थे ? और उनमें भी इतना ही होता जो सौ से अधिक पशुओं और प्राणियों की पिपासा शान्त नहीं कर सकता था। का दिन था, लेकिन दिन की धूप में प्यास बहुत लगती, इसलिये सार्थ केवल रात को च दिन भर पशु-प्राणी किसी कुएँ के पास पड़े रहते।

मरुभूमि के बारे में तरह-तरह की कथायें सुनने में आतीं। जहाँ हजारों वर्षों से म मृत्यु के मुख पर पैर रख कर चलते हों, वहाँ लाखों ने प्राण खोये होंगे। ऐसे अकाल मृत्यु लोग भूत बन कर आने वालों को अपने जैसा बनाना चाहते है। हमारा सार्थवाह और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थी बड़ी गम्भीरतापूर्वक हमें समझाते थे—"सार्थ से आगे पीछे न रहना। रात का वक्त है, मरुभूमि में एक बार रास्ता भूले, तो वह फिर नहीं मिल सकता। भूत हर वक्त आदमी की ताक में रहते हैं। वह बड़ी मीठी बोली बोल कर अपने पास बुलाते हैं। मालूम होता है, हमारे सार्थ का कोई भद्रपुरुष है। हरेक आदमी को एक दूसरे से सट कर चलना चाहिये।" वह कहते थे—मरुभूमि के भूत रात को ही नहीं दिन में भी, और अकेले नहीं, पचासों के साथ बाजा बजाते आते हैं। "डरो नहीं, डरो नहीं" कह आदमी को बुलाकर पथभ्रष्ट कर देते हैं और फिर मांस खाकर उनकी हड्डियाँ छोड़ देते हैं। रास्ते में कितने ही पशुओं और कुछ आदमियों के भी अस्थिकंकाल मैंने देखे जिनके बारे में साथी कहते थे, यह भूतों के खाये हुये हैं। मेरे साथी भिक्षुओं का धारणियों के पाठ पर बड़ा विश्वास था, रात के वक्त वह उन्हें गुनगुनाते चलते थे। मैंने भी कभी-कभी किसी सूत्र का पाठ किया, लेकिन कह नहीं सकता, भूत भगाने के ख्याल से या यों ही रास्ता काटने के लिये। सूर्यास्त के समय सारी दुनिया रात्रि के विश्राम की सोचती और हम उसी समय अपनी यात्रा आरम्भ करते। पथ-प्रदर्शक को उसके काम के लिये सार्थवाह काफी धन देते और उसका बड़ा सम्मान करते हैं। हर रात्रि की यात्रा की समाप्ति के बाद वह वहाँ कुछ निशान रख देता जो इस बात की सूचना देता, कि हमें किस दिशा की ओर जाना है। सचमुच उस मरुभूमि में चारों तरफ एक ही तरह की बालू फैली दीख पड़ती। जिस तरह समुद्र में रास्ता पाना मुश्किल है, वही बात इस बालुका-समुद्र की है। समुद्र में जिस तरह ध्रुव या दूसरे तारों को देख कर दिशा का ज्ञान होता है, उसी तरह यहाँ भी नक्षत्र ही दिशा बतलाते हैं।

सूर्योदय से पहले और कभी जल्दी भी अगले मीठे कुएँ पर हम पहुँच जाते। पथ-प्रदर्शक का वचन सार्थ कभी उल्लंघन नहीं करता। जहाँ वह कहता—"ठहरो", वहीं सारे पशु-प्राणी खड़े हो जाते। आगे मीठा कुआँ कितनी दूर है, इसके बारे में हम पूछते भी नहीं थे। वैसे बालूकी भूमि बड़ी स्वच्छ होती है। उसके पाँडु रंग में कहीं भी कोई और रंग का सम्मिश्रण नहीं होता। कुओं के पास पशुओं और आदमियों के रहने के कारण कुछ गन्दगी जरूर दिखलाई पड़ती है। मरुभूमि में जाड़ों में इसलिये भी लोग अधिक चलना पसन्द करते हैं कि इस समय आँधियाँ नहीं आतीं। बालू उड़ने पर तो रास्ते का पता लगाना मुश्किल हो जाता है। जाड़ों में कभी-कभी मामूली हवा चलती है। जो रात में प्रायः बन्द हो जाती। कहीं-कहीं बालू टीले के रूप में जमा हो जाती है। इन टीलों के एक ओर का भाग खाली रहता है जिसे दिखला कर लोग बतला रहे थे यह भूतों का काम है। वह बराबर एक जगह की बालू को दूसरी जगह ले जाकर इसी तरह के टीले बनाते रहते हैं। भूतों को और कोई काम नहीं है, वह इस तरह का खिलवाड़ करते रहते हैं, इस पर मेरा विश्वास नहीं था, पर यह तो समझता था कि बालू के इस तरह के चलते रहने के कारण रास्ता ढूँढ़ निकालना सचमुच ही बड़ा मुश्किल है। यहाँ का आकाश, विशेषकर जाड़ों में निरभ्र रहता, तारे बराबर दिखलाई पड़ते हैं। सिंहल में ध्रुवतारा को मैंने उत्तरी क्षितिज के पास देखा था। अपने यहाँ वह शीर्षस्थान के आधी दूर के करीब और यहाँ वह और भी ऊपर उठा हुआ था। हम ध्रुव को अपने बाँयें रखखे पूर्व की ओर जा रहे थे।

क्षार-सरोवर के दुर्ग से दस दिन की यात्रा करने पर हम एक नदी के किनारे पहुँचे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

डेरा डालते वक्त सबने बड़ा संतोष किया। इसी समय कुछ नर-नारी भागते हुये हमारे आये : उन्होंने बतलाया "तुर्क नगरों को लूट कर उनमें आग लगा रहे हैं। लोगों को तरह से मार रहे हैं। हम अवारों को अपना स्वामी मानते थे, अब तुर्कों को मानने के लिये तैयार हैं, लेकिन वह कुछ भी सुनने के लिये तैयार नहीं हैं।" सार्थवाह ने खबर सुनते ही आदमियों को बुला कर सलाह की, मुझसे भी पूछा। सार्थ संकट के लिये वहीं तक नहीं डरता जहाँ तक कि जीते रहने की कुछ भी सम्भावना रहती है। लेकिन, अब तो प्राण और धन का जाना निश्चित सा मालूम होता था, इसलिये उसी वक्त पीछे हटने का निश्चय किया और पाँच कोस पीछे छोड़े कुयें पर हम उसी दिन दोपहर तक लौट आये।

यह लौटना मेरे बिल्कुल दिशा-परिवर्तन का कारण हुआ। चीन में पहुँचने की आशा बिल्कुल छोड़ देनी पड़ी, कम से कम तब तक के लिये, जब तक कि तुर्क अपने राज्य को दृढ़ता पूर्वक स्थापित नहीं कर लेते। हम पिछले रास्ते से ही पीछे लौट कर कृष्णा नदी के तट के नगर में पहुँचे, जहाँ हम कुछ दिनों तक ठहरे थे। मुझे ख्याल आया, शायद कुस्तन से कूचा का रास्ता निराबाध हो। पता लगा कूचा की ओर अब शान्ति है। हम अब केवल बड़े रास्ते पकड़कर ही पीछे नहीं लौट रहे थे, बल्कि आस-पास और दक्षिण के पहाड़ों में जहाँ भी प्रसिद्ध बिहार या विद्वान् के होने की बात सुनते, वहाँ जाते। इस प्रकार तीसरे महीने (ज्येष्ठ) में कुस्तन राजविहार में लौट आये। मुझे पहली यात्रा में रथोत्सव को देखने का अवसर नहीं मिला था, इसलिये मैंने इस बात का ध्यान रक्खा, कि चौथे महीने के आरम्भ होने से पहले ही कुस्तन पहुँच जायें।

राजधानी से डेढ़ कोस पश्चिम "नूतन राजविहार" है, हमने वहीं ठहरने का निश्चय किया। नूतन कहने का यह अर्थ नहीं कि यह इसी समय बना था। गोमती-विहार की अपेक्षा यह नूतन जरूर था। इसे ढाई सौ वर्ष के करीब पहले कुस्तन के एक राजा ने बनवाया था, तब से दस-ग्यारह राजा हो गये। विहार का चैत्य ढाई सौ हाथ ऊँचा और सोने-रूपे के सुन्दर कारुकार्य से युक्त जगमग-जगमग करता है। इसके निर्माण में बहुमूल्य द्रव्यों का दिल खोल करके उपयोग किया गया है। इस महाचैत्य के पीछे प्रतिमागृह है जिसे भी उसी तरह सुन्दर बनाया गया है। इसके स्तम्भ, द्वार, गवाक्ष सभी सुवर्णमंडित हैं। भिक्षुओं के आवासों को बनाने में इसी तरह सुरुचि और धन का मुक्तहस्त व्यय किया गया है। यहाँ के राजाओं के नामों के आरम्भ में विजय शब्द जरूर आता है। हमारे वहाँ रहने से पाँच सौ वर्ष पहले विजय सम्भव ने इस राजवंश की स्थापना की। वह अपने अभिषेक के पाँचवें वर्ष बुद्धधर्म में दीक्षित हुआ। उस के गुरु भिक्षु वैरोचन ने भारतीय लिपि से वह अक्षर तैयार किये जिनमें खोतनी भाषा आज भी लिखी जाती है। सिंहल के राजा-प्रजा जिस तरह बुद्ध-धर्म में एकान्त निष्ठा रखते हैं, वही बात कुस्तन के बारे में कही जा सकती है। राजवंश धन-धान्य के रूप में अपनी श्रद्धा को इस प्रकार प्रदर्शित नहीं करता, बल्कि राजकुमार और राजकुमारियाँ भी भिक्षु-भिक्षुणी बन कर संघ में प्रविष्ट होते हैं। यहाँ के भिक्षु चाहे महायान के हों, या हीनयान के, सभी विनय के पालन करने में बड़ी तत्परता दिखलाते हैं। तथागत के धर्म का प्रभाव यहाँ के लोगों पर स्पष्ट दिखाई पड़ता है। उनका बर्ताव सुन्दर होता है। स्वभावतः वह कोमल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकृति के होते हैं और सत्य न्यायनिष्ठ होते हैं। साहित्य से उनको बहुत प्रेम है। बड़े खुले दिल के होते हैं और मेला-महोत्सव मनाने में बहुत तत्पर दिखाई देते हैं। संगीत और नृत्य का असाधारण प्रेम भी इसी के कारण है। कई शताब्दियों पहले एक चीन-राजकन्या व्याह कर यहाँ आई थी। उसी ने पहले पहल इस देश में चीनांशुक (रेशम) का प्रचार किया था। साधारण लोग सफेद सूती कपड़े अधिक पहनते हैं, और धनी लोग हल्के रेशम को ज्यादा पसन्द करते हैं। जाड़ों में ऊनी और चर्म की पोशाक भी पहनी जाती है यद्यपि साधारण लोग रूई भरे जामे पहनते हैं।

कूची में
(552-553 ई०)

चार महीने कुस्तन (खोतन) में रहने पर हमें यहाँ के लोगों के और भी घनिष्ठ सम्पर्क में आने का अवसर मिला। इनके जैसे अतिथि-प्रेमी और मधुर-स्वभाव वाले लोग बिरले ही मिलेंगे। उस वक्त यही धारणा थी, किन्तु कूचियों के देश में पहुँच कर हमें मालूम हुआ कि इन और ऐसे ही और कितने ही गुणों से विभूषित संसार में अद्वितीय कूची जाति है। खसगिरि से सीता (यारकन्द) नदी से कूचियों के देश में आसानी से पहुँचा जा सकता था, लेकिन कुस्तन वाले अपने नगर के नाम की नदी के किनारे-किनारे मरुभूमि के भीतर से उस स्थान पर पहुँच जाते हैं, जहाँ पर सीता और कुस्तन नदियाँ मिलती हैं। यहाँ के लोग नदियों को अपनी राजधानियों के नाम से पुकारते हैं। भिक्षु अपनी इच्छानुसार दोनों में से एक को सीता कहते हैं। मेरे लिये यह कहना मुश्किल था कि कुस्तन को सीता कहा जाये, या दूसरी को। इसमें शक नहीं कि पानी अधिक कुस्तन में है और वैभव, विद्या और दूसरी बातों में कांस्यदेश का सबसे बड़ा नगर कुस्तन है। कुस्तन नदी राजधानी से सीधे उत्तर की ओर बहती है और एक ही दिन जाने पर नदी के दोनों तरफ अनन्त बालुकाराशि आ जाती है। वालू नदी को सोखना चाहती है और नदी अपराजित हो उत्तराभिमुख बढ़ती जाती है। लोग बालुका और नदी के इस संघर्ष में अपना काम बनाने पर तुले हुये हैं। नदी के पानी की तरावट जहाँ तक जाती है, वहाँ तक गाँव या सरकंडे के जंगल पड़ते हैं। लोगों ने पानी से नहरें बना, कृषि और बगीचे के लायक बहुत-सी भूमि निकाल ली है। क्षार-सरोवर से आगे की यात्रा की तरह यहाँ मरुभूमि में भटकने का डर नहीं है, क्योंकि नदी ने स्वयं हमारे रास्ते से बालू को दूर हटा दिया है। लेकिन, कुस्तन नदी आगे बढ़ती कुछ क्षीण होती गई है। अन्त में पश्चिम से आने वाली अपनी बहिन (यारकन्द) नदी से जहाँ मिलती है, वहाँ वह और भी क्षीण है। हमारा संगम दोनों नदियों के संगम के पहले ही से बालुका नगरी को जाता था, तो भी संगम देखने के लिए हम वहाँ गये। संगम के बाद यह सीता (तरिम) नदी हो जाती है, इसमें कोई विवाद नहीं। आगे उत्तर तरफ हिमाच्छादित शिखर-पंक्तियों वाले पहाड़ दिखाई पड़ते हैं और दक्षिण में अनन्त मरुभूमि। उत्तर के पहाड़ों से श्वेत नदी (अक-सू) जहाँ पर सीता नदी से मिलती है, वहाँ से हम उसे पार हो उत्तर की ओर नदी के किनारे-किनारे बढ़े। मुख्य धारा से जितना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही आगे बढ़ते गये, उतना ही मरुभूमि से दूर हटते गये। बालुका नगरी के निवासी वही हैं जो कि कूची (कुशी) के। उनकी भाषा में बिल्कुल नाममात्र का अन्तर है। यहाँ के भिक्षु विनय में सर्वास्तिवाद और विचारों में महायान के अनुयायी हैं। बालुका नगरी से उत्तर-पश्चिम की ओर एक वणिकपथ दुर्गम पहाड़ों में घुसकर समुद्र जैसे एक महासरोवर के किनारे जाता है। इतना शीतल स्थान होने पर भी जाड़ों में इस सरोवर का पानी बर्फ नहीं बनता, इसीलिए लोग इसे तप्तसरोवर (इस्सिक-कुल) कहते हैं। हमारे हिमवान् की तरह यह पर्वत भी दुलंघ्य और रमणीय है। लेकिन, हरेक चमत्कारिक दृश्य की बात सुनकर आदमी यदि अपनी यात्रा की दिशा को मोड़ता रहे, तो उसकी स्थिति सूखे पत्तों की तरह हो सकती है। हमारे लिये कूची नगरी और भी दर्शनीय थी, इसलिए हमने तप्तसरोवर जाने की इच्छा को रोका। बालुका नगरी और उसके आसपास का जनपद एक पृथक् राजा के अधीन है। चीन ने वीर कूची जाति को निर्बल करने के लिए देश को दो राज्यों में बाँट दिया, इसी का यह फल है, नहीं तो पहले यह एक ही कूची राज्य था।

बालुकापुरी के विहार में पाँच-सात दिन रहकर हम लोग पूर्व की ओर बढ़े। बाँयें उत्तर में पहाड़ बिल्कुल नजदीक दीखता था, यद्यपि यह केवल भ्रम था। शरद् और हेमन्त में आकाश निर्मल और नीरज होता है, इसी के कारण आदमी को ऐसा भ्रम होता है। पहाड़ों की ओर से कितनी ही छोटी-छोटी नदियाँ आ मिलीं, लेकिन बहुतों में पानी नाममात्र था। पहाड़ के भीतर हम दूर नहीं जा सकते थे, लेकिन जिन विहारों की महिमा और प्रसिद्धि हमने सुनी, वहाँ हम जरूर गये। बालुकापुरी से कूची नगरी सौ कोस से अधिक दूर नहीं है, लेकिन जाने के लिए हमें कोई जल्दी नहीं थी, इसलिए हम वहाँ एक महीने में पहुँचे। अब नवें महीने (अगहन) का अन्त शरद् ऋतु समाप्त हो हेमन्त का आरम्भ था। नहीं सोचा था कि हमें कूची में दो साल रहने पड़ेंगे। दो वसन्तों और दो बरसातों के देखने के बाद बिना पत्र और हरियाली की उस भूमि को देखते उतना आकर्षण नहीं मालूम होता था। इस देश में गेहूँ, चावल, बाजरा बहुत होता है और उससे भी अधिक वह अपनी द्राक्षा (अंगूर), दाड़िम, खूबानी, नासपाती, आड़ू आदि के लिए मशहूर है। सोना, ताँबा, लोहा, सीसा, राँगा यहाँ से उत्तर के पहाड़ों में निकलता है जो भी देश की समृद्धि का एक बड़ा कारण है। इतने सुशिक्षित, विद्याप्रेमी ईमानदार लोग दुनिया में बहुत कम मिलेंगे। गीत-वाद्य-नृत्य में इतने कुशल और कहीं नहीं हैं, यह महाचीन वालों की भी मान्यता है। चीन-दरबार में यहाँ के कलाकारों की बड़ी माँग है। गर्मियों में लोग सूती कपड़े पहनते हैं, लेकिन मुख्यतः इनकी पोशाक ऊनी है। पुरुष बालों को छोटा करके रखते हैं और कोई-कोई ही दाढ़ी रखने के शौकीन हैं। इनके सिर पीछे की ओर अधिक चिपटे होते हैं जिसके लिए कहा जाता है कि मातायें अपने शिशुओं के सिर को दबाकर ऐसा रूप देती हैं।

राजधानी में इतना देर करके पहुँचने का एक फल हुआ कि हमारे आगमन की सूचना वहाँ पहले ही पहुँच गई थी और भारतीय पंडित-भिक्षु के आगमन की बड़ी प्रतीक्षा हो रही थी। कूची देश में सौ से अधिक संघाराम हैं जिनमें भिक्षुओं की संख्या पाँच हजार से अधिक बतलाई जाती है। उनका अधिक भाग राजधानी के आस-पास के विहारों में रहता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजविहार यहाँ का सबसे बड़ा और समृद्ध विहार है। हमारे रहने का प्रबन्ध वहीं पर किया गया था। महायान ने अपने भिक्षुओं को मांस खाना वर्जित कर रक्खा है, किन्तु सर्वास्तिवाद, महाविहार और दूसरे पुराने (हीनयान) निकायों के विनय में त्रिकोटि-परिशुद्ध मांस के खाने का निषेध नहीं है। खाने के लिए जो पशु जान-बूझकर नहीं मारा गया, उसे वह अन्न के समान मानते हैं। बहुत से विहारों में महायान स्वीकृत करने के बाद जिस तरह मांस वर्जित हुआ, उस तरह कूची के विहारों में नहीं है। यहाँ के भिक्षुओं के भोजन में मांस भी सम्मिलित है। विनय के पालन करने में भी यहाँ के भिक्षु अधिक तत्पर दिखाई पड़ते हैं। नगर से दो योजन पर पहाड़ के पास दो प्राचीन संघाराम है जिनमें अत्यन्त सुन्दर बुद्ध-प्रतिमायें स्थापित हैं। पूर्वी विहार की उपस्थानशाला में एक पीले रंग का जेड़ पाषाण है, जिसके ऊपर बुद्ध के चौदह अंगुल लम्बे और छः अंगुल चौड़े चरण-चिह्न बने हुए हैं। चरण-चिह्न के दर्शन करने के लिए हम भी गये। सिंहल में भी एक अत्यन्त उन्नत पर्वतशिखर पर हमने तथागत के चरण (श्रीपाद) के होने की बात सुनी थी। वहाँ जाना भी चाहते थे, लेकिन दुर्घटना के कारण हम नहीं जा पाये। बुद्धिल के संसर्ग से हमें मालूम था कि बहुत पुराने समय में तथागत की प्रतिमायें नहीं बनती थीं; उस समय चैत्य, पीठासन या बोधिवृक्ष पूजे जाते थे। शायद उसी समय चरण भी पूजे जाने लगे। प्रतिमाओं की पूजा कनिष्क राजा के समय के आस-पास ही शुरू हुई, इसलिए यहाँ के तथागत के श्रीपाद को देखने पर मुझे ख्याल आया, शायद इस देश में यह सबसे पुरानी पूजा-प्रतीक है। लेकिन जिस महार्घ और आकार में दुर्लभ पाषाण में यह बनी हुई है, उससे डर लगता है कि कहीं किसी की लोभी आँखें इस पर न पड़ें। इसके लिए इस श्रीपाद को ही क्यों दोषी ठहराया जाये, जबकि विहारों में हरेक राजा और हरेक पीढ़ी अपार सोना-रूपा और रत्न से सजाने की कोशिश कर रही है।

राजधानी के पश्चिमी दरवाजे के बाहर रास्ते के दोनों तरफ 60 हाथ से अधिक ऊँची बुद्ध की दो विशाल प्रतिमायें खड़ी हैं। पंचवार्षिक महोत्सव यहीं पर हुआ करते हैं। यह महोत्सव शरद्-पूर्णिमा के समय दस दिन तक रहता है जिसमें सारे देश के नर-नारी उपस्थित होते हैं। वैसे हर साल भी उत्सव दस दिन मनाया जाता है। कुस्तन की तरह यहाँ पर भी रथों के ऊपर बुद्ध-प्रतिमा को बैठकर हरेक संघाराम बारी-बारी से अपनी शोभा-यात्रा निकालता है। इस जगह से पश्चिमोत्तर तथा नदी के किनारे आश्चर्य-विहार। यह विहार अपने भिक्षुओं के विनयपालन और विद्या के लिए बहुत प्रसिद्ध है। कूची के भिक्षु अपनी भाषा के अतिरिक्त जम्बू-द्वीप की भाषा में धर्म-ग्रंथों को पढ़ते हैं। यहाँ केवल पिटकों को ही नहीं, बल्कि पाणिनि के व्याकरणसूत्र और व्याकरण महाभाष्य जैसे ग्रंथों का इतनी अच्छी तरह से पठन-पाठन होता है जितना मध्यमण्डल के विहारों से बाहर कहीं नहीं दिखलाई पड़ता। इसी से यहाँ के भिक्षुओं के विद्यानुराग का पता लगता है। यही कारण है जो दूर-दूर से लोग यहाँ विनयपिटक और दूसरे शास्त्रों के अध्ययन के लिए आते हैं।

कूची को कुची या कुश भी कहा जाता है। वस्तुतः यहाँ के लोग च और श के उच्चारण में बहुत कम भेद कर पाते हैं। इनकी भाषा हमारी भाषाओं से बहुत भेद रखती है, यद्यपि वह उसी वंश की है, इसमें सन्देह नहीं। उदाहरणार्थ—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संस्कृत	कूची	संस्कृत	कूची
अवीचि	अविश	7 सप्त	शपद्ध
द्वीप	द्विप्	8 अष्ट	औकध्
कलियुग	कलियुक्	9 नव	जू
रूप	रूप्	10 दश	शक्
अंजलि	अंचलीयि	11 एकादश	शक्शपि
अमात्य	आमाश्	12 द्वादश	शक्वेपि
चक्र	चक्कर	20 विंशति	विकी
गंगा	गङ्क	30 त्रिंशत्	तरियाक्
मार्गफल	मार्कपल	40 चत्वारिंशत्	ष्त्वराक्
राम	रामे	50 पंचाशत्	प्याजक्
लक्ष्मण	ल्यास्मं	60 षष्ठि	शक्शक्
दसग्रीव	दशग्रीवे	70 सप्तति	शक्तुक्
लंका	लांक	80 अशीति	ओक्तुक्
1 एक	श	90 नवति	न्वुक्
2 द्वे	वे	100 शत	कन्ध
3 त्री	त्रि	1000 सहस्र	वल्त
4 चत्वारि	ष्त्वर	10000 दशसहस्र	तूमा
5 पञ्च	पज	कोटि	कोरि
6 षट्	षक्		

कुचीनगरी में कनिष्क राजा का बनवाया विहार नहीं है। लोग कुछ स्तूपों को कनिष्क और अशोक का बनवाथा मानते हैं। लेकिन, कूचा या कुश के एक होने में मुझे कोई सन्देह नहीं। कनिष्क के वंश वाले राजाओं के लिए "कोषानो सौनानो साव" (कुषा के शाह-शाह) से इसमें सन्देह कम रह जाता है कि कुषाण-वंश कूचा ही से गया था और इसी कारण कनिष्क ने अपनी प्राचीन मातृभूमि को बड़े प्रयत्न से अपने राज्य में मिलाया। कूचा के लोग जीवन को क्रीड़ा और उत्सव में बिताते वक्त बहुत विलासी से मालूम होते हैं, लेकिन दूसरी तरफ वह बड़े वीर हैं। चाहे नगर के हों या ग्राम के सभी जवान और प्रौढ़ योद्धा हैं। अपने संख्या-बल के कम होने तथा पास में महाचीन या अवार-तुर्क जैसे बहुसंख्यक घुमन्तुओं के मुकाबिले में लड़कर उन्होंने देख लिया कि सब कुछ करने पर भी विजय अन्त में हमारे हाथ में नहीं आती। इसलिए किसी की अधिराज्यता स्वीकार करना ही वह अच्छा समझते हैं। चीन की अधिराज्यता उन्होंने स्वीकार की थी, उससे पहले हूण भी यहाँ के कितने ही समय तक अधिराज थे। अवारों का जब बल बढ़ा, तो इन्होंने उनकी प्रभुता को स्वीकार किया। तुर्कों की अधीनता स्वीकार करने में तभी तक उन्होंने आनाकानी की, जब तक कि अवारों के साथ तुर्कों की तलवारों ने अपने पक्ष में फैसला नहीं करा लिया। यहाँ आने पर मालूम हो गया कि जहाँ तक अवारों और तुर्कों के संघर्ष का सम्बन्ध है, वह बहुत पहले ही यहाँ खतम हो चुका है। लेकिन, चीन का रास्ता अब भी कंटकाकीर्ण है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कूची पुरी में रहते ही हमें यहाँ के महाविद्वान् कुमारजीव का नाम सुनने में आया था, लेकिन उनकी विद्वत्ता चीन आने के बाद ही पूरी तरह मालूम हुई। वस्तुतः चीन में मैंने जो काम किया, वह उनके ही चरण-चिन्हों पर चल कर किया। करीब दो शताब्दियाँ हुई, जब यह महापुरुष इसी कूचा नगरी में एक राजकन्या के गर्भ से पैदा हुये थे। अपने पिता के देश कश्मीर और कूचा में उन्होंने नाना शास्त्रों का अवगाहन किया और अद्वितीय विद्वान् होकर कूची महाराजा के गुरु के तौर पर यहाँ बड़े वैभव के साथ रहने लगे। कुमारजीव की ख्याति चीन तक पहुँची, जब माँगने पर वह नहीं मिले, तो राजा युद्ध करके विजय के रूप में कुमारजीव को चीन ले गया। कुमारजीव का अपनी जन्मभूमि के प्रति इतना अगाध प्रेम था कि उन्होंने संसार में हुये अनेक बुद्धों में से 99 को कूचा में, 25 को बालुका में, 20 को कपिलवस्तु में, 60 को वाराणसी में, 26 को उद्यान में, 225 को चीन में, 100 को पुरुषपुर में पैदा हुआ बतलाया। पूरा न मालूम होने पर भी इतना तो कूची में ही मालूम हो चुका था कि कुमारजीव ने हमारे बहुत से ग्रन्थों का अनुवाद चीनी भाषा में किया है और वहाँ वह सबसे बड़े आचार्य माने जाते हैं।

कूची-भिक्षु अपनी भाषा की अपेक्षा भारतीय भाषा में ही धर्म-ग्रन्थों को पढ़ना पसन्द करते हैं और उस पर उनका असाधारण अधिकार भी है, क्योंकि वह व्याकरण और दूसरे शास्त्रों को बड़े परिश्रम से पढ़ते हैं। लेकिन, गृहस्थ नर-नारियों के लिये वह उतना सुगम नहीं है, इसलिये उन्होंने बहुत से ग्रन्थों का अनुवाद अपनी भाषा में भी कर लिया है। संगीत और नाटक से यहाँ के लोगों का अत्यन्त प्रेम होने के कारण इन्होंने अपनी भाषा में कितने ही नाटक लिखे या अनुवादित किये हैं। "नन्दप्रवराजन" (नन्दप्रव्रज्या), "नन्द बिहार पालन" जैसे कई नाटक कूची भाषा में मौजूद हैं जिनका वह बड़ा सुन्दर अभिनय करते हैं। मैत्रेय बुद्ध के जीवन का नाटक महोत्सव के समय यहाँ कई दिनों तक अभिनीत किया जाता है। मैत्रेय बोधिसत्व की महिमा यहाँ बहुत मानी जाती है, शायद इसका कारण यह भी है कि बुद्ध के भिक्षु वेष और आचरण के कारण अभिनय में उतनी स्वतन्त्रता नहीं रहती जितनी कि गृहस्थ के रूप में मैत्रेय बोधिसत्व के बारे में।

राजविहार और आश्चर्यविहार दोनों से मेरा सम्बन्ध हो गया था। वहाँ के भिक्षुओं के बहुत आग्रह पर मैंने एक वर्षावास आश्चर्यविहार में भी किया। समय यहाँ अच्छी तरह बीत रहा था। मेरी इच्छा न रहने पर भी राजा और राजामात्य हर तरह से प्रतिष्ठा और सम्मान करने की चेष्टा करते थे। भिक्षुओं की कोशिश थी कि मैं यहीं पर रह जाऊँ। लेकिन, मैंने यात्रा का जो संकल्प किया था, वह इतनी जल्दी समाप्त हो जाये, यह मुझे पसन्द नहीं था। मेरे साथी तीनों भिक्षु यहाँ के निवास के समय का उपयोग अच्छी तरह कर रहे थे। उन्होंने बड़ी तत्परता से अध्ययन किया। संघिल की प्रतिभा और साहस को देखकर मेरा उनके साथ विशेष पक्षपात था, यद्यपि मैं उसे बाहर से दिखलाता नहीं था। कूची में एक और भी प्रथा है थोड़े समय के लिये भिक्षु बन जाना या भिक्षु बन कर एक से अनेक बार गृहस्थ और भिक्षु के रूप में बदलते रहना। पहले मुझे यह प्रथा कुछ अच्छी नहीं लगी। सोचता था, यहाँ के मोदप्रिय लोग अपने जीवन से तो खेल करते रहते ही हैं, प्रव्रज्या से तो इन्हें खेल नहीं करना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चाहिये। फिर मुझे याद आता था, वैशाली के लिच्छवियों के बारे में तथागत का विचा भगवान को लिच्छवि कुमार और कुमारियाँ त्रायस्त्रिंश स्वर्गलोक के देव-कुमारों और कन्याओं जैसी प्रतीत हुई थीं। मुझे भी कूची के नर-नारियों का जीवन उसी तरह का मा होता था। इतने सुन्दर नर-नारी मैंने कहीं नहीं देखे। यद्यपि उनके बारे में यही राय चीन लोगों की नहीं है। वह उनके सुनहले या अरुण केशों तथा अग्नि-समान रंग को देख कर बानर जैसा बतलाते थे। सौंदर्य को देश-देश में लोगों ने अलग मान लिया है, इसलिये चीन के लोग कूची लोगों को हमारी दृष्टि से नहीं देखते, तो इसके लिये उन्हें दोष नहीं चाहिये। हमारे लोग जिस रूप-रंग को चरम सौन्दर्य मानते हैं, वह कूचियों में है। भिक्षुओं प्रति तो धार्मिक भावना के कारण उनका सम्मान और स्नेह है, किन्तु आपस में या विदेशि भीवह उसी तरह खुल कर मिलते हैं। तुर्क और अवार दोनों ही का रंग-रूप चीनी लोगों मिलता है। उनकी चिपटी नाकें और तिर्छी आखें, श्मश्रुहीन चेहरे हमें उतने पसन्द नहीं आ उत्तर के घुमन्तू अशिक्षित, क्रूर और उजड्ड स्वभाव के हैं। लेकिन, कूची के लोगों के वर्ता वह भी प्रभावित हुये बिना नहीं रहे। वह देखते थे कि कूची लोग एक ओर लड़ने में बड़े हैं, तो दूसरी तरफ वह दिल खोलकर हमसे मिलने के लिये भी तैयार हैं। अवारों और तुर्कों संघर्ष में कूचा के लोगों को पिसने का डर था, लेकिन उन्होंने इतनी चतुराई से काम लिया चक्की के दोनों पाटों के बीच में पड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

यहाँ के भिक्षु क्यों प्रव्रज्या के साथ खेल करते हैं, इसका कारण मालूम न होने मुझे देर नहीं लगी। त्रायस्त्रिस के देवकुमार और देवकुमारियाँ भी ऐसा ही करते। सुखपूर्ण जीवन बिताने की सारी सामग्री इनके पास मौजूद है और उसके उपयुक्त ही मन भी इनके पास है। यहाँ के लोग अगर कुछ नहीं जानते हैं, तो वह है दुःख और विषाद का प्रकट करना दूसरों के सामने इस तरह का प्रदर्शन इनके लिये अपने आत्म-सम्मान के विरुद्ध है। जब शिशु पैदा होता है और जब मरता है, सारे जीवन में वह हर्ष और उत्सव ही अपने चारों देखता है, जीवन को यातना भोगने का नहीं, बल्कि आनन्द मनाने का साधन मानता है शायद सर्वास्तिवादी हीनयान से जल्दी ही महायान में जाने का भी एक कारण यही हु क्योंकि उसमें जीवन संभोग की सीमायें और बढ़ जातीं हैं। मैं बतला चुका हूँ, यहाँ के विशे कर आश्चर्यविहार के भिक्षु विनय नियमों के पालन करने में बड़े कठोर होते हैं। यह उनकी तृप्ति, इनकी ईमानदारी की प्रकृति के अनुकूल है। जिस वक्त जो व्रत धारण करते हैं उसे वह मनसा-वाचा-कर्मणा पूरा करना चाहते हैं। यदि अपने को उसके पालन में असमर्थ देखते हैं, तो चीवर छोड़ कर गृहस्थ बन जाते हैं। अप्सराओं और देवकन्याओं का देश वस्तुतः प्रव्रज्या के लिये नहीं है। तो भी पाँच हजार के करीब यहाँ के भिक्षुओं का होना यही बतलाता है, कि तथागत के उपदेशों का इनके ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा।

मैंने सुना था, कुमारजीव के पिता कश्मीर में पैदा हुये एक भिक्षु थे, जो यहाँ आकर राजमानित हो रहने लगे। फिर राजकन्या के सौंदर्य को देखकर मुग्ध हो गये और उन्होंने चीवर छोड़ गृहस्थ का जीवन स्वीकार किया। यहाँ के लिये यह कोई अचरज की बात नहीं थी। जहाँ सुन्दरियों की खान हो, मुक्त स्वच्छन्द समाज के चारों तरफ प्रेम और स्नेह की अविरल धारा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह रही हो, कुमारजीव के पिता जैसे आदमियों का ऐसा न करना ही अचरज की बात होती। सम्मान और स्नेह की कहाँ सीमा है, यह तरुण-तरुणियों के बीच जानना बहुत मुश्किल है। मुझे भी डर लग रहा था, लेकिन, मेरे सामने एक बड़ा उद्देश्य था जिसको दृढ़ करने में वुद्धिल ने बड़ी सहायता की थी। यदि मैं उससे विचलित होता, तो यह अपने मित्र के प्रति विश्वास-घात होता, यह भी कारण था, जो मैंने कभी सम्मान और स्नेह की सीमाओं को मिलने नहीं दिया। लेकिन, यही बात हमारे साथी दो तरुण भिक्षु नहीं कर सके।

× × ×

बाह्लीक-भिक्षु रेवत प्रतिभा सम्पन्न तरुण थे। उन्हें पढ़ने-लिखने का शौक था, जिसके कारण वह मेरी तरफ आकृष्ट हुये थे। जिस तरह के तीन भिक्षु मुझे साथी मिले थे, वैसे बिरले ही पर्यटक को मिले होंगे। हम जितना ही अधिक एक दूसरे के साथ परिचित होते गये, उतना ही हमारा स्नेह और सम्मान बढ़ता गया। यह सचमुच ही दुःख की बात थी कि मुझे अपने दो साथियों से वंचित होना पड़ा। बाह्लीक-भिक्षु रेवत और गुणों के साथ असाधारण सुन्दर थे। वह उसी कुषाण राजवंश में पैदा हुये जिसने किसी समय भारत, सोग्द तथा दूसरे देशों पर शासन किया था। राजवंश को खतम हुये दो शताब्दियाँ हो गई, किन्तु बुद्ध-धर्म के प्रति अपना प्रेम और श्रद्धा दिखलाते हुये कुषाणों ने जो कीर्त्तियाँ अपने पीछे छोड़ी थीं, वह अब भी लोगों के हृदय में उनके प्रति सम्मान पैदा करती हैं। राजवंश पद-भ्रष्ट होने से पहले ही टुकड़ों-टुकड़ों में बँटा; फिर उनमें से कितने ही नष्ट हो गये और कुछ येथों (श्वेत-हूणों) के सामन्त बन गये। रेवत बाह्लीक (बलख) में रहने वाले ऐसे ही एक कुषाण-सामन्तकुल में पैदा हुये। अपनी पैतृक श्रद्धा के कारण माता-पिता की इच्छा पूर्ण करते हुये वह कुछ ही वर्षों पहले भिक्षु हुये थे। उनमें देशाटन की पिपासा थी, यदि इस पिपासा के वेग का प्रतिरोध करने वाली और कोई शक्तिशाली बात न हुई होती, तो सम्भव है उनसे मुझे वंचित न होना पड़ता।

रेवत का खानदान कांस्यदेश और कूची के अधिक नजदीक रहता था, इसलिये वह भूला नहीं था कि कुषाण मूलतः कूची के रहने वाले थे। कूची में आने पर रेवत के हृदय में उस भूमि के प्रति एक तरह का अद्भुत आकर्षण पैदा हो गया। वह कूचियों के बारे में जानने के लिये बहुत उत्सुक थे, और बड़ी तत्परता के साथ वहाँ की परम्पराओं की जानकारी प्राप्त करते रहे। कूची-तरुण और तरुणियाँ रूप और रंग दोनों में असाधारण सुन्दर होते हैं — लेकिन, इसका यह अर्थ नहीं कि वहाँ सौन्दर्य हीन लोग होते ही नहीं। कूची को सुन्दरियों की खान कहने का मतलब यही है कि वहाँ की स्त्रियाँ और देशों की अपेक्षा अधिक संख्या में सुन्दर होती हैं। रेवत कूची-राजधानी के सुन्दर तरुणों में किसी का भी मुकाबिला कर सकते थे। भिक्षुओं का चीवर उनके सौन्दर्य के लिये बाधक नहीं था। रंग-रूप में वह कूचियों की तरह सुवर्ण वर्ण थे, आँखें उनकी भी अभिनील थीं। शरीर जैसे साँचे में ढला हुआ था, यद्यपि उनके सिर और मुँह के बाल ही घुटे नहीं थे, बल्कि भौंहों पर भी अस्तुरा फिर जाता था। मामूली कपड़े के काट कर सिले हुये शरीर के चीवर आग को ढाकने वाली राख की तरह उसे छिपाने का प्रयत्न, करते थे। लेकिन जो निसर्गतः सुन्दर है, उसे न बाहरी प्रसाधन की आवश्यकता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होती और न कोई चीज उनके सौन्दर्य को कम कर सकता हैं। रेवत चीवर पहने संघाटी से शरीर को ढाँके हाथ में लोहे का भिक्षापात्र ले भिक्षा माँगने के लिये जिस वीथी में भी चले जाते, सैंकड़ों आँखें अतृप्त हो उनकी तरफ देखने लगतीं और भिक्षा-पात्र तो चार-पाँच घरों तक पहुँचते-पहुँचते आवश्यकता से अधिक भर जाता। मुझे इसकी भनक लग चुकी थी, इसलिये मैं रेवत को सावधान करता रहता था। उनका भी आग्रह था कि कूची-राजधानी छोड़ दूसरी जगह चले चलें। लेकिन, अभी चीन का रास्ता साफ नहीं था।

कुषाणों की परम्परा के सम्बन्ध की उग्र जिज्ञासा उन्हें कूची के एक राजमंत्री के पास ले गई। वह यहाँ के सामन्तों में अपने कुल और वहुज्ञता के कारण बहुत प्रतिष्ठित था। उसने यह बात निश्चित कर दी कि कूचा और कुषा एक ही शब्द हैं और यह भी कि कुषाण मूलतः इसी देश के रहने वाले थे। उसने यह भी बतलाया—"यह देश हमारे वंश की ही एक शाखा खसों के हाथ में था जिनके ही कारण हमारे एक नगर का नाम खशगिरि (काशगर) पड़ा। छह-सात सौ वर्ष हुये, जब कि हमारे लोग यहाँ से महीने भर के रास्ते पर उत्तर और पूर्व में भी फैले हुये थे। उस समय आज के अवारों और तुर्कों के पूर्वज हूण कहे जाते थे जो हमारे लोगों की सीमा पर रहते थे। हमारे पूर्वज सीता-उपत्यका में आने से पहले घुमन्तु पशुपाल थे। उनकी युद्ध की वीरता का कुछ अंश नागरिक बन जाने पर अब भी हमारे पुरुषों में है। हूण बड़े ही दुर्धर्ष थे। उनके आक्रमण वड़े भयंकर होते थे, परन्तु हमारे पड़ोसी होने के कारण वह जानते थे कि शक भी हमसे पीछे नहीं हैं। हाँ, शकों की ही एक शाखा कुषाण थे, हमसे उत्तर के पहाड़ों में रहने वाले शक पहले वूसुन कहे जाते थे। चीन के लोग नगर और ग्राम के जीवन को अपना कर कोमल प्रकृति के हो गये थे जो अक्सर हूणों की लूट के शिकार होते। उन्हीं से बचने के लिये चीन ने हजारों कोस लम्बी महादीवार बनवाई। एक समय चीन हूणों को पूरी तौर से दबाने और नष्ट करने में सफल हुआ। उस समय हूणों को अपने मूल स्थान को छोड़ने के लिये मजबूर होना पड़ा। घुमन्तू-जीवन तो सरोवर नहीं, बहती नदी का पानी है। चलते रहना उसके जीवन के लिये साधारण-सी बात है। अगर एक तरफ रास्ता रुकता है, तो नदी दूसरा रास्ता पकड़ती है। हूण अपनी भूमि से भगाये जाने पर हमारी भूमि पर पड़े और शक-द्वीप की सुन्दर चरागाहों को छीन कर उन्होंने भीषण नर-संहार के साथ हमारे पूर्वजों को उनकी कितनी ही भूमि से भगा दिया। इन्हीं भागे हुये शकों में कुष या कुषाण थे जो इस तरफ आये और अन्य कितने ही दूसरे देशों में चले गये।

राजमंत्री की बातों से रेवत की जिज्ञासा ही तृप्त नहीं हुई बल्कि वह उसके साथ वार्तालाप करने के लिये उसके घर और अधिक जाने लगे। कुछ ही दिनों में, ऐसा मालूम हुआ जैसे राजमंत्री का कोई भूला हुआ पुत्र बहुत दिनों बाद अपनी नगरी में लौटा हो। दोनों में घनिष्ट आत्मीयता स्थापित हो गई। अक्सर हम लोग मंत्री के घर में निमंत्रित होते और बराबर हमारे पास वहाँ से खाने-पीने की चीजें आया करतीं। हममें से किसी को—रेवत को भी—अनिष्ट की कोई आशंका नहीं थी। मंत्री विद्या प्रेमी और साथ-साथ तथागत के शासन में बड़ी श्रद्धा रखता था। उसका अगर कोई इकलौता पुत्र भी होता, तो वह खुशी से भिक्षु-संघ को दे देता। वह ऐसे ही दान का आनन्द रेवत के रूप में अनुभव करता था। वह हमारा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्थायी दायक था। उसके एक ही कन्या थी जो नवतरुणी होने के साथ-साथ कूची राजधानी की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी थी। अपने परिवार में आने वाले तरुण भिक्षु और अपने पिता के स्नेहपात्र को उसने भी अपने सहोदर के तौर पर स्वीकार किया था। इस तरह के स्नेह में रेवत को कोई आपत्ति नहीं हो सकती थी। मंत्रिकन्या अपनी माँ के साथ कितनी ही बार हमारे विहार में पूजा कभी भिक्षुओं को सांघिक दान (भोज) देने के लिए आती। एक साल तक ऐसा ही चलता रहा। कूची के लोगों के बारे में जो कुछ भी जानना था, वह रेवत जान चुके थे। यदि उनकी चली होती, तो उसी समय हमने पूर्व की ओर प्रस्थान कर दिया होता।

यह बतला चुके हैं, कूची के लोग संगीत, नृत्य और नाटच के असाधारण प्रेमी हैं। कोई तरुण-तरुणी ऐसा नहीं हो सकता जो विभिन्न कलाओं का अभ्यास न करता। मंत्रि-कन्या सौंदर्य में नहीं, बल्कि कलाओं में भी असाधारण थी। रेवत अपने घर के किसी प्रकोष्ठ में तंत्री वाद्य के साथ गीत गाते हुये मंत्रि-कन्या को सुना था। लेकिन, उसके और गुणों का परिचय अगले साल के महोत्सव के दिन मिला। वार्षिक महोसत्व के समय कई दिनों तक रात में अभिनय हुआ करते। "नन्द प्रव्रजन" नामक नाटक का अभिनय किया जा रहा था। महाकवि अश्वघोष के सौन्दरनन्द महाकाव्य के आधार पर कूची भाषा में इस नाटक को किसी कवि ने बनाया था। तथागत के सौतेले भाई नन्द असाधारण सुन्दर थे, उनकी पत्नी नन्दा सारे शाक्य गणराज्य की जनपदकल्याणी (सर्वसुन्दरी) थी। नया-नया विवाह हुआ था। नवदम्पत्ती में असाधारण प्रेम था। इसी समय सिद्धार्थ बुद्ध होकर पहले-पहल अपनी जन्म-भूमि देखने कपिल वस्तु पहुँचे। नन्द अपने ज्येष्ठ भाई की सेवा में उपस्थित रहना अपना कर्त्तव्य समझते थे और तथागत भी सेवा का प्रतिफल देना चाहते थे। एक दिन सम्मान प्रदर्शित करते हुये रोज की तरह नन्द ने बुद्ध के भिक्षापात्र को अपने हाथ में ले रक्खा था। बुद्ध को न जाने क्यों ख्याल आया—ये हाथ भिक्षा-पात्र के ही योग्य हैं। नन्द की पत्नी कोठे के ऊपर धोये हुये केशों को सुखाती खड़ी थीं। किसी सहेली ने आकर कहा—देखो, तुम्हारे नन्द भिक्षापात्र लिये तथागत के पीछे-पीछे जा रहे हैं। नन्दा ने कोठे के ऊपर से झाँक कर देखा। उसका हृदय काँपने लगा। नन्द चाहते थे कि बुद्ध अपने पात्र को माँगें और मैं घर लौट जाऊँ। लेकिन, बुद्ध ने ऐसा नहीं किया। नन्द भी पीछे-पीछे चलते गये। नन्दा ने यह देखकर अपने संकोच को हटाकर कहा—"आर्यपुत्र, जल्दी अइयो"। लेकिन, आर्यपुत्र कहाँ जल्दी आने वाले थे। उन्होंने सदा के लिए अपने अग्रज का पथ पकड़ लिया। इसी दृश्य का अभिनय उस दिन के नाटक में किया जा रहा था। मंत्रि-कन्या नन्दा बनी थी। नाटक अन्तिम वियोग के स्थान पर पहुँचा, तो उसने कमाल कर दिया। हजारों की दर्शक मंडली आँखों से आँसू बहा रही थी और अभिनेत्री स्वयं वेहोश होकर रंगमंच पर गिर पड़ी। भिक्षु आमतौर से नृत्य, नाटच देखने नहीं जाते, लेकिन यह तो तथागत और उनके श्रावक के जीवन से सम्बन्ध रखने वाला नाटक था, इसलिये इसे देखने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं हो सकती थी। रंगमंच के पास कितने ही भिक्षु प्रेक्षक के तौर पर बैठे थे जिनमें रेवत भी थे। उस दिन उन्होंने अपने मित्र की पुत्री को पूर्ण रूप में देखा। अत्यन्त करुण अवस्था में पहुँचकर तरुणी का सौंन्दर्य अपनी चरम काष्ठा पर पहुँचा था। न जाने कितने समय से अन्तस्तल में कुछ भाव स्वयं अंकुरित हो रहे थे जो इस समय फूट निकले। रेवत आकृष्ट हो गये। यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि मंत्रि-पुत्री पहले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही से उन पर मुग्ध हो चुकी थी। कूची में चीर-चीवर छोड़कर भिक्षुओं का गृहस्थ बनना कोई असाधारण बात नहीं थी, न इसके लिये उस तरुणी या उसके परिवार को लज्जित होने की आवश्यकता थी। कुशल अभिनेत्री वह अवश्य थी, लेकिन उस दिन जो अद्भुत अभिनय करते हुये उसने अपनी चेतना खो दी थी, उसका कारण रेवत का इतना नजदीक बैठना था।

आगे की कथा, जहाँ तक हम लोगों से सम्बन्ध है, बहुत संक्षिप्त है। दोनों के प्रेम को जब पिता-माता ने सुना, तो उनके हर्ष का ठिकाना नहीं रहा—उन्हें एक योग्य पुत्र मिल रहा था। रेवत ने एक दिन बड़े संकोच के साथ आँखों में आँसू भर कर मुझसे क्षमा माँगते हुए भिक्षु-जीवन समाप्त करने की आज्ञा मांगी और चीवर छोड़कर वह मंत्री के गृह-जामाता बनकर चले गये।

× × ×

सुमन कम्बोज-निवासी थे, हमारा उनका परिचय उद्यान से ही हुआ था, और मेरे पास जो कुछ भी ज्ञान था, उसका अधिक भाग वह मुझसे सीख चुके थे। हमारे देश में और देशों की तरह कितने ही भिक्षु चिकित्साशास्त्र का थोड़ा-बहुत अध्ययन करते हैं। तथागत की भेषज्य गुरु के रूप में जहाँ मूर्तियाँ स्थापित हों, लोग बड़ी श्रद्धा-भक्ति से भेषज्यगुरु की पूजा करते हों; वहाँ भेषज्य शास्त्र की ओर भिक्षुओं का ध्यान जाना स्वाभाविक था। किसी को दुःखी देखकर यथाशक्ति उसकी सहायता करना भिक्षु अपना कर्त्तव्य समझते हैं, इसलिये भी सुमन भेषज्यशास्त्र की ओर झुके थे। विदेशों में पर्यटन करते वह इस विद्या से आत्म-कल्याण और परकल्याण दोनों कर सकते थे। चाहे चिकित्साशास्त्र की ओर बहुतों का झुकाव हो, लेकिन सभी कुशल वैद्य नहीं बन जाते। सुमन का इस तरफ झुकाव था। दूसरे शास्त्रों के अध्ययन की ओर यदि उनका बहुत ध्यान न होता, तो उन्होंने चिकित्साशास्त्र को पूरी तौर से पढ़ लिया होता इसमें सन्देह नहीं। पढ़ने के साथ ही प्रयोग के लिए भी जब तक आदमी के पास उपयुक्त बुद्धि न हो, तब तक वह सफल चिकित्सक नहीं हो सकता। वह सुमन के पास काफी मात्रा में मौजूद थी। जब-तब उन्होंने रोगियों की चिकित्सा भी की थी, लेकिन विद्या को समाप्ति पर पहुँचा कर जितना वह अब कर रहे थे, उतना कुस्तन के निवास के समय में नहीं कर पाये थे। कूची नगरी में पहुँचने से पहले ही उनकी चिकित्सा का चमत्कार कई जगहों में देखने में आया था और राजधानी में पहुँचने पर उनकी ख्याति बढ़ चली। दुःसह रोग में असह्य वेदना सहते नर-नारी की सहायता पहुँचा अपनी संवेदना प्रकट करने में सुमन को आनन्द आता है। फिर जिस महायान के हम पथिक थे, उसमें अपने प्राणों को देकर भी दूसरे को क्षणिक सान्त्वना देना सबसे बड़ा काम और कर्त्तव्य समझा जाता है। सुमन की इस तरफ तीव्र प्रवृत्ति क्यों न हो? एक साल के निवास के समाप्त होते-होते हम रेवत को खो चुके थे और इसी बीच में सुमन एक प्रसिद्ध वैद्य बन चुके थे। वह साधारण वैद्यों जैसी चिकित्सा नहीं करते थे। जान पड़ता था, वह अपने अन्तस्तल से एक पवित्र साधना में लगे हुये हैं। किसी असहाय रोगी की सूचना मिली कि वह वहाँ बिना बुलाये ही पहुँचते।

एक दिन अस्थि-कंकाल के रूप में एक लम्बा बूढ़ा उनके पास पहुँचा। आते ही वह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपने को न सँभाल रोने लगा। उसकी लड़की मौत के मुँह में पड़ी थी। सुमन उसके साथ हो लिये। बूढ़े का घर नगरी के दूसरे छोर पर ऐसी जगह था, जहाँ के घरों को देखने से ही मालूम होता था कि यहाँ से सुख-संपत्ति विदा हो चुकी है, यद्यपि वह कभी यहाँ पर थी। राज-अराजी होने पर लूट-पाट होना स्वाभाविक है। तुर्कों के आक्रमण की खबर सुनकर कितने ही अवारों ने इधर से भागते नगर के छोर पर बसे इन घरों को बड़ी बेदर्दी से लूटा और कितनों को मारा। यहाँ के अधिकतर लोग इसी समय सम्पत्तिहीन हो गये, जिसमें यह बूढ़ा भी था। बूढ़े का जवान लड़का अवारों की तलवार से कत्ल हुआ। उसकी सम्पत्ति लुट गई। लड़के की गुस्ताखी के कारण अवारों ने उसके घर को लूटकर ही संतोष नहीं किया, बल्कि उसमें आग लगा दी। अकिंचन बूढ़े की बुढ़िया भी कुछ ही महीनों बाद पुत्र-वियोग में चल बसी और उसकी एक मात्र लड़की घर में रह गई जो इसी समय बीमार पड़ गई। बीमारी बढ़ती ही गई। राजधानी में जितने भी चिकित्सक थे, सबकी चिकित्सा करवाई, लेकिन लड़की की अवस्था बिगड़ती ही गई।

सुमन बूढ़े के साथ-साथ एक खंडहर में गये। कूची के अधिकांश मकान मिट्टी की दीवारों और मिट्टी की ही छतों के होते हैं जिनमें लकड़ी को कम से कम इस्तेमाल किया जाता है। लोग मकानों को लीप-पोत कर रंग और चित्र से सजा बहुत बना कर रखते हैं। बूढ़े को इतनी छुट्टी कहाँ थी और न उसके पास धन रह गया था कि दूसरों को लगाकर अपने मकान को ठीक-ठाक करवाता। घर को देखकर सुमन को बड़ी दया आई। वहाँ सिर्फ एक कोठरी रहने लायक थी जिसके एक कोने में बहुत पुराने फटे हुये नम्दे पर उसी तरह के फटे चीथड़ों को ओढ़े पड़ी हुई कोई चीज दिखाई पड़ी। पास में एक बुढ़िया बैठी थी। भिक्षु वैद्य के आते ही लम्बी साँस ले आँसू पोंछती वंदना कर बुढ़िया उठ कर एक ओर खड़ी हो गई। कूची अपने दुःख से दूसरों को कातर करने के अभ्यासी नहीं हैं, लेकिन इस संयम की भी एक सीमा है। बुढ़िया अपने भाई की पुत्री को मरी समझ चुकी थी। उसके चेहरे को देखकर बूढ़ा का हृदय भी सुन्न हो गया। सुमन ने जाकर कपड़े को हटा रोगी के चेहरे को देखा। वहाँ क्या था? हड्डियों के ऊपर पीला चमड़ा मढ़ा था। आँखें उसी तरह भीतर धँसी हुई थीं, जैसे खोपड़ी में देखी जा सकती हैं। वह बन्द थीं, इसलिए नहीं कहा जा सकता कि रोगी जीवित है या मरा। मृत्यु के लक्षण ही ज्यादा मालूम हो रहे थे, लेकिन वैद्य केवल प्रत्यक्ष को प्रमाण मानते हैं। अकस्मात् ही सुमन का हाथ रोगी के हाथ पर चला गया। बहुत ध्यान से देखने पर मालूम हुआ, नाड़ी की गति अत्यन्त क्षीण हो गई है, किन्तु वह बन्द नहीं है। सुमन का उत्साह बढ़ गया। बूढ़े के हाथ से अपने औषधियों के थैले को उन्होंने ले लिया और कोमल पतले मृगचर्म की सैकड़ों थैलियों में से एक के साथ बँधी हाथीदाँत की पत्ती पर लिखे नाम को पढ़कर उसमें से उन्होंने अपनी कानी अँगुली के बढ़े नख पर एक रत्ती दवा निकाली—और वैद्यों की तरह सुमन ने भी अपने दाहिने हाथ की कानी अँगुली के नाखून को कटाना छोड़ दिया था। उनके मन में केवल एक ही सन्देह था, शायद मैं इस दवा को इसके गले के भीतर न उतार सकूँ। उनके माँगने पर पानी भी आ गया। पानी के माँगने और थैली के खोलने से ही दोनों बूढ़े-बुढ़िया के हृदयों में आशा का संचार हो गया। सुमन ने मुँह खोल "नमो भैषज्यगुरवे" कहकर नाखून की दवाई मुँह में डाल दी और ऊपर से एक घूँट पानी भी। साँस बन्द कर वह देखने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगे। एक ही क्षण में रोगी ने दवा को निगल लिया। प्राणी का जीवन से कितना मोह होता है? स्वप्न में भी वह जीवन की कामना करता है, मूर्छा में भी वह कामना उसके हृदय से नहीं छूटती।

सुमन ने पास खड़े दोनों को कहा—अब चिन्ता न करो।

लेकिन, वह जितना विश्वास दूसरों को दिलाना चाहते थे, उतना उनके अपने हृदय में नहीं था। और भी सान्त्वना देते उन्होंने कहा—आपकी लड़की मृत्यु के मुख में पहुँच चुकी थी, हमारे चिकित्साशास्त्र में यही एक दवा है, जो प्राणों को मृत्यु के जबड़े से निकाल लाती है। नागार्जुन से यह दवा शिष्य-परम्परा के अनुसार मेरे पास पहुँची है।

सुमन ने जल मिलाकर थोड़ा सा अंगूर का रस देने के लिए कह शाम को फिर आकर देख जाने का वचन दिया। लड़की के बाल सारे गिर गये थे जो छोटे-छोटे अवशेष कहीं-कहीं रह गये थे, वह रूखे और पीले दिखलाई पड़ते थे। अस्थि-कंकाल आदमी के रूप को क्या बतला सकते हैं? घर से विदा होते वक्त उन्होंने चाहे कितना ही समझाया, लेकिन उनका अपना दिल कह रहा था—यदि पहर भर और जी गई और शाम को मेरे आने के समय तक यमदूत इसको नहीं ले गये, तो शायद बच जाये।

अपराह्न में भिक्षु नगर के भीतर नहीं जाया करते, लेकिन वैद्य इस नियम से मुक्त हैं। सुमन स्वयं आने के लिए कह गये थे, लेकिन बाप से नहीं रहा गया और वह उनके पास ही पहुँच गया। पूछने की आवश्यकता नहीं थी। उसके चेहरे की रेखाओं के देखने से ही मालूम हो रहा था कि हताश होने की आवश्यकता नहीं। बूढ़े ने बतलाया कि उनकी कही मात्रा में दवा को द्राक्षारस पिला दिया। लड़की हिल-डोल नहीं सकती थी, किन्तु उसमें जीवन के लक्षण दिखलाई पड़ रहे हैं। सुमन को बहुत संतोष हुआ। उन्होंने लड़की को देखकर पूर्ण संतोष प्रकट करते हुये और भी दवाई दी, अनुपान बतलाया और कहा, यदि कोई खराबी नहीं देखने में आये, तो मेरे पास न आना, मैं कल दोपहर को स्वयं आऊँगा।

सुमन ने चिकित्सा का काम बहुत वर्षों से और व्यापक रूप में नहीं किया था। इतने असाध्य रोगी की दवा करने की तो बात अलग, उन्होंने उसे देखा भी नहीं था। अपने चिकित्सा के ज्ञान का उन्हें इस समय कुछ अभिमान होने लगा था और साथ ही यह देखकर अपार प्रसन्नता भी, कि मैं भीषण कष्ट में केवल मौखिक सहानुभूति ही प्रकट न करके किसी के लिए कुछ कर सकता हूँ। जिस तरह लड़की धीरे-धीरे घुलकर एक वर्ष से अधिक दिनों में सबसे निचली सीढ़ी पर पहुँची थी, ऊपर उठने के लिए भी उसके लिए काफी समय की आवश्यकता थी। मुर्दे को जिन्दा करना बड़े चमत्कार की बात है। लोग लड़की को मुर्दा समझ चुके थे। सूखा वृक्ष वसन्त में अनेक बार कलियों के रूप में पत्ते पल्लवित होते हर साल देखा जाता है, लेकिन वह देखने के लिए ही चार महीने सूखा सा दिखलाई पड़ता है, कहीं पर भी चोट करने से उसमें रस निकलता है। परन्तु, यहाँ तो उसका भी कोई पता नहीं था। सीधे-सादे लोग साफ कहते थे: भदन्त सुमन मुर्दे को जिन्दा कर सकते हैं। सुमन को भी अपनी सफलता पर हर्षित होना स्वाभाविक था। हड्डियों और खाल के ऊपर पहले जीवन का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रक्त दौड़ने लगा, धमनियों में रक्त का धीरे-धीरे संचार शुरू हुआ, चमड़े और हड्डी के बीच में मांस की तहें जमने लगीं, आँखें खोपड़ी के कोटर में से बाहर निकलने लगीं, रूखे केश स्निग्ध होकर बढ़ने लगे। महीने भर बाद वह अपने शरीर को हिला-डुला सकती थी। सुमन उस सूखे वृक्ष को पूरी तौर से हरा-भरा देखना चाहते थे, इसलिए मृत्यु के मुख से पूरी तौर से निकल आने के बाद भी वह उसकी चिकित्सा करते रहना चाहते थे जिस तरह मैंने मुर्दे को जिन्दा किया, उसी तरह उसे जल्दी स्वस्थ कर देना है। जिस तरह किसान अपने खेत में बोये बीज को बड़ी लालसा से जाकर देखता है, उसके अंकुर फूट निकलने और बढ़ने से प्रसन्न होता है, वही स्थिति सुमन की थी। मुझे भी बड़ा कोमल हृदय मिला है, किसी को दुःखी देखकर मैं आत्माभिमान खोकर कातर हो जाता हूँ, किन्तु सुमन मुझसे भी अधिक दयालु थे। उनकी अपार दया को मैंने कई वार अपनी आँखों से देखा था। यही अपार दया उन्हें उस मुर्दा लड़की की ओर ले गई और उसी के वश में होकर वह वहाँ बरावर जाते रहे। न जाने कैसे एक दिन जब वह अपनी रोगिनी के पास गये, तो देखा वह वस्तुतः वैसा कंकाल नहीं थी, जैसा कि उन्होंने उस दिन देखा था। उस दिन की बन्द आँखें अब बड़ी-बड़ी हो वाहर निकल आई थीं, उन पर भौहों की कमान वड़ी सुन्दर रूप से तन गई थीं। अलसी के फूल जैसी नीली आँखों में असाधारण चमक थी, जो अपने प्राणदाता की ओर फिरने पर अद्‌भुत सौन्दर्य धारण कर लेती थीं। छः महीने वाद वह पूरी तौर से स्वस्थ हो गई। वह वड़ी सुन्दर तरुणी थी। सुमन ने उसकी बीमारी की ही चिकित्सा नहीं की, बल्कि उस लुट गये घर को फिर से सुखी बनाने का भी प्रवन्ध किया। उनके दायकों की संख्या कम नहीं थी, सिर्फ कहने मात्र की देर थी। जैसे लड़की का कंकाल हरा-भरा हुआ, वैसे ही वह खंडहर भी आदमी के घर जैसा वन गया।

सुमन को स्वप्न में भी कभी ख्याल नहीं था कि अपनी दया का उन्हें यह प्रतिफल मिलेगा। लेकिन, दया की मर्यादायें तभी कायम रहती हैं, जब दूसरी कोई सम्भावना न हो। पुरुष और पुरुष के घनिष्ठ स्नेह में अपनी प्राकृतिक मर्यादा है, लेकिन पुरुष और स्त्री की घनिष्ठता में ऐसी कोई प्राकृतिक सीमा नहीं है। मालूम नहीं, दया, उदारता या और कोई भावना किस वक्त कौन-सा रूप ले ले। वही वात यहाँ हुई और हमें अपने एक और मित्र से हाथ धोना पड़ा। तरुणी के प्रति सुमन आकृष्ट हो चुके थे।

कूची में रहते हमें दो वर्ष होने को आये थे। अपने दो घनिष्ठ मित्रों को खोकर मैं और संघिल दोनों विकल हो गये। अपने ऊपर भी हमारा विश्वास जाता रहा। देवकुमारों और देवकन्याओं का देश हमारे लिए खतरनाक मालूम होने लगा और हमने वहाँ से तुरन्त प्रस्थान करने ही में कल्याण समझा, यद्यपि अभी हमें निश्चय नहीं था कि महाचीन का मार्ग खुल गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दिशा-परिवर्तन

(554 ई०)

आगे बढ़ने का रास्ता निरापद नहीं था, इसी कारण कूची में दो साल रह जाना पड़ा। यद्यपि वणिक्-सार्थ घमासान लड़ाई होते समय भी आपद्ग्रस्त सीमाओं को पार होते रहते हैं, परन्तु हम मित्रों ने ऐसा करने नहीं दिया। त्युर्कों ने पहली बार आज से 18 वर्ष पहले (536 ई०) अल्तून-इयश (अल्ताई या सुवर्ण पर्वत) के पास अपने स्वामियों को हार दी थी। तूमिन् जैसा उनको अच्छा नेता मिला था और उधर अवार राजभोग में पड़ जाने के कारण विलासी हो गये थे। अवार (ज्वान-ज्वान, जूजान), त्योर्क (तुर्क) और चीन के एक बड़े भाग पर शासन करने वाले तोपा, सभी हूण वंश के थे। [हून इनकी भाषा में मनुष्य को कहते हैं, इससे मालूम होता है कि दूसरों ने उन्हें यह नाम दिया, जैसे हमारे यहाँ, मुंड शबरों की भाषा में मनुष्य को कहते हैं, किन्तु कितने ही लोगों ने उनका नाम ही मुंडा रख दिया] । चीन और पारसीक (सासानी) भी उनसे डरते थे। इन घुमन्तुओं का टिड्डीदल लाल आँखें करके जिधर भी मुँह फेर लेता, उधर प्रलय मच जाती। चीन पर शासन करने वाले हूण वंशज तोपा लोगों की ही एक शाखा अशिना थी, जिसने राज्यभ्रष्ट होने के बाद भागकर दक्षिणी सुवर्ण पर्वत में शरण ली थी। तब घुमन्तुओं पर अवारों का शासन था। अवारों ने अशिना लोगों को अपना दास सा बना, वहाँ की लोहे की खानों में उनसे काम लेना शुरू किया। आरम्भ में इनके 500 ही परिवार थे, लेकिन इन घुमन्तुओं को बढ़ते देरी नहीं लगती। यह केवल अपनी सन्तानों द्वारा ही अपनी संख्यावृद्धि नहीं करते, वल्कि जो भी उनके नेतृत्व को स्वीकार करने के लिए तैयार होता है, उन सभी घुमन्तू जनों (कबीलों) को अपने में शामिल कर लेते हैं। सौ-सवा-सौ वर्ष अवारों के नीचे रहते वह बड़े शक्तिशाली हो गये। यह भी याद रखने की बात है कि जिस भूमि की ओर हम अब बढ़ रहे थे, वह ऐसे नम्दे के तम्बू वाले घुमन्तुओं की थी, जो शक्ल सूरत में एक दूसरे से कोई भेद नहीं रखते थे। उनकी आँखें कम खुली, तिर्छी भौंहें ऊपर को तनी, गाल की हड्डियाँ उभड़ी, नोक बिल्कुल चिपटी और मुँह पर दाढ़ी-मोंछ के नाम पर बहुत थोड़े से बाल होते हैं। हाँ, कुछ भेद जरूर था। बाहर के लोग उन्हें देखकर यह जान नहीं सकते थे कि कौन त्योर्क हैं और कौन अवार। त्योर्कों में भी कोकत्योर्क (नीला तुर्क, यानम तुर्क) और करात्योर्क (काला तुर्क) दो भेद थे। हमारे लिए वह सभी एक जैसे थे। उनके हाथ में पड़कर हमें बहुत दया की आशा नहीं हो सकती थी। हाँ, उनमें से कुछ विशेष कर अवार-सरदार तथागत के शासन को मानने लगे थे। तोपा-सम्राट भी बुद्ध भक्त थे। उन्होंने अपनी राजधानी के पास पहाड़ों को खोदकर विशाल गुहाविहार बनवाये थे, जिन्हें पीछे देखकर मुझे विदर्भ की (अजंता, एलूर) अनुपम गुहायें याद आती थीं। जहाँ तक त्योर्क-सरदारों का सम्बन्ध था, वह अपने तोपा वंश के अभिमान के कारण तथागत के धर्म के प्रति कुछ श्रद्धा जरूर रखते थे। हम कूची से चीन की ओर जा रहे थे। हमारा उद्देश्य उधर ही जाने का था लेकिन हमें मालूम था कि जिस तरह की आँधी इस वक्त अवारों और तुर्कों तथा दूसरी जातियों में चल रही है, उसमें उड़कर न जाने हम कहाँ चले जायें। मृत्यु भी पद-पद पर हमारी प्रतीक्षा कर रही थी, लेकिन मैं और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संघिल उसका भय बिलकुल ही नहीं रखते थे। संघिल के कारण एक यह भी सुभीता था। कांस्यदेश के होने से वह कूची जैसे लोगों के भाई-बन्द थे और उनकी भाषा को समझते थे, साथ ही अवारों से भी उनका सम्पर्क रहा जिससे कुछ-कुछ उनकी भाषा और बातों से वह परिचित थे। मैं तो अँधेरे में कूद रहा था, लेकिन संघिल के लिए वह अँधेरा कम से कम मेरे जैसा निविड़ नहीं था।

तूमिन के बारे में हम बहुत सुन चुके थे। वह वीर तथा संस्कृत पुरुष था। बौद्ध-भिक्षुओं के साथ उसका बर्ताव बहुत अच्छा होता था। घुमन्तू जब शासक हो जाते हैं, तो विद्या और कला-कौशल के सीखने की आवश्यकता पड़ती है। दूर-दूर तक फैले हुये राज्य को मौखिक आदेशों द्वारा चलना मुश्किल होता है। वस्तुतः हमने कूची में छः महीने ही रहकर अगर प्रस्थान कर दिया होता, तो न अपने दो साथियों से हाथ धोना पड़ता और न रास्ते की बहुत-सी कठिनाइयों में पड़ना पड़ता। अधिक से अधिक यही हो सकता था कि एल-क-आन (इलखान, जनराज) के आदमियों के हाथ में पड़कर हम उसके पास पहुँच जाते। हमारे कूची में चलने के दो ही साल पहले (552 ई०) तूमिन् ने अवारों को अन्तिम बार पराजय दी थी। अवार कआन (राजा) ने आत्महत्या कर ली। उसके कुछ लोग पश्चिम की ओर भागे (जो अन्त में हुंगरी तक पहुँचे) और कुछ चीन में जाकर बस गये। बहुतों ने अपने विजेताओं में सम्मिलित होकर उनका नाम धारण कर लिया। तूमिन् को सफेद नम्दे पर बैठा कआन (राजा) घोषित किया गया। हमारे देशों में जिसे सिंहासन पर बैठना कहते हैं, उसे ये घुमन्तू लोग नम्दे पर बैठना कहते हैं। बुनकर नहीं, बल्कि ऊन को जमाकर एक तरह का कपड़ा (नम्दा) तैयार करना इन घुमन्तुओं की अपनी विशेष कला है। इस नम्दे की नकल कांस्यदेश के लोग भी करना जानते हैं, लेकिन वह उतने मजबूत नहीं बना पाते।

घुमन्तुओं के तम्बू नम्दों के होते हैं। पहले ही से तैयार लचीली लकड़ी का ढाँचा उनके डेरे के साथ ऊँटों पर चलता है। जहाँ डेरा डालना होता है, वहाँ इस ढाँचे को खड़ा करते हैं। फिर बहुत से नम्दों से उसे मढ़ देते हैं, यही उनका मकान है। यह बड़ा सुखदायक होता है, इसे मैंने अपने तजर्बे से देखा है। जिसे भारत-भूमि में गर्मी कहते हैं, वह यहाँ बहुत कम होती है, तो भी गर्मी के महीनों में खुले मैदान में आसमान के नीचे दोपहर को उसका बिलकुल अभाव नहीं होता है। ऐसे समय घुमन्तुओं के यह नम्दे के तम्बू शीतल मालूम होते हैं। हड्डी को छेदने वाली सर्दी में ये काफी गरम रहते हैं। घुमन्तू धुआँ निकलने के लिए अपने तम्बुओं के बीच में छेद रखते हैं जिसके नीचे आग जलाते हैं। ईंधन के लिए लकड़ी दुर्लभ है। वह घोड़ों की लीद, ऊँटों और दूसरे जानवरों की लेंड़ियों या सूखे कंडे को ईंधन के तौर पर इस्तेमाल करते हैं। आग जल्दी जलाने और आँच तेज करने के लिए हरेक घुमन्तू के पास खाल की भाथी जरूर रहती है। जब उनका घर चलता फिरता है और उसे बहुत बड़ा नहीं बनाया जा सकता, तो सामान रखने में भी इसका ध्यान रखना बहुत जरूरी है कि अनावश्यक चीजों का भार अधिक न बढ़ जाये। तो भी सरदारों के तम्बुओं में बहुत तरह के सामान होते हैं। उनके यहाँ चीन, पारसीक, बिजन्तीन ही नहीं भारत तक की बनी हुई चीजें मैंने देखीं। बाकी तीन राज्य इनके पड़ोसी होने के कारण ईर्ष्या और क्रोध के भाजन भी हैं, लेकिन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारत के प्रति इन घुमन्तुओं के हृदय में अधिक सम्मान है जिसका कारण शायद यह भी हो सकता है कि वह बुद्ध की जन्मभूमि है जिनके धर्म को इनके कितने ही सरदार मानते हैं। तूमिन खान पिछले साल (मार्च 55 ई०) में मर गया। उसके मरने के बाद उसके पुत्र इसी मिकगान (इसिगी खान) ने बहुत थोड़े समय ही शासन किया। घुमन्तुओं में पिता के राज्य को पुत्र पाये, इसका कोई नियम नहीं है। एक कआ के मरने पर पर उसकी जगह लेने के लिए दूसरों में प्रतिद्वन्द्विता छिड़ जाती और जो सबसे अधिक शक्तिशाली व प्रभावशाली होता है, वह नम्दे पर बैठकर अपने को कआन घोषित कर देता है। हाँ, यह मैं मानूँगा कि घुमन्तुओं में कआन की मेड बनने का रिवाज नहीं है। कआन के मुँह पर भी उनके कबीले का साधारण आदमी तू-तू, मैं-मैं कर सकता है। कआन के उसका कुछ करने का मतलब घोर भीषण खूनी युद्ध है। जिसको यबगू, शाद या कगान बनने की इच्छा होती है, उसे अपने लोगों की बहुत अधिक संख्या का विश्वास-पात्र होना जरूरी है। इसमें आदमी की वीरता और दूसरी योग्यता भी काम आती है, लेकिन सबसे अधिक जरूरत जनरंजन की पड़ती है।

घुमन्तु चाहे अवार हों या त्योर्क, या उनसे पहले के हूण, सभी की राजव्यवस्था करीब-करीब एक-सी रही है। तूमिन कआन के पुत्र को हटाकर एक दूसरे वंश के सरदार ने (553-69 ई०) ने कआन (राजा) का पद ग्रहण किया। उसके राज्य में मेरे यात्रा के समय (554-57 ई०) वह पूरी तौर से अपने सारे घुमन्तूओं पर प्रभाव नहीं स्थापित कर पाया था। अवार और उनके सम्बन्धी अभी भी अपने पुराने युग को भूलना नहीं चाहते और इधर तूमिन् के वंश ने झगड़ा करके आपस में गृह-कलह शुरू कर दी थी। पीछे मेरे चीन में रहने के समय मुयु खान का प्रताप वंश-स्थापक से भी बढ़-चढ़कर हो गया था। चीन सम्राट् सचमुच उसकी खुशामद करते थे। इसके उत्तराधिकारी तोबा खान (569-80 ई०) ने खान बनने के दूसरे साल (570 ई०) में अपने ही वंश को नहीं, बल्कि सारे तुर्कों को बौद्ध धर्म में लाने में सफलता पाई।

तुर्कों की भिन्न-भिन्न पद-मर्यादाएँ दूसरों से विचित्र हैं। ये अपने लोगों को एल कहते हैं जिसका अर्थ वही है जो हमारे यहाँ जनका। एल का सरदार कगान (राजा) होता है जिसके नीचे उसके दाहिने यबगू और बायें शाद बैठते हैं और उसी के अनुसार प्रभाव भी रखते हैं। कगान की स्त्री को कातून (खातून, रानी) कहते हैं। इनकी भाषा में कआन या कगान का अर्थ पिता भी है। सचमुच ही अपने एल के साथ कआन का सम्बन्ध हमारे यहाँ के राजा की तरह न होकर बहुत कुछ पिता की तरह होता है। ओग माँ को कहते हैं, केलिन पुत्रवधू और कुल दास या हाथ को। कगान से सम्बन्ध रखने वाले परिवार के लोग विशेष सम्मान के भाजन होते हैं, लेकिन शक्ति यबगू और शाद की ज्यादा होती है। कआन और दोनों उप-कआनों के बाद राजकुमारों का दर्जा है जिन्हें तरकन, मुयुरुक और तुतुक कहते हैं। उनके नाम के साथ वेग लगाया जाता है। वेगों (सरदारों) के नीचे साधारण जनता के छोटे-छोटे मुखिया हैं जिन्हें करावुदुन कहते हैं। नीचे से ऊपर लेने पर एल या जनसाधारण सबसे नीचे हैं, उसके ऊपर बुदुन, जिनके ऊपर वेग और उनके इनियुकुल होते हैं। कआन (खान) परिवार में ओग (राजकुमार) उसके नीचे आता है, फिर अका और अपा (राजकुमारियाँ)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होती हैं जिनके नीचे इनि, कूज और कैलीन के दर्जे एक के नीचे एक होते हैं। ये घुमन्तू इतने सीधे-सादे होते हैं और बातचीत करने में इतने खुले कि मालूम होता है इनमें पद-मर्यादा के अनुसार सम्मान दिखलाने की उतनी कठिनाई नहीं होगी। पर, वस्तुतः यह बात नहीं है। पदों का ध्यान अगर न रक्खा जाये, तो कितनी ही बार उनके कठोर कोप का भाजन बनने की नौबत आ सकती है।

घुमन्तूओं में स्त्रियों की बात बहुत चलती है। कहा जा सकता है कि साधारण घुमन्तुओं में पति से पत्नी का दर्जा ऊँचा है। ये लड़ने में भी पुरुषों से पीछे नहीं रहतीं। मुर्दों को कहीं-कहीं जलाते हैं और कहीं-कहीं ऐसे ही दफना या छोड़ देते हैं। शोक प्रकट करने के लिये अपने बालों को नोचने, चेहरे और छाती पर नाखून से घाव कर लेने का इनमें रवाज है। सफ़ेद घोड़े की बलि देवता को देना ये बहुत पसन्द करते हैं और मृतात्मा की श्राद्ध के लिये भी घोड़ा या किसी और जानवर की बलि दी जाती है, इनके यहाँ सफेद पोशाक सौभाग्य का चिह्न मानी जाती है और काली शोकसूचक।

कूची से चलते यह जान कर हमें इत्मीनान था कि अभी बहुत दूर तक हमें ऐसी भूमि में जाना है जहाँ के लोग कूची या कुस्तन की तरह नगरों और गाँवों में रहते हैं जहाँ बुद्ध-धर्म को सभी लोग मानते और भिक्षुओं का सम्मान करते हैं। उनके ऊपर तुर्क घुमन्तुओं का शासन था जो अपने तम्बुओं, परिवार और पशुओं को लिये जहाँ-तहाँ अच्छी चरागाह देखकर पड़े रहते थे। हरेक बस्तीवासी को वह अपने से हीन तथा शासित प्रजा मानते और उनके साथ उसी तरह का बर्ताव करते थे, इसलिये लोग उनसे डरते रहते थे। भिक्षुओं को प्रायः सभी सार्थ बड़ी खुशी से अपने साथ ले लेते और उनके खाने-पीने का प्रबन्ध भी करते हैं। एक तो वह स्वयं बुद्ध-भक्त होने के कारण भी ऐसा सम्मान प्रदर्शित करना चाहते हैं, दूसरे वह समझते हैं कि अगर कोई दैवी संकट आन उपस्थित हुआ, तो भिक्षुओं के पूजा-पाठ और उनके आशीर्वाद से हमारा कल्याण होगा। साथ ही वह यह भी जानते थे कि घुमन्तू भी भिक्षुओं का सम्मान करते हैं, इसलिये उनकी सिफारिश हमारे बड़े काम की हो सकती है। तुर्क बेग हमें रास्ते में कई जगह मिले। उनमें से कुछ निरे बर्बर घुमन्तू नहीं थे। उनके शरीर पर चीनांशुक (रेशम) के चोगे थे। तम्बू की सजावट में भी ऐसी चीजों का व्यवहार था जो कि कांस्यदेश के सामन्तों में ही देखी जातीं। हमारा रास्ता पूर्व की तरफ था। पहाड़ हमारे दायें था और सीता (तरिम) नदी बह रही थीं, जो कभी-कभी हमारे पास आ जाती, और कभी-कभी कोसों दूर हो जाती। पहाड़ से भी कितनी ही छोटी-छोटी नदियाँ निकल कर दक्षिण की ओर बहती सीता में मिलने जातीं। मरुभूमि हमसे बहुत दूर महानदी के पार थी, इसलिये रास्ते की कोई कठिनाई नहीं थी। जगह-जगह गाँव थे। यहाँ गेहूँ और बाजरे के अतिरिक्त दूसरे अन्न भी पैदा होते हैं। अंगूर और दूसरे फल यहाँ भी उसी तरह होते हैं जैसे कांस्यदेश के दूसरे स्थानों में। हम जितना ही आगे बढ़ते जा रहे थे, उतनी ही लोगों की पोशाक सूती न होकर ऊनी होती जा रही थी। गरीब लोग बहुत मोटे-झोटे पट्टू का कपड़ा पहनते थे और धनी लोग बारीक कोमल, पर ऊनी ही। यहाँ के लोग भारत की तरह अपने बालों को लम्बा नहीं रखते। दाढ़ी रखने का भी शौक बहुत कम को है। घुमन्तुओं और बस्तीवासियों का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्तर उनके चेहरे से भी साफ दिखाई देता है। बस्तीवासी रंग-रूप में प्राय: वैसे ही होते; जैसे कूची और कुस्तन के लोग।

पहली बड़ी बस्ती हमें अग्नि (अक्निी, कराशर) की मिली। कूची की तरह यह एक अच्छा नगर है। इसका अपना राजा था जो तुर्कों के अधीन था। राजधानी के दक्षिण-पूर्व प्राय: 6 कोस दूर एक बहुत भारी सागर जैसा सरोवर है जिसे चार पहाड़ों के बीच बाँध डाल कर बनाया गया है। इसमें से बहुत-सी नहरें निकाली गई हैं जिनमें से कितनी ही नगर के भीतर से जाती हैं। अग्नि राज्य में दसेक विहार हैं जिनमें दो हजार से अधिक भिक्षु रहते हैं। सर्वास्तिवाद की ही यहाँ प्रधानता है। विनय के नियमों को यहाँ के भिक्षु उसी तरह पालन करते हैं जैसे भारत में। विचारों में महायान का भी प्रभाव पाया जाता है, लेकिन यहाँ के भिक्षु मांस-भोजन से परहेज नहीं करते। दस दिन की यात्रा में हमें कोई कठिनाई नहीं मालूम हुई, जान पड़ा जैसे कुस्तन या कूची के राज्य में घूम रहे हैं। हम अग्निपुरी के अरण्य विहार में ठहरे। यहाँ के भिक्षुओं को मेरे बारे में पहले ही पता लग चुका था। भिक्षु एक देश से दूसरे देश में अध्ययन या परिदर्शन के लिये जाते ही रहते हैं। आते ही जिस प्रकार का स्वागत-सत्कार प्राप्त हुआ, उससे मालूम हो गया कि यहाँ से भी निकलने में हमें कठिनाई उठानी पड़ेगी। हमने पहले ही से निश्चय कर लिया कि बहुत स्नेह न पैदा होने देंगे और न कोई ऐसे काम हाथ में लेंगे जिसके कारण और ठहरना पड़े।

अगला नगर दस दिन के रास्ते पर था। ग्राम बहुत थे, मरुभूमि की कठिनाई नहीं थी। हम शायद ही एक योजन से अधिक चलते। अग्नि में जल्दी करते-करते भी हम दस दिन ठहर गये थे। वहाँ से जाने वाली नदी सीता में नहीं गिरती थी। सीता को वस्तुत: हम कूची से ही इतना दूर छोड़ आये थे कि उसे फिर कभी नहीं देख सके। यह नदी दक्षिण में एक बहुत बड़े सरोवर या क्षार समुद्र (बगरचकुल) में गिरती है। उसके किनारे भी एक बड़ा सुन्दर विहार था। जब सुना कि थोड़ी ही दूर पर यहाँ एक महासमुद्र है, तो कौतूहलवश हम भी उसे देखने के लिये चले गये। हम सिंहल की यात्रा में महासमुद्र को देख चुके थे। यह उतना बड़ा नहीं था। जहाँ भी विशाल जलाशय हो, हवा चलने पर वहाँ ऊँची लहरें उठती ही हैं और आदमी किनारे पर खड़ा होकर दूसरे पार को नहीं देख सकता। यदि चारों ओर की परिक्रमा न करे, तो वह यही कहेगा कि यह अनन्त समुद्र है। साढ़े तीन हाथ के आदमी का अस्तित्व ही कितना बड़ा है, उसके लिये तो छोटी-सी पुष्करिणी भी डुबाने के लिये पर्याप्त है।

अग्नि से फिर हम आगे बढ़े। आगे का रास्ता निरापद था। अधिकतर हम पूर्व या उत्तर-पूर्व की ओर चले। रास्ते में पहाड़ भी पार करना पड़ा और हरी-भरी भूमि भी। अब हम उस नगर की ओर जा रहे थे जिसे चीन के लोग काउ-शांग (तुर्फान) कराखोजा कहते हैं। बस्तियों में यद्यपि हमें उसी तरह के चेहरे और रीति-रिवाज देखने को मिलते थे जिन्हें हम कांस्यदेश की और जगहों में देखते आये थे, लेकिन खुली चरागाहों में अब घुमन्तू त्योंक अधिक मिलते थे। सैकड़ों वर्षों से उत्तरी घुमन्तुओं के घनिष्ठ सम्पर्क में आने के कारण यदि कुछ नागरिकों और ग्रामीणों के चेहरों पर भी उनके मुखमुद्रा की छाप मिले, तो कोई

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आश्चर्य की बात नहीं। काउ-शांग नगरी भी अग्नि की तरह की महावणिक्-पथ के ऊपर बसी होने के कारण समृद्ध है। यहाँ के वणिक और सार्थवाह बहुत धनी हैं। समृद्धि में यह कूची जैसी है। जिस तरह कूचों से दो बड़े-बड़े वणिक-पथ उत्तर और पश्चिम को जाते हैं, वैसे ही यहाँ से भी एक वणिक-पथ उत्तर के पहाड़ों में होकर उत्तर चला गया है और दूसरा पश्चिम में अग्नि और कूची की ओर। धनी व्यापारियों और सामन्तों के मकान बड़े सुन्दर और सजे हुए थे। घरों के साथ मेवों के बाग जरूर होते थे। शहर से बाहर दूर तक बाग ही बाग दिखलाई पड़ते थे। लकड़ी की यहाँ कमी है और मकानों की लकड़ी के लिए दो-तीन जातियों के वृक्ष बड़े परिश्रम से लगाये जाते हैं। उत्तर के पहाड़ों में देवदार और भुर्ज के वृक्षों के होने की बात बतलाई जाती है। मैंने उनका उपयोग विहारों और कुछ दूसरे घरों में देखा भी। लेकिन वह कई दिनों के रास्ते पर हैं जहाँ से लाने में वहँ बहुत महँगे पड़ जाते हैं, इसलिए धनी लोग ही उनको इस्तेमाल कर सकते हैं। नगर के बाहर भी कई विहार हैं। जिस विहार में हम ठहरे, वह अरण्य विहार (अग्नि) से सम्बन्ध रखता था।

हम देख रहे और सुन भी रहे थे कि शायद अब हम दिन-पर-दिन उन लोगों की भूमि से दूर होते जा रहे हैं जिनके जीवन से हम अधिक परिचित थे और जिनके साथ अधिक आत्मीयता का अनुभव करते थे। हर कदम आगे बढ़ाते हुये हम हर तरह की जानकारी प्राप्त करने की कोशिश करते थे। मालूम हुआ कि एक महीने में हम चीन की सीमा में पहुँच सकते हैं और चीन की महादीवार यहाँ से डेढ़ महीनों से अधिक दूर नहीं है। लेकिन, यह तो तब हो सकता था जब हम अबाध गति से आगे बढ़ने के लिए स्वतन्त्र होते। सारी आशंकाओं के रहते भी अब तक जिस तरह हम आगे बढ़ते चले आये थे, उससे हमें यही विश्वास होता था कि किसी न किसी तरह हम आगे बढ़ते जायेंगे।

नगर में पाँच-सात दिन रहने के बाद हमने फिर अपनी यात्रा शुरू की। दक्षिण की तरफ मरुभूमि था जिसमें जल का अभाव, बस्तियों का अभाव है, इसीलिए लोग उधर से न जाकर उत्तरी पहाड़ के साथ-साथ और कभी-कभी पहाड़ के भीतर से भी चलते हैं। यहाँ हर जगह ठहरने के लिए स्थान थे। कहीं-कहीं गाँव भी मिल जाते और पानी का सुभीता भी था। हम इसी रास्ते चलते रहे।

पहाड़ों में घुमन्तू अधिक दीख पड़े। इनके विचित्र चेहरे को देखकर जैसे पहले एक तरह का दुर्भाव पैदा होता था, वह अब हमारे हृदय से हटने लगा। संघिल पहले ही से कहा करते थे कि आदमी का स्वभाव बहुत बातों में एक-सा ही होता है। मेरी लम्बी यात्रा के तजुर्बे ने भी यह बतला दिया था कि मनुष्य प्रकृति से उदार और कोमल हृदय का है, लेकिन उसके जीवन की परिस्थितियाँ बाज-वक्त उसे कठोर बनाने के लिए मजबूर करती हैं। जहाँ जीविका का एक आवश्यक साधन लूट हो, वहाँ लुटेरे की क्रूरता तो आदमी में आ ही जायगी। जहाँ भोजन बहुत कुछ मांस पर निर्भर हो, वहाँ मांस-प्राप्ति के लिए कठोर उपायों को अपनाने की जरूरत पड़ेगी ही। घुमन्तुओं से परिचय बढ़ने पर कितनी ही बार उनके बेगों ने अपने यहाँ बुलाकर हमें भोजन कराया, हमसे कितनी ही बातें पूछीं, उनकी स्त्रियों ने पूजा-पाठ करवाया। सामन्तों के घरों में बस्ती की रहने वाली कूची जैसी सुन्दरियाँ कितनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही बार देखने में आतीं। जान पड़ता है यह लोग भी 'स्त्री-रत्न को हीन कुल से भी ले लेना चाहिये' की बात को मानते हैं। ये स्त्रियाँ अपने पतियों पर प्रभाव डालतीं, उनके कारण उनके पतियों का हृदय अधिक उदार और नर्म हो जाता और वह अपनी जाति के देवताओं के अतिरिक्त बुद्ध और बोधिसत्वों को भी अपनाने के लिए तैयार हो जाते। घुमन्तू अपना सबसे बड़ा देवता नील आकाश (कोक) को मानते हैं, उसके बाद किसी भी पहाड़ी या दूसरी जगह में कोई विचित्रता देखकर वहाँ देवता की पूजा करने लगते हैं। इनके अपने पुजारी होते हैं जिनके ऊपर देवता आकर बात करते हैं। हर बात में वह इन पुरोहितों (शमनों) से सलाह लेते हैं। हमें किसी देवता से बैर नहीं था। तथागत की शिक्षा ने बतला दिया था कि आदमी अपने संस्कार और ज्ञान के अनुसार देवताओं को अपनाता है। देवता का ख्याल छुड़ाने की कोशिश करना बेकार है। इन्द्र, कुवेर, विरूढ़क, विरुपाक्ष आदि कितने ही देवता जम्बू-द्वीप में माने जाते हैं, जिनको प्रत्याख्यान वहाँ के भिक्षु नहीं करते और न तथागत ने ही वैसा करने के लिए कहा। हम तो यही चाहते हैं कि सभी सुखी होवें, सभी नीरोग रहें, देवता भी अपनी-अपनी क्रूरता छोड़कर दूसरों का कल्याण करें। कई देशों में घूमते-घूमते पहले के अपरिचित बहुत से देवताओं के नाम और उनकी कितनी ही मूर्तियाँ मैंने देखी थीं। उन देवताओं में इन घुमन्तुओं के देवताओं को शामिल कर लेने में क्या आपत्ति थी? हाँ, हमारी यह कोशिश जरूर होती थी कि ये देवता अपनी क्रूरता छोड़कर कोमल प्रकृति के हो जावें, खून और पशु-बलि की जगह पर साधारण पूजा से तृप्त रहें। संघिल को पूजा-पाठ से बहुत ज्यादा स्नेह था। वह स्वयं भी प्रतिदिन कुछ घंड़ी सूत्रों के पाठ में लगाते थे। घुमन्तू-सामन्त जब हमसे पूजा-पाठ करने के लिए कहते, या किसी प्रेत-भूत की शान्ति करवाना चाहते, तो मैं उन्हें उसके लिए भेज देता। मैंने संघिल को शिष्य के तौर पर नहीं, बल्कि भाई के तौर पर माना, लेकिन नये मिलने वाले जब उनके मुँह से सुनते, जो वह मुझे संघिल का गुरु मानने लगते।

पहाड़ों और मैदानों को पार कर हम रेगिस्तान में घुसे और एक दिन दो रेगिस्तानों के बीच में पड़ने वाले एक हरे-भरे महानगर (हामी) में पहुँच गये। पहाड़ में भी हम जब-तब लड़ाई की बातें सुनते थे और ऐसा मालूम होता था कि कुछ जगहों पर तो हम बाल-बाल बचते आगे बढ़े थे। इस नगर में पहुँचकर हम वहाँ के एक संघाराम में ठहरे। मालूम हुआ, अब आगे बढ़ने में कोई बाधा नहीं है। यहाँ घुमन्तुओं को अधिक संख्या में देखने थे और उनमें से कुछ नगर में भी बस गये थे। जिस विहार में हम ठहरे, वह एक अवार राजा ने बनवाया था। यहीं पहले-पहल हमने अवार भिक्षु देखे। दूसरों की अपेक्षा वह हमारे लिए ज्यादा काम की बातें बतला सकते थे। मुझे जब मालूम हुआ कि एक तुर्क श्रामणेर भी यहाँ पर हैं, तो मैंने उससे परिचय बढ़ाना चाहा। वह कोई 17-18 वर्ष का तरुण था। उसकी मुखमुद्रा घुमन्तुओं जैसी कम थी। उसका मुँह भी अधिक लाल या गुलाबी था। मुझसे परिचय प्राप्त करने की उसकी स्वयं बड़ी इच्छा थी जब उसने सुना कि मैं जम्बू-द्वीप का निवासी हूँ। माँ की तरफ से वह वस्तुतः कुस्तनी था, यही कारण था कि वह संघाराम में आकर श्रामणेर बना था, नहीं तो अभी घुमन्तुओं में केवल अवारों में भिक्षु दिखाई पड़ते थे। तुर्क तरुण मेरे वहाँ रहते-रहते भिक्षु बना और मैंने उसका नाम शान्तिल रक्खा। बुद्धिल के कारण इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शब्द से मेरा बहुत प्रेम हो गया था। संघिल अकस्मात् इस नाम के मिले, लेकिन शान्तिल ने स्वयं चुनकर इस तरुण का नाम रक्खा। मैं उसका उपाध्याय बना और संघिल आचार्य।

नगर (हामी) की कुछ अपनी विशेषताएँ थीं। लोग उसी जाति के थे जिसके कि कूची वाले। इनका जीवन भी घुमन्तुओं जैसा नहीं था, यद्यपि पशु-पालन अब भी इनके यहाँ अधिक होता था। यहाँ से उत्तर स्थायी वस्ती वाले लोगों का पता नहीं है, अर्थात् न वहाँ ग्राम है, न नगर, न खेती-बारी। लोग नम्दे के तम्बूओं में रहते ऊँट, घोड़े, गाय, चँवरी और भेड़-बकरियाँ ही उनके धन हैं। घोड़सवार तो ये गजब के हैं। बिना लगाम और काठी के छोटे-छोटे बच्चे पीठ पर छिपकली की तरह चिपके बेतहाशा दौड़ाते हैं। इससे भी बढ़कर आश्चर्य की बात यह है कि यह लोग घोड़े दौड़ाते धनुष चला सकते हैं और मजाल नहीं कि निशाना चूक जाये। पशुपालन के अतिरिक्त शिकार से भी ये अपने लिए कुछ खाद्य-संचय कर लेते हैं। अन्न का उपयोग भोजन के तौर पर ये बहुत कम करते हैं। दूध पीते हैं। घोड़ी के दूध की एक तरह की मदिरा बनाते हैं। और तो और, इनका घोड़ा जहाँ सवारी का काम देता है, वहाँ सवार अपनी भूख-प्यास की निवृत्ति भी घोड़े की रग में छेद करके उसका खून पीकर कर लेता है। यदि किसी जाति को अजेय कहा जा सकता है, तो हूणों के वंशज इन्हीं घुमन्तुओं को ही। चीन की सेना असंख्य और अपार है। वह बड़ा ही सबल राज्य है। लेकिन, वह भी इन घुमन्तुओं से पनाह माँगता है। हारना इनके लिए कोई बात नहीं। बड़ी सेना देखने पर ये डटकर लड़ते नहीं, बल्कि युद्ध देने से बच निकलते हैं। इनके गाँव नहीं, नगर नहीं, खेत नहीं कि विजेता उनकी सम्पत्ति का सर्वनाश करेंगे। उनके घर चलते-फिरते तम्बू हैं। एक घड़ी भी नहीं लगती कि परिवार का घर-द्वार सारा सामान ऊँट की पीठ पर लद जाता है। फिर ये लोग बड़ी तेजी से दूर उत्तर की ओर भाग निकलते हैं। चीन की सेना को पूरी रसद की ही तैयारी नहीं करनी पड़ती, बल्कि पानी और ईंधन तक को ढोके ले जाना पड़ता है। रात के वक्त ये निश्चिन्त हो आराम नहीं लेने देते। मौका पाते ही छापा मारते हैं। घुमन्तू बिना भारी नुकसान उठाये महीनों के रास्ते भागते चले जा सकते हैं; लेकिन, चीन की सेना वहीं तक पहुँच सकती है जहाँ तक वह अपने लिये पूरी रसद का इन्तजाम कर सकती है। एक महीने के रास्ते से और आगे बढ़कर घुमन्तुओं को खदेड़ना सारी सेना को मौत के मुँह में डालना है। इसीलिए अनेक बार पराजय करके स्वयं विनाश के मुख में पड़कर चीन के लोगों ने देखा कि घुमन्तुओं से लड़ने की जगह मेल रखना ही अच्छा है। अवारों और तुर्कों के साथ जैसा खूनी संग्राम हुआ था, उससे चीन बहुत लाभ नहीं उठा सका, इसलिए गृहयुद्ध में उसने बहुत ज्यादा दखल नहीं दिया। वह इसी बात के लिए खैरियत मानते रहे कि जब तक ये मूजी आपस में खून-खराबी करते रहेंगे, तब तक हमारा सीमान्त सुरक्षित रहेगा।

इस नगर को वस्तुतः राज्यों का सीमान्त नहीं, बल्कि दुनिया का सीमान्त कहा जा सकता है। नगरवासी भी अपने कूची आदि भाइयों से भेद रखते थे। ये कृषि, बागबानी ही नहीं, बल्कि छोटा-मोटा व्यापार भी करते हैं। बड़े-बड़े व्यापारी यहाँ भी सोग्द, पारस्य अथवा कुस्तन, खशगिरि आदि के रहने वाले हैं। उनकी अपेक्षा ये अधिक पिछड़े हैं, यह स्वाभाविक है; लेकिन, इनकी ईमानदारी और सरलता बड़ी मोहक है। अतिथि के लिये तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उदार ही नहीं, बल्कि प्रीति करते हैं। उसके खान-पान और सेवा में ही गृहपति नहीं लगा रहता, बल्कि अपनी पत्नी या लड़की को भी सेवा में भेजना अपना कर्तव्य समझता है। इसके लिये लोग उनकी निन्दा करते हैं, क्योंकि वह उनके भावों को नहीं समझ पाते। वस्तुतः शिष्टाचार की तुलना सभी बातों में सभी देशों में एक-सी नहीं होती। ये अतिथि-सेवा को अत्यन्त पुनीत कर्म समझते हैं। उनकी यह भावना भी उसी का अंग है। इस तरह की विचित्र अतिथि-सेवा से गृहस्थ ही नहीं, बल्कि मुझे अफसोस होता था, भिक्षु भी लाभ उठाते हैं। यदि बाहर के लोगों का संसर्ग न होता, तो उन्हें बुरा कहने वाला कोई न होता। यहाँ के अधिक लोग बुद्धधर्म को मानते हैं। कुछ-कुछ मसीही और पारसीक (मानी) धर्म के भी मानने वाले भी हैं, लेकिन कांस्यदेश की तरह यहाँ उनमें कोई आपसी वैमनस्य नहीं है। हम उनके मठों में जाते और वह दिल खोल कर हमारी आवभगत करते।

इस नगर से हमारा रास्ता दक्षिण-चीन की सीमा की ओर जा रहा था। वहाँ अब भी लड़ाई-झगड़े का डर था और सार्थ वाले डरते-डरते कदम आगे बढ़ाते थे। सारी गर्मी और बरसात वहाँ रहने के लिये हम जो तैयार हो गये, उसमें रास्ते की भीषणता ही कारण नहीं थी, बल्कि मित्रों और विशेषकर शान्तिल और उसके परिवार का आग्रह भी इसमें कारण था। वर्षा में—केवल तीन महीने के विपयानुसारी वर्षावास के कारण कह रहा हूँ, नहीं तो इस भूमि में वर्षा बड़ी दुर्लभ चीज है—पानी बरसने की जगह जाड़ों में यहाँ हिम अधिक बरस जाती है। खतरा था, लेकिन सार्थ का मिलना मुश्किल नहीं था। वह जाड़ों में चलना ज्यादा पसन्द करते हैं, क्योंकि उस वक्त आँधियाँ कम आती हैं और मरुभूमि में रास्ता भूल जाने अथवा बालू के नीचे दब जाने का डर कम रहता है। मैंने स्वयं नहीं देखा, लेकिन सुना कि हिमवृष्टि की तरह यहाँ कभी-कभी आसमान से बालुका वृष्टि हुआ करती है जिसके नीचे गाँव और नगर तक दब जाते हैं। यह कोई असम्भव बात नहीं है। मैंने अपनी आँखों बालू के बड़े-बड़े टीलों को देखा। इन टीलों की शकल घोड़े की खुर जैसी होती, अर्थात् एक तरफ स्तूप की पूरी आकृति न हो, वह खाली रहते हैं। हमारे मित्रों और परिचितों ने यह सलाह दी कि जाड़ों में यात्रा करना अच्छा रहेगा। शान्तिल भी मेरे साथ चलने वाला था। उसके माता-पिता इसे पसन्द करते थे, क्योंकि वह समझते थे कि भारतीय पंडित भिक्षु के साथ रहकर वह भी पंडित हो जायेगा। मेरे जैसे विद्वान् वहाँ दुर्लभ थे, इसलिये वह शान्तिल के लिये इसे सौभाग्य की बात मानते थे। शान्तिल की माँ बड़ी ही भक्तिपरायण स्त्री थी। वह असाधारण सुन्दरी थी, तभी तो एक वेग ने उसे अपनी पत्नी ही नहीं बनाया था, बल्कि वह वेग और उसके अनुयायियों पर शासन करती थी। वह अपने पुत्र के मेरे साथ जाने में सहमत थी, लेकिन एक बार चले जाने पर फिर कभी अपने पुत्र का मुँह देख सकेगी, इसकी सम्भावना कम थी, इसलिये और भी कुछ समय रहने का उसका आग्रह था। मैं चीन जाने के लिये उतावला था। मेरी दृष्टि केवल दक्षिण-पूर्व के जाने वाले रास्ते पर थी। तो भी कौतूहल-वश मैंने तुर्कों की भाषा सीखनी चाही। अवारों की भाषा से इसमें बहुत अन्तर नहीं था। उनके शासन के अधीन होने के कारण इस सीमान्त नगर में अवार भाषा जानने वालों की कमी नहीं थी। लेकिन, उनका स्थान तुर्कों ने ले लिया था, इसलिये तुर्की भाषा की महिमा अब बढ़ गई थी। मैंने भी राजभाषा सीखने की कोशिश की। शान्तिल के कारण उसमें बड़ी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आसानी भी थी। इसी समय मुझे मालूम हुआ कि शान्तिल का पिता यद्यपि अब तुर्क बेग समझा जाता है, किन्तु वस्तुतः उसका सम्बन्ध एक अवार राजपरिवार से है। तम्बू लिये एक जगह से दूसरी जगह फिरने वाले घुमन्तू ठहरे, शायद इसीलिये उसे अवार से तुर्क बनने में सुविधा हुई, अथवा नये शासकों से उसके सम्बन्ध ने ऐसा करने का अवसर दिया।

जाड़ा शुरू हुआ। जल्दी करते-करते एक महीना और बीत गया। शान्तिल के पिता ने स्वयं चीन के सीमान्त तक साथ चलने के लिये जब कहा, तो थोड़ा और ठहर जाना हमें बुरा नहीं लगा। घुमन्तू जन-साधारण (एल-बुदुन) या बेग कृषि से घृणा करते, पशुपालन के साथ व्यापार का भी काम करते हैं। कद में नाटे, किन्तु शक्तिशाली इनके घोड़ों की चीन में बड़ी माँग है, ऊँटों की भी कुछ विक्री हो जाती है और भेड़ें तो भारी संख्या में ये सीमान्त पर बेंचने के लिये जाती हैं। शान्तिल के पिता के जाने का मतलब था, उसके अधीन सैकड़ों तम्बुओं (परिवारों) का साथ जाना और उसी के अनुसार विक्रय के लिये पशुओं का भी। बेग के पास अपने स्वजातीय अनुयायियों के अतिरिक्त कितने ही दास-दासियाँ भी होती हैं जो या तो दुश्मनों के कबीलों से छीन कर लाये गये अथवा कांस्यदेश के लोगों में से होते हैं। शुभ मुहूर्त में मंगलाचार करके बेग ने एक दिन हमें लिये प्रस्थान किया। शान्तिल की माँ के जोर देने ही पर यात्रा का मुहूर्त घोड़े की बलि देकर नहीं किया गया। अभी तक घुमन्तुओं के साथ यात्रा करने का मुझे अवसर नहीं मिला था, वही बात संघिल की भी थी। सार्थ कुछ रात रहते ही कूच करता। चाँदनी रातें थीं, इसलिये लोग जल्दी-जल्दी चलना पसन्द करते थे। पहर भर दिन तक हम आगे के पड़ाव पर पहुँच जाते। पड़ाव क्या कोई निश्चित स्थान होता? जहाँ भी घास-चारे और पानी का सुभीता देखते, वहीं तम्बुओं का ग्राम बस जाता, जानवर आस-पास चरने के लिये छोड़ दिये जाते। एक ही जगह डेरा लगाने पर घास-चारे की कठिनाई होती। रेगिस्तान में पानी किसी-किसी जगह ही सुलभ था, वहीं डेरा पड़ता। तम्बू वाले ऊँट सबसे पहले चलते और सबसे पहले मुकाम पर पहुँचते। उनको बैठाकर सामान नीचे उतार दिया जाता। लकड़ी का पंजर खड़ा कर दिया जाता। सचमुच ही देखने में वह सुन्दर पिंजड़े जैसा मालूम होता, उसी तरह तीलियाँ एक दूसरे के ऊपर होती जाली बुनतीं। फर्क इतना ही था कि यह पिंजड़े से कई गुना बड़ा और भारी था, जिसके भीतर बारह-चौदह आदमी सो सकते थे। बेग तम्बू तो और भी बड़ा था। पिंजड़े का ढाँचा ढोने के सुभीते के लिये कई हिस्सों में बँटा होता जिन्हें जोड़कर खड़ा कर देने में उन लोगों की फुरती देखकर मुझे आश्चर्य होता। ढाँचा खड़ा करते ही सुई का काम किये हुये सुन्दर स्वच्छ सफेद नमदे चिपका कर उन्हें डोरियों से ऐसे बाँधा जाता कि वह देखने में साधारण बाँधना नहीं, बल्कि कला की निपुणता प्रदर्शित करता। घुमन्तुओं में सौन्दर्य और कला का प्रेम बहुत है। और बातों में इतने पिछड़े होने पर भी ये कैसे सौन्दर्य के इतने चतुर पारखी ही नहीं, बल्कि कुशल निर्माणकर्ता हैं? रंगों का मिश्रण करके कैसे सौन्दर्य की सृष्टि होती है, इसे फूलों और हरियाली से वंचित इन लोगों ने कहाँ से सीखा? एक तम्बू खड़ा कर देने के बाद भीतर रक्खे जाने वाला सामान यथास्थान रख दिया जाता।

सामान, विशेषकर डेरे को ले जाने वाले पशु और मनुष्य पहले प्रस्थान करते, यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैं बतला आया हूँ। बेग और उसके दूसरे घोड़सवार अनुचर सबसे पीछे रवाना होते। एक बात उनकी मुझे पसन्द आई। हाथ से काम करने में इनके बेग भी अपने अनुचरों और नौकरों से पीछे नहीं रहते। वही क्यों स्वयं कआन (राजा) या यबगू भी तम्बुओं को खड़ा करने में सहारा दिये बिना नहीं रहते और अपने घोड़ों की देखभाल को स्वयं करना अपनी प्रतिष्ठा के खिलाफ नहीं समझते। यहाँ के भिक्षु यद्यपि विनय-नियमों के पालन करने का ध्यान रखते हैं, लेकिन परिस्थिति शिथिलता के लिये मजबूर करती है। अवारों और अब तुर्कों के सामन्तों ने भी भिक्षुओं की आवभगत करनी शुरू की है। उनके साथ रहने वाले भिक्षु नियमों के पालन में यदि अधिक शिथिलता दिखलायें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। प्रस्थान करने के दिन मुझे और संघिल को भी घोड़े पर सवार होकर चलने के लिये बहुत आग्रह किया गया, लेकिन भिक्षु स्वस्थ रहने पर केवल नाव की सवारी ही कर सकते हैं, अस्वस्थ रहने पर आदमी उन्हें उठा कर ले जा सकते हैं। मैं उस नियम को छोड़ने के लिये तैयार नहीं था। मेरे आग्रह को उन्होंने मान लिया। शान्तिल भी अपने उपाध्याय और आचार्य को पैदल चलते देखकर स्वयं घोड़े पर सवार होकर कैसे चल सकता था? हम तीनों के लिये एक अलग तम्बू और दो ही परिचारक थे। हम पैदल चलने वाले थे, इसलिये अपने तम्बू वाले ऊँटों के साथ ही रवाना होकर सबसे पहले नई जगह पर पहुँच जाते। वहाँ हमें यह देखने का अच्छा मौका मिलता था कि कैसे कुछ ही समय में निर्जन स्थान में एक अच्छा खासा गाँव बस जाता है। स्त्रियाँ और लड़के भी चीटियों की तरह अपने-अपने काम में लग जाते। दूध देने वाले जानवरों को चरने के लिये छोड़ने से पहले दुह लिया जाता है।

ऊँट का दूध मुझे पहले पसन्द नहीं आता था। उसकी गन्ध बकरी के दूध की तरह ही मुझे अप्रिय मालूम होती थी, लेकिन अभ्यास से आदमी की रुचि-अरुचि में भी परिवर्तन हो जाता है। घड़े-घड़े भर दूध देने वाली ऊँटनियाँ मुझे मनुष्य के लिए बहुत उपयोगी दीख पड़ने लगीं और धीरे-धीरे मैं उनके दूध को अच्छी तरह पी सकता था। डेरे पर पहुँचते ही मुझे ऊँट के थन से निकला गर्मागरम दूध मिलता। विकाल (दोपहर के बाद) भोजन मैं नहीं कर सकता था, उसे ठीक मध्याह्न में करना चाहता था, ताकि अगले दिन पहर भर दिन चढ़े तक मेरे शरीर में चलने-फिरने के लिए शक्ति बनी रहे। वैसे सूर्योदय के बाद भी सूखा मांस सुलभ था और मेरे परिचारक उसके लिए आग्रह भी करते थे, किन्तु मैं नये टिकान पर पहुँचे बिना कुछ नहीं खाता था। संघिल और शान्तिल भी इस बात में मेरा अनुकरण करते थे। यह बतला दूँ कि मांस का त्याग मैंने चीन में आकर ही किया। विनय के कठोर पालन करने वालों को भी मैंने भारत, सिंहल द्वीप और कांस्यदेश में मांस खाते देखा। वहाँ और पुस्तकों के पढ़ने पर मुझे यह भी विश्वास हो गया कि तथागत ने भिक्षुओं के मांस को सर्वथा वर्जित नहीं किया है। इसलिए मैं महायान के पथ पर आरूढ़ होने के बाद भी उस समय मांस-विरत नहीं था। ऐसा करके मैंने अच्छा ही किया, नहीं तो घुमन्तुओं की भूमि में जाकर जीवित रहना मेरे लिए सम्भव नहीं होता। हमारे बेग के पास वैसे अन्न और सूखे फल भी रहते, लेकिन उसका प्रधान भोजन सूखा या ताजा मांस ही होता। उसके अनुचरों को मैंने कच्चे मांस को भी खाते देखा, लेकिन वह उसे अधिकतर उबाल कर या भूनकर खाना पसन्द करते। लकड़ी या ईंधन का जहाँ सुभीता होता, वहाँ जमीन में गड्ढा खोदकर आग जला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहले उसे संतप्त कर लेते, फिर पूरी भेड़ को मार कर, उसमें रख कर ऊपर से बालू डाल आग जला देते। इस तरह के भुने हुये मांस को वह बहुत पसन्द करते। लेकिन वेग ही ऐसे परम स्वादिष्ट भोजन के पाने का अधिकारी था। उनका अतिथि होने से मुझे भी वह मिलता था। मध्याह्न-भोजन के समय शान्तिल की माता सारे खाद्य और पेय को अपनी दासियों से उठवाये हमारे तम्बू में पहुँचतीं। कोमल नम्दे के ऊपर घुमन्तुओं के देश का अत्यन्त कोमल मृगचर्म (समुर) बिछा रहता जिस पर हम तीनों भिक्षु बैठ जाते। उपासिका हमारे भिक्षा-पात्रों में अपने हाथ से भोजन को प्रदान करके हाथ जोड़तीं। हम "सुखी हो" कह आशीर्वाद देते। भोजन करके हाथ धो लेने पर हम पुण्य का अनुमोदन करते उपासिका को धर्मोपदेश देते। उसके घर में भी हमने कितनी ही बार उपदेश दिया था, सूत्रपाठ भी किये थे। कूची की भाषा से परिचित होने के कारण हम उसमें उपदेश कर सकते थे, इसलिए भी वेग हर रोज वहाँ उपस्थित नहीं होता था। जिस दिन उपस्थित होता, उस दिन शान्तिल को दुभाषिया बनकर बातों को तुर्की में सुनाना पड़ता।

सप्ताह वीत गया। हमारी यात्रा निश्चिन्त और सुखपूर्वक होती रही। घुमन्तुओं के लिए यात्रा भी ग्रामवास जैसी ही है, क्योंकि धरती और दूसरी प्रकृति की चीजों को छोड़कर उनके आस-पास सभी अपने परिचित मनुष्य, पशु, घर और सामान रहते हैं। मुझे भी इस जीवन में रस आने लगा। जिसको पर्यटन से प्रेम है, उसको अवश्य ही इनका जीवन पसन्द आयेगा। पर्यटक नहीं ये महापर्यटक हैं, क्योंकि इन्होंने आजन्म पर्यटन करने का व्रत ले रक्खा है। हम सोच रहे थे, एक सप्ताह और चलने पर आगे के पहाड़ों में पहुँच जायेंगे। सूखे होने पर भी वहाँ घास-पानी की दिक्कत नहीं है। फिर आराम से 15-20 दिन चलकर हम महाचीन की उस महादीवार के नीचे जायेंगे जिसकी कथाओं को बड़े आश्चर्य के साथ हमने सुना था। वहाँ जाकर हमारे वेग को अपने साथ लाये विक्रेय पशुओं को ही नहीं, रोम, पारस्य और भारत तक में बने हुये पुण्यों को भी वेचना है। अभी जो यात्री चल रहे थे, वह सभी चीन की ओर जा रहे थे। वेग के लोग चर्चा करते थे : न जाने हमारे पशुओं का मूल्य कैसा लगेगा। अपनी चीजों को बेंचकर उन्हें चीन के महार्घ रेशम तथा दूसरी चीजों को खरीदना था। इनमें से कुछ वह अपने लिए इस्तेमाल करने को रख लेते, बाकी चीजों के वह वाहक मात्र थे। इन्हें वेचने के लिए वेग कभी-कभी कूची भी जाता यदि रास्ते ही में वह अच्छे दाम पर विक न जातीं।

उस दिन सूर्योदय का समय था। हमें अभी अगले पड़ाव पर जाने के लिए एक योजन से अधिक चलना था। भूमि समतल थी। कहीं पहाड़ों की रुकावट नहीं थी, इसलिए चारों ओर दूर तक हम देख सकते थे। देखा, सैकड़ों घोड़सवार हमारी तरफ बेतहाशा दौड़े आ रहे हैं। देखते ही हमारे साथ के लोग खड़े हो गये। अधिकतर इनमें पैदल चलने वाले थे। 10-15 ही उनमें घोड़सवार थे। मुझे तो देखने में मालूम हुआ तुर्क घोड़सवार किसी जल्दी के काम पर जा रहे हैं, लेकिन मेरे साथी उतने निश्चिन्त नहीं थे, खासकर हमारे सवारों का नायक इसमें खतरे की गन्ध देखने लगा। उसने तुरन्त जानवरों को रोककर सजग होने के लिए कह दिया। क्षण भर में सबके हाथों में धनुष थे जिन पर बाण चढ़ गये। वह इस बात की प्रतीक्षा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर रहे थे कि और नजदीक आने पर देख लें, आने वाले मित्र हैं या शत्रु। मेरे पूछने पर शान्तिल ने कहा, ये भी तुर्क हैं, लेकिन कभी-कभी वह आपस में भी लड़ मरते हैं। लूटने का अवसर मिले, तो वह अपनों को भी नहीं छोड़ते। वह यह तो जानते ही थे कि साधारण सार्थ हो या बेग का उर्दू, उनके पास कीमती वस्तुएँ होती हैं। शान्तिल ने बतलाया, ज्यादा से ज्यादा उनका यही डर हो सकता है कि यदि इसका पता कआन को लगा तो वह भारी दण्ड देगा। इसके लिए वह कोशिश करते हैं कि पता लगाने का कोई चिह्न ही न छोड़ें और एक ओर से सबका सफाया कर दें।

हमारे साथियों की आशंका सत्य से भी बढ़कर सिद्ध हुई। नजदीक आने पर जब हमारे लोगों ने ठहर कर परिचय देने की माँग की, तो दूसरी ओर से सनसनाते हुए वाण हमारी तरफ आने लगे। हमारे लोगों ने जानवरों की आड़ लेकर वाण छोड़ना शुरू किया। लेकिन, वह संख्या में हमसे बहुत अधिक। कुछ देर तक मैंने दोनों तरफ के वाणों को चलते तथा शत्रुओं को नजदीक पहुँचते देखा। वाण कोई फूल नहीं होते। दोनों तरफ लोगों के हताहत होते भी मैंने देखा। इसके बाद मुझे कोई खबर नहीं रही।

रात थी जब मुझे होश आया। इस वक्त अँधेरा था। आकाश में असंख्य तारे सफेद फूलों की तरह खिले हुए थे। मेरे आस-पास क्या हुआ है, इसे जानने की इच्छा होने से पहले मुझे सिर, पेट और बायें हाथ में दर्द मालूम होने लगा। दाहिने हाथ से टटोलने पर मालूम हुआ कि मैं खून से लथपथ पड़ा हूँ। पीड़ा बड़ी दुःसह थी। जीवन आदमी को सबसे ज्यादा प्रिय होता है, पर मैं केवल अपने जीवन की पर्वाह नहीं कर सकता था। मुझे सबसे पहले अपने दोनों साथियों की चिन्ता हुई। पहले कान लगाकर सुनने लगा। कराहने की आवाज आ रही थी। इसी समय किसी का हाथ मेरे शरीर पर पड़ा। मेरे शरीर को हिलते देख शान्तिल की आवाज बहुत धीमे स्वर में सुनाई दी। मैंने बतलाया—मैं जीवित हूँ, हाँ, दो-तीन जगह घाव हैं। पेट में अब भी बाण फँसा हुआ था। कहने पर शान्तिल ने उसे बड़ी बेदर्दी से खींच लिया। घाव और बढ़ गया, लेकिन जीवित रहने के लिए वैसा करना आवश्यक था। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि शान्तिल अक्षत-शरीर है। उसने संघिल के बारे में बतलाया कि वह अब भी पास में ही बेहोश पड़े हैं। हम जानते थे कि हमारे शत्रु हमको चारों ओर से घेरे हुए हैं। ऐसी अवस्था में सजग रहने की बहुत जरूरत थी। हम बहुत धीमी आवाज में थोड़ा-थोड़ा बोल रहे थे। मैंने शान्तिल को कहा—पहले संघिल को देखो।

शायद उसके बाद मैं फिर बेहोश हो गया। घाव भारी था, रक्तस्राव बहुत अधिक हुआ था जिसके कारण मूर्छा आनी जरूरी थी। सवेरा हुआ। सूर्य का प्रकाश नहीं, धूप चारों ओर फैल गई थी जब मेरी आँखें खुलीं। शान्तिल मेरे पास बैठा था। मेरे आँख खोलकर देखने पर भी उसके अत्यन्त उदास मुँह को देखकर मुझे भय हो गया। मैंने संघिल के बारे में पूछा, तो उसने अपने ऊपर बहुत संयम करके कहा—वह अब हमारे साथ नहीं रहे। और तरफ नजर दौड़ाई। कितने ही हत और आहत लोगों को वहाँ पड़े देखा। आक्रमणकारी वहाँ की हरेक चीज को सँभाल रहे थे। मुझे होश में आया देखकर उनमें से दो हमारे पास आकर बैठ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थे। यह जानने में हमें कठिनाई नहीं हुई कि वह हमें अपनी हालत पर छोड़ना नहीं चाहते। शान्तिल से वह पहले ही बहुत-सी बातें पूछ चुके थे और अब भी वह उसे शान्त नहीं रहने देना चाहते थे। मुझे होश में आया देखकर उन्होंने अपने सरदार को खबर दी। उसने हमारे पास आकर यही कहा—हमें अफसोस है कि तुम घायल हो गये। हमारे कआन और बेग की कोई इच्छा नहीं थी कि आपको कोई हानि पहुँचे। आपके साथ आने वाला बेग असल में तुर्क नहीं, अवार राजकुमार हैं। उसने अपने को गुप्त रक्खा था, लेकिन हम अपने शत्रुओं को छोड़ नहीं सकते। पता लगते ही कआन का हुकुम हुआ कि उसे जिन्दा या मुर्दा पकड़ा जाये। अफसोस है कि हम उसे जिन्दा नहीं पकड़ सके। उसका सारा सामान, उसकी बीवी और परिवार हमारे हाथ में आ गया है। हम तुम्हें इस हालत में भी नहीं छोड़ सकते। हमारे कआन और यबगू भिक्षुओं को बहुत मानते हैं। वह तुमसे मिलकर बहुत खुश होंगे।

घुमन्तुओं की भूमि

(555-56 ई०)

हमारी यात्रा की दिशा ऐसी बदली कि महीनों तक हमें मालूम नहीं होता था, हम किधर जा रहे हैं। दिन के सूर्य और रात के तारों से यह तो मालूम होता था कि हम किस दिशा में जा रहे हैं, लेकिन वह दिशा हमेशा निश्चित नहीं रहती। यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई कि उन्हें यह नहीं मालूम हो सका है कि शान्तिल अवार राजकुमार का पुत्र है। उसके चेहरे पर पिता की अपेक्षा माँ की छाप अधिक थी, यह भी रहस्य ढाँकने में सहायक हुई। यदि पिता के दासों-अनुचरों को साथ रक्खा गया होता, तो किसी समय भी भेद खुलने का डर था। फिर कह नहीं सकता कि शान्तिल के साथ वह कैसा बर्ताव करते।

मुझसे जिस सरदार ने बातचीत की थी, कुछ देर बाद वह फिर आया। सामान और लोगों को साथ लाने के लिए अपने अनुचरों को हुकुम देकर उसने मुझे साथ चलने के लिए कहा। उसका बर्ताव बहुत नम्र और शिष्टाचारपूर्ण था। वह कह रहा था—हम तुर्क अब तक अवारों के दास थे, अब हमारा राज है। हमें मालूम है कि अवारों के राजकाज चलाने में तुम लोगों की विद्या और बुद्धि बहुत सहायक होती रही है। हम यह भी जानते हैं कि तुम लोग मार-पीट को पसन्द नहीं करते, कभी हथियार से अपने शत्रु का मुकाबिला नहीं करते। तुमसे हमारा क्या बैर हो सकता है? हम अपने यबगू के पास तुम्हें ले चलेंगे। वह बहुत खातिर से रक्खेगा। यदि वहाँ रहना पसन्द न आये, तो जहाँ चाहोगे, वहाँ पहुँचा देगा।

बेग की बातों से अब अपने भविष्य का थोड़ा-थोड़ा आभास हमें मिलने लगा। घाव तो जरूर भारी था, विशेषकर बाईं कोख में जो बाण लगा था, वह बहुत भयंकर था। लेकिन, बेग के चिकित्सक ने उसे दवाई भर के कपड़े से खून बाँध दिया। दूसरे घाव उतने बड़े नहीं थे। उनमें भी दवाई लगाकर बाँध दिया गया। फिर मुझे एक घोड़े पर बैठाया गया। शान्तिल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को दूसरा घोड़ा मिला। दो दिन हम कुछ धीमा गति से चले, उसके बाद दौड़-सी मची। हम फिर उसी नगर (हामी) में आये जहाँ से तीन सप्ताह पहले हमने प्रस्थान किया था। मुझे डर लग रहा था कि वह यहाँ कुछ दिनों के लिए ठहरें ना, नहीं तो शान्तिल का अनिष्ट हो सकता है। लेकिन, बेग को अपने यबगू के पास पहुँचने की जल्दी थी। नगर से बाहर केवल एक रात मुकाम करके वह अपने पाँच सवारों के साथ हमें लिए रवाना हो गया।

अभी हमें यह नहीं मालूम हो सका था कि संघिल की माँ का क्या हुआ? पति को मार डालने पर आक्रमणकारी उसे अपने लिये ले जा सकते थे। शायद उसकी उमर को देखकर उनके दिल में बहुत प्रलोभन न हो, ऐसी स्थिति में उसका क्या हुआ होगा, इसके जानने की जिज्ञासा हमारी पीछे पूरी हुई। यह जानकर हम दोनों को सन्तोष हुआ कि वह अपने मायके चली गई जहाँ वह भिक्षुणी बनकर अपने अवशिष्ट जीवन को धर्म के कामों में बितायेगी। उसका स्वभाव इसके बिलकुल अनुकूल था। घर में रहते भी उसका जीवन बहुत कुछ भिक्षुणियों जैसा था। माँ के वियोग का शान्तिल को उतना दुःख नहीं हो सकता था, लेकिन जिस परिस्थिति में यह हुआ, वह बड़ी ही मर्मभेदी थी। हम जिस ओर से आ रहे थे, उधर पानी का एक तरह अभाव-सा था। इस नगर (हामी) से जिस पहाड़ की ओर हम चले, उससे कितनी ही नदियाँ निकलती थीं और हमारी आशा के विरुद्ध वह उतना वृक्ष-वनस्पतिहीन भी नहीं था। ऐसी जगहें खेती के लिए भी उपयुक्त हो सकती हैं और चरागाह के लिए भी लेकिन, इस भूमि के स्वामियों को चरागाहों की अधिक आवश्यकता थी। हमने अपनी यात्रा में कई जगहों पर देखा कि पहले के गाँव और खेत उजाड़कर चरागाहों में परिणत कर दिये गये हैं। ध्वस्त गाँवों के ऊपर जब-तब घुमन्तुओं के तम्बू दिखलाई पड़ते।

मेरे घावों को, विशेषकर कोख के घाव को बिल्कुल अच्छा होने में काफी देर लगी लेकिन मैं अब खतरे में न था, न शान्तिल। यात्रा करने में पहली जैसी असुविधा नहीं थी मैंने चिकित्साशास्त्र का उतना ही अध्ययन किया था जितना कि एक पर्यटक भिक्षु के लिए आवश्यक है। मेरे साथी दक्ष वैद्य थे, उसके कारण भी मैं कूची तक इस ओर ध्यान न देता था। कुछ अत्यावश्यक दवाइयाँ हमारे साथ बराबर रहती थीं, जिनमें से घाव के लिए मैंने कुछ का उपयोग किया। इस परिस्थिति में मेरी मनोदशा जैसी थी उसमें शान्तिल का पास रहना बड़ा ही उपयोगी साबित हुआ। वर्षों से जो लक्ष्य सामने था, वह सदा के लिए बिछुड़ता मालूम हुआ। हम नहीं कह सकते थे कि हमारे जीवन का अवसान कहाँ होगा। जहाँ तक हमारे उस समय के स्वामियों का सम्बन्ध था, उनका वर्ताव बुरा नहीं था। बेग मेरा विशेष तौर से सम्मान करता था, लेकिन हम दोनों अच्छी तरह जानते थे कि हमारी स्थिति उनके दास या बन्दी से बढ़कर नहीं है।

एक छोटी-सी पहाड़ी नदी के किनारे-किनारे हम पहाड़ के भीतर घुसे। यद्यपि यहाँ चरने और मुकाम करने की बहुत सुविधाएँ थीं, लेकिन बेग को जल्दी थी। शायद दो ही तीन दिन लगे होंगे जबकि पहाड़ पारकर हम एक विशाल सरोवर के दक्षिण-पूर्व में अवस्थित एक नगर (बरकूल) में पहुँचे। नगर को हमने पहाड़ के ऊपर से ही देख लिया था। उसके उत्तर में भी कुछ दूर पर वैसा ही पहाड़ था, जैसा दक्षिण में। ऐसी सूखी मरुभूमि में सागर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जैसे विशाल सरोवर के होने का मतलब ही था, उसका पानी खारा होगा। ठहरने की जगह पर वेग हमसे अब घन्टों बातें पूछता रहता। हम उसके शत्रुदेश के नहीं थे, न हमारे प्रति वह कोई सन्देह कर सकता था। घुमन्तू होने पर भी वह यवगू का बहुत विश्वासपात्र एक सम्भ्रान्त सामन्त था। इन घुमन्तुओं का उच्च-वर्ग शिक्षा-दीक्षा में वस्तुतः हमारे सामन्तों से बहुत पीछे नहीं था। सिंहल में मैंने व्याधों को देखा था, वह भी बेघर-बार के थे, पशुपालन नहीं करते थे, केवल शिकार और फल-मधु-संचय पर जीवन निर्वाह करते थे। उनमें भी क्रूरता, निर्भीकता आदि कितनी ही बातें इन घुमन्तुओं जैसी थीं, लेकिन दोनों में बहुत अन्तर था। इनमें उनकी अपेक्षा अधिक नागरिकता (सभ्यता) थी। वस्तुतः पशुपालन का जीवन ही इन्हें आगे बढ़ने नहीं देता था। खेती से यह बहुत घृणा करते थे, लेकिन शिल्प के बारे में वही बात नहीं थीं। इनके तम्बुओं में बड़े कुशल शिल्पकार और कलाकार मिलते थे जो कि कपड़े तथा दूसरे सामान को इतना सुन्दर बनाते थे जितना उन जैसी चीजों पर दूसरी जगह पाना मुश्किल है। इनके पहाड़ों में ताँबा, लोहा और सोना है। बिना हथियारों के अपने भीतरी और बाहरी शत्रुओं से ये कैसे लड़ सकते? इसलिए धातु-शिल्प को विकसित करने का भी इन्होंने काफी प्रयत्न किया था। यह बतला ही चुका हूँ कि त्योर्क लोग पहले अवारों की अल्तुन-इइश (सुवर्णगिरि) के दक्षिणी भाग में लोहे की खानों में काम करते थे। इस पहाड़ का सुवर्णगिरि नाम बेकार का नहीं। इसके उत्तरी भाग में बहुत बड़ी-बड़ी सोने की खानें हैं जिनसे कआन को बहुत सोना मिलता है। जैसे हमारे देश में उत्तर में सोने के पहाड़ (सुमेरु) के होने की कथा प्रचलित है, वैसी ही यहाँ इन पहाड़ों के लिए है, परन्तु वह केवल कथा मात्र नहीं है। मैंने यवगू के पास वहाँ से आई सोने की ईंटों को अपनी आँखों देखा था।

सरोवर के पास वाला यह नगर (बरकुल) हमारे लिए अन्तिम नगर या बस्ती थी। पीछे बहुत समय बाद जब पहले पहल मैंने गाँव और नगर देखे तो मालूम हुआ, मैं सचमुच एक विचित्र दुनिया में चला गया था। इस नगर में भी संघाराम था, भिक्षु थे, तुर्कों जैसे चेहरे-मोहरे वाले आदमियों की अपेक्षा कूची जैसे लोगों की संख्या अधिक थी। उनमें अधिकतर व्यापारी, शिल्पकार थे। नगर के पास कुछ गाँव भी थे जहाँ खेती होती थी। नगर में मेवों के बगीचे और साग-सब्जी ही के खेत देखे जा सकते थे। यहाँ से एक रास्ता पश्चिम की ओर जाता था जो आगे जाकर सोग्द वाले रास्ते से मिल जाता था। सोग्दी व्यापारी भी यहाँ थे। एक रास्ता उत्तर-पश्चिम में सोने की खानों की ओर जा रहा था। इस रास्ते पर जाने में बहुत-सी रुकावटें थीं। त्योर्क और उनके पहले के अवार भी नहीं चाहते थे कि सोने की खानों का पता दूसरों को मिले। सोना दुनिया में सबसे अधिक लड़ाई-झगड़े का कारण होता है। घुमन्तू अपने पशुधन और परिवार को आवश्यकता पड़ने पर शत्रु के सामने भगा ले जा सकते थे, लेकिन इन खानों के साथ वैसा नहीं किया जा सकता। यह ठीक है कि चीन, पारस्य या भारत के लोग सोने के सबसे ज्यादा ग्राहक हैं, वह महीनों घुमन्तुओं की निर्जन भूमि में होकर सोने की खानों के लिए धावा नहीं बोल सकते, लेकिन भय तो रहता ही। फिर इन खानों में काम करने वाले अधिकतर तुर्कों के दास या दास जैसे लोग हैं। तुर्क होने पर भी सोने को चुरा कर वह उससे लाभ उठा सकते हैं, इसलिए भी राजकीय सम्पत्ति के तौर पर इन खानों की सुरक्षा का बहुत ध्यान रक्खा जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस नगर से जिस रास्ते को हमने पकड़ा, वह करीब-करीब उत्तर-पूर्व की ओर जा रहा था। जो पहाड़ नजदीक मालूम हो रहे थे, वह वस्तुतः आकाश के अत्यन्त निर्मल होने ही के कारण, नहीं तो काफी दूर थे। बीच की भूमि बिलकुल समतल थी जिसमें कहीं-कहीं फरास (सक्सौल) के छोटे-छोटे वृक्ष या और तरह की झाड़ियाँ थीं। फरास को मथुरा के पास भी मैंने देखा था, लेकिन वहाँ इतनी बालु की भूमि नहीं थी। जिस भूमि में पानी का अत्यन्त अभाव होता है, वहाँ यह काफी बड़ा वृक्ष कैसे उगता है? एक जगह तो इसका जंगल-सा लगा था। वहीं हम रात के विश्राम के लिए ठहरे। शाम के समय बहुत से ऊँट जंगल में इकट्ठे दिखाई पड़े। शायद वह इसके पत्तों को पसन्द करते हैं। भारत में भी मैंने ऊँट देखे थे। वह भी कँटीली झाड़ियों और कँटीले वृक्षों के पत्तों को बहुत पसन्द करते हैं। लेकिन, फरास कँटीला वृक्ष नहीं है। भारत के ऊँट यहाँ से अधिक बड़े होते हैं। यहाँ जैसी मरुभूमि में उतने बड़े ऊँट होने भी नहीं चाहिए, नहीं तो उनके खाने के लिए उतना चारा कहाँ से मिले? यहाँ के ऊँटों के शरीर पर अधिक और इतने मुलायम बाल होते हैं कि उनके बने कपड़ों को बड़े लोग भी पहनना पसन्द करते हैं। यहाँ के ऊँटों की पीठ पर भारत की तरह एक नहीं, दो कोहान होते हैं। ऊँटों का एक काम है बोझा ढोना। घोड़े या खच्चर इतना बोझ नहीं उठा सकते। घोड़े की तरह ही ऊँट के मांस को भी यहाँ के लोग खाते हैं, लेकिन वह अधिकतर गरीबों का खाद्य समझा जाता है। यहाँ समतल भूमि में गाड़ियों का इस्तेमाल अधिकतर सामन्त लोग करते हैं। कुशल बढ़इयों की यहाँ क्या आवश्यकता हो सकती है जबकि लोगों को घर और उसमें इस्तेमाल होने वाले सैकड़ों तरह के सामान की आवश्यकता नहीं है। पर मैंने पीछे यहाँ के लोगों को गाड़ी के चक्कों को बनाते देखा जब हम ऐसी भूमि में आ गये थे जहाँ प्रकृति वृक्ष-वनस्पति के सम्बन्ध में अधिक उदार थी। उनके पास बढ़ई के दो-चार ही हथियार थे, लेकिन इन साधारण हथियारों से उन्होंने ऐसा सुन्दर, सिजिल और मजबूत चक्का बनाया था जिसकी मुझे आशा नहीं हो सकती थी।

कई दिनों के चलने—बल्कि कहना चाहिए भागने—के बाद हम सामने के पहाड़ों में पहुँचे। यह भी अल्तून इइश (सुवर्णगिरि) के नाम से पुकारा जाता है। शायद हमारे हिमवन्त (हिमालय) की तरह यह बहुत दूर तक फैले हुए पहाड़ का नाम है। इसके इस हिस्से में सोने की खानें हैं, यह नहीं सुना, इसलिए पश्चिम वाले पर्वत से सम्बन्ध जोड़कर इसे यह नाम दिया गया है। जब पहाड़ों के भीतर घुसे, तो वह प्रायः हरियाली से रहित थी। जाड़ों का दिन था, ऐसे समय वैसे भी हरियाली सूख जाती है और सदा हरे रहने वाले बड़े वृक्ष यहाँ थे ही नहीं। मैं समझता था, आगे भी यह इसी तरह का होगा। लेकिन जब पहाड़ के ऊपरी भाग तथा उसके उत्तरी पार्श्व की तरफ गये, तो हमें छोटे रूप में अपना उद्यान याद आने लगा। स्वभावतः ही यहाँ सर्दी अधिक पड़ा करती है। मेरी यात्रा ने बतला दिया था कि जिस तरह पहाड़ों की ऊँचाई पर बढ़ते हुए हम अधिक सर्द स्थानों को पाते हैं, फसलों को बहुत पीछे बोई जाते और कटते देखते हैं, उसी तरह जितना ही हम उत्तर की तरफ बढ़ते हैं, उसी तरह सर्दी भी बढ़ती जाती है। हमारे देश में देवदार और भुर्ज के वृक्ष बहुत ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर होते हैं, लेकिन इस यात्रा में मैंने नीचे की समतल भूमि में उनके जंगल देखे। कांस्यदेश में आकर हम जाड़ों में ऊनी चीवरों को ही इस्तेमाल करने लगे। शान्तिल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की माँ ने हम दोनों के लिए बहुत मोटी और मुलायम संघाटी अपने हाथ से बड़ी श्रद्धापूर्वक सी कर दी थी। नीचे अंसकूट (जाकेट) भी बहुत गरम था, लेकिन उससे हम इस सर्दी को रोक नहीं पा रहे थे। हमारे साथ चलने वाले बेग और उसके अनुचर तो गर्मियों में भी अक्सर चमड़े का जामा पहनते हैं, फिर आज की तो बात ही क्या? अनुचरों के वदन पर बाल नीचे किये हुये भेड़ के चमड़े के लबादे थे। बेग का पीले रंग का चोंगा बहुत कीमती मृगचर्म का था, जो यहाँ से और भी उत्तर की भूमियों से आता है। हाथ लगाने में मक्खन की तरह मुलायम और देखने में सोने की तरह चमकीला था। सिर पर भी उसी तरह के मृगचर्म का कन्टोप, पैरों में घुटने तक नम्दे का जूता, नम्दे का मोजा और उसके ऊपर उतना ही बड़ा चमड़े का जूता था। बाहें इतनी लम्बी थीं, जिनके भीतर हाथों के पंजे छिप सकते थे। जब जरूरत नहीं होती, तो आस्तीन के कुछ हिस्से उलट रखते। उसे देखकर मैंने समझा कि आदमी ने देश-काल के अनुसार अपनी रक्षा के साधन भी बना लिए हैं।

सर्दी में हम ठिठुरे जा रहे थे, इसका पता बेग को लगने में देर नहीं हुई। रात को ओढ़ने के लिए वह हमें बाल वाली खाल का ओढ़ना दे दिया करता था। सिंहल के भिक्षु शायद इसे विनिमय विरुद्ध कहते, लेकिन उन्हें मालूम नहीं कि यहाँ के जाड़ों के लिए इसकी नितांत आवश्यकता है। तथागत यदि इस भूमि में आये होते, तो शायद उन्होंने भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए ऐसी पोशाक का विधान किया होता, जो यहाँ की ऋतु की अनुकूल है और वह खाल की ही हो सकती थी। बेग के प्रस्ताव करने पर पहले दिन तो मैंने इन्कार किया, लेकिन दूसरे दिन मान लिया और हम दोनों के लिए मुलायम मृगचर्म का अंसकूट (जाकेट) और उसी का एक कंटोप भी मिल गया। हमारे उद्यान और दूसरे ठंडे मुल्कों में बहुत सर्दी पड़ने पर भिक्षु जाड़ों में कन्टोप का इस्तेमाल करते हैं, इसलिए उसी को मुलायम रोम वाले चमड़े का बना पहनने में हमें कोई एतराज नहीं हो सकता था। सिर को हम मामूली कन्टोप से भी बचा सकते थे, लेकिन यहाँ की सर्दी में छाती और पेट को बचाना सबसे आवश्यक था, नहीं तो उसके कारण पेट खराब होकर बीमार होने का डर था। सर्दी ने भी सहायता की थी और मेरा घाव अब बिल्कुल भर गया।

पहाड़ बहुत ऊँचे नहीं थे, इसलिए हिमालय की कठिन चढ़ाइयों से मुकाबिला नहीं करना था। फिर हम अब घोड़े की पीठ पर थे। आहत होने के बाद घोड़े पर चढ़ने के लिए मैं मजबूर था और अब उससे इन्कार करने पर बेग की गति धीमी हो जाती, जिसे वह नहीं पसन्द करता। हो सकता था, वह मुझे घोड़े पर सवारी करने के लिए मजबूर करता, इसलिए यह जानते हुये भी कि यह भिक्षु के लिए उचित नहीं है, मैंने इन्कार नहीं किया।

बन्दी बने 15 दिन हो गये थे, जबकि हम पहाड़ से नीचे उतर कर दूसरे मैदान में पहुँचे। यह घास का मैदान था, जिसमें कहीं-कहीं उभड़ी जमीन भी थी, जिसे पहाड़ कहा जा सकता था, लेकिन वहाँ पत्थर का कहीं पता नहीं था, वह केवल नदियों के पास ही कहीं-कहीं दिखाई पड़ता था। यवगू खान का युवराज अर्थात् उप-खान था। घुमन्तुओं में बल, बुद्धि और पराक्रम से ही कोई ऊँचे दर्जे पर पहुँच सकता है, उसके लिए केवल खान-परिवार का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होना पर्याप्त नहीं है। त्यूमन् खान के लड़के को वंचित करके इसी योग्यता के कारण मोयू अब तुर्कों का खान बना था। सभी जानते हैं कि मोयू के बाद यही यवगू उसका स्थान लेगा। उसके पद और मर्यादा के अनुरूप ही अनुचर भी उसके साथ थे। बतला रहे थे, उसके हजार तम्बू हैं, जिनमें 50 हजार योद्धा हर वक्त लड़ने के लिए तैयार रहते हैं। घुमन्तुओं का परिवार वस्तुत: सैनिक परिवार होता है और उनके तम्बुओं के पड़ाव सैनिक शिविर। यद्यपि स्त्रियों बच्चों और वृद्धों को छोड़कर बाकी को ही ये लोग योद्धा गिनते हैं, लेकिन संकट पड़ने पर तरुण और प्रौढ़ स्त्रियाँ भी अपने पुरुषों की तरह लड़ सकती हैं। वह भी घुड़सवारी में पुरुषों की तरह ही चुस्त और घोड़े पर चढ़ी धनुष चलाने में कुशल होती हैं। इतने अधिक तम्बू एक के पास एक लगाये जायँ, तो वह एक बड़ी नगरी का रूप धारण कर सकते हैं। हर तम्बू के साथ उनके बहुत से ऊँट, घोड़े और चँवर रहते हैं। यही उनका धन और जीविका हैं। इसीलिए घुमन्तू अपने पशुओं-प्राणियों की सुविधा के ख्याल से परिवारों को एक जगह इतनी भारी संख्या में नहीं इकट्ठा करते। यह स्थान जाड़ों में यवगू के स्कन्धावार (छावनी) का काम देता था। यहाँ उसके बेगों और दूसरे सरदारों के ठहरने के अपने-अपने स्थान निश्चित थे। उन्हें ऐसा चुना गया था कि ईंधन, चारे और पानी का भी सुभीता हो। इस भूमि में बर्फ कम पड़ती है और जब कभी सारी भूमि ढँक भी जाती है, तो दो-चार सप्ताह से अधिक दिनों के लिए नहीं। ऐसे समय के लिए घुमन्तू आते ही काफी घास काटकर जमा कर लेते हैं।

दूर से ही यवगू के शिविर को पहचानने में हमें कठिनाई नहीं हुई। वह औरों की अपेक्षा अधिक ऊँचा और लम्बा-चौड़ा था। उसके सामने समतल छत जैसा एक विशाल तम्बू था, जिसे अच्छी तरह रंग-विरंगे कपड़ों और सुई के काम द्वारा सुसज्जित किया गया था। हमारे पहुँचने से दो दिन पहले बहुत हिम-वृष्टि हुई थी। आज भी वहाँ चारों तरफ बर्फ की मोटी चादर बिछी हुई थी, जिससे इन तम्बुओं का रंग एक हो गया था। मेरे मन में बड़ा कौतूहल पैदा हो रहा था। वह किस तरह हमारा स्वागत करेगा। बेग ने बतलाया था— 'उसकी माँ बौद्ध थी, जिसके कारण उसकी भी भिक्षुओं के प्रति बड़ी आस्था है, और इसीलिए उसने हमें भिक्षु लाने का आदेश दिया है। यदि हम तुम्हें उस समय न पाते, तो किसी भिक्षु को रास्ते के किसी नगर से जरूर लाये होते।' उसकी बातों को मैं झूठ नहीं कह सकता था और दर असल भय का कोई कारण भी नहीं था। होता भी, तो मैं जीवन के प्रति इतना मोह नहीं रखता, कि उसकी चिन्ता से घुलता रहता। हमारे आने की खबर चार दिन पहले ही यवगू के पास पहुँचा दी थी। हमारे साथ के बेग का अपना उर्दू यवगू के शिविर से एक कोस पर पड़ा था। हम शाम को वहीं पहुँचे।

दुनियाँ की विचित्रता एक जगह रहते आदमी को नहीं मालूम होती। अनुराधपुर (सिंहल) में मैंने ऋतुओं को बदलते नहीं देखा। उनमें वर्षा होने और न होने का ही भेद पाया जाता था, नहीं तो दिन-रात प्राय: बराबर होते थे। रात के वक्त आसमान खुला होने पर उत्तर की ओर मैं ध्रुवतारा को देखने की कोशिश करता, लेकिन वह क्षितिज के पास कभी-कभी ही कभी दिखाई पड़ता। हमारे उद्यान में वह क्षितिज, से बहुत ऊँचे दिखलाई पड़ता,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यहाँ तो वह इतना ऊपर उठ चुका था, कि मालूम होता था, यदि कुछ समय और उत्तर की ओर चला जाये, तो वह हमारे सिर के ऊपर दीखने लगेगा। रात-दिन का भी अन्तर यहाँ भली तरह का था। दिन मुश्किल से एक-डेढ़ पहर (चार पाँच घंटों) का होता, बाकी रात ही रात थी। इसलिए वेग के शिविर में पहुँचने के समय जब मैं शाम होने की बात करता हूँ, तो उसका मतलब है डेढ़ पहर का दिन अब समाप्त हो चुका था। वेग ने यवगू के दरबार में अपने एक सरदार को भेज दिया था, जिसने रात को ही आकर सूचना दी, कि यवगू सवेरे जल्दी ही भिक्षुओं के साथ बुला रहे हैं। इतनी लम्बी रात बितानी भी तो मुश्किल है। वेग ने हमें एक अलग तम्बू दे दिया था। अन्तिम नगर को छोड़ने के तीसरे दिन बाद मैंने देखा, अब हमारे ऊपर उतनी निगाह नहीं रक्खी जाती शायद वह जानते थे, कि इस भूमि में आकर भागने की चेष्टा करना भारी बेवकूफी है। हमारे वर्ताव से भी उन्हें मालूम हो गया था, कि हम ऐसा नहीं करेंगे। सुवर्ण गिरि को पार करने के बाद तो हम बिल्कुल मुक्त थे। उसका आग्रह नहीं था, कि हमारे घोड़े उसके साथ-साथ चलें। हमारे साथ जो उसके एक-दो घुड़सवार रहते थे, वह रखवाली के लिए नहीं, बल्कि हमारी सेवा के लिए थे।

अगले दिन सूर्योदय के साथ हमें भोजन मिला। एकाहार का नियम भिक्षुओं के लिए अच्छा है। दिन छोटा हो या बड़ा, जब छ पहर के रात-दिन में एक ही बार भोजन करना है, तो हर्ज क्या? हाँ, सिंहल में सूर्योदय के साथ हमें काफी प्रातराश मिल जाता था और फिर एक याम (पहर) बाद मध्यान्ह में हम पूरा भोजन करते। यहाँ हमें कोशिश करनी थी, कि सूर्योदय से एक पहर के भीतर ही मध्यान्ह होते समय भोजन मिल जाये। हर वक्त डर लगा रहता था, कि अंसकूट के परिवर्तन की तरह कहीं भोजन में भी परिवर्तन न करना पड़े, लेकिन मैं ऐसे परिवर्तन से यथा-शक्ति इन्कार करने के लिए तैयार था। यबगू के यहाँ भोजन करने में देर हो जाये, इसलिए हमने अपने परिचारक से कहकर सूर्योदय के समय ही पूरी भोजन कर लिया था।

सूर्योदय के साथ ही दो सफेद घोड़े लिए यबगू के अनुचर हमारे शिविर के द्वार पर आ मिले। घोड़े आमत्योर्क घोड़ों से बड़े और बहुत ही सुन्दर सफेद रंग के थे। चढ़ते समय हमें विश्वास दिलाया गया, कि ये यबगू के अपने बहुत सीधे-सादे घोड़े हैं, डरने की जरूरत नहीं। हमारे साथ आया वेग भी अपने उसी जाति के एक नये घोड़े पर सवार हुआ। हम थोड़ी देर में यवगू के शिविर में पहुँच गये। इस छोटे दिन में शिकार करने के लिए तड़के ही जाना पड़ता है। यबगू शिकार पर जाने के लिए तैयार था। उसके साथ भारी संख्या में सशस्त्र भट और अनुचर थे। यवगू के शरीर पर नीचे मृगचर्म और ऊपर हरे रंग के साटन का चोगा था। उसके बाल बहुत लम्बे और खुले हुये थे। उसके ललाट पर सफेद रेशम की एक पट्टी बँधी हुई थी, जो पीछे की ओर बहुत नीचे तक लटकती थी। दो सौ के करीब अमात्य उसके आस-पास खड़े थे। सभी कीमती पोशाक पहने थे। उनके लम्बे बाल माँग फाड़ कर गुथे हुये पीछे की तरफ लटक रहे थे। अमात्य उसके दाहिने-बाँये बड़े अदब से खड़े थे। बाकी भटों के शरीर पर मृगचर्म या नरम मोटे ऊन के चोगे थे, हाथों में भाले, झण्डियाँ और कंधे पर धनुष और पीठ पर तर्कश लटक रहे थे। उनमें से कितने ही ऊँटों पर सवार थे और कितने ही घोड़ों पर।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इनकी पाँती बहुत दूर तक चली गई थी।

यबगू मुझसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ, और उसने रास्ते की तकलीफों के बारे में क्षमा माँगते हुये कहा: "आप अब हमारे अतिथि और गुरु हैं। आप से हमें बहुत सीखना है।" यबगू ने शिकार पर जाने के लिए क्षमा माँगते हुये यह भी कहा: "आपके लिए अलग ... और परिचारक नियुक्त हैं।" फिर एक अमात्य को पास बुलाकर कहा: "जिस किसी चीज की जरूरत हो इससे कहें, यह हर वक्त आपकी सेवा करने के लिए तैयार रहेगा।" यबगू ... जोड़ कर अपने अनुचरों के साथ विदा हो गया और अमात्य हमें रहने के स्थान की ओर ले चला। जिस विशाल तम्बू को मैं दूर से देख रहा था, वह इस सबेरे के सूर्य के प्रकाश में ... सोने के तारों के काम के कारण मेरी आँखों में चकाचौंध पैदा कर रहा था। मैंने यबगू के दरबार वाले तम्बू को देखने की इच्छा प्रकट की। अमात्य मुझे बड़ी खुशी से वहाँ ले गया। पीछे यबगू को मैंने अपने अमात्यों के साथ यहाँ बैठे भी देखा। यबगू के आसन के दाँये और बाँयें कालीन की लम्बी पाँतियाँ थीं, जिन पर बहुमूल्य पोशाक पहने यबगू के मन्त्री और दरबारी बैठा करते थे। उस समय के दृश्य को देखकर कभी कल्पना नहीं हो सकती थी, कि ... घुमन्तू भी इस तरह के वैभव को प्राप्त कर चुके हैं। किसी भी राजदरबार में बहुमूल्य ... और आभूषणों को जैसे देखा जा सकता है, वैसे यहाँ भी था। यबगू और अमात्यों के ... अनुचरों की एक भारी सेना हर वक्त सेवा बजा लाने के लिए खड़ी थी। यबगू का सिंहासन वस्तुतः गद्दे और कालीन का ही बना हुआ ऊँचा पीठ था। मैंने एक दिन सायंकाल को यबगू के दरबार को देखा। उस भूमि के लिए सायंकाल कुछ दूसरा ही अर्थ रखता है। वस्तुतः ... मनोविनोद की गोष्ठी थी। घोड़ी के दूध की शराब नहीं, बल्कि असली अंगूरी लाल ... यहाँ वितरित हो रही थी। सामने बड़े-बड़े टुकड़ों में उबाले घोड़े का मांस रक्खा था। ... प्यालों में लोग पान कर रहे थे। अनुचर सुराहियों को लिए उनके भीतर घूम रहे थे। ... तरफ संगीत मण्डली बैठी सुन्दर गान और वाद्य से उनका मनोरंजन कर रही थी।

हाँ, नीचे के राजदरबारों से यहाँ यह अन्तर जरूर था। इनके मनोविनोद में ... भावों का अभाव था। सबके चेहरे के ऊपर वीरता और निर्भीकता दिखाई पड़ती थी। ... की रानियाँ और सरदारों की स्त्रियाँ भी पान-गोष्ठी में सम्मिलित थीं। यद्यपि सबके ... अपने छोटे-बड़े दर्जे थे, लेकिन उनके व्यवहार में उतनी विषमता नहीं दिखलाई पड़ती थी, जितनी कि मैंने अपने देश के राजदरबारों में देखा था।

× × ×

जाड़ा (555-56 ई०) बीता। अभी तक ऐसे जाड़े का मुकाबिला मैंने नहीं किया था। इसमें शक नहीं, हिमालय के डाँड़ों को पार करते वक्त इससे भी ठंडी जगहों से गुजरना पड़ा था, लेकिन वह गर्मियों का मौसिम था और परम शीतल जगह पर कुछ घंटों से अधिक हमें रहना नहीं पड़ता था, सो भी चलते-फिरते। यहाँ हम पहाड़ के ऊपर नहीं, बल्कि ... नीचे की समतल भूमि में थे। ऐसी जगह इस तरह की सर्दी? लेकिन, यबगू पूरी तौर से इसका ध्यान रखता था, कि हमें कोई कष्ट न हो। इसे कहकर मैं अभिमान नहीं प्रकट करना चाहता ...

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यबगू ने तथागत के जीवन और उनके उपदेशों को मुझसे सुन कर भक्ति प्राप्त की और बुद्ध-धर्म-संघ की शरण ले वह उपासक बन गया। युद्ध में वह बड़ा वीर था। कुछ ही सालों पहले जो निर्णायक युद्ध उसके चचा तूमिन् कान ने अवारों के साथ लड़ा था, उसमें इसने बड़ी वीरता दिखलाई थी। वह जन्म-जात सेना नायक था लेकिन, कुछ गुण उसमें ऐसे मैंने पाये, जिनके बारे में मैं समझता था, वह घुमन्तुओं में नहीं मिल सकते। वह बड़ा ही दयालु था और ज्ञान की न तृप्त होने वाली पिपासा उसमें बड़ी तीव्र थी। वीरता के साथ इन गुणों का विरोध नहीं है, यह मैं मानता हूँ, लेकिन ख़ून में पले, ख़ून में बढ़े और ख़ून के साथ ही जीवन समाप्त करने वाले एक घुमन्तू योद्धा का ऐसा होना जरूर अनहोनी सी बात थी। तुर्कारों के कितने ही सरदार और कआन भी बुद्ध-भक्त थे। मैंने सुना, उनके पूर्वज हूणों में भी बुद्ध-धर्म पहुँच गया था। लेकिन, त्योर्क अभी अपने जनजातीय धर्म को ही मानते आये थे। यबगू का तो कहना था : "हमारे पूर्वज चीन के शासक तोबा सम्राट् भी बुद्ध-भक्त थे।" उसने बतलाया—"कभी चीन दरबार में चलते समय हम उन भव्य गुहा-विहारों को दिखलायेंगे, जिन्हें कि तोबा सम्राटों ने चीन में भिक्षु-संघ के लिए बनवाया था, और जो अब भी बड़े सुन्दर और समृद्ध हैं।" उसकी जिज्ञासायें बहुत-सी ऐसे विषयों के बारे में थी, जिनकी तृप्ति मैं कर सकता था, और करता भी था, लेकिन कठिनाई भाषा की थी। मैं अब तुर्क भाषा से बिल्कुल अपरिचित नहीं था, लेकिन अभिधर्म (बौद्ध-दर्शन) की बातों को समझाने के लिए मेरे पास शब्द नहीं थे। तुर्क भाषा में यदि ग्रन्थों के अनुवाद भी होते, तो शान्तिल की सहायता से मैं एक शब्द कोष बना लेता। जल्दी ही मुझे इसकी आवश्यकता मालूम हुई और शान्तिल की सहायता से अभिधर्म कोष के बहुत से शब्दों के अर्थ ढूँढ़-ढूँढ़कर मैंने तुर्की रूप दे दिया। बात करने में कुछ तुर्की की सहायता लेता, कुछ भारती भाषा (संस्कृत) की। दो महीने तक नित्य अपराह्न में चार घंटे यबगू सतसंग करता, उस समय शान्तिल मेरे पास बैठे रहते अब उसे बुद्ध के प्रज्ञास्कन्द (दर्शन) का कुछ परिचय होने लगा, और प्रतिभाशाली होने के कारण उसमें उसे रस भी आता था। उसकी रानी भीतरी प्रेरणा से अपने पति का अनुगमन करना चाहती थी, या पति-स्नेह के कारण यह मैं नहीं कह सकता। मेरे विचार में उसमें भी श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। वह तथागत के चरित, उनकी जन्म भूमि तथा मेरी यात्राओं को सुनने के लिए बहुत उतकंठित रहती थी।

पहिले समझते थे, कि हमारा लक्ष्य चीन है, जहाँ जाकर चीनी भाषा में ग्रन्थों के अनुवाद के काम में हाथ बटाना है। यह भी मालूम था, कि हमारे देश के कितने ही बन्धु शताब्दियों पहले से और आज तक इस पुण्य कार्य को कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में मेरे लिए स्वाभाविक था, कि अपने साथ पुस्तकों का एक अच्छा संग्रह ले चलता। कितनी ही ताल-पत्र पर लिखी अपनी प्रिय पुस्तकों को मैं उद्यान से ही अपने साथ लाया था। बुद्धिल के हाथ का लिखा 'प्रमाणसमुच्चय' तो मेरी जीवन-निधि था। वसुबन्धु का "अभिधर्म कोष" कितने ही और भी सूत्र मुझे कंठस्थ थे। जो विद्या कंठस्थ है, वही अपनी है, यह मानते हुए मैंने अपने जीवन के बहुत से वर्ष इसमें लगाये थे। यबगू की ज्ञान-पिपासा की तृप्ति के लिए मेरे पास सामग्री की कमी नहीं थी। उसकी रानी के लिए इन गम्भीर ग्रन्थों का समझना मुश्किल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था। हमारी सभी पुस्तकें नहीं बच पाईं, अधिकांश को हमने संघिल के साथ खो दिया। हम अपने को बन्दी समझ किसी भी विपद् के आने से आशंकित थे। लूट और फेंका-फेंकी में वह पुस्तकें भी लुप्त हो गईं, जिन्हें मैंने सामान के साथ बाँध रक्खा था। केवल वही पुस्तकें पास रह गई थीं, जिन्हें कि हम हमेशा अपनी पीठ पर ढोते थे। यदि शान्तिल वेग के पुत्र न होते, तो सम्भव है हम और अधिक पुस्तकें अपनी पीठ पर रखते।

जिस वक्त यबगू और उसकी पत्नी मेरी यात्राओं के बारे में पूछते, उस समय मुझे कितनी ही बार मातृभूमि बड़े जोर के साथ मुझे अपनी ओर खींचती, लेकिन यायावर मुझे खिंचाव में वह कैसे सकता है? मैं ख्याल करता : कहाँ उद्यान की रमणीय भूमि, जहाँ मैं पैदा हुआ, कहाँ सिंहलद्वीप, जहाँ मैंने अपने जीवन के सबसे प्रिय मित्र और गुरु को खोया, और कहाँ अब छोटे-छोटे पहाड़ों तथा बर्फ और सर्दी वाली यह समतल भूमि, जहाँ मैं घूम रहा हूँ। इसमें संन्देह नहीं मैं बड़ा सौभाग्यशाली था, जो मुझे इस स्थित में भी यवगू और उसके वेग जैसे आदमियों का सहारा मिला जिसके कारण जीवन की कठिनाइयाँ मेरे लिए बिल्कुल नहीं थीं। हमारे लिए उसी तरह परिचारक और हरेक आवश्यकता की पूर्ति का प्रबन्ध था, जैसे की यबगू के अपने कुमारों के लिए। लेकिन मेरा लक्ष्य तो चीन था? लक्ष्य-भ्रष्ट होकर मैं सुखी कैसे रह सकता था? मुझे कुछ ऐसा भी आभास होने लगा कि चीन का ख्याल छोड़कर शायद इन्हीं घुमन्तुओं में मुझे अपना जीवन बिताना पड़े। इससे खिन्न होने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि इस तरह मुझे एक अक्रूष्ट क्षेत्र में काम करने का अवसर मिल रहा था। जिस समय "अभिधर्म कोष" के सैकड़ों शब्दों के मैंने तुर्की पर्याय तैयार किए थे, उस समय मानों इसी नये पथ को वना रहा था। कितनी ही बार शान्तिल से मैं आगे के कृत्य के लिए बातें करता। वह मुझसे अधिक व्यवहार कुशल थे। उनका कहना था : इस भूमि में बराबर ही झंझावात आते रहते हैं, न जाने कब फिर वह हमें एक रास्ते से उड़ाकर दूसरे रास्ते पर पटक दे। तो भी तुर्क-भाषा में तथागत के वचनों को लाने की हम तैयारी करने लगे। इस भूमि में ताल-पत्र नहीं मिल सकते, लेकिन भुर्जपत्र चाहे जितने पा सकते थे। तुर्क घुमन्तू लिखने-पढ़ने की आवश्यकता नहीं रखते थे, किन्तु जब अवारों के विशाल साम्राज्य (कोरिया की सीमा से कास्पियन सागर तक) के वह स्वामी हो गए, तो उसके बिना कैसे काम चल सकता था? यत्रगू ने जब देखा, कि भारतीय लिपि में मैंने तुर्की के बहुत से शब्द लिख डाले हैं, तो उसे लिपि जानने की इच्छा हुई। यह काम आसान नहीं था, क्योंकि एक ही शब्द के उच्चारण वह कई-कई तरह से करते हैं। राजा को कोई कगान कहता, कोई खकान और कोई कआन या कान। इसी तरह यबगू को. जबकू, जबगू, जबखू आदि कितने प्रकार से बोलते थे। यदि ऐसे अक्षर-संकेत बनाये जायें, जिनसे बहुतों के उच्चारण मिल सकें, तो उसका अर्थ था एक ही अक्षर को कई तरह से उच्चारण करने के लिए छोड़ देना, उसी तरह जैसे हमारे यहाँ मूर्धन्य ष को कहीं ख बोलते हैं और कहीं श। इससे एक तो लाभ था, कि अक्षरों की संख्या बहुत कम हो जाती। मैंने देखा, ऐसा करने पर तुर्की भाषा के लिए 16-17 अक्षरों से अधिक की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। मैंने यही ख्याल करके वल्कि अपने अक्षरों को तुर्की उच्चारण के मूल्य देकर यबगू को सिखाये भी। एक और बड़ी दिक्कत थी तुर्कों के सम्भ्रान्त कुलों में भी एक तरह की उच्चारण वाली भाषा का प्रयोग नहीं होता। यदि ऐसा होता, तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पूर्ण वर्णमाला तैयार की जा सकती थी। यवगू यह भी चाहता था, कि मैं उसे संस्कृत भाषा सिखलाऊँ, लेकिन मैंने उसे समझाया, पहले ज्ञान को काफी मात्रा में प्राप्त कर लो, तब उसमें हाथ लगाना, नहीं तो शायद आगे चलकर उत्साह मन्द हो जाये और दोनों से हाथ धोना पड़े।

जाड़ा जितना ही आगे बढ़ता जा रहा था, उतनी ही बर्फ की तह और मोटी होती जाती थी। हिम वृष्टि मेरे लिए नई चीज नहीं थी, लेकिन यहाँ वह जितने बड़े-बड़े फायों के रूप में गिरती थी, उतनी मैंने और कहीं नहीं देखी थी। ये फाये धरती को ही नहीं, आकाश को भी करपूर श्वेत करते हवा में तैरते हुये धरती पर गिरते थे। हमारे सफेद नम्दे के तम्बुओं पर जब वह कई अंगुल मोटे पड़ जाते थे, तो परिचारक उन्हें हिलाकर नीचे गिरा देते। भीतर हम आग जलाये कोमल मृगचर्म में सिर से पैर तक लिपटे सत्संग या वार्तालाप में लीन रहते। समय का यन्त्र किसी की प्रतीक्षा नहीं करता, वह गंगा के प्रवाह की तरह अनवरत चलता रहता है। दिन एक पहर (तीन घंटे) जितना ही रह गया था। वह पाँच पहर की रात के बीतने पर आता, कुछ देर वाद मध्यान्ह हो जाता और फिर रात की स्याही चारों ओर पुत जाती। इतनी बड़ी रात भर आदमी सो कैसे सकता है, इसलिये हम बहुत रात तक जागते रहते। जिस चीज की हम अधीरता के साथ प्रतीक्षा कर रहे थे, वह था वसन्त। सर्दी और बर्फ की सफेदी देखते-देखते हम तंग आ गये थे। उस साल का जाड़ा, मालूम होता था, बहुत लम्बा है। आखिर वह बीता ही, जिसके लिये हमें पाँच महीने की प्रतीक्षा करनी पड़ी।

वसन्त को कहाँ बिताना है, इसके वारे में यवगू से पहले ही सलाह हो चुकी थी। जब मैं हरियाली और वृक्षों के घने जंगलों की बातें करते उनके लिये तरसता, तो यवगू कहता। यहाँ से उत्तर देवदार और भुर्ज जैसे वृक्षों के इतने घने जंगल हैं, जितने तुमने देखे न होंगे। उसको यदि मेरे देखे जङ्गलों पर विश्वास नहीं आता था, तो मेरा भी उसके कहने पर विश्वास नहीं था। लेकिन, जब वह वहाँ के मनोरम दृश्यों का बड़े उत्साह के साथ अपने सीधे-सादे शब्दों में वर्णन करता, तो मेरे हृदय में देखने की तीव्र उत्सुकता भी पैदा हो जाती। अगर मैं न होता, तो वसन्त में शायद कआन मे मिलने वह पश्चिम की ओर जाता, मेरे ख्याल से उसने उत्तर की यात्रा करने का निश्चय किया। उसका शासित प्रदेश उत्तर में कितनी दूर तक है, इसका यवगू को भी पता नहीं था। तुर्क भिन्न कितनी ही दूसरी जातियाँ उत्तर के घोर जंगलों में रहा करती थीं। उन्होंने अपने स्थानीय शासकों के खिलाफ विद्रोह किया था, जो अभी भी शान्त नहीं हुआ था। यवगू का कहना था "वस्तुतः इसमें जंगली जातियों का उतना दोष नहीं है, जितना हमारे आदमियों का। वह केवल कठोर दंड के सहारे उनको अपने वस में रखना चाहते हैं।"

जिसके आगमन की इतनी उत्सुकता के साथ मैं प्रतीक्षा कर रहा था, आखिर वह वसन्त भी आया। यवगू का सहस्रों आदमियों का ओर्दू अब पहले पूर्वोत्तर दिशा, फिर पूर्व की ओर बढ़ने लगा। घुमन्तू राजा की यात्रा हमारे राजाओं की यात्रा से कम आराम की नहीं होती। हाँ, जरूरत पड़ने पर वह 15-16 योजन (70 मील) भी एक दिन में पारकर सकते हैं। वैसे भी हम 2-3 योजन से कम नहीं चलते थे। सामान और डेरे को समय पर निश्चित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्थान पर पहुँचाना नौकरों-चाकरों का काम था, और हमारे तेज घोड़ों के लिये इतनी दूरी पार करना कुछ घड़ियों की बात थी। घुमन्तू प्रत्यक्षवादी होते हैं। चन्द्रमा का घटना बढ़ना वह जानते हैं, और चान्द्रमास का समझना उनके लिये बिल्कुल आसान है, लेकिन, ऋतु तो चान्द्रमास के अनुसार नहीं सूर्य की गति के अनुसार आते हैं। सौर और चान्द्र वर्ष में दस दिन का अन्तर है, अर्थात् चान्द्रमास लेने पर वर्ष बिताकर ऋतु दस दिन बाद आयेगी। मैंने जब यह बात यवगू को बतलाई, तो वह इसे भी समझने के लिये तत्पर हो गया। लेकिन, मैं जानता था, ज्योतिष और गणित की बातों का ज्ञान वर्षों की साधना से होता है, इसलिये मैं उसे बहुत दूर ले जाने के लिये तैयार नहीं हुआ। यह उसे मालूम हो गया, कि ज्ञान उससे कहीं अगम और अपार है, जितने का कि अब तक उसे पता था।

हमारा रास्ता अब मरुभूमि का नहीं था, यद्यपि वृक्षों का अभी बहुत प्राचुर्य नहीं था। कितनी ही नदियाँ पार करने के बाद अन्त में एक बड़ी नदी पश्चिम की ओर जाती मिली। इसका पानी नीला स्वच्छ था। मालूल होता था, युगों के बाद हमने ऐसी सुन्दर और गम्भीर सरिता देखी। घुमन्तू स्नान को शौकीनी की चीज समझते हैं, दीर्घ हेमन्त में चाहे पसीना न होता हो, लेकिन चार-पाँच महीने तो साल के ऐसे होते हैं, जिनमें पसीना आता ही है। पास जाने पर उनके अ-स्नात शरीर से दुर्गन्ध निकलती है। हम भी स्नान की माँग नहीं करते थे और जाड़ों में केवल हाथ-मुँह धोकर रह जाते थे। महानदी सामने बहती हुई मिली। दोपहर के समय धूप भी तेज थी। यहाँ की सर्दी और गर्मी को समझना बहुतों को मुश्किल हो सकता है। दोपहर को मालूम होता था, हम मध्य-मंडल में जल रहे हैं, धूप ललाट पर पड़ती तो वह जलता मालूम होता, लेकिन सिर के पीछे की ओर उस समय भी ठंडक लगती। यह वसन्त और गर्मी के मौसिम यहाँ कितने हलके थे, यह इसी से मालूम होगा, कि सवेरे के वक्त हमें छोटी नालियों वाले पानी बर्फ बने मिलते। नदी में हम दोनों ने बहुत आनन्द के साथ स्नान किया। पानी अब भी सर्द था। यवगू को भी स्नान के लिए उतना ही उत्सुक देखकर मुझे कुछ आश्चर्य हुआ, लेकिन यवगू अपवाद नहीं था। उसके बहुत से अनुचरों, यहाँ तक कि लड़कों ने भी खूब डुबकी लगा-लगाकर स्नान किया। अपने सारे कपड़े उन्होंने किनारे पर छोड़ दिये और सिर से पैर तक नंगे पानी में कूद पड़े। बालक, तरुण या प्रौढ़ कोई भी वहाँ, कम-से-कम नंगे तैरने वालों में, मुझे ऐसा नहीं दिखाई पड़ा, जिसका पेट निकला हो, शरीर अनावश्यक तौर से स्थूल हो। रंग तो उनका नारंगी की तरह बड़ा सुन्दर था। उनके सौन्दर्य में बाधा केवल उनके चेहरे थे, जो शरीर की अपेक्षा अधिक बड़े थे। उनकी रेखाओं और बनावट के बारे में हँसी करते शान्तिल से कहता —"यदि मैं ब्राह्मणों के धर्म को मानता, तो कहता: 'ब्रह्मा ने दुनिया के और लोगों को पैदा करते-करते अन्त में एक बहुत ही सुन्दर जोड़ा बनाया, जिसके सौन्दर्य सृजन में ब्रह्मा ने अपने सारे अनुभव और कौशल को खर्च कर दिया। उसके मुँह से अपनी प्रशंसा सुनने के लिए जब जोड़े को उसने एक दूसरे के सामने खड़ा किया तो जोड़े ने कुछ भी संतुष्ट न हो भौंहों को सिकोड़कर ब्रह्मा की अवहेलना की। इस पर बेचारा बूढ़ा आपे से बाहर हो गया. जिस थापी से ठोंक-ठाँककर लोंदे से उसने इनके अतीव सुन्दर रूप-रंग और चेहरे को तैयार किया था, उसे उनके चेहरे पर पटक दिया। नाक चिपटी हो गई, गाल दब गये, चेहरा फैल गया, इस प्रकार सारे शरीर के सौष्टव के प्रतिकूल चेहरा बन गया।' मैंने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बिल्कुल नंगे रहने वाले स्त्री-पुरुषों को अपनी आँखों देखा था, इसलिए इन्हें स्नान के समय नंगा देखकर आश्चर्य नहीं कर सकता था। यदि स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध सभी नंगे नहाते थे, तो हमारे देश में भी ऐसे लोगों का अभाव नहीं है, विशेषकर स्त्रियाँ तो निस्संकोच कपड़ा निकाल कर पानी में कूद पड़ती हैं।

नदी पार कर उसमें आकर मिलने वाली एक छोटी नदी के किनारे ऊपर की तरफ बढ़ते हुये हम एक दूसरे पहाड़ (खंगई) में पहुँचे। यह अवश्य हरा-भरा पहाड़ था। यद्यपि हमारे यहाँ जितने ऊँचे देवदार के वृक्ष यहाँ नहीं थे, लेकिन वह थे जरूर और जंगल के रूप में। निर्वृक्ष भूमि के रहने वाले इन घुमन्तुओं को भी गर्मियों की इस हरियाली को देखकर बड़ा आनन्द आ रहा था, फिर हरियाली में पले हम जैसों की बात ही क्या? हमारे पशुओं में अब ऊँटों की संख्या कम होने लगी और उनका स्थान चँवरियाँ लेने लगी थीं। मध्य देश की भैंसों के बराबर और उन्हीं की तरह काली ये जन्तु बड़े शक्तिशाली होते हैं, हाथ-हाथ लम्बे उनके काले बाल जमीन को छूते चलते हैं। दूध भी इनका बहुत पुष्ट और माँस को अधिक अच्छा समझा जाता है। चमरियों की जाति के जंगली जन्तु यहाँ के पहाड़ों में भी मिलते हैं, जो इनकी अपेक्षा कई गुना बड़े होते हैं। हमारा यवगू उनके शिकार का बड़ा शौकीन था। इनका शिकार बड़े खतरे का होता है. क्योंकि हाथी जैसे इन जानवरों के सिर पर बड़ी-बड़ी तथा तीखी दो सींगें जिसके शरीर को छू जायें, वह बच नहीं सकता। मामूली एक-दो बाण से उनका कुछ नहीं बिगड़ता, लेकिन घुमन्तुओं के हाथ बड़े सधे होते हैं, जो घोड़े पर दौड़ते भी लक्ष्यवेध कर सकते हैं। ताककर छाती में कलेजे के पास बाण मारना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं है। एक ही बार कई बाण भी छोड़े जाते हैं। पचास मनुष्यों का बल रखते भी जंगली चमरों को साढ़े तीन हाथ के आदमी के सामने अपने प्राण खोने ही पड़ते हैं। जहाँ जंगल अधिक होते हैं वहाँ जन्तु भी अधिक होते हैं और जैसी सर्दी-गर्मी होती है, उसी तरह के भेस और प्रकृति को यह धारण करते हैं। भालू और महार्घ मृगचर्म (समूर) वाले कितने प्रकार के जन्तुओं को यवगू शिकार करके लाता। जहाँ शिकार की सुविधा होती, वहाँ आठ-दस दिन रहे बिना यवगू आगे कैसे बढ़ सकता था? उसके अनुचरों को भी इससे बड़ी प्रसन्नता होती थी, क्योंकि यहाँ पशुओं के लिए घास और तृण बहुत था और आदमियों के लिए आखेट से प्राप्त ताजा और मधुर मांस बहुत भारी परिमाण में मिलता था। शिकार वैयक्तिक तौर से भी करते थे, लेकिन उनका सामूहिक शिकार ज्यादा सफल रहता। कई हजार आदमी सिर से पैर तक हथियारबन्द हो कई कोस की भूमि को दूर से घेरते, हल्ला करते अपने घिराव को छोटा करने लगते। संत्रस्त जन्तु बीच की ओर भागने लगते, जहाँ उनके लिए आड़ ज्यादा नहीं था। अन्त में उनके चारों ओर आदमियों की घनी दीवार खड़ी हो जाती। उनमें से जो समर्थ होते, वह इस दीवार को तोड़ कर निकलने की कोशिश करते, लेकिन चमर को छोड़ कर बाकी मुश्किल ही से इसमें सफल होते। जिस दिन सामूहिक शिकार होता, उस दिन तम्तुओं के चारों ओर मारे हुये जन्तुओं का ढेर लग जाता और यह ऐसे ही समय किया जाता, जबकि वहाँ पर कई दिनों तक रहने का निश्चय कर लिया जाता। फिर महोत्सव मनाया जाता। घोड़ी के दूध की मदिरा बड़ी उदारता से वितरित की जाती, लोग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चमर के सींग में भर-भर कर उसे पीते। आग भुना मांस ज्यादा पसन्द किया जाता और उसके लिए ईंधन की कमी नहीं थी।

पहाड़ों को लाँघते हम फिर एक महानदी (सेलिंगा) के किनारे पहुँचे। अब जो प्राकृतिक दृश्य हमारे सामने था, वह हिमालय से कम रमणीय नहीं था। पहाड़ यहाँ कहीं-कहीं थे और सो भी छोटे-छोटे। हमारे दाहिने एक ऊँचा हिमाच्छादित शिखर था, जिसे देखकर मुझे अपने देश के उत्तर के हिमशिखर याद आने लगे। हमारे यहाँ भी हिमशिखरों पर देवताओं का निवास माना जाता है, इस शिखर (बोगदा उला, उलसुतई) को भी यह लोग बड़ा पवित्र मानते हैं, और समझते हैं कि उनका सबसे बड़ा देवता इसी पर्वतशिखर पर रहता है। यदि यबगू त्रिशरण लेकर बुद्ध-उपासक न हो गया होता, तो वह स्वयं सफेद घोड़े की बलि देने में सम्मिलित होता। उसके बेगों और अनुयायियों ने वहाँ एक बहुत ही सुन्दर सर्वश्वेत घोड़े को ले जाकर तलवार से देवता के लिए मारा। तुर्क और उनके वंश के दूसरे घुमन्तू छोटे घोड़ों को ही ज्यादा रखते हैं। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि शरीर से छोटे होने के कारण इनको घास-चारे की मात्रा भी कम आवश्यक होती है। ये पहाड़ हो या मैदानी जमीन, रेगिस्तान हो या हरियावल, सभी जगह बिना थकावट प्रकट किये चले जाते हैं। कआन,यबगू और बड़े-बड़े बेग ऊँचे कद के घोड़ों को भी पसन्द करते हैं, लेकिन उन्हें वह शोभा की ही चीज समझते हैं। ये बड़े घोड़े कम्बोज और बाह्लीक जैसे ही आदमी के कद के बराबर,लाल, सफेद या चितकबरे कई रंग के तथा देखने में बहुत सुन्दर मालूम होते हैं। अनुकूल समतल भूमि में वह हूणों के घोड़ों से अधिक तेज चल सकते हैं, लेकिन होते सुकुमार से हैं। इन्हें यह लोग वूसुमों (शकों) के घोड़े कहते हैं। वूसुम (शक) कम्बोज. बाह्लीक और जम्बूद्वीप तक गये। उन्हीं में वीम कदफिस, कनिष्क जैसे प्रतापी राजा हुये। हो सकता है, वह अपने साथ इन घोड़ों को ले गये हों, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं, कि कम्बोज, कपिशा (काबुल) आदि में जो बड़े-बड़े घोड़े मिलते हैं, वह सब वूसुम घोड़ों की ही सन्तानें हैं।

हमारा रास्ता अब उसी महानदी (सेलिंगा) के किनारे-किनारे था, जो अधिकतर पूर्वोत्तर को जा रही थी। जितना ही हम आगे बढ़ते जा रहे थे, उतनी ही वनस्पति श्री बढ़ती जा रही थी। यबगू की बात पर मैं पहले विश्वास करना नहीं चाहता था, लेकिन अब आँखों के सामने वन्य सौन्दर्य को अतृप्त हो पान कर रहा था। पहाड़ छोटे-छोटे थे, जिन पर चढ़ने में कोई तकलीफ नहीं हो सकती थी। वह सदा हरित देवदार के घने जंगलों से ढँके थे, जिनमें बीच-बीच में सफेद छाल वाले भुर्ज के वृक्ष भी थे।

महानदी के उत्तर जंगली लोगों (याकूत आदि करगिस) की भूमि में पहुँचने पर वह महार्घ मृगछालों, मधु और कुछ सोने की भी भेंट लेकर यबगू के पास आये थे। यबगू वैसे भी उदार और मृदुल स्वभाव का पुरुष था, और बुद्ध-उपासक होने का ख्याल करके वह उनसे और भी स्नेह और सम्मान प्रदर्शित करता था। सामने तो नहीं पीछे उसके अनुचर इस पर असंतोष प्रकट करते हुये कहते थे: ये जंगली चमरों या भालुओं की तरह खतरनाक हैं, हमारे स्वामी को धोखा खाना पड़ेगा। मैं उनकी राय से सहमत नहीं था। शान्तिल मुझसे मतभेद रखते थे, और कहते थे: यबगू को और भी सुरक्षा और सावधानी रखनी चाहिए। अब हम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उत्तर के उन जंगलियों की भूमि में चले आये थे, जिनके पास सामान ढोने के लिए बारहसिंगे हरिन थे। इनके पास न भेड़ें रहती थीं न घोड़े। तुर्क, अवार अनुकूल भूमि होने पर घोड़ा, कुत्तों या बैलों से चलने वाली गाड़ियों का भी इस्तेमाल करते थे, यहां लोग वर्फ रहने पर कुत्तों से खींची जानेवाली बेपहिये की गाडियों को इस्तेमाल करते थे। उन्हें लोहे के हथियारों की आवश्यकता होती थी, जिसे वह तुर्कों से लेते, बाकी उनका ओढ़ना-बिछौना, तम्बू सब कुछ चमड़े का था और खाना मांस का।

महानदी से कुछ हट कर हरे-भरे पहाड़ के बीच एक छोटा सा सरोवर था। यवगू को मालूम था, मुझे प्रकृति की रमणीयता बहुत पसन्द है। वह हम दोनों और कुछ अनुचरों को लेकर तालाव के किनारे गया। उस समय वहाँ हजारों पक्षी कलरव कर रहे थे। यह दृश्य वैसा ही मालूम हुआ, जैसा जाड़ों में भारत की विशाल झीलों में। ये पक्षी भी शकल-सूरत में वैसे ही थे। इसमें आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि पक्षी तो गगनचारी होते हैं, उनके उड़ने का वेग भी वहुत अधिक होता है। जाड़ों में सैकड़ों की पाँती में उड़ते हुये इन्हें उत्तर से दक्षिण और बसन्त के वाद दक्षिण से उत्तर को जाते मैंने स्वयं देखा था। तो भी इस पर मुझे विश्वास नहीं हो सकता था, कि पाटलिपुत्र और उज्जयिनी में हजारों की संख्या में जिन पक्षियों को मैंने देखा था, वही यहाँ आ गये हैं। पक्षियों का भी तुर्क लोग शिकार करते हैं, लेकिन यबगू ने अपने अनुचरों को मना कर दिया था। उसका कहना था, यदि भोजन के लिए प्राणी का मारना अनिवार्य ही है, तो ऐसे प्राणी को मारना चाहिए, कि एक के मारने से सैकड़ों का पेट भर सके। ऐसे प्राणी को नहीं मारना चाहिए, कि कई को खाने पर एक आदमी का पेट भर सके। मैंने ऐसे तुर्क भटों को देखा था, जो एक पूरी भेड़ खा जाते थे। एक-दो पक्षी या एक-दो छोटी मछलियों से उनका क्या वन सकता था?

अब दिन वड़ा हो गया था और रात छोटी। मध्यान्ह बहुत पहले वीत चुका था, अनुचर लौटने की जल्दी कर रहे थे, लेकिन सरोवर और उसके आस-पास के सौन्दर्य, पक्षियों के कलरव तथा ऐसे दृश्यों-सम्वन्धी कथाओं को देखने सुनने से हमारा मन नहीं भर रहा था। सूर्य पश्चिम की ओर झुक गये थे। मालूम होता था, इस भूमि में उनकी भी गति धीमी हो जाती है। सूर्य की लाली वढ़ती जा रही थी, उसी के साथ-साथ यवगू के अनुचरों की चिन्ता भी वढ़ रही थी। परन्तु उस शान्त प्रकृति में हमें वह वेकार मालूम होती थी। हमारी संख्या पचास से अधिक नहीं थी, हम निश्चिन्त थे। इसी समय हमारे पास के जंगलों से विल्ली की तरह बिना भी आहट दिये हुए वन्य मनुष्य हमारे ऊपर आकर एकाएक टूट पड़े। हथियार उठा कर सजग होने का भी उन्होंने बहुत कम मौका दिया। घायल करके छोड़ना वह जानते नहीं थे। तुर्कों ने भी वीरता दिखलाई, लेकिन जव एक पर दस अचानक चढ़ दौड़ें, तो वीरता क्या काम कर सकती है? हम दोनों भिक्षु थे, हथियार उठा नहीं सकते थे, और न हमारा तुर्कों के शत्रुओं से कोई वैर था, इसलिए खून की धारा वहते हम नीरव देखते रहे। हमारे साथी उनसे लड़ने के लिए डेरों से निकल कर जंगल के भीतर चले गये, इसी समय सरोवर में से कुछ नौकायें बड़ी तेजी से दौड़ कर आईं। ये नौकायें पूरे पेड़ को खोखला करके बनाई गई थीं। इनमें एक-एक में 15-20 धनुर्धर बैठे हुए थे। वह यबगू के छोटे से तम्बू में घुस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आये। हमें यहाँ रात को रहना नहीं था, इसलिए दो-तीन मामूली तम्बू और कुछ अत्यन्त आवश्यक चीजें ही वहाँ पर थीं। किलकारी मारते वह हमारे पास आये। हम अब केवल यही आशा रख सकते थे, कि कुछ ही क्षणों में हमारी यात्रा महायात्रा के रूप में परिणत हो जायेगी। लेकिन, उनके एक आदमी ने आकर तलवार उठाने की जगह अपना हाथ मेरे कन्धे पर रक्खा। हम एक दूसरे की भाषा बिल्कुल नहीं जानते थे। उनमें कोई तुर्की भाषा से परिचित नहीं था। लेकिन, आदमी के पास संकेत की एक अपूर्व भाषा है, जिससे उसने बतला दिया—"मा भैषी :"

शीत समुद्र और महा मरुभूमि

(556-57 ई०)

हमें उनसे कभी ऐसी आशा नहीं थी। इन बनचरों को हम तुर्कों से भी ज्यादा खूँखार सुन चुके थे। लेकिन, उनकी मुखमुद्रा और संकेत को देखते ही, वह बात गलत मालूम हो रही थी। इशारे से उन्होंने हमें अपने पीछे-पीछे चलने को कहा। दुनिया में कहीं भी जाना हमारे लिए एक सा था। हमने सोचा, चलो इसी बहाने एक और नई दुनिया देखेंगे, जिसके देखने का सौभाग्य शायद किसी को प्राप्त न हुआ हो। उनकी नावें नीचे सरोवर में खड़ी थीं। हम अपने सामान, जिनमें संयोग से हमारी अवशिष्ट थोड़ी-सी पुस्तकें भी थीं, पीठ पर बाँधकर उनके पीछे-पीछे चल पड़े। हम समझ गये थे, कि हाथ लगते ही बनचर यबगू और उसके अनुयायियों को जीता नहीं छोड़ेंगे। हम क्या सहायता कर सकते थे? उनके पीछे चलते-चलते हमारे मन में खेद हो रहा था, लेकिन उस खेद में कुछ प्रसन्नता भी मिश्रित थी, क्योंकि हम अज्ञात दिशा की ओर जा रहे थे। नाव में बिठाकर वह इतनी तेजी से सरोवर की एक ओर ले दौड़े, जिसकी तुलना नहीं की जा सकती। हवा निश्चल थी, सरोवर शान्त था। एक पहर चलने के बाद उन्होंने नावों के ऊपर कुछ आदमी छोड़ दिये और हमें ले तेजी से उत्तर दिशा की ओर चलने लगे। घना जंगल था, जिसके नीचे की भूमि में शायद कभी भी सूर्य की धूप नहीं पहुँचती होगी। गर्मी जरूर पहुँचती थी, नहीं तो वहाँ की बर्फ कैसे गली होती? नीचे हरी घास उगी थी। ऐसे स्थान में मार्ग का पता पाना इन्हीं लोगों का काम था। मैं तो समझता हूँ यदि त्योर्क उनकी खोज में निकलते भी तो रास्ता भूल जाते। मरुभूमि के चाहे वह कुशल पथ-दर्शक हों, लेकिन इन जंगलों की दुनियाँ में उनका कोई बस नहीं चल सकता था। हमारे साथ दस बनचर थे, बाकी शायद यबगू से लड़ने वाले अपने साथियों की मदद के लिए पीछे रह गये थे। हो सकता है, वह नावों को लौटाकर उन्हें लाने गये हों। दिन बहुत लम्बा था और रात का मतलब अन्धेरा नहीं था, क्योंकि इस भूमि में गोधूलि के समाप्त होते ही उषा आ जाती है, इसलिए मध्यरात्रि में भी चाँदनी से कहीं साफ दिखाई देता है। मैं इस समय भी अपनी पुस्तक पढ़ सकता था। इसलिए अंधेरे के कारण रात को ठहरने की आवश्यकता नहीं थी, किन्तु आदमियों को विश्राम तो लेना ही था और हम दोनों को और भी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मालूम नहीं हमारे ख्याल से या क्यों, रात को डेढ़ पहर के लिए वह जंगल में ठहर गये। लोहे और चकमक पत्थर से उन्होंने आग जलाई, मांस के लिए नहीं जलाई, क्योंकि वह लोग कच्चा मांस भी खा लेते हैं। जंगली जानवर आग को देखकर पास नहीं आते, शायद इस ख्याल से उन्होंने आग जलाई हो। साथ लाये मांस को भूनकर खाते वक्त हमें भी उन्होंने देना चाहा। हमने इशारे से बतलाया, कि हमें नहीं खाना है। उन्हें इसका कारण समझ में नहीं आया, लेकिन प्रसन्न मुखमुद्रा से दो-तीन बार इनकार करने पर उन्होंने जोर नहीं दिया। भय का कोई कारण नहीं था। हम लेट गये। थकावट के कारण नींद भी आ गई। कितनी देर बाद जब नींद खुली, तो हमने सौ से अधिक आदमियों को वहाँ बोलते देखा।

हम केवल आपस में ही बातचीत कर सकते थे। सोचा, तब तक उनके साथ इसी तरह मूक जीवन बिताना पड़ेगा, जब तक कि कुछ शब्द मालूम नहीं हो जाते। रास्ते में भी वह आपस में खूब हँसते और बातचीत करते आये थे। हम भी संस्कृत में अब घटित घटनाओं के बारे में दिल खोलकर बात कर रहे थे। तुर्की में बात करने में भय था, शायद उनमें से कोई उसे समझता हो, आखिर यह लोग शताब्दियों से अवारों और तुर्कों के अधीन रहते चले आये थे। यह निश्चित ही था, कि धरती के उत्तरी छोर वाले (साइबेरिया के) इन जंगलों में संस्कृत कभी नहीं बोली गई होगी, न वहाँ उसका समझने वाला कोई आया होगा। यवगू हमें बार-बार याद आता था। बड़ा भद्र पुरुष था। हमारे ऊपर उसने कितना स्नेह और उपकार किया था? हम उसके देश में रहकर अपने जीवन को धर्म के काम में लगाने के लिए करीब-करीब तैयार हो गये थे। मालूम नहीं हमारी विद्या अनुभव, उत्साह, और साहस का यहाँ कोई उपयोग हो सकेगा। नींद खुलने पर हम उठ बैठे। आदमियों को चलने के लिए तैयार देखा, मानो वह हमारी ही प्रतीक्षा कर रहे थे।

इसी समय उनमें से एक हमारे पास आया। उसने टूटी-फूटी तुर्की में बतलाया— हम चल रहे हैं, तुम्हें किसी तरह का भय मन में नहीं करना चाहिए। हमने भी विश्वास दिलाया कि हमें कोई कष्ट नहीं है, न तुम्हारे प्रति हमारे मन में दुर्भाव है। खाने के लिए पूछने पर बतलाया कि हम लोग दोपहर के बाद भोजन नहीं करते। हमारे कपड़े भी विलक्षण थे। तपे हुए ताँबे के रंग के मोटे ऊनी कपड़े की संहाटी और उसी रंग का चीवर हमारे शरीर पर था। इन लोगों ने ऐसे कपड़े पहने आदमियों को नहीं देखा था। सिर हमारे एक ही दिन पहले घुटे थे। इन लोगों के मुँह पर दाढ़ी-मूँछ नाम के लिए ही आती हो। सिर के बालों में जीवन भर अस्तुरा नहीं पड़ता। फिर हम दोनों उनकी जैसी "मंगोलायित" मुखमुद्रा वाले भी नहीं थे। उन्होंने बाहरी दुनिया के आदमियों में तुर्कों और अवारों को ही देखा था, जिनके चेहरे-मोहरे इन्हीं जैसे होते हैं। हमारी जैसी लम्बी नाकें, सुनहली या नीली आँखें उन्होंने कभी नहीं देखी थीं। शान्तिल का पिता अवार राजकुमार था, लेकिन वह भी चेहरे से तुर्क नहीं मालूम होता था। घुमन्तू राजकुमार कांस्य देश की कुमारियों को भी रख लेते थे, इसलिए इस तरह का रक्त-सम्मिश्रण अवारों जैसे पुराने राजवंश में होना स्वाभाविक था। इस सीधी-सादी किन्तु उनके लिए विचित्र वेषभूषा से जिज्ञासा का बढ़ना जरूरी था।

तुर्की समझने वाला प्रौढ़ पुरुष दूसरों से अपने को अधिक बहुज्ञ समझे, यह स्वाभाविक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था। वह कितने ही वर्षों से तुर्क शासक के शिविर में अपनी जाति के लोगों की भेंट के साथ जाया करता था। एक दो वर्ष, अनिच्छापूर्वक ही सही वह वहाँ रह चुका था, इसलिए बाहरी दुनिया का भी उसे कुछ पता था। उसने बहुत सोचकर—"तुम लोग देववाहन हो" कह यही बात अपनी भाषा में अपने साथियों के सामने भी दोहराई। पुरोहित, देववाहन और चिकित्सक तीनों के कामों के इकट्ठा करने वाले व्यक्ति (शमन) इनमें होते हैं, इसलिए हम श्रमणों (भिक्षुओं) को देखकर उसका अन्दाजा लगाना गलत नहीं था। जब शान्तिल ने उसके कहने पर 'हाँ' कहा, तो अपनी बहुज्ञता को दरसाते हुये उसने अपनी भाषा में, जान पड़ता है, हमारी महिमा और भी बढ़ा-चढ़ाकर बतलाई। शायद कहा होगा—"हमारे देववाहनों (ओझा-सयानों) से भी इनमें अद्भुत शक्ति होती है। ये मुर्दे को जिन्दा कर सकते हैं, बूढ़े को जवान बना सकते हैं।" हाँ, बूढ़े को जवान बनाना इस भूमि में बहुत आकर्षक बात थी, क्योंकि यहाँ के लोग वृद्धों को जीवित रखना नहीं पसन्द करते और किसी बहाने से उन्हें इस तरह छोड़ देते हैं कि वह अपने आप मर जायें। इन लोगों का एक जगह कोई निवास नहीं, इसलिए घर-बार के बारे में सवाल ही नहीं उठता।

रात का भुना हुआ अवशिष्ट मांस उन्होंने हमें दिया। हो सकता है अपने दाँत से काटकर उसके कुछ भाग को उन्होंने खाया हो, लेकिन इस समय हम उसका विचार नहीं कर सकते थे और न ऐसी परिस्थिति के लिए विनय-नियमों ने ही हमें वैसा करने के लिए मजबूर किया था। रात के डेरे के पास ही पानी था, हमने मांस खाकर के पानी पिया। यह लोग नमक इस्तेमाल नहीं करते, सचमुच यह आदत की बात है, नमक बिना भी आदमी को भोजन में कुछ ही समय में स्वाद आने लगता है, इसे हमने अपने तजर्बे से देखा। हम अब जंगलों से ढँके पहाड़ के ऊपर की ओर चढ़ने लगे। यहाँ के पहाड़ बहुत बड़े नहीं होते, इसलिए चढ़ाई कठिन नहीं थी। तुर्की समझने वाला पुरुष हमसे जब-तब बात करता रहता। देश के बारे में पूछने पर हमारे लिए समझाना मुश्किल था। हमने यही बतलाया, कि यहाँ से दक्षिण एक वर्ष के रास्ते पर, यदि पैदल जाना हो और जाड़ों में रास्ते में विश्राम करते जायें तो यहाँ से सिहलद्वीप पहुँचने में शायद दो वर्ष से कम न लगे। हमारी बात गलत नहीं थी। उनको यह भी अन्दाज लग गया कि हम कितनी दूर के रहने वाले हैं। जब उन्हें मालूम हो गया कि हम अद्भुत शक्ति रखने वाले ओझता-सयाने हैं, तो हमारा मान-सम्मान और बढ़ गया। इस मान-सम्मान से मुझे डर लगने लगा, क्योंकि वह हमसे जो आशा रखने लगे थे, उसे पूरा करने में सफल नहीं होते, तो उनके कोप का भाजन बनना पड़ता। ये लोग परम यथार्थवादी होते हैं, हरेक चीज का फल प्रत्यक्ष देखना चाहते हैं। हमें सन्तोष इतना ही था, कि हमारा दुभाषिया तुर्की बहुत कम जानता था और बात समझने का बहाना कर सकते थे।

तीन दिन तक हम उन्हीं प्राकृतिक दृश्यों के बीच से चलते रहे। कभी पहाड़ के ऊपर चढ़ना पड़ता, कभी उतर कर ढालुआँ या समतल जमीन पर चढ़ाई कठिन नहीं थी। एक ही दिन और चलने के बाद अब वह उतनी जल्दी में नहीं थे। बीच-बीच में ठहर कर अपने लिए शिकार करने भी जाते। जहाँ जंगल में इतने अधिक शिकार हों, वहाँ पाथेय ढोने की क्या आवश्यकता? जलाशयों में वह मछली भी मार लेते, रात के वक्त अर्थात् उस सफेद रात में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जल-पक्षियों को मारते। मौसिम ऐसा था कि शिकार पर निर्भर होकर भूखे रहने की आवश्यकता नहीं थी। चौथे दिन दोपहर को हमें जंगल में से धूआँ उठता दिखाई पड़ा। हम उसी तरफ चल पड़े। धूएँ की जगह पहुँचने से पहले ही बारहसिंगों के रेवड़ चरते हुए मिले। हम पास से गुजरे, तब भी वह नहीं भागे। मालूम हो गया, हमारे गाय-बैलों की तरह यह इन लोगों के पालतू जानवर हैं। धूयें की जगह पहुँचने पर चमड़े के दस-बारह तम्बू मिले। वहाँ के स्त्री-पुरुषों ने हमारे साथियों का स्वागत किया, दुभाषिया के प्रति विशेष सम्मान प्रदर्शित किया। ये तम्बू तुर्क घुमन्तुओं जैसे नहीं थे, कला के प्रति हमारे परिचित घुमन्तुओं से ये कम स्नेह नहीं रखते, तो भी इनमें अधिक सादगी थी। तम्बू क्या लकड़ियों को गाड़कर उनके ऊपर चमड़ा मढ़ा हुआ था। कपड़े का इनके यहाँ कोई व्यवहार नहीं, यद्यपि इसका यह अर्थ नहीं कि वह कपड़े से परिचित नहीं हैं। महार्घमृगचर्म जब इनके यहाँ इतना सुलभ है और यहाँ की सर्दी ऐसी ही गरम पोशाक चाहती है, तो उन्हें ऊनी कपड़े के व्यवहार की क्या जरूरत ? यह भेड़ भी नहीं पालते।

हमारे साथी अपने लोगों में आ गये। भाषा आत्मीयता स्थापित करने के लिए पर्याप्त है। दुभाषिया—उनके सरदार—के सिर की टोपी और उसमें लगे पंख उसके पद को बतलाते थे। यह तो स्पष्ट ही था कि हमें बन्दी बनाकर ले जाने वाले वह लोग शत्रु नहीं थे। यदि वह हमारी बात समझ सकते, तो हम और भी प्रसन्नता से उनके साथ बातचीत करते। स्त्री-पुरुषों की मुखाकृति एक जैसी तथा तुर्कों की अपेक्षा तुर्की से अधिक मिलती थी, लेकिन हमें भी उनमें भेद मालूम होने लग गया था। उनका चेहरा अधिक भारी था, नाक अधिक चिपटी, गाल की हड्डियाँ अधिक उठी थी। शान्तिल इन्हें अधिक कुरूप कहते थे। मैंने कहा : कुरूप और सुरूप का लक्षण भी देश और जाति के अनुसार भेद रखता है। शायद यह लोग हमको कुरूप कहते होंगे, क्योंकि हमारी नाक अधिक लम्बी है, चेहरा इनकी तरह गोल और चिपटा नहीं है। आते देर नहीं हुई कि स्त्रियों ने आकर हमें घेर लिया। कोई हमारे चीवर को हाथ से टटोलकर बड़े ध्यान से देखती। कुछ तरुणियों ने जब हमारे घुटे सिर की ओर हाथ बढ़ाया, तो मुझे शंका होने लगी—यह हमें अपना खिलौना न बनाये। उनके स्वभाव में बहुत लड़कपन दिखाई पड़ता था। वयस्क और प्रौढ़ भी, मालूम होता था, अभी शैशव से आगे नहीं बढ़े हैं। उनकी यह सादगी, स्वाभाविकता और भोलापन मुझे अच्छा लगता था, लेकिन खिलौना बनने को कौन तैयार होता ? उनको अपनी इच्छा और अनिच्छा समझाने के लिए हमारे पास वाणी नहीं थी, उतनी बड़ी संख्या के सामने अपना विरोध प्रकट करने के लिए हमारे पास बल नहीं था। हम असमंजस में पड़े थे, इसी समय दुभाषिया सरदार की नजर हमारे ऊपर पड़ी। उसने कुछ कहा। हमारी तरफ उठे हाथ जैसे एकाएक आग में पड़ गये। वह तुरन्त पीछे की ओर हट गये और सबके चेहरे पर सम्मान-मिश्रित भय की रेखायें खिच गई। जान पड़ता है, दुभाषिये ने बतलाया कि हम जीवन और मृत्यु पर काबू रखने वाले ओझा-सयाने हैं। जरा ही देर में एक पाँच वर्ष का बालक हमारे सामने लाया गया। हमने उसके पीले मुख और हड्डी-हड्डी को देखते ही समझ लिया कि यह बीमार है। लेकिन हमारे पास कोई दवा नहीं थी और इस भूमि में जो जड़ी-बूटियाँ थीं, उनमें से परिचित औषधियों को ढूँढ़ निकालना आसान नहीं था। तुर्कों के हाथ में पड़ने पर मैंने फिर चिकित्सा के महत्त्व को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समझा था और कुछ दवाइयों की पोटलियाँ भी इकट्ठी कर ली थीं। लेकिन सरोवर के किनारे वन विहार करते उनके लाने की आवश्यकता नहीं थी। सोच रहा था, यदि अपनी इन दो-तीन पुस्तकों के साथ उनको भी साथ लिए होते तो कितना अच्छा रहता ?

शान्तिल मुझसे ज्यादा व्यावहारिक बुद्धि रखते थे, यह मैं पहले ही बतला चुका हूँ। उन्होंने कहा :

भन्ते, इतनी चिन्ता क्यों करते हैं। हमारा गंतव्यस्थान यह नहीं है। कुछ ही देर के विश्राम के बाद हमें यहाँ से चल देना है। इसलिये यमराज सहोदर वैद्य का अनुसरण कीजिये।

यानि कानि च मूलानि येन केनापि पिशयेत्
यस्य कस्यापि दातव्यं यद्वा तद्वा भविष्यति।

मैं उमर में बड़ा और देखने में भी अधिक सम्माननीय मालूम होता था, इसलिये मुझे अपने हाथ से दवा देनी चाहिये थी। मैंने दुभाषिये से कहा---मैं दवा ढूँढ़ कर ला रहा हूँ और वहाँ से उठकर हरी घास से ढँकी जगह को पार कर देवदार और भुर्ज के वृक्षों के नीचे गया। मैं बड़े गौर से किसी औषधि को ढूँढ़ रहा था। वहाँ एक डेढ़ हाथ के कोमल सुन्दर पतली-पतली पत्तियों वाले पौदे को देखकर मैंने उसकी कुछ डालियाँ तोड़ लीं और रुग्ण बच्चे के पास लाकर शान्तिल के हाथ में थमा देने के लिए कहा। मुझे शान्तिल के ऊपर अपने से अधिक विश्वास था और दूसरे वंचना करने की भी मेरे में हिम्मत नहीं थी। शान्तिल ने वहाँ लेटे हुये बच्चे को सिरसे पैर तक उस जड़ी को पाँच बार घुमाया, फिर पत्तियों को नोंचकर देते हुए दुभाषिया को बतलाया—इसे माँ के दूध के साथ पीसकर शाम-सबेरे पिलाओ। वहाँ उपस्थित नर-नारियों के ऊपर इसका बहुत प्रभाव पड़ा। दूध यह लोग माँ का ही मो भी बचपन में पीते हैं, उसके बाद दूध का व्यवहार नहीं जानते। दूध वाली माताओं की वहाँ कमी नहीं थी।

मध्यान्ह भोजन करके डेढ़-दो घड़ी बाद हम वहाँ से रवाना हो गये। कह नहीं सकते, इस जैसी-तैसी जड़ी-बूटी का बच्चे के ऊपर क्या प्रभाव पड़ा ? हमारे साथियों के ऊपर उसका अवश्य बड़ा प्रभाव पड़ा, यह हम अच्छी तरह जान रहे थे। यहाँ से हमारे साथ के लोग कई टुकड़ियों में बँट गये। शायद वह अपने परिवारों के ग्रामों में चले गये। ग्राम वस्तुतः झुण्ड को कहते हैं, चाहें वह गिट्टी-ईंट पत्थर के स्थिर घरों का झुण्ड हों, या तुर्कों के नम्दे के तम्बुओं का अथवा उत्तरी वनचरों की चमड़े मढ़ी कुटिकाओं का। कुछ दुभाषिये ने बताया और कुछ अन्दाज से भी हमने जान लिया, कि अपने नये शासकों के प्रतिकूल व्यवहार के कारण यह लोग उनसे नाराज हैं। उसी का बदला उन्होंने इस तरह अकस्मात् आक्रमण करके लिया। शायद इनको यह नहीं पता था कि जिसकी जमात पर उन्होंने आक्रमण किया, वह स्वयं यवगू---उप-कआन है। यवगू के बारे में पूछने पर जो जवाब मिला, उससे यह पता नहीं लग सका, कि यवगू मारा गया या बंदी बना।

चार दिन और जाने पर हम एक पहाड़ के ऊपर पहुँचे। वहाँ से दूर समुद्र दिखाई

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पड़ने लगा। हमारे साथी ने उसे महाजल कहा। हमें उसका अर्थ समुद्र मालूम हुआ। जब हम पहाड़ के एक और ऊँचे स्थान पर पहुँचे, तो इसमें सन्देह लगाने लगा कि यह सचमुच समुद्र है। अगले दिन हम इस महाजल (बैकाल)[1] सरोवर के किनारे पहुँच गये। पानी में हाथ डालक देखा, तो वह बहुत शीतल था, लेकिन जल का स्वाद साधारण पानी या जल की तरह ही मीठा था। शान्तिल ने कहा—यह मीठा शीत समुद्र है। क्षार जल की जगह मीठे जल को पाना आश्चर्य बात थी। उस समय हवा के झोके बहुत हल्के थे और नील जल थोड़ा ही तरंगित था, लेकिन संध्या को जव हवा तेज हुई सचमुच ही उसमें समुद्र जैसी उत्ताल तरंगें उठने लगीं और हम दोनों ने समझा कि चाहे यह समुद्र न हो, तो भी यह महान सरोवर होगा।

यह सचमुच ही नई दुनिया थी, हमें अफसोस यही था, कि हम केवल अपनी आँखों के सहारे ज्ञान प्राप्त कर सकते थे। दुभाषिया प्रौढ़ पुरुष सैकड़ों कुटुम्बों का सरदार था, जो समय-समय पर किसी जगह एकत्रित होते थे। यद्यपि हमसे बातचीत करने के लिये वह समय निकाल लेता था, लेकिन उसकी परिमित शब्दावलि के सहारे हम कितनी बातें जान पाते? इस समय महासरोवर (शीत समुद्र) के किनारे कोई महोत्सव था, जिसके लिये हजारों नर-नारी एकत्रित हुये थे। हर परिवार में क्षमता के अनुसार दस-बीस वारहसिंगे थे। इसमें सन्देह

---

1. बैकाल झील साइबेरिया में है। यह दुनियाँ की सबसे गहरी झील है जिसका घेरा किलोमीतर है और गहराई 1,741 मीतर है। उसमें सुदूर अतीत के आज भी ऐसे जीव मिलते हैं, जिनका अन्य जगहों पर लोप हो चुका है। नेरपा किस्म की सील यहाँ मिलती है। पता नहीं, दूरस्थ सागरों से यह यहाँ कैसे आ गई? काफी गहराई में गोलौमियान्का नामक पारदर्शक मछली के दर्शन होते हैं। पौराणिक काल की काई और स्पंज, ठीक अपने पहले वाले रूप में यहाँ आज भी पाये जाते हैं।

चिरकाल से वैज्ञानिक और खोज का काम करने वाले बैकाल झील की ओर ध्यान देते आ रहे हैं। हमारे सन् से 119 साल पहले लिखी गई एक चीनी पुस्तक में इसका जिक्र मिलता है। 13वीं सदी में मार्कोपोलो ने भी इसका हवाला दिया था। तेरह देशों की नौ भाषाओं में बैकाल झील पर 1400 पुस्तकें लिखी गई हैं।

लिस्तवेनिचोनिये गाँव से—जो कि बैंकाल झील से निकलने वाली अंगारा नदी के उद्गम स्थान से थोड़ी दूर पर स्थिति है—सोवियत संघ की विज्ञान-अकदमी का एक स्टेशन कायम है, जो कि बैकाल झील के उद्गम और इतिहास, झील के भीतरी जीवन के बारे में खोजबीन और अध्ययन का काम करता है। इस स्टेशन के वैज्ञानिकों ने इस सम्बन्ध में काफी सामग्री जमा की है। 1925 तक झील में पाये जाने वाले जीवों की 771 किस्मों का पता लगा सका था। 1951 में इनकी संख्या 1750 तक पहुँच गई! बैंकाल झील के ज्ञात प्राणियों में से 1129 ऐसे हैं, जो दुनिया में अन्य कहीं नहीं पाये जाते। हाल ही में एक आदिम कालीन मछली झील में मिली है। इस जाति की मछलियों का दुनिया से लोप हुए एक युग वीत चुका है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं कि ये हमारे हरिनों की जाति के थे। इनकी सींगों में कई शाखायें फूटी थीं, लेकिन वह मुलायम ऊन वाले चमड़े से ढँकी थीं। कद भी हमारे बारहसिंगों से इनका बड़ा था। बनचर इनसे बोझा ढोने का काम लेते थे, यदि दूध पीना जानते, तो उनसे दूध भी निकाल सकते थे। वह इनके मांस को खाते और चमड़ों का अपने तम्बुओं के बनाने या बिछौने के तौर पर उपयोग करते। यहाँ की भूमि को सर्दी कभी नहीं छोड़ती, यह तो इसी से मालूम होगा, कि सबसे गरम ऋतु में भी सवेरे के वक्त यहाँ पानी बर्फ बना मिलता।

मानव-जाति के आजीवन शिशु होने के कारण आमोद-प्रमोद इन लोगों के जीवन का अभिन्न अंग है। भोजन के लिए शिकार और मधु संचय करना यही इनका मुख्य काम है, जिसको भी यह लोग आमोद-प्रमोद के साथ ही करते हैं। तुर्क घुमन्तू भी नाच-गाने और पान-महोत्सव को बहुत पसन्द करते हैं। यह लोग तो इस बात में उनसे भी आगे बढ़े हुये हैं। महोत्सव पूर्णिमा के आठ दिन पहले शुरू हुआ और आठ दिन बाद तक चलता रहा। रात में अन्धेरे का कहीं पता नहीं था। इस प्रकार इनका महोत्सव अखंड चलता रहा। कभी-कभी ये दल बाँध कर शिकार के लिए भी जाते, लेकिन अधिकतर भोजन के लिए अपने बारहसिंगों और संचित खाद्य के ऊपर निर्भर रहते। मधु की एक तरह की मदिरा भी यह बनाते हैं। दुभाषिया सरदार से भी अधिक धाक इन लोगों पर जिसकी थी, वह था इनका ओझा-सयाना (शमन)। हमने जब उस लाल-लाल आँखों वाले लम्बे तगड़े पुरुष को साधारण पोशाक में देखा, तभी उसकी आकृति ने बतला दिया कि यह बड़ा होशियार आदमी है। हमें भी सयाना समझा जाता था इसलिए भय अगर किसी से था तो इसी से। यदि भाषा मालूम होती, तो हम उससे सीधे कहते, कि हम तुम्हारे पासंग भी नहीं हैं। दुभाषिया द्वारा यह बात कहलाई नहीं जा सकती थी। तो भी हमने निश्चय कर लिया कि ओझा के साथ पूरी नम्रता दिखलायेंगे। लोगों के मन से यह भाव निकालने में काफी देर लगी कि उनका ओझा हमसे बहुत बड़ा है, उसके बड़प्पन को हम भी मानते हैं।

प्रायः आधी रात के समय देवता उसके सिर पर आता। देवता के आवाहन के लिए उसे विशेष तैयारी करनी पड़ती। बहुत विचित्र और भयावनी पोशाक पहनता। कई रंग के मूल्यवान् मृगचर्म का कन्धे से पैरों तक ढाँकने वाला उसका चोगा था जिसमें भी बाहों और दूसरी जगहों पर दूसरे रङ्ग के समूर की चकति लगी थीं। मालूम होता था, यही चोगा पीढ़ियों से पहना जा रहा है। सिर पर लम्बे बालों वाली खाल की विशाल टोपी थी। उसके पूजा के साधनों में मनुष्य की खोपड़ी, स्त्री या पुरुष के हाथ-पैर कीं हड्डियों के बाजे थे। अपने पूरे वेष को पहन कर मध्यरात्रि की उषा के प्रकाश में वह आकार बैठता, तो लोग प्रभाव में आये बिना न रहते। उसके सामने खोपडी के प्याले में मधु की मदिरा रहती, हाथ में खाल का मढ़ा बाजा होता। देवता का आवेश होते ही वह अंगड़ाइयाँ लेने लगता, उसकी आँखें और लाल हो जातीं, फिर वह आधे गाने और आधे बात करने के स्वर में गद्य-पद्य मिश्रित बचनों में बोलने लगता। देवता पहले अपना परिचय देते हुये बतलाता सृष्टि के आदि से मैं तुम्हारी जाति की रक्षा करता आया हूँ। जब कभी भी हुकम मानने में तुमने सर्कशी की, उसका मैंने घोर दंड दिया। महामारी से कितनों को मार डाला, बर्फ के नीचे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सैकड़ों को दबा दिया, वसन्त की वेगवती धाराओं में वहुतों को वहा दिया, भूखों मारा। इन बातों को जिस वक्त वह दोहराता, लोगों के चेहरों के देखने से ही मालूम होता था, कि वह कितने संत्रस्त हैं। वह डरते, कहीं देवता फिर नाराज हो जाये। हमारा परिचित सरदार और दूसरे बूढ़े वहुत गिड़गिड़ा कर अनुनय-विनय करते। केवल जबानी अनुनय-विनय को देवता मान कैसे सकता था, इसलिये उसकी भेंट के लिये बारहसिंगे, कीमती छाले और दूसरी चीजें भेंट दी जातीं। यह वार्षिक महोत्सव था, जिसमें ही ओझा की सबसे अधिक आमदनी होती थी। इनमें सबसे धनी व्यक्ति जो होता है, वह अपने जनों के जान माल पर अधिकार रखता है।

सभी देशों में महोत्सव में विशेष सुन्दर नई-नई पोशाक पहनी खाने खिलाने में बड़ी उदारता दिखलाई जाती है। यह लोग तो सबसे अधिक उत्सवप्रिय हैं। इस समय वह दुःख और चिन्ता को अपने पास फटकने देना नहीं चाहते। शायद यही समय है, जब कि साल में एक बार इनमें से कितने ही नर-नारियों के चेहरे पर पानी पड़ता है। उनका रंग बुरा नहीं था, चेहरे सबके आरक्त थे। लोग उत्सव मनाने में लगे हुए थे, परी हम दोनों को ओझा से भारी डर लगरहा था। कहीं वह हमें अपना प्रतिद्वन्दी न समझ ले। हमसे भी कम उसे भय नहीं था। देवता के आने पर दूसरों को भले ही पूरा विश्वास हो, लेकिन ओझा स्वयं उतना अन्धविश्वासी नहीं हो सकता। अपने प्रभाव को वढ़ाने के लिए जान-बूझ कर वह कई उपायों से लोगों को वंचित करता। यह जीविका और आमदनी का सवाल था, उस पर प्रहार होने पर सभी मनुष्यों की तरह वह भी भीषण बदला लिए विना नहीं रह सकता था। उसने पहले ही दिन दुभापिये के साथ आकर हमसे वातचीत करनीं चाही। हम उस समय शीतसमुद्र के किनारे उसकी उछलती लहरों को देख रहे थे। दूसरों का अनुकरण करते जितना भी आदर दिखलाया जा सकता था, उतना आदर हमने दिखलाया। यह निश्चय ही था, कि उसके देवताओं के नाम वही नहीं हो सकते थे, जिन्हें हम जानते थे। इसी समय सूझ आई, और हमने कहा हम बुद्धदेवता के ओझा हैं। यह विचित्र सा नाम था। यदि कहीं अपने देवता के गुणों को हम बतला सकते तो वह उसे और भी विचित्र मालूम होते। उसके मन में हमारे देवता के प्रति कोई ईर्ष्या न हो जाए, इसे दूर करते हुए हमने कहा: "हमारे देवता का दुनिया में किसी देवता से वैर नहीं है और न दूसरे देवता के राज्य में वह दखल देना चाहते हैं।" ओझा को इससे बड़ा संतोष होना ही चाहिए था। फिर हमने बतलाया तुम्हारे देश के लोगों के साथ हम जैसा मेल रखना चाहते हैं, वैसे ही हम तुम्हारे देवता के साथ भी करना चाहते हैं।

पहले दिन की बात से ओझा की आशंका को हमने काफी दूर कर दिया था। बाद के हमारे व्यवहार को देखकर वह और भी संतुष्ट हुआ। यह यद्यपि एक तरह का झूठ बोलना था, लेकिन उस परिस्थिति में हम मजबूर थे। हमने ओझा की शक्ति को और बढ़ा-चढ़ा कर बतलाया, इससे एक फायदा हमें अवश्य था, कि किसी को बीमार या भूत लगे, तो हमें मत्था-पच्ची करने की आवश्यकता नहीं थी। हम उसे सीधे ओझा के पास भेजते और कभी-कभी खुद लेकर जाते। ओझा की महिम जहाँ हमारे द्वारा बढ़ी, वहाँ साथ ही उसने भी अपने लोगों से कह दिया, इनका देवता बहुत भला है, यह लोग हमारे हितैषी हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महोत्सव सामप्त होने को आया। यहाँ तक आने से हम असंतुष्ट नहीं थे। अपनी जन्मभूमि से जिस लक्ष्य को लेकर मैं चला था, उसमें कई परिवर्तन हो चुके थे, और मैं अब दुनिया के उत्तरी छोर पर पहुँच गया था। यदि हमारे ज्योतिषशास्त्र की बात सच्ची है, और पृथ्वी सचमुच ही हमारे आर्यभट्ट (450 ई०) के अनुसार 1056 योजन व्यास और 8000 योजन परिधि की है, तो यहाँ उत्तरी क्षितिज से ध्रुव नक्षत्र जितना ऊँचा दिखाई पड़ता था, उससे पृथ्वी का उत्तरी मेरु (सुमेरु ध्रुव प्रदेश) यहाँ से 30 अक्षांश से अधिक नहीं होगा। सिंहलद्वीप में अनुराधपुर भूमध्यरेखा से 9 अक्षांश से भी कम उत्तर ओर है। इसका अर्थ यह हुआ, कि हम यहाँ पर वहाँ से उत्तरी अक्षांश के आधा उत्तर हम चले आये थे। लेकिन, अपने ज्योतिषियों की सारी बातों को मानने के लिए मैं तैयार नहीं था। आर्यभट्ट ने प्रत्यक्ष देखे जाते सूर्य के भ्रमण को झूठ कहकर पृथ्वी के भ्रमण को मनवाना चाहा, इसे मैं कैसे मानता? "अभिधर्मकोष" में तथागत की सूक्तियों के आधार पर भूमंडल का जिस तरह वर्णन किया गया है; वह भी आर्यभट्ट के विरुद्ध है। इतना कह सकता हूँ, कि आर्यभट्ट के तर्क बाज वक्त हमें भ्रम में डाल देते हैं। दौड़ती हुई नावों पर चढ़े हुए आदमी को सचमुच ही नदी का तीर और उसके वृक्ष दौड़ते मालूम होते हैं, और अपनी नाव स्थिर। जो भी हो, हरेक जगह का अक्षांश वही होता है, जो कि वहाँ के क्षितिज में ध्रुव तारा की ऊँचाई। इस सत्य को तो मैं बराबर अपनी आँखो देखता आया हूँ। सिंहल से इस शीत समुद्र तक मैंने ध्रुव को क्षितिज से अधिक और अधिक ऊँचे उठते देखा।

आदमी जितना ही अधिक पृथ्वी पर्यटन करता है, उतना ही उसके ज्ञान के विस्तार के साथ जिज्ञासा के क्षेत्र का भी विस्तार होता है। यदि मैं जिस भूमि को यहाँ देख रहा था उसके बारे में अपने देशवासियों को कहता, तो वह शायद मानने के लिए तैयार न होते। बेपहिए की कहीं गाड़ी होती है, और यहाँ जाड़े में मैंने वेपहिए की गाड़ी को पहिये वाली गाड़ियों से भी तेजी के साथ बर्फ पर फिसलते देखा। हमारे देश के किसी देवता का वाहन कुत्ता भले ही माना जाता हो, लेकिन वहाँ कौन मान सकता है, कि यहाँ चार-चार छः-छः कुत्तों वाले रथ चलते हैं। जाड़ों में पैरों में तीन-तीन हाथ के काठ के जूते या डंडे लगा कर यहाँ के लोग जिस तरह योजनों फिसलने की दौड़ करते हैं; उसको वहाँ कौन मानेगा। मखमल जैसे कोमल रोम वाले यहाँ के मृगचर्म कश्मीर या दूसरे देशों के राजाओं के पास कभी-कभी देखे जाते हैं, इसलिए उस पर शायद कोई अविश्वास न करे, लेकिन यहाँ के लोग बारहसिंघे के रेवड़ों को उसी तरह पालते हैं, जैसे हमारे यहाँ भेड़ों और गायों को, इसको कौन मानेगा? लोग कहेंगे हरिन— स्थल के पक्षी—अन्तिम वन्यप्राणी होंगे, जिन्हें मनुष्य पालतू बनाने में सफल हो सकता है। मैंने स्वयं यहाँ नहीं देखा, लेकिन दुभाषिया सरदार की इस बात पर मैं विश्वास करता हूँ, कि यहाँ से और उत्तर सफेद रंग का भालू होता है। इसे भी हमारे यहाँ गप्प कहा जायगा। घुमन्तू लोगों के लिए एक साल में सौ योजन तक चला जाना साधारण सी बात है, हमारा परिचित सरदार कहता था, उत्तर में ढाई-तीन महीने के रास्ते पर असली खारा समुद्र है, जिसका पानी साल में नौ महीने बर्फ बना रहता है, वहाँ दिन और रात तीन-तीन महीने की होती है। मैंने इसमें अविश्वास की कोई बात नहीं देखी। वस्तुतः हम बहुत सी जिन अविश्वसनीय बातों पर विश्वास करते हैं, उनसे यह कहीं विश्वसनीय है। लोग कहते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं; ऐसा देश है, जहाँ एक टाँग वाले लोग रहते हैं, ऐसा भी देश है, जहाँ के लोगों के कान इतने बड़े होते हैं कि एक को बिछा और दूसरे को ओढ़ सकते हैं। इसी तरह दैत्यों और राक्षसों के विचित्र और विकराल रूपों की कथायें सुनने में आती हैं। यदि हम उन पर अविश्वास नहीं करते तो इन बातों पर अविश्वास करने की क्या जरूरत ?

शायद हम अपनी आंखों देखने के लिए उत्तर के हिम समुद्र की ओर जाते, लेकिन यह लोग ऐसी यात्रायें सदा नहीं किया करते। वहाँ जंगल नहीं है, नदियों की मछली और कुछ बर्फ में रहने वाले मत्सजीवी सफेद भालू जैसे जन्तुओं के शिकार पर ही जीविका करनी पड़ती है। यह अपने बारहसिंगों को उस तृणविहीन भूमि में नहीं ले जा सकते। जीविका के जैसे साधन होते हैं, आदमी अपने जीवन को भी वैसा ही बना लेता है। यहाँ बारहसिंगे पालना सुखद, सुखकर और लाभदायक है, इसलिए इन लोगों की जीविका का सबसे बड़ा साधन बारहसिंगे हैं। और उत्तर वाले वृक्ष वनस्पति हीन भूमि में रहते हैं, वहाँ किसी भी घास और तृण पर जीविका करने वाले पशुओं को नहीं रक्खा जा सकता, इसलिए वहाँ जो रहते हैं, उन्हें मछली और शिकार पर ही जीवन निर्वाह करना पड़ता है। फिर ऋतु के अनुसार यह लोग अपने विचरने का स्थान ढूढ़ लेते हैं। हम पक्षियों के बारे में जानते थे, कि वह ऋतु के अनुसार एक स्थान से दूसरे स्थान में चली जाती हैं। उद्यान में हमारे गाँव में कितने ही तरह के पशु-पक्षी वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा में देखे जाते लेकिन जाड़ों में घर की चिड़ियाँ और पालतू जानवर ही देखने में आते। त्योर्क देश में हमने देखा, गर्मियों में वह लोग ठंडी जगहों की ओर जाते हैं, जहाँ बर्फ के गल जाने से हरी-हरी घास उग आती है और जाड़ों में दक्षिण की ओर हवा से सुरक्षित ऐसे स्थानों में अपने पशुओं के साथ जाते हैं, जो अपेक्षाकृत गरम है। शीत समुद्र के पास रहने वाले ये वनचर भी गर्मियों में यहाँ और इससे और उत्तर तक जाते हैं, लेकिन जाड़ों में ये भी दक्षिण कीं ओर उतर जाते हैं। अगर यह मालूम होता कि उत्तर के मत्स्यजीवी लोग हमें आसानी से मिल जायेंगे,तो अवश्य उधर जाने का हम साहस करते और एक बार पृथ्वी के उत्तर के उस महासमुद्र को भी देख आते।

महोत्सव ऐसे मास में हो रहा था, जिसे हमारे यहाँ वर्षा का अन्त कहते हैं। वर्षा यहाँ कम होती है, लेकिन उतनी कम नहीं, जितनी कांस्य देश में। जो कसर रहती है, उसे हिमवृष्टि पूरी कर देती है। वस्तुतः वर्षाकाल में भी यहाँ यदि बारिश ज्यादा देर होती रहे, तो जलवृष्टि हिमवृष्टि में परिणत हो जाती है। महोत्सव के बाद हरेक ग्राम अलग-अलग दिशाओं में अपने पशुओं को लेकर जाने वाला था। इनके चमड़े के चलायमान तम्बुओं के घर हैं। कई परिवार अपने डेरे एक जगह रखते हैं, इसके कारण थोड़ी देर के लिए वहाँ ग्राम बस जाता है। दुभाषिया सरदार और उसके साथी हमें किसलिए यहाँ लाये थे और उन्होंने हमें क्यों इतनी अच्छी तरह रक्खा, यह कहना मुश्किल है। शायद हमारी विचित्र आकृति उनके कौतूहल का कारण हुई, अथवा इनके यहाँ सयानों की बड़ी कदर है, हमें भी वह किसी देवता का सयाना समझते थे। हो सकता है, मनुष्य स्वभावतः क्रूर नहीं है, किसी कारणवश जब किसी से शत्रुता हो जाती है, तो वह क्रूर बन जाता है। हम तुर्कों में से नहीं थे, यह वह प्रत्यक्ष देख रहे थे, इसलिए हमें मारने से क्या फायदा ? हमारा मांस वह खा नहीं सकते थे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो सकता है, नरभक्षी लोग भी कहीं रहते हों, लेकिन अपनी यात्राओं में मैंने ऐसे लोगों को नहीं देखा। जो भी हो, जब हमें ले आने वालों ने देखा कि हम भी उनके महाओझा के शिष्य जैसे हैं, वह भूत और देवताओं के बारे में और औषधि तथा चीर-फाड़ के सम्बन्ध में भी हमसे कहीं अधिक चमत्कार रखने वाला है, तो हमारे प्रति अब उनकी आसक्ति जाती रही। हमने भी इसे अपने लिए अच्छा ही समझा। उनके ओझा का भी हमारी तरफ ज्यादा खिंचाव था। उसने स्वयं हमें अपने साथ चलने के लिए कहा। यह हमारे दिल की बात थी। महोत्सव के समाप्त होने के बाद जब लोग बिखरने लगे, तो हम ओझा के साथ हो लिए। ओझा का सम्मान और शासन अपने लोगों पर किसी राजा से कम न था। जब वह चलता, तो उसके साथ एक पूरा गाँव हो लेता। उनमें किसी को दास या नौकर कहना मुश्किल है, क्योंकि वह आपस में एक दूसरे के साथ ऐसा बर्ताव नहीं करते। किसी के पास अधिक किसी के पास कम धन, जरूर है। ओझा को अपने लिए सेवकों की आवश्यकता थी। ये सेवक उसकी अपनी जाति के थे। शायद इसलिए भी वह काम के वक्त ही सेवक की तरह माने जाते थे, नहीं तो खाने-पीने, आमोद-प्रमोद के समय वह अपने मालिक के परिवार के लोगों जैसे ही थे।

एक दिन हमारा 15 तम्बुओं का गाँव दक्षिण की ओर चल पड़ा। हजार से कम बारहसिंगे और लोगों की संख्या भी 50 से कम नहीं थी। इन वनचरों में अपने कबीले के भीतर घनिष्ट भाईचारा होता है, खून के सम्बन्ध को बहुत माना जाता है। अपने पास-पड़ोस के कबीलों से यदि किसी वक्त कोई झगड़ा खड़ा हो गया, तो वह बड़ा उग्र रूप ले लेता है। खून का बदला खून यहाँ का विधान है। किसी कबीले का, एक व्यक्ति अगर मारा गया, तो ऐसे खूनी बदलों की परम्परा चल पड़ती है, जो पीढ़ियों तक चलती रहती है। ऐसे समय ओझों का महत्व बढ़ जाता है। वह देवता के नाम पर एक दूसरे से मेल करा सकते हैं और चाहें तो झगड़े की आग को और भड़का सकते हैं। जहाँ इस तरह के आक्रमण का किसी समय भी डर हों, वहाँ एक गाँव केवल अपने ऊपर विश्वास करके नहीं रह सकता, इसलिए उनके दूसरे गाँव भी इतनी दूर पर अपने डेरे डालते हैं कि जरूरत पड़ने पर वह एक दूसरे की मदद के लिए आ सकें।

सबसे अधिक कठिनाई हमारे लिए भाषा की थी। तीन महीने इनके साथ रहते हो गया था। हम दोनों ही भाषा सीखने का बहुत शौक रखते थे और जल्दी सीखते भी थे; पर जो इतने महीनों में हमने वह कुछ सीखा था, शब्दकोश इतना नहीं था कि हम रोज की आवश्यकताओं के सिवाय किसी अन्य विषय पर बातचीत कर सकें। ओझा को हमसे बात करने की और भी तीव्र इच्छा थी। कुछ शब्दों और कुछ संकेतों से वह बात करना चाहता, किन्तु गाड़ी बहुत आगे नहीं बढ़ पाती। एक दिन हमें अपनी तालपोथी को पढ़ते देखकर उसने यह जानना चाहा कि यह क्या है, और मैं उसे देखकर क्या पढ़ रहा हूँ। उस दिन हम दोनों एक दूसरे को अपनी बात समझाने के लिए सारी शक्ति से लग पड़े। हमने एक एक अक्षर लिखकर बतलाना चाहा कि यह क है, और यह ख। ये लोग भी आदमी, बारहसिंगे, वृक्ष पानी की तस्वीरों के रेखाचित्र खींचते हैं। अपने चमड़ों के वस्त्रों पर बड़े सुन्दर रंग में फूल-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पत्तों और मनुष्य-प्राणियों के संकेत बनाते हैं। लेकिन, तालपत्र में हमारे जिस तरह के संकेत थे, वह आकृति के नहीं, बल्कि उच्चारण के थे। उस समय मुझे चीनी लिपि मालूम नहीं थी। यदि उसकी पुस्तक मेरे पास होती, तो मैं ओझा को समझाने में कुछ सफल होता। यह दिक्कत बराबर रही। शायद वर्षों वहाँ रहना पड़ता, तो दूर हो जाती। अधिक से अधिक वह यही समझ सका कि मैं भी उसी तरह के मन्त्र पढ़ रहा हूँ, जैसे कि वह पढ़ा करता है और स्मरण के लिए मेरी पोथी में कुछ संकेत हैं। तालपत्तों को उसने यही समझा कि यह भी कोई चमड़ा है। मैं माथापच्ची करने के लिए तैयार नहीं था कि यह चमड़ा नहीं, किसी वृक्ष का पत्ता है। जो साकार वस्तुएँ थीं, उनका समझना-समझाना हमारे लिए कठिन नहीं था, लेकिन वाणी के विषय बहुत-सी निराकार वस्तुएँ भी हैं, उनको समझाना अपने परिमित शब्दों में हमारे लिए बहुत कठिन था। ओझा बहुत चतुर और बुद्धिमान आदमी था, यह हमें मालूम था और यह भी कि हम उसकी दया पर निर्भर हैं; इसलिए हमारी बराबर यही कोशिश रहती थी कि वह किसी तरह रुष्ट न होने पाये। अपने स्त्री-बच्चों और लोगों पर हमने उसे गुस्सा होते देखा था। ऐसे समय वह पागल की तरह व्यवहार करता, सबको एक ओर से बुरी तौर से पीटता। यदि हमारे ऊपर गुस्सा होता, तो हम भी न बच पाते। यह दूसरी बात थी कि गुस्सा शान्त होते ही, वह पश्चात्ताप करते हुए प्रतिकार करते बहुत अनुनय-विनय करके उन्हें सन्तुष्ट करना चाहता।

हम जिस भूमि में घूम रहे थे, वह हरी-भरी पहाड़ी थी। पहाड़ से हिमालय और भारत के पहाड़ों को न समझ लें। यह पहाड़ बिल्कुल छोटे-छोटे अधिकतर मिट्टी से ढँके थे, जिन पर नाना प्रकार के वृक्ष वनस्पति उगे हुए थे। किसी जगह हम दस दिन ठहरते और किसी जगह उससे कम-ज्यादा। दिशा भी सीधी दक्षिण की ओर नहीं थी, कभी हम कुछ दूर पूर्व की ओर जाते और कभी दक्षिण की ओर। सब मिलाकर हम शीत समुद्र से दक्षिण की ओर ही चल रहे थे अब वह अपने जाड़ों की स्थान की ओर बढ़ रहे थे। मैं पक्की तौर से तो नहीं कह सकता, लेकिन जब एक विशाल नदी को हमने शीत समुद्र में गिरते देखा और फिर घूम-फिर कर हम उसी के किनारे आये, तो मुझे ख्याल हुआ, शायद यह वही नदी है, जिसके किनारे-किनारे हम यबगू के साथ-साथ चले थे। मैं जानता था: यबगू के आदमी वनचरों को दंड दिये बिना नहीं रहेंगे। यदि छोटे-मोटे अधिकारी के साथ इन्होंने लड़ाई की होती, तो शायद मामूली दंड से भी छुट्टी मिल जाती। यदि यबगू मारा गया, तो तुर्क इनका उच्छेद किये बिना नहीं रहेंगे।

जब हम महानदी के किनारे पहुँचे, तो बर्फ जहाँ-तहाँ जमीन को ढाँकने लगी थी। वहाँ तीन तरफ पहाड़ थे और एक तरफ नदी, बीच में काफी समतल भूमि थी, जिसकी घास धीरे-धीरे बर्फ से ढँकती जा रही थी। पहुँचते ही नर-नारी घास काटकर जमा करने में लग गये—जाड़ों में जानवरों के लिए घास चाहिए। मनुष्यों के आहार का भी निश्चित प्रबन्ध करना था, क्योंकि जाड़ों में शिकार सुलभ नहीं होते। घास चारे की कमी के कारण बारहसिंगे बराबर दुबले होते जा रहे थे। गाँव ने सौ से अधिक बारहसिंगे मारे। उनके चमड़ों को अलग कर लिया और बाकी मांस को पेड़ों पर टाँग दिया। जहाँ तक शिकार से आहार मिले,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस मांस पर लोग हाथ नहीं लगाते थे। बारहसिंगों और मनुष्यों के अतिरिक्त कुत्ते भी हमारे साथ थे। यहाँ के लोग कुत्तों के रथों का कम इस्तेमाल करते हैं, लेकिन उत्तर के मत्स्यजीवियों के लिए कुत्ता ही सब कुछ है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यहाँ जितनी सर्दी मैंने कहीं नहीं देखी। यदि पहले से अभ्यस्त न हो गया होता, तो शायद बर्दाश्त करना मुश्किल हो जाता। मनुष्य ऐसा प्राणी है, जो सभी तरह के जलवायु को बर्दाश्त कर सकता है। यदि इतनी असह्य सर्दी है, तो उसके साथ उतने ही गरम और मुलायम चमड़े भी यहाँ मिलते हैं। हम ओझा का कोई काम नहीं कर सकते थे, सिवाय इसके, कि हमारी वजह से उसकी महिमा लोगों में बढ़ती थी। पर वह हर तरह से हमारे आराम का ख्याल रखता था। उसने हम दोनों के लिए नये लबादे बनवाकर दिये। उस जाड़े में चीवर की नहीं बल्कि इसी लबादे की जरूरत थी। आँख-नाक छोड़कर शरीर का कोई अंग खुला रखना दिन में भी मुश्किल था। आड़ की जगह थी, इसलिए हवा तेज होने पर भी वहाँ उसका जोर नहीं लगता था, नहीं तो हमें डर है, उस छाले के लबादे में भी हमारे दाँत कटकटाते। लेकिन, यह लोग उसके इतने अभ्यस्त थे कि इतनी सर्दी में भी हाथ-मुँह खोले रह सकते थे और बहुत कड़ाके के जाड़े के समय ही अपने सारे शरीर को ढाँकते। अपनी पोशाक में वह बिलकुल भालू जैसे मालूम होते। मैं उनकी इस पोशाक के मूल्य की ओर ख्याल करता। ये चमड़े तुर्कों के पास या चीन में पहुँचकर सोने के मूल्य पर बिक सकते थे, जिन्हें वे साधारण तौर से पहनते थे। पर जीवन का मूल्य सबसे बढ़कर है। भोजन के लिए मांस की प्रधानता थी। नदी ऊपर से जम गई थी, लेकिन उसके नीचे प्रवाह जारी था। यह लोग बर्फ में छेद करके कभी-कभी मछली मार लाते थे, लेकिन उसका मिलना अधिकतर संयोग पर निर्भर था। शीत समुद्र में लोगों ने ओझा को मछलियाँ भी दी थीं, जो अब सूखी होकर यहाँ तक आई थीं। ओझा हमें वही चीजें खाने को देता, जो खुद खाता था। भोजन में अन्न का कोई स्थान नहीं था, कुछ जंगली फल और कन्द थे, जो कभी-कभी स्वाद परिवर्तन के लिए मिलते।

आगे क्या करना है, इसके बारे में कुछ निश्चय करना हमारे हाथ में नहीं था। हमें रास्ता भी मालूम नही था और न इसके सिवाय कुछ जानते थे, कि हम दुनिया के एक बहुत उत्तरी भाग में है। छह महीने बीतते-बीतते भाषा का ज्ञान हमारा और बढ़ा। यह कितना बड़ा सहारा है, इसे हमारी जैसी स्थिति के आदमी ही जान सकते हैं। सोने, चाँदी, लोहे की चीजों मूल्य और उपयोग इन घुमन्तुओं के यहाँ भी है, जिसके ही कारण उन्हे बाहर के लोगों से सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है। हर साल अपनी विक्रेय चीजों को बेच कर आवश्यक वस्तुओं को मँगाना भी उनके जीवन का एक काम है, लेकिन उसके लिए भी जरूरी नहीं है कि सभी अपनी-अपनी चीजें लेकर दक्षिण के उन लोगों के पास जायें, जो उनके बदले में दूसरी चीजें देते हैं। तुर्कों से झगड़ा मोल लेकर इस साल इन्होंने अपने लिए संकट भी पैदा कर लिया था यदि इस साल की गर्मियों में तुर्क दण्ड देने के लिए उनके पास तक नहीं पहुँचे थे, तो अगले साल वह छोड़ने वाले नहीं थे।

ओझा को भी अपने कुछ बहुमूल्य मृगचर्म तथा दूसरी चीजें भेजकर आवश्यक चीजें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मँगवानी थीं, लेकिन डर था, कि वहाँ जाने पर तुर्क उसके आदमियों को पकड़ लेंगे। ओझा स्वयं जाने की तो हिम्मत नहीं कर सकता था, पर दूसरों को दूसरों को भेजे बिना नहीं रह सकता था था। इस समय हमारी उपयोगिता [redacted] उसे मालूम हुई। हम तुर्क नहीं थे, लेकिन तुर्कों की भाषा जानते थे, तुर्क यवगू के सम्मानित मेहमान रह चुके थे। जब इसकी चर्चा चलाई, तो भीतर से बहुत प्रसन्न होकर भी हमने बाहर से न प्रकट करते हुए उसे यही बतलाया, कि तुम्हारे उपकारों का इस प्रकार बदला देने के लिए हम तैयार हैं। जाड़ा बीतने से पहले ही यह निश्चित हो गया, कि ओझा के आदमियों के साथ उसकी चीजों के बिकवाने के लिए हमें दक्षिणाभिमुख जाना होगा। पत्तों और डालियों में [redacted] मढ़े देवदार के वृक्षों को हमने पहले भी देखा था, किन्तु प्रकृति का सौन्दर्य हर देश और हर काल में नया होता है। जिस पहाड़ के नजदीक हमारा डेरा पड़ा था, उसके ऊपर सफेद हिम से ढँकी ढालुआँ पहाड़ी थी, नीचे सारे वृक्ष कुछ काले अंगों को छोड़ कपूर के बने हुए थे। नदी का पानी भी उसी तरह हिमाच्छादित बना ऊपर से दानेदार हिम के ढँका था। चाँदनी रात में वह दृश्य बड़ा मोहक मालूम होता, विशेषकर इसलिए भी, कि हिमालय की तरह दृश्य का अवरोध करने वाले यहाँ ऊँचे-ऊँचे पहाड़ नहीं थे।

आखिर छः महीने के जाड़ों के बाद वसंत के आने की सूचना मिलने लगी, जब कि हिम दोपहर को पिघलता दिखाई पड़ा, लेकिन नदी अभी उसी तरह सफेद चादर ओढ़े साई थी। हमारे रहने के स्थान में अभी बर्फ के पिघलने में देर थी, लेकिन यहाँ के लोगों को मौसिम का पता रहता है; इसलिए एक दिन दस आदमियों और [redacted] पन्द्रह बारहसिंगों के साथ ओझाने हमें विदा किया। उसका बहुत आग्रह था, कि हम लौट कर आवें। उस समय हम कह सकते थे, कि हमारे लिए स्वाभाविक था, क्योंकि हमारी यात्रा का दिशापरिवर्तन अनेक बार हो चुका था। जितना जितना आगे लढ़ते रहे और दिन बीतते गए, उतना ही हम दिन को अधिक उष्ण पाते थे। यद्यपि रात अब भी वैसी ही ठंडी थी। आठवें दिन हम एक दूसरी नदी के किनारे चल रहे थे। पहलेपहल सबेरे के वक्त उसके किनारे सफेद पुष्पमालाओं की तरह बर्फ अब भी तैरती बह रही थी। हेमन्त से पीछा छूट रहा है, यह जान कर हम दोनों को बड़ी प्रसन्नता हुई। हमारे साथी डर रहे थे। उनको गर्मियों की घटना का पता नहीं मालूम था, तुर्कों के हाथ में पड़ने पर उनके साथ क्या बर्ताव किया जायेगा। ओझा ने उन्हें बहुत सिखा-पढ़ा दिया था और अपने कबीले का नाम छिपा कर पूर्व के किसी दूसरे कबीले का नाम बतलाने को कहा था। हम उन्हें बराबर सान्त्वना दे रहे थे। हम गन्तव्य स्थान पर हफ्तों बाद पहुँचे। इससे आधे ही समय में वहाँ पहुँच सकते थे, किन्तु अपने को छिपाने के लिए हमारे साथियों ने घूम-घुमावे रास्ते पकड़े थे। सोलहवें दिन हमें हिम-विहीन जगह मिली। वहीं पहले पहल हमने ऊँट देखा। उनके बीच में सींगों की आकार में अपने को सजाये एक तरुणी दीख पड़ी। तुर्क और उनके भाई अवार तथा दूसरी जातियों का भेद करना हमारे लिए भी मुश्किल था, हमारे साथियों के लिए तो कहना ही क्या? जब नजदीक पहुँचकर शान्तिल ने तरुणी से तुर्की में बातचीत की, तो मालूम हुआ वह अवार जाति की है, यद्यपि वह अपने को अवार कहने के लिए तैयार नहीं थी। इन घुमन्तुओं में शक्ति-परिवर्तन के साथ नाम और जाति का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिवर्तन भी हो जाता है। तुर्कों के शत्रुओं का नाम बतलाना खतरे की बात भी हो सकती थी।

हमारे ऊपर से एक बहुत बड़ा बोझ उतर गया, जिस वक्त कि हम दोनों ने खुल कर तुर्की में उस तरुणी से बातचीत की। वाणी बिना सचमुच मुँह पर नहीं बल्कि बुद्धि पर ताला लग जाता है। बनेचरों में यदि साल दो-साल रहते, तो वह ताला जरूर खुल जाता। हम जिस समाज के थे, वह बनेचरों की अपेक्षा तुर्कों के नजदीक था। वैसे भी हम विचार को अभी बतलाना नहीं चाहते थे, अभी भी सर्दी थी। लेकिन धूप में गर्दन के पास लबादे के हट जाने के कारण भीतर से ताम्रवर्ण का चीवर दिखलाई पड़ रहा था। तरुणी उस ओर बड़े ध्यान से देख रही थी। हमारे चेहरे-मोहरे भी भिन्न थे, इसलिए शायद वह किसी बात का सन्देह करती हो, हमने सोचा। इसी बीच उसने एकाएक पूछ दिया—"तुम धखशी (भिक्षु) तो नहीं हो।" हमें झूठ बोलने की आवश्यकता नहीं थी। जब सिर पर से टोपी हटा कर हमने घुटे सिरों को दिखला दिया, तो उसने बड़े भक्ति भाव से अभिवादन किया और दूर बैठे लड़के को जोर से पुकार कर हमें साथ लिए अपने डेरे की ओर चली। छोटी-सी पहाड़ी को लाँघ कर हमें परिचित सफेद नम्दों के कई तम्बू दिखाई पड़े। तरुणी ने बतलाया, ये हमारे डेरे हैं। शान्तिल मेरी रुचि के अनुरूप उससे अधिक से अधिक बातें जानने की कोशिश कर रहे थे और वह भी जबान पर लगाम लगाने के लिये तैयार नहीं थी। उसने भिक्षु बहुत देखे थे, उसके सारे लोग बुद्धभक्त थे। यहाँ से दो दिन के रास्ते पर एक संघाराम के होने का भी पता लगा और यह भी मालूम हुआ, कि हमारे साथियों को अपनी चीजें जहाँ बेचनी है, वह हाट भी वहीं लगती है, वहाँ चीन के व्यापारी भी आते हैं। तरुणी ने चीनी भिक्षुओं को भी देखा था और तुर्क-अवार भिक्षुओं में से तो कुछ उसके सम्बन्धी भी थे। हमें मालूम होता था, कि मानो हम अपने देश में आ गये।

बात करते-करते पता नहीं लगा, कब हम तम्बुओं के पास पहुँच गये। जिस मुलाकात से हम दोनों के हृदय में आनन्द का सागर तरंगित हो रहा था, उसी का प्रभाव हमारे साथियों परा उलटा पड़ रहा था। उनके चेहरे पर स्पष्ट भय और शंका के चिन्ह थे, जिसको हटाने के के लिए हम बराबर कोशिश करते थे और हमारे प्रति तरुणी के व्यवहार को देखकर उन्हें कुछ-कुछ ढाढस होने लगा था। तम्बुओं से पहुँचने से पहले ही हमने अपने लबादे निकाल कर बारहसिंगों पर रख दिये थे। विशुद्ध भिक्षु वेष में हमें देखकर तम्बुओं के बाहर बैठे कितने ही स्त्री-पुरुष पहले से ही हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। तरुणी दौड़ कर आगे गई और उसने बतलाया—ये जम्बूद्वीप के भिक्षु शीत समुद्र और उत्तरके बनेचरों में से होकर आ रहे हैं। हमारे नजदीक पहुँचते ही नर नारियों ने बड़े भक्तिभाव के भूमि पर हाथ रख अभिवादन किया। बाहर आसन बिछ गया और बात की बात में चमरी का गरम दूध हमारे सामने आ मौजूद हुआ। अपने साथियों के बारे में हमने वही परिचय दिया जो कि ओझा ने बतलाया था। यबगू के साथ हुई घटना का इनको बहुत पता नहीं था, लेकिन यह जान कर हमें बड़ा संतोष हुआ, कि वह बनेचरों के हाथ में कुछ दिनों बन्दी रहकर सम्मान के साथ लौटा दिया गया और यबगू ने उन्हें माफ भी कर दिया। मैंने जब यह बात अपने साथियों से कही, तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहले तो उन्हें विश्वास नहीं हुआ, पर पीछे उन्हें भी उसी तरह आनन्द आया, जैसे कि हमको इस नई दुनिया में आने पर।

अब बर्फ कहीं-कहीं छाया की जगहों में ही रह गई थी, बाकी जगह उसका स्थान नव अंकुरित तृण ले रहे थे। भुर्ज वृक्ष के रूप में पतियाँ आने लगी थीं। अपने भिक्षुओं को घर पर आया देखकर तुर्क गृहपति हमें जल्दी छोड़ने के लिए क्यों तैयार होने लगे? उनकी चलती तो एक सप्ताह से पहले हमें छुट्टी नहीं मिलती, पर हमें अपने साथियों का भी ख्याल था, जो जितनी जल्दी हो, वहाँ से लौटने के लिए उतावले थे। जब तक वह लौट कर नहीं पहुँचते, तब हमारे कृपालु ओझा को भी भारी चिन्ता बनी रहती। उस दिन हम दोहपर से पहले ही पहुँचे थे। अगले दिन गृहपतियों के आग्रह पर हमने एक दिन और रहना स्वीकार किया, जब देखा कि हमारे साथी भी अपने और अपने पशुओं के लिए ऐसे विश्राम के इच्छुक है। शान्तिल ने उपासकों के लिए परिताण (सूत्र) पाठ किया। मैंने उन्हे तथागत के जीवन पर उपदेश दिया।

वहाँ से विदा होते समय तरुणी का पति और उसका चाचा हमारे साथ चले। उनका भी हाट के स्थान पर काम था, दो दिन बाद जाने के जगह उन्होंने हमारी सेवा करने के अवसर से लाभ उठाना चाहा। हमारे लिए भी यह अच्छा था। पलक मारते-मारते प्रकृति जाग उठी थी, कलियाँ फूट कर नरम किसलय बन गई, जो सफेद भुर्ज वृक्ष पर बड़ी सुन्दर मालूम होती थीं। चारों तरफ मूल प्रकृति के ही विविध रंगों में देखने का सौभाग्य आँखवालों को ही नहीं प्राप्त था, बल्कि अन्धे भी नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव को सुनकर समझ सकते थे, कि बसन्त आ गया है। इस मनोरम दृश्य के भीतर से होते दो दिन बाद हम एक नदी (तोला) के दाहिने तट पर अवस्थित उस जगह पर पहुँच गये, जहाँ हमें जाना था।

नदी के तट की समतल भूमि पर सैकड़ों तम्बू पड़े हुये थे, हमारे रहते-रहते जिनकी संख्या पाँचगुनी हो गयी।

हम समझते थे, उत्तर से आनेवालों में हम ही पहले हैं, लेकिन वहाँ अपने बारहसिंगों के साथ बहुत से चमड़े के तम्बू वाले आ चुके थे। वह हमारे साथियों के कबीले के नहीं, बल्कि उस कबीले के थे, जिसका नाम ये अपने लिए बदलना चाहते थे, और जिसकी अब जरूरत नहीं थी। अपने आदमियों को देखकर उनको मन में खुशी होनी स्वाभाविक थी, और यह सुन कर और भी वह संतुष्ट हुये कि यबगू के ऊपर आक्रमण के कारण हमें आफत में नहीं पड़ना होगा। उन्हें बनेचरों के पास छोड़ कर हम अपने दोनों उपासकों के साथ संघाराम में गये।

संघाराम मिट्टी की दीवारों का बना था, जिसमें लकड़ी का बहुतायत से उपयोग किया गया था। कारुकार्य और चित्र से अलंकृत वह बहुत सुन्दर मालूम होता था। जाड़ों में यहाँ भिक्षु आ रहते। बाकी समय वह अपने उपासक घुमन्तुओं के पास जहाँ-तहाँ चले जाते। हमारे पहुँचने के समय वहाँ भिक्षुओं की संख्या पन्द्रह थी। संघाराम के अतिरिक्त दो एक ओर छोटे-छोटे मकान थे। दरवाजा ठीक उसी तरह का था, जैसा जम्बूद्वीप के विहारों का बीच में आँगन एक तरफ फाटक, सामने की ओर चारों तरफ भिक्षुओं के रहने के लिए कोठरियाँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थीं, जिनकी ही पाँती में दरवाजे से सामने की ओर प्रतिमागृह और आँगन में छोटा-सा स्तूप था। सभी चीजें छोटी लेकिन बहुत सुन्दर थीं। दरवाजे से भीतर घुसते ही एक प्रसन्नमुख भिक्षु हमारी तरफ आये। किस भाषा में बोलें, यह सोचते कुछ ठमक कर उन्होंने तुर्की भाषा में पहले हमारा वर्ष पूछा। जब मैंने 19 वर्ष कहा, तो तुरन्त उकुड़ूँ बैठ कर उन्होंने मेरा अभिवादन करते हुए अपना 15 वर्ष बतला कर शान्तिल के अभिवादन को भी स्वीकार किया। भिक्षुओं में उपसम्पदा (भिक्षुव्रत)-ग्रहण करने के समय से वर्ष गिना जाता है, और उसी के अनुसार बड़ा-छोटा मान कर अभिवादन किया जाता है। भिक्षु ने अपने को चीनी भिक्षु बतला कर हमारे बारे में पूछा। मैंने अपने को जम्बूद्वीप का और शान्तिल को कुमारजीव की जन्मभूमि (कूची) का बतलाया। चीन में यद्यपि हमारे देश के भिक्षु दुर्लभ नहीं हैं, लेकिन इस भूमि में तो शायद हमीं अपने देश के पहले भिक्षु थे। संघाराम के स्थविर (महन्त) भी मुझसे कम वर्ष के थे, इसलिए मैं वहाँ का सर्वज्येष्ठ भिक्षु या स्थविर था, और उस पर बुद्ध की जन्मभूमि का, फिर मेरी आवभगत में यदि सारा संघाराम उठ खड़ा हुआ, तो यह स्वाभाविक था। हमें सबसे अच्छी कोठरियों में ठहराया गया। संध्या का समय था विकाल भोजन हम नहीं कर सकते थे, इसलिए मधु का रस दिया गया। यदि हम दक्षिण की ओर से आते, तो भी बहुत सी बातें पूछने को थीं, लेकिन जम्बूद्वीप से चल कर हम उत्तर के घुमन्तुओं के भीतर से आ रहे थे, इसलिए जिज्ञासा के लिये बहुत सी बातें थीं। भाषा न जानने के कारण संघाराम के भिक्षु यह नहीं जानते, कि हर साल सैकड़ों की संख्या में शीतसमुद्र तटवासी लोग यहाँ अपनी चीजों के बेचने के लिए आया करते हैं। वह इतना ही जानते थे, कि यह उत्तर के बनेचर हैं, चार दिन के रास्ते के या चार महीने के, इसका उन्हें कोई पता नहीं।

महाचीनों की ओर

(557 ई०)

यदि आदमी बहुत घूमा हुआ न हो—बहुत घूमने वाले भी हर जगह तो नहीं पहुँच सकता—तो चार ही कदम आगे की दुनियाँ बिल्कुल अन्धकार पूर्ण मालूम होती है। जैसे-जैसे आदमी की आँखें या प्रत्यक्षदर्शी से सुनने वाले कान अपने गोचर क्षेत्र को बढ़ाते जाते हैं, वैसे ही अन्धकार हटता जाता है। पृथ्वी के जिन भागों में मैं घूमा उनके बारे में मैं अन्धकार में नहीं था, लेकिन शीतसमुद्र से इस हरी-भरी भूमि और उसके पहाड़ों के बीच बहती सुन्दर नदी के किनारे जिस प्रथम संघाराम में मैं पहुँचा था, वहाँ से आगे अन्धकार ही मालूम होता, यदि मेरी मुलाकात वहाँ पर चीन भिक्षु बोधिसंघ (बोसंग) से न हुई होती। उन्होंने बतलाया कि यद्यपि रास्ता बीहड़ है, डेढ़ सौ योजन से ऊपर वह ऐसी मरुभूमि से जाता है, जैसी शायद दुनिया में कहीं न होंगी, पर रास्ता साधारण नहीं, बल्कि वणिक-पथ है, जिस पर ऋतु के समय सार्थ बराबर चलते रहते हैं। उन्होंने यह भी बतलाया, कि चीन में आजकल तथागत के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शासन का सम्मान है। वहाँ पर बहुत से भारतीय भिक्षु भी रहते हैं। चीन महान देश है। वहाँ के लोग विद्या और कला में बड़े निपुण हैं, यह मुझे पहले ही से मालूम था। जब यह मालूम हुआ कि अगर जल्दी यात्रा की जाए, तो एक महीने के भीतर ही चीन में पहुँचा जा सकता है, तो मुझे बड़ा संतोष हुआ। अभी तक मैं यही आशा रखता था, कि बनचरों की भूमि से निकलकर त्योर्क-अवार लोगों में ही रहना होगा। हम दोनों बल्कि इसके लिए कुछ तैयारी करने लगे थे, 'अभिधर्मकोश' के और भी कितने ही शब्दों के तुर्की पर्याय बना रहे थे, लेकिन वोसंग के मिलने के बाद आगे जाने का ही निश्चय किया।

संघाराम के स्थविर और भिक्षु ऐसे ही छोड़ने वाले नहीं थे। स्नेह का बन्धन सबसे दृढ़ होता है। वह हमारी सब तरह से खातिर कर रहे थे। यद्यपि स्थानीय भिक्षुओं में सभी पढ़ने के इच्छुक नहीं थे, लेकिन कुछ को अवश्य उसकी इच्छा थी। हमने भी जल्दी करनी नहीं चाही। वर्षावास भी जल्दी ही शुरू होने वाला था, और तीन महीने बाद ही सार्थों का आना-जाना होता इसलिए शरद में ही हमने जाने का निश्चय किया। इन तीन महीनों में हमसे जो भी हो सका, वहाँ के भिक्षुओं को सिखलाया। तुर्क-भाषा में धर्मग्रन्थ अभी बहुत कम थे। शान्तिल के साथ मिल कर मैंने "आभिधर्मकोश" और एकाध सूत्रों का अनुवाद किया। भिक्षुओं में जो कुछ पढ़े हुए थे, उनके पढ़ाने की भी काम किया। "प्रातिमोक्षसूत्र" (भिक्षु-भिक्षुणियों के नियम) मुझे कण्ठस्थ थे, पहले का तुर्की अनुवाद शुद्ध नहीं था, उसका हमने संशोधन कर दिया।

मालूम हुआ, कि यह नदी (तोला) उसी (महानदी सेलिंगा) की एक शाखा(ओंखोंन्) में जाकर मिलती है, अर्थात् वर्षा में जो पानी यहाँ बरस रहा था. उसका कितना ही भाग शीतसमुद्र में जाता है। इसका मतलब था, कि यह स्थान शीतसमुद्र से (सामान्य समुद्रतल से 4000 फुट से अधिक) ऊँचा था। दक्षिण में होने से ही शायद यहाँ उतनी सर्दी नहीं थी। पहाड़ तो इस भूमि में सभी जगह छोटे-छोटे होते हैं। शीतसमुद्र के पास के पहाड़ देवदार, भूर्ज आदि वृक्षों के घने जंगलों से ढँके हैं, यहाँ वह वृक्ष, पहाड़ी जड़ में नदी के पास दिखाई पड़ते थे। ऊपरी भागों में लम्बी घासें उगी हुई थीं। इन घासों को खाकर यहाँ के पशु अधिक मोटे-ताजे होते हैं। हमने और जगहों पर भी बड़े-बड़े कौवे देखे थे, लेकिन यहाँ के जितने बड़े नहीं। उत्तर के बनेचर कुत्तों से अधिक काम लेते हैं, और उनके कुत्ते भी बड़े-बड़े होते हैं, लेकिन यहाँ के कुत्तों के बराबर वह भी नहीं होते। दूध, मांस और बोझा ढोने के लिए यहाँ चमरी और ऊँट दोनों का बहुत उपयोग होता है। जानवर अधिकतर वही हैं, जिन्हें कि हम यवगू के साथ रहते देखा करते थे। लोगों की रहन-सहन और पोशाक भी वैसी ही थी। आखिर ये भी तुर्क जाति के ही थे। इन घुमन्तुओं की एक विचित्र बात यह है कि भाषा, देश और काल में थोड़ा भेद रखते लोग वही रहते हैं, किन्तु जब कोई बड़ा कबीला या पुरुष पैदा होकर इनका नेतृत्व करता है, तो झट से ये उनके नाम पर अपना नाम बदल देते हैं। दस ही वर्ष पहले यह लोग अपने को अवार कहते थे, लेकिन अब सभी तुर्क हैं।

वर्षा शुरू हो गई। यहाँ की वर्षा का मतलब हमारे उद्यान की भी वर्षा नहीं। मगध या कोशल की वर्षा की बात ही क्या? लेकिन, वह कांस्यदेश की जितनी कम नहीं थी। कभी-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कभी तो बिजली की चमक-कड़क और जोर की वर्षा देख कर भारत याद आता था। पर ऐसी वर्षा दो-तीन बार से अधिक नहीं हुई। ऐसी वर्षा न होती, तो यहाँ की भूमि उतनी हरी-भरी कैसे दीखती? वर्षा के समय यह शाखा नदी भी विशाल बन जाती, उसका पानी फैल कर किनारे के वृक्षों की जड़ों तक पहुँच जाता, और उनमें से कितने ही उखड़ कर शीतसमुद्र (बैकाल) का रास्ता लेते हैं। वर्षा के साथ-साथ हरियाली का और बढ़ जाना, दृश्यों का और मनोरम हो जाना स्वाभाविक है।

हमें रोज, प्रातः और सायं या तो भिक्षुओं को पढ़ाना पड़ता, या उनकी जिज्ञासाओं की पूर्ति के लिए संवाद करना पड़ता। कितनी ही बार हमें मध्यदेश के वर्षाकाल का वर्णन करना पड़ा। यहाँ के लोग स्वयं हरे-भरे इलाके में रहने के कारण विश्वास कर सकते थे, कि जम्बूद्वीप (भारत) बड़ा हरा-भरा देश है। उसके प्रति अपनी पूज्य बुद्धि के कारण वह यह भी विश्वास कर सकते थे, कि वह हूणों की इस प्राचीन भूमि से बहुत अधिक सुन्दर है। मैं भी केवल गुण ही गुण का वर्णन नहीं करता था। मैंने वहाँ की असह्य गर्मी और लू की भी बात बतलाई, साँपों के बारे में जब कहा, तो मेरे श्रोताओं में से कितनों हल्का भारत की यात्रा के लिए उत्साह मन्द हो गया। गरम देशों में दूसरे प्राणियों की तरह साँप-बिच्छू भी अधिक होते हैं, जो यहाँ वालों के लिए सबसे डर की चीज हैं। भारत के जंगलों में हाथी, सिंह, व्याघ्र, गैंडें, जंगली भैंसें रहते हैं, यह बतलाना तो आसान था, लेकिन इनमें से एकाध के ही चित्र को हमारे भिक्षु देखे हुये थे। यदि बुद्धिल होते, तो तुरन्त चित्र खींच कर बतला देते। मुझे इसका अफसोस था, कि मैं चित्र विद्या को नहीं जानता।

संघाराम के स्थविर की उमर 40 वर्ष से अधिक थी, और वह अवार कुल के थे। उन्होंने कांस्यदेश में कुछ साल बिताये थे, कूची भाषा भी कुछ जानते थे और संस्कृत को भी वहीं थोड़ा सा पढ़ा था। वह कोशिश करते थे, कि यहाँ भी भिक्षु वही रीति-रवाज बरतें। इस काम में मैंने भी उनकी सहायता की। मैं तरुणाई के स्वप्न—महाचीन यात्रा—को पूरा करना चाहता था, लेकिन जैसा कि बतलाया, यहाँ के भिक्षु मुझे अपने बाहुपाश में जोर से साथ बाँधे हुए थे। इसका एक ही रास्ता था, कि हम दोनों में से एक यहाँ रह जाये। शान्तिन के लिए मुझे छोड़ना आसान नहीं था, लेकिन उन्होंने भी परिस्थिति को देखा, और मैंने भी कहा—जब महाचीन यहाँ से एक महीने का ही रास्ता है, और हर साल बहुत से सार्थ यहाँ आते-जाते रहते हैं, तो तुम्हारा वहाँ आना मुश्किल नहीं है। वह राजी हो गये। उन्होंने मेरे साथ रहते यद्यपि अपना समय बराबर यात्राओं में ही बिताया था, लेकिन अपने पढ़ने में व्यवधान नहीं होने दिया था। तीन वर्ष से अधिक वह मेरे साथ रहे, बुद्धि भी अच्छी और परिश्रमी भी थे, इसलिए संस्कृत भाषा तथा "अभिधर्मकोश", "न्यायमुख", "प्रमाण-समुच्चय" जैसे कितने ही ग्रन्थों को अच्छी तरह पढ़ चुके थे। हमारे पास ग्रन्थों की कमी थी, लेकिन कितने ही मुझे कंठस्थ थे, जिन्हें मैंने उनके लिए भुर्जपत्र पर लिख दिया, कितनों ही के भावों को समझाया। कंठस्थ करने में वह भी पीछे नहीं थे।

× × ×

महाप्रावारणा (आश्विन पूर्णिमा) का पर्व आया। हजारों त्योर्क उपासक और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपासिकायें उस दिन संघाराम के चारों तरफ डेरा डाले पड़े थे। हमने अनेक देशों में इस महोत्सव को देखा था। घुमन्तु लोगों में भी उसके प्रति कम उत्साह नहीं था। साधारण लोग ही नहीं, वल्कि कई तुर्क वेग और राजकुमार भी यहाँ आये थे। यदि सबके पशु साथ में आ जाते, तो बड़ी मुश्किल होती, लेकिन उन्हें एक सप्ताह से अधिक यहाँ रहना नहीं था और केवल सवारी और वोझे के अत्यावश्यक पशुओं को ही लेकर आये थे। इनमें एक कूची दम्पती को देखकर हमें और भी प्रसन्नता हुयी। भूरे वाल, नीली आँखें अत्यन्त गौरवर्ण और अपनी पोशाक इतने दिनों वाद देखकर शान्तिल को बहुत खुशी हुई। पुरुष ने शरीर से सटा, गर्दन खुला घुटनों तक का कंचुक पहन रखा था। अपने जातीय आभूषण धारण किये थे। तुर्क वेगों में एक बूढ़ा था। उसकी ठुड्डी के नीचे जरा सी दाढ़ी और उसी तरह कुछ गिनने लायक मूँछ के वाल थे, लेकिन उन्हें उसने बड़ी सावधानी से पाल-पोस रक्खा था। आँखें नीचे से ऊपर को तनी हुई, भौहें भी उसी तरह आधे आसमान की ओर जातीं, केश बट कर पीठ के ऊपर पड़े और सिर पर विचित्र प्रकार की टोपी थी। नीचे मृगचर्म और ऊपर से लाल चीनांशुक का चोंगा उसके कन्धे से ऐड़ी तक पड़ा हुआ था। कमर में एक रस्सी वँधी थी, जो चोंगे को बाँधने के लिए नहीं बल्कि लंबे सीधे खडग को लटकाने के लिए मालूम होती थी। बाहें इतनी बड़ी थीं, कि जिनके भीतर हथेलियाँ छिप जाती थीं। सम्मान प्रदर्शित करने के लिए भिक्षुसंघ के सामने खड़ा होते समय उसने अपनी दोनों हथेलियों को एक दूसरी बांह के भीतर डाल लिया था। बुढ़ापे में इतना तगड़ा पुरुष था, तो जवानी में और भी शक्तिशाली रहा होगा, इसमें सन्देह नहीं।

महोत्सव समाप्त हुआ। नवपरिचित मित्रों से ही नहीं, अपने अत्यन्त आत्मीय शान्तिल से विदाई लेनी थी। सचमुच ही इस दिन के लिये हम तैयार नहीं थे। शान्तिल और मुझे दोनों के लिए आँसू रोकना मुश्किल हो गया, लेकिन हमने वह काम एकान्त में पहले ही कर लिया था।

× × ×

त्योर्क सार्थ भी महाचीन को जा रहे थे। वह बड़ी प्रसन्नतापूर्वक हमें साथ ले जाने को तैयार हो सकते थे, किन्तु जिस देश में जाना था, वहाँ के लोगों के साथ चलने में बहुत-सी बातों की जानकारी हो सकती थी। हमारे नये साथी वो-संग की भी यही राय थी। उन्होंने एक चीनी सार्थवाह से वातचीत करके सब बात तै कर ली। वनचरों, भूमि, महार्घ मृगचर्म (समूर) की महाचीन के सामन्तों और राजपरिवों में बड़ी माँग है, उनमें से कुछ सचमुच सोने से भी महँगे हैं। यह सार्थवाह राजधानी येह्का रहने वाला था और यहाँ आये चीनी सार्थवाहों में सबसे बड़ा था। वह बुद्धभक्त भी था, इसलिए उसके साथ हमें हर तरह का सुभीता था।

एक दिन मध्याह्न में भोजन के बाद हमने संघाराम से प्रस्थान किया। कहीं घास से ढकी पहाड़ी को लांघना पड़ा और कहीं जंगल को। एक ही दो दिन बाद जंगल खतम हो गये, लेकिन घासों के मैदान और पहाड़ियाँ कितनी ही दूर तक मिलती रहीं। आगे एक अपेक्षाकृत अधिक ऊँचे पहाड़ (वोग्दाउला) को पार करना पड़ा। फिर सामने अनन्त दूर तक फैली

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महामरुभूमि (गोबी) थी। संघाराम से हम दो सौ कोस चले आये थे, लेकिन अभी इससे चौगुनी पथ मरुभूमि में के भीतर से पार करना था। यह भूमि समतल नहीं थी। कहीं-कहीं दाहिने-बायें छोटी-छोटी बिलकुल नंगी पहाड़ियाँ देखने में आतीं, जो पहाड़ियों के अपेक्षा टीले-सी मालूम होतीं। कहीं-कहीं कुछ निम्न भूमि थी। लोगों ने बतलाया, बहुत वर्षा होने पर यह सरोवर बन जाती है, पर वह कुछ ही दिनों में लुप्त भी हो जाता है। इस समय उस नीची भूमि में कुछ अधिक घास उगी दिखाई पड़ी। मरुभूमि की सबसे बड़ी समस्या पानी है। यदि उसका नितान्त अभाव होता, तो इसमें शक नहीं, यहाँ सार्थों का पथ नहीं हो सकता था। मंजिलें भी यहाँ पानी की दूरी के अनुसार थीं। सार्थ अगले कूओं के पास जाकर पड़ाव डालता था। शरद का समय न गर्मी का होता है न बहुत सर्दी का। वैसे यहाँ के लोग यात्रा करने में सर्दी की भी कोई पर्वाह नहीं करते। तुर्क लोग अपने घोड़ों और भेड़ों को बेंचने के लिए उस समय भी जाते हैं, यद्यपि कम संख्या में, क्योंकि उस समय रास्ते में घास-चारे की दिक्कत होती है। हमारी यात्रा दोपहर बाद शुरू होती, इसमें मेरे भोजन का ख्याल विशेष कारण नहीं था, बल्कि यही सार्थों को अनुकूल पड़ती थी। मध्यान्ह के घड़ी दो घड़ी बाद से मध्यरात्रि तक हम चलते रहते। सार्थवाह सवारी के लिए घोड़ा देने को तैयार था, लेकिन मैंने परवश हो आपत्काल में ही भिक्षु नियम को तोड़कर घोड़े की सवारी की थी, अब उसकी आवश्यकता नहीं थी। वो-संग के साथ मैं पैदल ही चलता। कभी पड़ाव दूर होता तो मध्यरात्रि के बाद भी कुछ समय तक हम चलते रहते, लेकिन ऐसा कम ही होता। 15 कोस से (3 योजन, 15 मील) से अधिक हमें शायद ही कभी चलना पड़ा।

हम महामरुभूमि के भीतर जितना ही घुसते जा रहे थे, उतना ही हरियाली तृण-वनस्पति का अभाव होता जा रहा था। बालू का रंग पीला था। तृण जो कहीं-कहीं दिखाई पड़ते थे, वह भी बालू के रंग के थे। वर्षा का पानी जिन जगहों पर पहले जमा हो गया था, वहाँ कुछ फूल भी दिखाई पड़ते, लेकिन उसके लिए वर्षा में आना चाहिए। टेकरी पर देवता का चिन्ह जरूर बना रहता। हमारे सार्थवाह के परिचारकों में अधिक घुमन्तू थे। वह ऐसे स्थान पर अपनी श्रद्धा दिखलाये बिना नहीं रहते। लकड़ी यहाँ बहुत ही दुर्लभ चीज है, लेकिन देवता को प्रसन्न करने के लिए वह बड़ी मेहनत से उसे लाकर यहाँ खड़ी की गई थी। हजारों वर्षों से जहाँ लोग इसी तरह यात्रा करते हों, वहाँ देवता के स्थान पर यदि भुर्ज के सैकड़ों लम्बे लट्ठे जमा हो गये हों, तो कोई अचम्भे की बात नहीं। पत्थरों, जानवरों की हड्डियों, खोपड़ियों, सींगों के साथ इकट्ठा हो लकड़ियाँ, देव स्थान का रूप लेती थीं।

यह मरुभूमि बिलकुल ही निर्जन नहीं थी, किन्हीं-किन्हीं पड़ावों के पास नम्दे के सफेद तम्बू दिखाई पड़ते, जिनके आस-पास पशु चरते मिलते। समतल वालुका भूमि में कहीं-कहीं सूखी नदियाँ और नालों की टेढ़ी-मेढ़ी रेखायें खिंची हुई थीं। इसमें संदेह है कि इनमें कभी वेग से पानी बहा हो। मरुभूमि में वर्षा व्यर्थ है, शायद इसीलिए वह यहाँ नाम मात्र को होती है। अथवा यह कह सकते हैं, कि वर्षा के अभाव के कारण ही यह भूमि मरु रूप में परिणत हो गई। कभी यहाँ बहुत वर्षा होती रही होगी, तब यहाँ भी घास के मैदान और वृक्षों के जंगल रहे होंगे। दूर क्षितिज के पास जो टेकरियों की पांती चली गई थी, क्या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कभी शीतसमुद्र के पहाड़ों जैसी जंगलों से ढँकी रही होगी ? दूर तक दृष्टि का अवरोध होने से हम कहीं-कहीं तम्बुओं के गाँव देख रहे थे।

जब हमारा सार्थ पड़ाव पर पहुँचता, तो बोझा ढोने वाले सैंकड़ों ऊँट खड़े हो जाते। के बोझों को चुनकर दीवार बना दी जाती और फिर ऊँट चरने के लिए छोड़ दिये जाते। की जरूरत फिर अगले दिन चलने ही के समय होती। कहीं-कहीं हमारे पड़ाव ऐसी जगह जहाँ फरास (सकसौल) के वृक्ष विरल होने पर भी दूर से जंगल से मालूम होते। ऊँटों तरह ही यह वृक्ष मरुभूमि का प्रेमी है। ऊँट भारत जैसे गरम देश और वहाँ की मरुभूमि रहते हैं। हूण देश की इस ठंडी मरुभूमि (गोबी) में उनकी अनिवार्य आवश्यकता है। क्या के साथ फरास यहाँ चले आये या फरास के कारण ऊँट। अथवा स्थावर जंगम का भेद पर भी दोनों की प्रकृत एक-सी है। पड़ावों पर यदि आस-पास घुमन्तुओं के डेरे होते, वह दूध, मांस, ईंधन बेंचने के लिए आते। मनुष्य को आग की बड़ी आवश्यकता है। र के वनचरों को हमने बिना नमक के कच्चे मांस खाते देखा था। नमक के बिना जैसे रह सकते हैं, वैसे ही आग के बिना भी उनके भोजन में कोई व्यतिक्रम नहीं हो सकता। तुर्क घुमन्तू वैसा नहीं कर सकते। ईंधन के लिए लकड़ी इस भूमि में बहुत दुर्लभ है। तु पालतू और बेपालतू प्राणियों के सूखे कंडे यहाँ जहाँ-तहाँ बिखरे होते हैं। मैंने अपनी त्रा में कई बार स्त्रियों और बच्चों की पाँच-छह की टोलियाँ कन्डे जमा करती देखीं। चमड़े रस्सों से बाँधकर बनी पिंजड़े जैसी सरकन्डे की टोकरियाँ उनकी पीठ पर थी और हाथ में लगे हुये लकड़ी के पंजे, जिनसे बिना झुके वह कन्डों को उठाकर ऐसे सीधे हाथ से पीठ ओर फेंकतीं, कि वह जाकर टोकरी में गिरते। यहाँ की स्त्रियों को अपने बालों को सींग रूप में सँवारने का बड़ा शौक है। दूर से इनकी यह केश-सज्जा भारतवर्ष की भैंस की गों जैसी मालूम होती हैं। शायद किसी वन्य जन्तु की सींग इसी तरह हों, हिमालय के र आकर मैंने भैंस कहीं नहीं देखी। मैं और बो-संग यह समझ नहीं पा रहे थे, कि पशु के ग की नकल केश-सज्जा में करने की क्या आवश्यकता ? इससे सौन्दर्य की कोई वृद्धि तो हीं देखी जाती ? शरीर को स्वच्छ रखना दूसरी चीज है, उससे शोभा भी बढ़ती है। दूसरी रह के जितने सजाने-सँवारने के प्रयत्न हैं, सभी अस्वाभाविक और कितनी ही बार बच्चों ते हैं। शायद मनुष्य का शैशव-बुढ़ापे तक उसका पीछा नहीं छोड़ता।

हम मरुभूमि में चल रहे थे। मनुष्यों को भूमि से अधिक अपने समाज का मान होता है। वर्षों बाद अब हम ऐसे समाज में थे, जो हमें अपना जैसा मालूम होता था। संघाराम में पहुँच कर हमने दुर्लभ अन्न के तौर पर चावल और रोटी खाई थी। घुमन्तुओं के देश में खेती नहीं होती और दूर से लाने पर अन्न बहुत महँगा पड़ता है, साथ ही वहाँ के लोगों को ऐसे भोजन की चाह नहीं होती। वर्षों से मैं केवल मांस पर गुजारा करता चला आया था। चीनी सार्थवाह के साथ होते ही मालूम हुआ कि चीन के भिक्षु मांस नहीं खाते, महायान् मांस-भक्षण को वर्जित करता है। सार्थवाह ने पहले ही दिन बहुत अच्छे चावल, सूखी सब्जियों और रोटी का स्वादिष्ट भोजन तैयार करके हमारे सामने रक्खा। बोसंग से जब सारी बात मालूम हो गयी, तो मैंने उसी दिन निश्चय किया कि अब मांस नहीं खाऊँगा। मैं भी महायान का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुयायी था। बोधिसत्त्व का पथ सुगम नहीं है। मांस बिना हिंसा के प्राप्त नहीं होती इसलिए उसका भक्षण निष्पाप नहीं हो सकता।

चीन में जाकर जो काम मुझे करना था, उसके लिए वहाँ की भाषा का परिज्ञान आवश्यक था। बो-संग इसके लिए मेरी सहायता उसी समय से करने लगे, जबकि मेरी उनसे मुलाकात हुई। व्याकरण भाषा को कठिन बनाता है और चीनी भाषा का व्याकरण संस्कृत भाषा के व्याकरण के बीसवें हिस्से का एक हिस्सा भी नहीं है। न क्रिया पद में प्रथम, मध्यम, उत्तम पुरुष का भेद है और न एकवचन, द्विवचन, बहुवचन का और न ही काल के उतने झगड़े हैं। संस्कृत में एक धातु के हजारों रूपों की आवश्यकता होती है। पर, चीनी में वह एक धातु से ही चल जाता है। इसी तरह नाम में भी अनेक विभक्तियों और वचनों की आवश्यकता नहीं। मुझे कुछ ही समय में मालूम हो गया, कि भाषा सीखना मेरे लिए कठिन नहीं होगा। बो-संग ने लिपि शुरू कराई तो मैंने देखा, कि वहाँ उच्चारण की कोई आवश्यकता ही नहीं, न स्वर-व्यंजन जैसे वर्ण हैं। हमारे अंकों की तरह चीनी लिपि केवल अर्थों का संकेत है। इसका मतलब हुआ, कि जितनी वस्तुयें या जितने शब्द हैं, उतने अक्षर सीखने होंगे। मैंने हिम्मत तो नहीं हारी, लेकिन बात कठिन जरूर मालूम हुई और भाषा सीखने पर ही मैंने अधिक ध्यान दिया। अपनी यात्रा में सार्थवाह उपासक से मामूली बातचीत मैं चीनी में कर सकता था। बो-संग ने मुझे लिपि सीखने से उदासीन होते देखकर कहा—महाचीन महादेश है, वहाँ भिन्न-भिन्न प्रदेशों की भाषाओं में इतना अन्तर है, कि आदमी एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ नहीं पाते। यह लिपि ही है, जो सब जगह एक तरह समझी जाती है। इससे पता लग गया, कि लिपि की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

आधी रात को पड़ाव पर पहुँचने के समय अकसर हम थक जाते। उस समय हमें खाने की भी आवश्यकता नहीं थी। उपासक मधुरस या द्राक्षारस पीने के लिए बड़ा आग्रह करता, लेकिन हम उसे कभी ही कभी पीते। उस वक्त तो सबसे प्रिय वस्तु नींद होती। हम बिस्तर पर पड़ते ही सो जाते; पर, सूर्योदय के साथ हम उठ बैठते थे। जिस वक्त मुँह-हाथ धोकर अपनी पाठ-पूजा से निवृत्त होते, उसी समय हमारे लिए काफी प्रातराश तैयार मिलता। उपासक सार्थवाह सूर्योदय के बाद कितने ही समय तक सोया रहता,...मध्याह्न भोजन के पहले वह भी तैयार हो जाता। उसे काम की करने की जरूरत नहीं थी, दास और भृत्य सब काम देखते थे, केवल भोजन और प्रस्थान के समय ही उसे हिलने-डोलने की आवश्यकता थी। कभी-कभी वह इसी समय हमसे धर्म-चर्चा करता, जिसमें बो-संग दुभाषिया होते।

मोयू खान का शासन यहाँ भी था। यहाँ से कितनी ही दूर पूर्व तक सारे घुमन्तू उसे अपना खान मानते थे। अवारों के अन्तिम काल में सभी मुमूर्षु-राजवंशों की तरह यहाँ भी राज-व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई थी। उस समय यह महावणिक्-पथ क्षेमयुक्त नहीं था, सार्थों को अपनी रक्षा का प्रबन्ध स्वयं करते हुए बड़ी संख्या में चलना होता, तब भी घुमन्तू लूटेरों का कभी-कभी शिकार होना पड़ता। सार्थों को लूटना घुमन्तू अधर्म नहीं समझते। इन्हीं छोटी-बड़ी लूटों में से तो उनके सरदार और खान निकलते हैं। मोयू खान के बगूह मार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

…लु गृहपति इस भूमि का भी शासक था, लेकिन मुझे विश्वास नहीं है कि वह कभी इस …फ आया होगा।

हर रोज हम दोनों साथ-साथ पैदल चलते थे। मरुभूमि में रास्ता भूलने का हर …ह डर रहता है, क्योंकि मनुष्यों और पशुओं के पद-चिन्ह ही तो मार्ग को बतलाते हैं, जो …देर तक ठहर नहीं सकते; जरा-सा हवा का झोंका आया कि वह मिट जाते हैं। हमारे …न्तू साथियों की तरह कितनों का विश्वास है कि जहाँ-तहाँ खड़े बालू के टीलों को मरु-…मि के भूत इसीलिये बनाते रहते हैं कि यात्री पथ भूल जायें और उन्हें आहार मिले। …च्छापूर्वक हम दोनों अकेले रास्ते पर नहीं चल सकते थे। हम सार्थवाह के सबसे आगे …चलने वाले परिचारकों के साथ हो लेते। सुस्ताने के लिए जहाँ वह खड़े होते, वहाँ हम खड़े …ते। जहाँ वह बैठते, वहाँ हम भी बैठते। बाकी हमारा सारा समय बातचीत में जाता। अहो-…त्री का आधा भाग मानों हमें बातचीत करने के लिए ही मिला था। अपनी भाषा-सम्पत्ति …बढ़ाने का इससे अच्छा सुयोग नहीं मिल सकता था। उस समय कितनी ही बार मैं बुद्धिल …बात करता, बुद्धिल का मुख मेरी आँखों के सामने घूम जाता। किसी समय हम दोनों ने …क साथ महाचीन आने का संकल्प किया था। वह इस काम को नहीं कर सके। मुझे यह …सन्नता थी कि अपने मित्र के संकल्प को मैं पूरा करने जा रहा था। लेकिन कितना अच्छा …ता, यदि वह भी आज होते। चीन में बहुत से भारतीय विद्वान् भिक्षु आये उनमें कितने …योग्य विद्वान् रहे होंगे, लेकिन बुद्धिल तो तरुणाई में ही भारती के श्रेष्ठ विद्वानों में हो …ए थे। वैसे विद्वान् का चीन में आना कितना सुन्दर होता? हम दोनों मिलकर कितना …धिक काम कर सकते थे? इस समय महाचीन में धर्मग्रन्थों के अनुवाद का बड़े जोर-शोर से …काम हो रहा था, उसमें वह कितनी सहायता करते?

मुझे विश्वास हो चला था, शायद चीनी लिपि पर मैं उतना अधिकार प्राप्त कर …रूँगा। पीछे मैंने कुमारजीव के अनुवादों को स्वयं देखा और उनकी प्रशंसा चीनी भाषा के …हान् विद्वानों से सुना। कुमारजीव का चीनी भाषा और लिपि पर उतना ही अधिकार था, …तना अपनी मातृभाषा कुची और धर्मभाषा संस्कृत पर। यदि बुद्धिल यहाँ आये होते, तो …ह दूसरे कुमार जीव सिद्ध होते, इसमें सन्देह नहीं। इस विशाल काम को अपने सामने देख-…र मेरे हृदय में कभी-कभी हूक-सी उठती, और बुद्धिल का अभाव बहुत खटकता। संघिल के …छोह के दिन से आज तक मैं एक तरह बुद्धिल को भूल गया था। बिलकुल भूलना तो सम्भव …हीं था। अब वह रोज-रोज मुझे याद आते।

मरुभूमि में हम कहीं भी विश्राम करने के लिए अधिक नहीं ठहरे। कोई दुर्घटना भी नहीं …टी। यदि कोई पशु बीमार हो जाता, तो उसके लिए सार्थ नहीं रुक सकता था। अतिरिक्त …शु पास रहते थे और बीमार या बेकार पशु को वहीं पड़ाव पर छोड़ दिया जाता। सार्थवाह …प्राणि-हत्या देख नहीं सकता था; और मांस के लिए उसे मरवाना पसन्द नहीं करता था। …र छोड़े हुए पशु को कोई न कोई मार कर खाता तो जरूर होगा, यदि उसे किसी ने काम के …लिए नहीं रख लिया। अनुचरों में भी किसी के बीमार होने पर उसके लिए सारा सार्थ रुक …हीं सकता था। स्वयं सार्थवाह भी यदि बीमार पड़ता, तो शायद ही एक दिन से अधिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सार्थ रुकता। उसे या तो डोली पर बैठा कर आगे ले चलते या एक-दो अनुचरों को अपने पास रखकर वह किसी पड़ाव पर ठहर जाता और अपने सार्थ को आगे जाने का हुकुम देता। हम दोनों में किसी की ऐसी अवस्था होने पर यह निश्चय ही था कि हम एक दूसरे को छोड़ कर नहीं जाते और किसी पड़ाव पर रुकने से हमारी क्या हालत होती, यह कहना मुश्किल है। सार्थवाह कुछ प्रवन्ध जरूर करता। मरुभूमि की यात्रा का यह भी एक रूप है। पर हम निरापद चीन की सीमा की ओर बढ़ते गये। पास पहुँचते मरुभूमि के रूप में वहुत परिवर्तन नहीं देखते, किन्तु घुमन्तुओं के डेरे और उनके पशु अब ज्यादा मिलते थे। यहाँ पहले की अपेक्षा अब घास और पानी अधिक सुलभ थे। अन्त में रास्ते से दाहिनी ओर कुछ हट कर एक महान् सरोवर (कोसीनोर) पड़ा। चारों ओर से रुका हुआ पानी खारा होता ही है। वह हमारे पीने के काम का नहीं था, तो भी उसके देखने से आँखों को तृप्ति और हृदय में आनन्द उद्भूत हुई। यह भी जान कर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई, कि एक ही दो दिन में हम सीमान्त पर पहुँच जायेंगे।

अन्तिम दिन हम सवेरे ही चले थे। दोपहर के समय दक्षिण की ओर दूर सामने कोई धुँधली सी चीज दिखाई पड़ रही थी। वो-संगने कहा, यही महाचीन की महादीवार है। कूची से चलने के समय भी हम महादीवार की ओर जा रहे थे, लेकिन वहाँ पहुँचने के पहले ही दिशा परिवर्तन हो गया और उस तरफ की महादीवार से चीन में घुसने में हम असफल रहे। दिशा परिवर्तन के समय हमें क्या आशा थी कि पश्चिम की ओर से असफल हो हम उत्तर की ओर से आकर इसी दीवार को पार करेंगे। उस दिन की मंजिल कुछ बड़ी थी। वैसे होता, तो महीने से अधिक की यात्रा करने के कारण ज्यादा थके-माँदे होते, लेकिन महा-दीवार की छाया में पहुँचने की उत्सुकता इतनी अधिक थी, कि हमें कुछ नहीं मालूम हुआ।

चीन की महादीवार दुनिया के आश्चर्यों में है। हमारे देश में और दूसरे देश में भी इस महादेश को चीन या महाचीन कहते हैं। लेकिन, यह नाम आज से आठ शताब्दियों पहले आरम्भ हुआ, जवकि यहाँ चिनवंश (255-206 ई० पू०) का शासन था। इस वंश ने सारे चीन राष्ट्रों को एकतावद्ध किया, यह मामूली काम नहीं था। इस वंश का तीसरा सम्राट् शहि-हूवांग-ती (246-210 ई० पू०) की ही कृति यह महान दीवार है। उसका हाथ चीन के एकतावद्ध करने में भी सवसे अधिक था। वहुत पुराने काल से—जवकि चीन के लोग पहले पहिल कृषि-शिल्प व्यापार जीवी हो गये थे; महामरुभूमि तथा शीत समुद्र तक की सारी विशाल भूमि घुमन्तुओं की विचरण भूमि थी, जैसा कि वह आज भी है। इन्हें हूण कहा जाता था। हूण वस्तुतः उनकी बोली में मनुष्य को कहते थे, यह हम बतला आये हैं। चीनी लोगों के मुँह में पड़कर इस शब्द का अर्थ दानव हो गया। वह वरावर चीन के समृद्ध इलाकों पर आक्रमण करके लूटमार करते समझते थे कि चीन के लोग हमारी दुधार गायें। चिनवंश से पहले भी देश की प्रतिरक्षा का प्रवन्ध किया गया था, लेकिन शीह-हूवांग-ती जैसी सम्पत्ति और प्रभुत्व किसी के पास नहीं था, इसलिये वह 300 योजन (1602 मील) लम्बी इस विशाल दीवार के निर्माण का स्वप्न नहीं देख सकते थे। चीन सम्राट् ने अपने सभी लोगों को कोड़े के बल पर इस काम में लगा दिया और पूर्व के महासमुद्र से पीत नदी के पश्चिम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न्तुओं की भूमि तक यह दीवार बनने लगी। रास्ते में खड्ड आये, पहाड़ आये, समतल
ीन मिली, सब जगह अविछिन्न रूप से यह दीवार तैयार की जाने लगी। दीवार के निर्माण
तीन लाख सैनिकों को पारितोषिक मिला। इनके अतिरिक्त लाखों बन्दियों और बेगार
मजदूरों को भी काम पर लगाया गया था। सरकारी नौकरों को उनके अपराधों के लिए
ड देकर यहाँ भेजा जाता, उसी तरह कोप-भाजन हुए पंडितों के हाथों में भी फावड़ा और
ारी थमाई जाती। हजारों नहीं लाखों आदमी दीवार को बनाने में मर गये। कई वर्षों
क यह काम होता रहा। 8 से 10 हाथ चौड़ी और हजारों कोस लम्बी यह एक सीधी-सादी
ार नहीं है। पर केवल इस दीवार से भला उत्तर के लड़ाकू घुमन्तुओं को कैसे रोका जा
कता था ? दीवार में जगह-जगह छोटे-बड़े दुर्ग बनाये गये, पहाड़ के ऊपर शत्रुओं के आने
देखभाल के लिए चौकियां तैयार की गईं। नदियों में जहाँ दीवार नहीं बनाई जा सकती
, वहां विशेष तौर के मजबूत किले बनाये गये। दीवार प्रायः उस जगह से होकर जाती है,
हाँ से उत्तर में घुमन्तुओं की निर्जन भूमि या रेगिस्तान नजदीक है। जिन लोगों से देश की
आ करने के लिए दीवार बनाई गई थी, उनकी सन्तानें आज भी मौजूद हैं और उनके जीवन
न कोई परिवर्तन आया है और न लड़ने की शक्ति कम हुई है। चिन् वंश की तरह आज
ीन एकताबद्ध नहीं है। उसके कई टुकड़े हो गये हैं।

संध्या नजदीक थी और हमें दीवार के महाद्वार से भीतर जाने की जल्दी पड़ी हुई
ी, तो भी मैं कुछ क्षण खड़ा होकर उसे देखने से अपने को रोक नहीं सका। मनुष्य के हाथ
ी विशाल कृतियों को मैंने और देशों में भी देखा है, पहाड़ काट कर बने बड़े-बड़े प्रासादों
ो देखा है, पहाड़ में काटकर सौ-सौ हाथ ऊँची मूर्तियाँ देखी हैं। यह प्रकांड दीवार ऐसी है,
जिसको हम एक क्षण नजर डालकर देख भी नहीं सकते। इसके ओर से छोर तक देखने के
लिए महीनों यात्रा करनी पड़ेगी। आठ शताब्दियाँ बीत चुकी हैं, अब भी यह इतनी मजबूत
है कि अभी भी काल का प्रभाव इस पर नहीं दिखाई पड़ता और शीह-ह्वांग-ती की यह
कृति हजारों वर्ष तक इसी तरह बनी रहेगी। चीन ही के लोग हैं, जो इसे दानवों और असुरों
की कृति नहीं बतलाते। हमारे देश में तो झट इसे मय की कृति बतला देते। इसकी उपमा
एक विशाल नाग से दी जा सकती है। शायद इसीलिए चीनी कला में नाग का अंकित करना
इतना देखा जाता है। मुख्य नगर (कलगन) दीवार के भीतर है, जिसके बाहर भी कितने ही
साधारण घर और उससे भी विशाल मैदान हैं, जहाँ आकर सार्थ ठहरते हैं और जो समय-
समय पर विशाल हाट का रूप ले लेता है। बाहर से आई पण्य वस्तुओं पर सरकारी कर्मचारी
शुल्क लेते हैं और गुप्तचर इस बात का ध्यान रखते हैं कि व्यापारियों के वेष में शत्रु तो
प्राकार के भीतर घुसना नहीं चाहते। इसीलिए विदेशियों पर विशेष ध्यान रखा जाता है।
हम दोनों विदेशी थे, लेकिन हमारा चेहरा ही बतला देता था कि हम हूणों की सन्तान नहीं
हैं, इसलिए हमसे कोई खतरा नहीं।

हमारा सार्थवाह साधारण व्यापारी नहीं, बल्कि राजसम्मानित नगर श्रेष्ठी था।
राजदरबार में उसका बड़ा रसूख था, दुर्गपाल भी जानता था, इसलिए उसके आने पर
सैनिकों ने उसे बहुत शिष्टाचार दिखलाते हुए द्वार के भीतर जाने दिया और उसके कहने पर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हमें भी साथ जाने में कोई दिक्कत नहीं हुई। पण्य के लिए सार्थवाह ने अपने नौकरों को छोड़ दिया। उसका व्यापार तो अधिकतर अपने नौकरों के द्वारा ही होता था। बहुमूल्य पण्य साथ थे, लेकिन खतरे की भूमि पार कर आये थे। नगर में श्रेष्ठी का अपना एक छोटा-सा प्रासाद था। जहाँ जाने से पहले उसने दुर्गपाल से भेंट की और उसके सामने पाँच सुन्दर मृगचर्म भेंट किये। हम भी साथ थे। दुर्गपाल ने हमारा बड़ा सम्मान किया। उसका राजा वेन्-श्वान्-ति (55-59 ई०) बुद्धधर्म में बहुत अनुरक्त था, जिसका प्रभाव उसके मंत्रियों और अमात्यों पर भी बहुत पड़ा था, शायद यही कारण था, जो उसने भारतीय भिक्षु समझ कर आवश्यकता से अधिक मेरा सम्मान किया।

इतनी दूर की यात्रा के बाद यहाँ आकर मैंने सचमुच ही अपने को अन्धकार से प्रकाश में आया पाया। केवल यही नहीं कि भद्रनागरिक-जीवन और उसके कोमल बर्ताव को इतने दिनों बाद अनुभव करने का मुझे मौका मिला, बल्कि मैं देख रहा था, यहाँ पहले ही से बुद्ध-शासन का बहुत प्रचार है। सीमान्त नगर की हरेक सड़क और गली पर स्तूप और मन्दिर थे। भिक्षुओं और भिक्षुणियों के एक दर्जन से अधिक विहार जब इस साधारण से नगर में थे, तो कितने राजधानी में होंगे, इसका अनुमान अच्छी तरह किया जा सकता था। वो-संग ने बतलाया कि इसका सबसे अधिक श्रेय वेई (तोबा) वंश (386 529 ई०) को है, जिसने बहुत समय (386-529 ई०) तक सारे उत्तरी चीन पर शासन किया और जिस वंश के कितने ही सम्राटों ने सिंहासन में रहते हुए भी भिक्षुओं का जीवन बिताया। उनकी राजधानी (तातुंग) के पास के पहाड़ों में आज भी उनके पहाड़ काटकर बनवाये संघाराम मौजूद हैं। अपनी जन्मभूमि से इतनी दूर चीन जैसे सम्भ्रान्त देश में बुद्ध के शासन को इतना फूलता-फलता देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, लेकिन साथ ही भिक्षुओं और भिक्षुणियों की इतनी बड़ी संख्या को देखकर मुझे बुरा भी लगा। तथागत यह कभी नहीं परान्द करते, कि देश के आधे लोग घर छोड़कर भिक्षु-भिक्षुणी बन जायें। श्रमणों का व्रत पालन करना सबके लिए आसान नहीं है। वैसा करने से दु:शील पुरुष-स्त्रियों के काषाय से शरीर ढँकने का डर हो जाता, जिसे मैंने पीछे अपनी आँखों देखा।

सार्थवाह को घर (येह) जाने की जल्दी थी, और हमें भी ठहरने का आग्रह नहीं था। वैसे वह भक्त पुरुष था, लेकिन उससे भी बढ़कर उसे इस बात का ख्याल था, कि मेरे जैसे विद्वान् भारतीय भिक्षु को राजा के पास ले जाने पर राजा मुझसे बहुत खुश होगा। हम केवल एक दिन वहाँ ठहरे। यहाँ के नगरों और ग्रामों में कुछ विलक्षणता भी है। वैसे गरीब-अमीर इन ग्रामों-नगरों में भी बसने हैं और उनके घर भी तदनुरूप ही होते हैं, परन्तु मकानों की बनावट में अन्तर है। मैंने इससे पहले भी भारत से बाहर आने पर कागज देखा था, लेकिन यहाँ उसका सबसे ज्यादा प्रचार था। वृक्षों की छाल और बाँस को गलाकर यह तैयार किया जाता है। बड़ा हल्का होता है और उसे चाहे जैसे तोड़-मरोड़ सकते हैं। मजबूती में तालपत्र का यह मुकाबिला नहीं कर सकता, किन्तु साधारण व्यवहार के लिए यह उससे कहीं अधिक उपयोगी है। हमारे देश में भी ऐसे वृक्ष मौजूद हैं, जिनसे चीनी लोग इस कागज को बनाते हैं, फिर वहाँ कागज क्यों नहीं बनाया जाता?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाड़ों का पहला महीना बीत चुका था, जबकि हम प्रकार से दक्षिण की ओर चले। र्थवाह के साथ पाँच-छह अनुचर थे, जिनमें से कुछ हम दोनों के साथ पैदल चलते थे। हम भूमि के साथ चल रहे थे, जो हमें बार-बार मध्यदेश की याद दिलाती थी। उसी तरह घरों के झुंड ग्राम के रूप में बसे थे, जिनके चारों तरफ वैसे ही खेत दूर तक चले गये थे। चारों ओर गेहूँ, मटर और दूसरी फसल की हरियाली वाले खेत थे। चीन के किसान जितनी मेहनत शायद मध्यदेश के किसान भी नहीं कर सकते। ये जमीन को अच्छी तरह जोतना ही नहीं जानते, वल्कि उससे ली हुई फसल के बदलने में भूमि को उर्वर करने का बड़ा ध्यान रखते हैं। जानवरों के गोबर की तरह ही मनुष्य का पाखाना भी खेतों के उर्वर बनाने के लिए बहुत अच्छा साधन है; पर, मध्यदेश में पाखाने का छूना बुरा समझा जाता है और जो लोग पाखाने के छूने-हटाने का काम करते हैं, उन्हें बहुत नीची दृष्टि से देखा जाता है। यहाँ का किसान पाखाना छूने में कोई बुराई नहीं समझता। वह अपने हाथ से उसे ले जाकर खेत में डालता है और नगर या ग्राम के बेखेत वाले लोगों को पैसा देकर पाखाना खरीदने में भी संकोच नहीं करता। सबसे बड़ी बात यहाँ मैं यह देख रहा था कि यहाँ ऐसी कोई जाति नहीं जिसे छूने में आपत्ति हो। धनी-गरीब हैं, कुलीन और अकुलीन भी हैं, लेकिन वह वैषम्य नहीं, जिसे कि अपने देश में हम देखते हैं. तथागत ने मानव मात्र को समान और भाई-भाई बतलाया था, अपने इन विचारों को साकार रूप देने के लिए उन्होंने संघ के बीच इस समानता को बड़ी कड़ाई से स्थापित किया था। उनके अपने वंश के अनुरुद्ध, आनन्द आदि शाक्य-कुमार जब भिक्षु बनने के लिए गए और नापित उपालि ने उनका अनुसरण करना चाहा, तो उन्होंने पहले उपालि को शिष्य बनने के लिए कहा, ताकि उपसम्पदा में ज्येष्ट होने के कारण प्रव्रजित शाक्य उसे अभिवादन करें। तथागत के शासन को फैले हजार वर्ष हो गये, लेकिन मध्यदेश में अब भी वह मनुष्य-मनुष्य की विषमता उसी तरह कायम है, समता केवल भिक्षु-संघ तक ही सीमित है। पर यहाँ चीन में उस कठोर विषमता का बहुत अंश में मैं अभाव देख रहा था। मैं इस ख्याल से इस महान् देश में आया था कि यहाँ के लोगों को बुद्ध के दिखलाये मार्ग पर चलने की प्रेरणा दूँ, किन्तु बहुत-सी बातों में ये उस मार्ग को पहले ही से पकड़े हुए हैं। जब भिक्षु-भिक्षुणियों की भारी संख्या को देखकर मैं उससे प्रसन्न नहीं था, फिर धर्म-प्रचारक के लिए मेरे पास क्या काम रह गया था ?

सार्थवाह छिन् सम्राट की प्रशंसा करते नहीं थकता था और बतलाता था कि वह आपका बड़ा आदर करेंगे। आदर का मैं बिलकुल भूखा नहीं, यह तो नहीं कह सकता, लेकिन मैं केवल उसके लिए इतना जोखिम उठाकर चीन नहीं पहुँचा था। राजसम्मान प्राप्त करने का मतलव था सुख और आराम की जिन्दगी बिताना, जो मेरे लिए बहुत आकर्षण नहीं रखती थी। अब एक ही काम मेरे सामने था, कि जीवन को अपने स्वप्नों के अनुसार बनाऊं। महायान चर्याकी ओर मेरा विशेष आकर्षण है। उसकी तरफ भी यहाँ के लोग दूर तक बढ़े हुए थे, यह इसी से मालूम होगा कि भिक्षु-भिक्षुणी यहाँ मांस-सेवन नहीं करते और जिसका प्रभाव चीन के भीतर प्रवेश करने से पहले ही मेरे ऊपर पड़ चुका था।

जिस मार्ग से हम लोग जा रहे थे, यह राजपथ था। शताब्दियों नहीं सहस्राब्दियों से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शायद इसी रास्ते सार्थ आते-जाते रहे, उस समय से जबसे उत्तरी घुमन्तुओं और उनके उत्तर के बनेचरों की चीजों की माँग इस देश में होने लगी। हर योजन पर टिकान थी, पान्थशालायें वनी हुई थीं, यात्री के आराम की सभी वस्तुयें सुलभ थीं। उनके पशु भी वहाँ अच्छी तरह रह सकते थे। हरेक पांथशाला के पास बड़े गाँव थे, जहाँ दूकानें थीं, खाने-पीने की चीजें बनी-बनाई मिल सकती थीं। सार्थवाह नहीं चाहता था कि हम किसी दूसरे का अतिथ्य स्वीकार करें, नहीं तो पांथशाला वाले गाँव और दूसरे गाँवों में भी भिक्षुओं के छोटे-बड़े विहार थे, जिनके दरवाजे चारों दिशाओं से आने वाले भिक्षुओं के लिए खुले थे। हम प्रातराश करके अपनी टिकान छोड़ते और मध्याह्न से पहले ही ठहर जाते। भोजन और कुछ समय के विश्राम के बाद फिर रवाना होते और सूर्यास्त से बहुत पहले ही अगली टिकान पर पहुँच जाते। इस समय मैं पास के गाँव या वहाँ के संघाराम में जाता। देश के अनुसार भेस में परिवर्तन करना ही पड़ता है—यद्यपि यहाँ के भिक्षु चाहते, तो मध्यदेश जैसे भेस में भी रह सकते थे। लेकिन, मैं तो अपने उसी चीवर और संघाटी में रहता था, जिसे देखते ही लोगों का ध्यान मेरी ओर आकृष्ट होता। कभी-कभी मुझे ख्याल आता, यह भेस मुझे अनावश्यक तौर से लोगों की श्रद्धा का भाजन बना रहा है। मैं प्राणिमात्र का सेवक वनना चाहता हूँ, न कि सेव्य। पर, विनय नियमों की परतंत्रता थी, चीवर छोड़कर आपत्काल में चौबीस घन्टे ही तक भिक्षु रह सकता है। स्थानीय भिक्षुओं से मिलने पर यह जानकर मुझे प्रसन्नता होती, कि मैं अपने विचारों को चीनी भाषा में उनके समझने लायक कुछ-कुछ बोल सकता हूँ और दुभाषिया के बिना भी जहाँ चाहूँ तहाँ घूम सकता हूँ। घूमने के लिए ही जो पैदा हुआ हो, उसके मनमें इसका ख्याल आना जरूरी है।

अपनी जन्मभूमि सबको ही सबसे प्यारी होती है, इसलिए ऊँट की पीठ की तरह ऊभड़-खाभड़ होते हुये भी मुझे अपना उद्यान सबसे अधिक प्रिय है, खासकर वहाँ के देवदारों से ढँके पहाड़ तथा जाड़ों में सर्वत्र देखा जाने वाला श्वेत हिम। पर, उसके बाद मुझे सबसे अधिक प्रिय थी तथागत की जन्मभूमि मध्यदेश, जिससे यहाँ की भूमि बहुत समानता रखती है, इसलिए वह भी मेरे लिए मोहक है। कहीं-कहीं जाड़ों के समय वर्फ भी कभी-कभी पड़ जाती है, इसलिए मध्यदेश की तरह कठोर गर्मी का यहाँ भय नहीं है।' यहाँ की ऋतु वहाँ से भी अधिक अनुकूल है। फिर चीन देश सर्वत्र एक-सा नहीं है। यहाँ भी बड़े-बड़े पहाड़ हैं, बड़ी-बड़ी नदियाँ हैं। गंगा से भी बड़ी पीत नदी (ह्वांग हो) है, यह कोई कहता, तो मुझे विश्वास न होता, लेकिन येहसे दक्षिण मैंने स्वयं उसे अपनी आंखों देखा।

यद्यपि बो-संग मेरे साथ थे, किन्तु अव मेरी यात्रा का सारा समय उनसे बातचीत करने में नहीं वीतता था। मेरी वृत्तियाँ अधिकांश अन्तर्मुखी हो जाती थीं। मैं अपनी कल्पनाओं में डूब जाता। भविष्य के काम के लिए तरह-तरह से विचार करता, किन्तु अन्त में किसी निष्कर्ष पर न पहुँचता। फिर झुँझलाहट पैदा होती और तब बुद्धिल की ओर ध्यान जाता। हम दोनों साथ होते तो किसी निर्णय पर पहुँचने में बड़ी आसानी होती। मैं अपने को सचमुच एकाकी अनुभव करता था। अच्छा था, जो सार्थवाह हमारे साथ नहीं चल रहा था, नहीं तो वह कितनी ही बार मेरे मुख को गंभीर ही नहीं, उदास भी देखता। बो-संग सीधे-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant2

साधे भिक्षु थे, मेरे अनुरक्त थे, लेकिन मेरे मानस समुद्र के भीतर गोता लगाने की उनमें शक्ति नहीं थी। उन्होंने यह तो जरूर देखा होगा, कि मरुभूमि की यात्रा की तरह मेरी मनोवृत्तियाँ इस समय नहीं हैं, पर, उनको उसकी ओर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता नहीं मालूम होती थी। यह मेरे लिए अच्छा ही था। यदि वह संघिल या शान्तिल की तरह मेधावी होते, तो अवश्य प्रश्न उठाते। शायद तब मैं उनसे अपने मन की बात कहता, किन्तु क्या वह किसी निर्णय पर पहुँचने में सहायता दे सकते थे? हाँ, यह जरूर था, कि वैसी स्थिति में मुझे उनके पढ़ने की ओर विशेष ध्यान देना पड़ता। हो सकता है उससे कुछ समय अच्छी तरह वीत जाता। बो-संग केवल अनुचर भिक्षु भर ही हो सकते थे, वह मेरे बौद्धिक साथी नहीं बन सकते थे। उनके प्रति मेरे हृदय में वात्सल्य था, किन्तु मित्रता नहीं हो सकती थी, जिसके लिए दोनों को मानसिक तौर से समान तल पर होना चाहिए।

एक सप्ताह बाद हम छी-वंश (550-77 ई०) की राजधानी येह में पहुँचे। मुझे मालूम हो रहा था कि इतनी यात्रा पूरी करने में शायद मरुभूमि से भी अधिक समय लगा। बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं, कितने ही हाटों और बाजारों, भव्य राजप्रासादों और दूसरी बहुत-सी आकर्षक वस्तुओं के साथ विशाल नगर मेरे सामने था। लेकिन, उसे देखकर मुझे कुछ भी आनन्द या सन्तोष नहीं हुआ। वस्तुतः मेरी आँखें उस नगरी के ऊपर थीं, पर मेरा मन कहीं दूसरी जगह था। वह मुझे अपने बाहुपाश में बाँधना चाहते थे, किन्तु मुझे नगरी से महामरुभूमि अधिक आकर्षक मालूम होती थी। बाजवक्त सोचता, मैं क्यों यहाँ आया? फिर अपने ही जब जवाब मिलता : बुद्धिल के साथ तुमने यहाँ आकर काम करने का वचन दिया था। फिर यह भी सोचता—जहाँ अधिक दुःख है, वहाँ मेरी आवश्यकता है। अपने सारे जीवन और शक्ति को लगाकर यदि दो प्राणियों के दुःख को भी हलका कर सकूँ, तो यह मेरे जीवन की सफलता है। इसमें शक नहीं, इस जगह जितना दुःख था, उतना न शीतसमुद्र के वनचरों में और न घुमन्तुओं से डेरे में ही था। वह इतनी मात्रा में दुःख और पीड़ा को बर्दाश्त नहीं कर सकते, जितना कि नागरिक और ग्रामीण लोग। फिर मेरे लिए काम की कमी क्या थी?

सार्थवाहक के साथ नगर द्वार के भीतर प्रविष्ट होते ही मालूम हुआ; जैसे हृदय पर भारी पहाड़ आ पड़ा। इतना अवसाद जीवन में मैंने बहुत कम अनुभव किया था। द्वार रक्षकों से आसानी से छुट्टी मिल गई, क्योंकि नगर सेठ हमारे साथ था। कहाँ जाना है, कहाँ रहना है, इसके बारे में मैंने रास्ते में एक बार भी जिज्ञासा नहीं की और यहाँ भी मैं कुछ नहीं बोला। सार्थवाह ने स्वयं कहा—हमारे ही गृह को पवित्र कीजिये। मुझे कहना चाहिए था कि किसी संघाराम में मुझे रहना है, लेकिन उस समय में रस्सी से खींचे हुये जाने लायक ही था। उसके साथ-साथ चलता गया। कई सड़कों से घूमते हुए हम काफी दूर गये। राजप्रासाद नगर के एक छोर पर थे। हम उत्तर वाले जिस दरवाजे से घुसे थे उससे वह दूसरे छोर पर थे। येह नगरी चीन की सबसे बड़ी नगरियों में नहीं कही जा सकती, वह सम्मान तो छंग-आन और लोयांग जैसे नगरों को ही प्राप्त है। पहले एक राज्यपाल की यह राजधानी थी। छिग-वंश की राजधानी बने, इसे अभी सात वर्ष हुये हैं, इसलिये वह पूरी तरह से बढ़ नहीं सकी। सड़कें पतली और टेढ़ी-मेढ़ी हैं, किनारे तिमंजिले चौमंजिले मकान हैं। इनके निचले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भागों में केवल दूकानें हैं। इतनी दूकानों को देखकर मुझे ख्याल होता था, यदि सारे नगर वाले दूकानदार ही हैं, तो इनकी चीजों को खरीदता कौन है? लेकिन, यह प्रश्न बेकार था। हो सकता है भारत के नगरों की अपेक्षा यहाँ दूकानें कुछ अधिक हों, लेकिन नगर में तरह-तरह के शिल्पकार भी रहते हैं, राज्य से सम्बन्ध रखने वाले देश भर से आये लोग भी रहते हैं। गाँवों के लोगों के लिये दूकानें भी यहीं हैं।

अन्त में अपेक्षाकृत कुछ चौड़ी सड़क पर एक बड़े फाटक के भीतर हम दाखिल हुये। यही सार्थवाह का प्रासाद था। फाटक के भीतर विशाल आँगन था, जिसके दो तरफ घोड़ों और दूसरे पशुओं के बाँधने के स्थान थे। सामने सार्थवाह का राजप्रासाद जैसा बहुत विशाल पंचमंजिला महल था। एक दिन पहले ही घर वालों को सूचना मिल गई थी, इसलिये सभी सार्थवाह का स्वागत करने के लिये तैयार थे। सार्थवाह की पत्नी आनन्द से गद्गद हो अपने पति से मिली। उनके दो पुत्रों, दो बहुओं, और घर के दूसरे लोगों ने भी गृहस्वामी का स्वागत किया। इस स्वागत में सार्थवाह मुझे भूला नहीं, इसलिए अभिनन्दन का कुछ अंश मुझे भी प्राप्त हुआ। तिमंजिले पर एक बहुत ही स्वच्छ कमरा मेरे रहने के लिये दिया गया। कमरे के पास ही पाखाने का स्थान था, जो बहुत स्वच्छ था। मैंने इसे चीनी जीवन की पूर्णता समझा। लेकिन, कमरे के भीतर दाखिल होते ही ख्याल आया, मुझे संघाराम में जाना चाहिए था, भिक्षु के लिये नगरवास या गृहपति के घर में रहना उचित नहीं है।

व्यस्त जीवन

(558–77 ई०)

न जाने क्यों येह में आने पर मेरा मन उस दिन उतना उदास हुआ था। यह घुमक्कड़ की प्रकृति के विरुद्ध है, कि किसी नये देश में जाकर उसका हृदय क्षुब्ध या उदास हो जाये। वह तो जहाँ भी जाता है, वहीं के लोगों में घुल-मिल कर एक जैसा हो जाता है। मुझे प्रसन्नता है, कि ऐसे भाव मेरे हृदय में एक ही दो दिन रहे। सार्थवाह हमें दरबार में ले गया। सम्राट् वेन्-श्वेन् (55-59 ई०) ने दिल खोल कर मेरा स्वागत किया। वह मेरे बारे में सार्थवाह से सुन चुके थे। मेरी असाधारण यात्रा को सुन कर भी उन्हें मेरे साहस के प्रति सम्मान पैदा हुआ था। सार्थवाह के यहाँ मैं एक-दो ही दिन के लिये ठहरा। सम्राट् ने स्वयं यहाँ के सबसे बड़े और सम्मानित थियेन्-पिंग बिहार में मेरे रहने का प्रबन्ध कर दिया। मेरे लिये भोजन और सभी आराम की चीजों का उन्होंने अपनी ओर से विशेष प्रबन्ध किया और मंत्रियों तथा राजकर्मचारियों को हर तरह की सहायता देने के लिये आज्ञा दे दी।

महाचीन इस समय एक राज्य नहीं उत्तर और दक्षिण दो खंडों में पहले ही से बँट चुका था। लेकिन इतना बड़ा महादेश दो भागों में बँटने पर भी बहुत विशाल था। पीत नदी की उपत्यका उत्तरी चीन में थी, और यांङ्-ची उपत्यका तथा दूसरे भाग दक्षिणी चीन में। महा प्रकार उत्तरी घुमन्तुओं के आक्रमण से रक्ष के लिये बनी थी, लेकिन मनुष्य बल से ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant-2

रोका जा सकता है, स्वाभाविक और कृत्रिम बाधायें उसको व्याहत गति नहीं बना सकतीं। तोपों के वंशज भी मित्र भाव या शत्रु भाव से पीत नदी की उपत्यका में बराबर पहुँचते रहे। उत्तर वे-ई (तोपा-वंश 386-592 ई०) तो प्राय: डेढ़ सौ वर्ष तक (386-529 ई०) सारे उत्तरी चीन का अखंड शासक रहा। चीन की दीवारों ने जो काम नहीं किया, वह चीन की जनता और परम्परा ने किया। समुद्र में जिस तरह नदियाँ अपना नाम-रूप छोड़ कर एक हो जाती हैं, उसी तरह जो जातियाँ मित्र भाव या शत्रु भाव के साथ चीन में आ गईं, वह कुछ ही दिनों में चीनी बन गईं। बल्कि हान् वंश के पतन (220 ई०) के बाद उत्तर में वेई, दक्षिण में वू और पश्चिम में शू नाम के तीन राजवंश कायम हो गये। वेई के एक राजमन्त्री ने गद्दी पर अधिकार कर 51 वर्ष तक (235-316 ई०) के लिए सारे चीन को एकताबद्ध करके अपने नये चिन्-वंश को कायम किया था 70 वर्ष तक अराजकता सी रही; जब कि 386 ई० में तोपा (शीयन्-पी) वंश ने राजशक्ति अपने हाथ में ली, वह कुछ ही समय में पे-वेई (उत्तरीवेई) के नाम से चीनी बन गया। युन्-कंग वर्तमान (तातुङ्) के पास के (मेघ-गिरि) के नाम से उन्होंने अपनी पहली राजधानी कायम की, जिसके पहाड़ों को खोदकर उनके बनाये हुये सुन्दर और विशाल संघाराम आज भी आदमी को चकित करते हैं। इस वंश के सम्राट श्यउ-वेन् (471-500 ई०) ने पहली राजधानी छोड़कर लोयांग्र को अपनी राजधानी बनाया। सीमा के पास रहने से हूण वंश का जो प्रभाव कुछ अब भी रह गया था, वह भी होकर तोपा अब बिलकुल चीनी बन गये थे। मनुष्य की तरह राजवंश में भी तारुण्य और जरा आती है। इसी प्रकार पे-वेई वंश भी राज्य करके पूर्वी वेई (तुंग्-वेई) और पश्चिमी वेई के दो भागों में बँट गया। दोनों ही तोपा वंश की शाखायें थीं, जिन्होंने कुछ ही वर्षों के शासन के बाद अपने चीनी मंत्रियों द्वारा स्थापित पेई-ची (उत्तरी ची 550-77 ई०) और पेई-चाऊ (उत्तरी चाऊ, 556-81 ई०) के लिये स्थान छोड़ दिया। पेई-चीने पुरा ने राज्यपाल की राजधानी येह को अपनी राजधानी बनाया, यह बतला चुके हैं। इस वंश ने कुल 27 वर्ष राज्य किय", जिसमें मेरा स्वागत करने वाला सम्राट वेन् शुयेन्-ती-नौ वर्ष (550-59 ई०) राज्य कर पाया। उसका पहला उत्तराधिकारी फे ई-ती तो एक वर्ष भी गद्दी पर नहीं रह पाया तीसरे श्याउ-चाउ (560-61 ई०) और वू चाँग-ती (561-64 ई०) ने की उसी तरह थोड़े ही समय शासन किया, और सिर्फ पाँचवा सम्राट हाउ-चू 12 वर्ष (565-77 ई०) तक शासन कर सका। इसके बाद दो और कुछ महीनों शासक रहे, किन्तु उनका शासन जलते हुये घर में रहना जैसा था। फिर इस वंश को खतम करके पे-चाउ (उत्तरी चाउ) वंश ने इस राज्य को भी सँभाल लिया और राजधानी येह राजधानी नहीं रह गई, छाँग्-अन् से यहाँ राज्यपाल आने लगे।

येह के राजवंश ने कुल 27 वर्ष शासन किया था, और वंश की स्थापना के आठवें वर्ष (558 ई०) में 40 वर्ष की उमर में मैं वहाँ पहुँचा और 19 वर्ष तक बड़े सम्मान के साथ वहीं रहा। 60 वर्ष में एक ही वर्ष बाकी रह गया था, जबकि मुझे येह छोड़ने के लिये मजबूर होना पड़ा। चीन में जिस तरह तथागत के शासन के अनन्य भक्त शासक और सामन्त होते रहे, उसी तरह कभी-कभी उसके उच्छेद के लिए कमर बाँधने वाले भी पैदा होते जाते थे, जो मन्दिरों को तोड़वा देते, धातु की होने पर मूर्तियों को गलवा देते और भिक्षु-भिक्षुणियों को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

काषाय वस्त्र छोड़कर गृहस्थ बनने के लिए ही मजबूर नहीं करते, बल्कि कभी-कभी तो उन्हें जिन्दा भी गड़वा देते, जैसे पे-वेई वंश के सम्राट् ताइ-वू (महावीर 424-51 ई०) ने आदेश किया था। उस समय हमारी हजारों पुस्तकें नष्ट कर दी गईं। उसके 27 वर्ष के शासन के अन्त में मालूम होता था कि तथागत का शासन इस भूमि से सदा के लिए खतम हो चुका, लेकिन विचारों का नष्ट होना इतना आसान नहीं है, यदि वह सच्चे और लोकहित के हों। ताइ-वू के आँख मूँदते ही हेमन्त के सूखे वनस्पति जिस तरह वसन्त में दूने जोश के साथ उग आते हैं, उसी तरह फिर भिक्षु-भिक्षुणियाँ देश में नहीं, बल्कि नई राजधानी लोयांगमें भर गये। राजधानी के चारों ओर सूत्रपाठ का घोष सुनाई देता। आधी शताब्दी बीतते-बीतते (500 ई० तक) बल्कि यह वृद्धि अति को प्राप्त हो गई। राजधानी के एक-तिहाई घर बौद्ध-मन्दिरों में परिणत हो गये। एक भी सड़क ऐसी नहीं थी, जिसके बुद्ध-मन्दिर न हों। नगर-प्राकार के भीतर उनकी भरमार थी, बाजारों में भी वह सब जगह थे, मद्य और मांस की दूकानों के पास भी संस्कृत में सूत्रों का पाठ सुनाई देता था। उत्तरी वेई के अन्तिम काल में 20 लाख के करीब भिक्षु-भिक्षुणी और 30 हजार बुद्ध-मन्दिर थे। यह भी श्रद्धा का अतिचार है, मैं यह मानता हूँ। भिक्षु-भिक्षुणी स्वयं अपने लिए खाद्य पैदा नहीं करते, वह दूसरों की कमाई पर जीते हैं। श्रद्धा जब बढ़ जाती है, तो उनको दान-दक्षिणा अधिक मिलती है और उनका जीवन सांसारिक दृष्टि से बड़ा ही सुखी रहता है। ऐसे सुखी जीवन की लालच से बहुत से अनधिकारी व्यक्ति भी काषाय पहन लेते हैं और उनके कदाचार और दुराचार का दोष बुद्ध-शासन के ऊपर पड़ता है। इसलिये भिक्षु-भिक्षुणियों की संख्या एक सीमा के भीतर रखने के लिये बहुत देखभाल कर उन्हें संघ में लेना चाहिए। वह कदाचार और दुराचार ही सामन्तों और राजाओं को विरोधी बना सर्वनाश का कारण बनता है।

मैं थियन्-पिंग विहार में रहने लगा। बोसंग भी मेरे साथ थे। यहीं मिले भिक्षु फा-चे मेरे काम में बड़े सहायक बने। चीन में कन् फू जु (कन-फू-शी 551-478 ई० पू०) और लाउ-जू दो बड़े आचार्य हो गए हैं, जो करीब-करीबी उसी समय मौजूद थे, जबकि शाक्यमुनि मध्यमंडल में अपने उपदेशों से लोगों को कृतकृत्य कर रहे थे। कनफूशी की शिक्षा इहलौकिक है। उसमें आदमी को सुशील रहने तथा माता-पिता और उससे भी बढ़ कर राजा के आदेश को मानने के लिये बतलाया गया है। लाउ-जू एक धर्माचार्य थे। उनके मत में भिक्षु-भिक्षुणियाँ भी होती हैं। स्वदेशी होने के कारण कन-फू-शी और लाउ-जू तथा उनकी शिक्षाओं की ओर यहाँ के लोगों का ज्यादा आकर्षण हो, यह स्वाभाविक है। इन दोनों मतों के आचार्य बुद्ध-धर्म की अभिवृद्धि को फूटी आँखों नहीं देखना चाहते। जब भारी समृद्धि के साथ-साथ भिक्षुओं में अतिचार भी देखने में आता, ऐसे समय इन दोनों आचार्यों के अनुयायी हमारा अनिष्ट करने पर तुल जाते। बुद्धधर्म दूसरे धर्मों से द्वेष करना नहीं सिखलाता। हमारी यह मनोवृत्ति उन्हें और भी अपने लिये खतरनाक मालूम होती है और वह कहते कि तुमने हमें अपने में हजम करने के लिये यह चाल निकाली है।

शत्रु राजा और सामन्त बौद्ध-विहारों, मन्दिरों, मूर्तियों और उनसे भी ज्यादा पुस्तकों को ध्वंस करने के लिये जितने मुस्तैद रहते थे, उतने अवसर मिलते ही बुद्ध के भक्त इन चीजों को जुटाने के लिये भी तैयार रहते। पुस्तकों की वह बड़ी तत्परता से रक्षा करते थे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यहाँ के सम्राट बुद्ध-धर्म में बड़ी आस्थासूत्र रखते थे। सात-आठ वर्ष के शासन में ही राजप्रासाद में बहुत से और दूसरे ग्रंथ जमा हो गये। विहार में आ जाने के बाद ही सम्राट ने अपने यहाँ संग्रहीत तालपत्र और भुर्जपत्र पर लिखी बहुत सी संस्कृत की पुस्तकें मेरे साप भेज दीं और चीन के लोगों के लिये सुलभ करने के वास्ते उनका अनुवाद करने का आदेश दिया। येह में यद्यपि इस वंश के समय मैं ही अकेला भारतीय भिक्षु था, जिसने संस्कृत के अनेक ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। किन्तु, मेरे वहाँ पहुँचने से 16-17 वर्ष पहले कई भारतीय भिक्षुओं ने पूर्वी-वेई (तुंग वेई) काल (534-50 ई०) में अनेक ग्रन्थों के अनुवाद किये थे। वाराणसी के गौतम प्रज्ञारुचि ने 17-18 ग्रन्थों को चीनी भाषा में अनुवाद करके मेरा पथ-प्रदर्शन किया था। मेरे अपने उद्यान के रहने वाले उपशून्य ने भी कई ग्रन्थों का अनुवाद किया था। प्रज्ञारुचि के सहकारी हमारे उद्यान के दूसरे भिक्षु विमोक्ष प्रज्ञ ने भी कई ग्रन्थों का भाषान्तर किया था। विमोक्षप्रज्ञ को यहाँ के लोग कपिलवस्तु के शाक्यों अर्थात् तथागति की जाति का मानते थे। शक और शाक्यों के बारे में इस तरह की गलती बहुत पुराने समय से होती चली आई है। धर्मबोधि दूसरे भारतीय भिक्षु थे, जिन्होंने "महापरिनिर्वाणसूत्र का" अनुवाद किया था। आज से कुछ ही पहले इसी येह में अनुवादित इन ग्रन्थों को मैंने पहले संस्कृत से मिला कर देखना शुरू किया। चीनी भाषा पर मेरा अधिकार नहीं था, बोलना-चालना जरूर सीख गया था। भाषा-सम्बन्धी मेरा ज्ञान बढ़ता जा रहा था, किन्तु मैं किसी चीनी पंडित के सहारे ही अनुवाद के काम को कर सकता था। फा-चे इसके लिये बहुत योग्य थे, दूसरे भी मेरी सहायता के लिए तैयार थे। मुझे येह में हुए अनुवादों को देखने में कुछ महीने लगे। सहायक के साथ मैं अनुवाद कर सकता हूँ, इसका मुझे अब विश्वास हो गया।

येह में चाहे मैं अकेला था, लेकिन उत्तरी दक्षिणी चीन में कितने ही भारतीय उस समय इस काम में लगे हुये थे। तथागत के उपदेश जब तक संस्कृत भाषा में थे, तब वह यहाँ के लोगों के लिये बन्द पोथी थे। इसलिए हर जगह भारतीय और देशीय भिक्षु तथा बुद्धभक्त इस पुण्य कार्य में संलग्न थे। उत्तरी चाउ वंश की राजधानी छांग आन में गुणभद्र, मगध के ज्ञानयश यशोगुप्त और ज्ञानगुप्त इसी काम को कर रहे थे। पहले एक साल (558 ई०) में मैंने "चन्द्रद्वीपसमाधिसूत्र", "महाकरुणापुंन्डरीकसूत्र", "सुमेरुगर्भसूत्र" और "प्रदीपदानीय-सूत्र" अनुवाद किये। आगे मेरे ऊपर और कामों का भार पड़ा, और अनुवाद की गति उतनी तीव्र नहीं रही, केवल तीन और ग्रन्थ "अभिधर्महृदयशास्त्र" (563 ई०) "चन्द्रगर्भसूत्र" (566 ई०) "पितापुत्रसमागसूत्र" (568 ई०) के ही चीनी अनुवाद कर पाये।

यहाँ आये साल भर ही हुआ था कि पहले चार ग्रन्थों के अनुवाद के बाद सम्राट् वेन् श्वेंन् ने मुझे अपने राज्य के भिक्षुओं का संघ-नायक बना दिया। मैं इसकी इच्छा नहीं रखता था, और मैंने पहले इस पद को स्वीकार करने से इन्कार भी किया, लेकिन सम्राट् ने कहा "आप जैसे बुद्धशासन की अभिवृद्धि चाहने वाले यदि संघ के ऊपर नियंत्रण करने का काम अपने हाथों में लेने से भागेंगे, तो उसे कौन करेगा।" नये राजवंश को कायम हुये 8-9 वर्ष हो गये थे। राज्य के साथ उसका अपना भिक्षु-संघ भी होना चाहिए, तभी राज्य की भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महिमा बढ़ती है। उत्तरी छीके प्रतिद्वन्द्वी उत्तरी चाउ का छाँग्-आन में अपना संघराज था, जिसके नियंत्रण में वहाँ हजारों संघाराम और भिक्षु रहते थे। मैं जानता था, छी सम्राट संघनायक बनाना चाहते हैं। मैं अपने को चाहे वैसा न मानता, लेकिन सम्राट् और उनके राज्य के बड़े-बड़े भिक्षु मुझे उसके योग्य मानते थे, और चाहते थे कि मैं उस पद को सँभालू। दूर से रह कर किसी बात के पक्ष या विपक्ष में राय देना दूसरी बात है, लेकिन जब गुण-दोषों के निर्णय और व्यवस्था का भार अपने ऊपर पड़ जाता है, तो उसका उठाना उतना आसान नहीं होता। मैंने बहुत शंकित हृदय से गला दवाने की तरह इस पद को स्वीकार किया। नियंत्रण करने वाले का हृदय केवल कोमल ही नहीं होना चाहिए, कभी-कभी निर्णय देने में उसे कड़ा रूप भी लेना पड़ता है। ऐसे समय सबको मित्र कैसे बनाये रक्खा जा सकता है?

मेरा रास्ता अकंटक और ऋजु नहीं था, लेकिन यदि पृथ्वी पर मैंने अन् ऋजु रास्ते पर हजारों कोसों की यात्रा की थी, तो यहाँ अपने कर्मक्षेत्र में उससे कायरता दिखाना मुझे उचित नहीं मालूम हुआ। जैसा कि मैंने पहले बतलाया, अपने 19 वर्ष के येह निवास में मैंने पहले ही साल अनुवाद का विशेष काम किया, बाकी समय में तीन मामूली से ग्रन्थों के अनुवाद कर पाये, जिन्हें कुछ महीनों में किया जा सकता था। छी राजवंश को यह जान कर संतोष होता था कि हमने भी इतने ग्रन्थों का अनुवाद करवा कर अपनी कीर्ति अमर कर ली। शायद मेरे भी हृदय के किसी कोने में इस तरह की अमरकीर्ति से संतोष होता हो लेकिन अमरता नहीं अनित्यता पर मेरा अटल विश्वास है। अनन्त काल की मुझे उतनी, पूर्वाह नहीं जितनी कि हृदय में जलती आग को तत्काल बुझा कर शान्ति प्राप्त करने की एक से एक महान् ग्रंथ अनुवाद करने के लिए मौजूद थे। मेरे मित्र बुद्धिल के हाथ का लिखा "प्रमाणसमुच्चय" अब भी मेरे पास था, जिसे मृत्यु के समय तक मैं उसे अपने से अलग नहीं कर सकूँगा। उसके अनुवाद करने की भी कभी-कभी इच्छा हो आती थी, लेकिन मन उसके लिए तैयार नहीं हुआ। महायान के ग्रन्थों ही के मैंने अनुवाद किये, क्योंकि बोधिसत्वों का जीवन मुझे बहुत प्रिय था। यदि किसी प्राणी को क्षण भर सुख देने के लिये मेरा यह जीवन काम आ जाये, तो उससे मुझे बड़ा संतोष होता। मैं नित्य ही अवदानों (जातकों) का पारायण करता। आर्यशूर की 'जातकमाला' मुझे कुछ प्रयत्न से मिली थी, वह मेरे नित्य पाठ में थी तथागत ने बोधिसत्व रहते समय अनेक जन्मों में किस तरह अपने शरीर का दान किया था, कभी भूखी व्याघ्रिकी वह ग्रास बने कभी किसी भूखे पथिक के लिये आग में कूद कर उसकी बुभुक्षा हटाने समर्थ हुये। मैं बोधिसत्व-व्रत पालन करने में लग गया।

जितना ही मैं इस व्रत में आगे बढ़ता जा रहा था, उतना ही मेरा हृदय द्रवित होता जाता था। मैं अपनी आँखों से किसी को दुःख में नहीं देख सकता। येह नगरी या गाँवों में जाता, किसी बच्चे को अनाथ देखता, तो मुझसे यह नहीं हो सकता, कि उसे छोड़कर एक कदम भी आगे बढ़ जाऊँ। किसी स्त्री को बीमार देखता, तो उसको सुखी देखने का कोई उपाय करना मैं अपना कर्तव्य समझता। मैंने यहाँ रह कर अगर किसी विद्या का विशेष अध्ययन किया, तो वह आयुर्वेद (चिकित्साशास्त्र) है। मुझे यह जान कर प्रसन्नता है कि चीन के भिक्षुओं ने वह जनहित की साधनाव्य इसको सबसे बड़ा साधन माना है। भिक्षु-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भिक्षुणी बने चीनी कुमार या कुमारी को चिकित्सा शास्त्र का कुछ ज्ञान होना आवश्यक समझा जाता है। लाउ-जू और कनफु-जू के अनुयायी इसे भी हमारी चाल कहते हैं। लेकिन, चाल (कूटनीति) कह देने से हम किसी भले रास्ते को छोड़ कैसे सकते हैं? संसार के सभी दुखियों के दुःख को हटाना जब हमने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया है; तो इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए हर समय अपने जीवन को बलिदान करने के लिये हमें तैयार होना है। इसमें नीच स्वार्थों की गन्ध कहाँ है? यदि ऐसे बलिदान का लोगों पर प्रभाव पड़ता है और उसके कारण एक की जगह दस नये बलिदान देने वाले तैयार हो जाते हैं, तो इसमें बुरी बात क्या है? मैं अपने को कुशल वैद्य नहीं मानता। शायद किसी विषय में कौशल प्राप्त करने के लिये आदमी में कोई स्वाभाविक क्षमता होती है, जिसका मुझमें अभाव है। इस अभाव के लिये मुझे असंतोष नहीं है, क्योंकि यदि ऐसा न होता, तो मैं चिकित्सा के काम में इतना व्यस्त हो जाता कि मेरे पास सारे छी राज्य में उसकी व्यवस्था करने के लिए समय नहीं रह जाता। मैं कह सकता हूँ, कि मेरे इस प्रयत्न से चिकित्सा की व्यवस्था इस राज्य में जितनी हो गई, उतनी यहाँ के और किसी राज्य में नहीं थी। भिक्षुओं के जहाँ संघाराम थे, वहाँ पहले भी चिकित्सा का प्रबन्ध था, लेकिन वह उतना व्यापक और व्यवस्थित रूप से नहीं था। हर जगह रोगियों को रखकर चिकित्सा करने का इन्तजाम नहीं किया गया था। छी वंश के सम्राट ने मुझे सुख-संपति से घिरे रखना चाहा। लेकिन, अब उसमें मुझे कोई आनन्द नहीं आता था। सभी सत्वों को दुःख से मुक्त करने के लिए अपने सर्वस्व को लगाने में ही मैं आनन्द मानता हूँ। भिक्षुओं के विनय में चाँदी-सोना रखना वर्जित है, यह इसी ख्याल से कि वह अकिंचन रहे। कम से कम धन से संबन्ध में वह सबसे दीन-हीन मनुष्य के सामने रहे। और भी आगे बढ़ने वाले नये वस्त्रों को काट कर चीवर बनाने की जगह रास्ते में फेंके लत्तों को जोड़ कर अपना शरीर ढाँकते हैं। सोना-चाँदी या पैसे का परित्याग मैंने इस अर्थ में नहीं किया है, कि उन्हें हाथ न लगाऊँ। हाँ मैं उनको जरा भी अपने ऊपर लगाना पसन्द नहीं करता। दूसरों के हित के लिये, तो उनकी आवश्यकता होती ही है। मैंने येह में आकर संघनायक होने के बाद ही निश्चय कर लिया कि केवल भिक्षा का ही भोजन ग्रहण करूँगा, केवल चिथड़ों को सी कर बनाये चीवर को ही पहनूँगा। यह इसलिए, कि मैं, राष्ट्र-पिंड को कम से कम ग्रहण करूँ और किसी व्यक्ति पर अपना भार न रक्खूँ भोग तृष्णा मेरे हृदय में पोषित न होने पाये।

पूरे पाँच साल लगे, जब कि मेरे वे स्वप्न चरितार्थ हुये, जिन्हें कि मैं बोधिसत्व के मार्ग पर आरूढ़ होने के बाद सच्चा करना चाहता था। मैंने एक कुशल वैद्य गुणमित्र का सहयोग पाने का सौभाग्य प्राप्त किया। वह कुस्तन के रहने वाले भिक्षु थे, और यों ही घूमते-घामते येह पहुँचे थे। उन्होंने किसी ग्रंथ का अनुवाद नहीं किया, यद्यपि कर सकते थे। हो सकता है अनुवाद करने वालों में नाम न होने के कारण पीछे लोग उन्हें भूल जायें। लेकिन पीछे लाख वर्ष तक याद रहने की जगह यदि हम एक क्षण के लिये अपने सामने के प्राणियों को सुखी बना सके तो यह उससे कहीं बढ़कर है। संघनायक बनने के पहले ही साल मैंने ख्यान-पिंग संघाराम के पास एक विशाल चिकित्सालय बनवाया, उसमें छोटी सी भैषज्य गुरु की प्रतिमा स्थापित की। धातु की नहीं, क्योंकि इसका फल किसी समय उसे गला धातुरूप में वेंत्र किसी को अपुण्य कमाने का अवसर देना होता। पत्थर की भी नहीं बल्कि केवल मिट्टी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की प्रतिमा बनवाई, जो तभी तक अपना अस्तित्व रख सकती है, जब तक कि उसके ऊपर श्रद्धा रखने वाले अस्तित्व रखते हैं। हमारे संघाराम को कुछ कुशल कलाकारों ने बनाया। हमने अधिक से अधिक श्रम और धन उन कोठरियों के ऊपर खर्च किया, जिनमें बीमारों को रखना था। मैं देखता था मजूर लोग मिट्टी खोदकर कहीं ईंटे पाथ रहे हैं, कहीं ढोकर दीवार खड़ी कर रहे हैं। वहाँ जाकर देखने से संतुष्ट रहने के लिए मेरा हृदय नहीं मानता था। मैंने मिट्टी भरकर टोकरी अपने सिर पर उठाई। यह निर्णय तुरन्त करना पड़ा था, लेकिन निर्णय करने के कुछ क्षणों में ही कितनी मानसिक बाधायें मेरे सामने आ खड़ी हुई मैं सारे छी राज्य का संघनायक हूँ, इस तरह का झूठा अभिमान क्षण भर के लिए भी मेरे हृदय में जगह नहीं पा सकता था। लेकिन, यह ख्याल जरूर आया था कि लोग इसे भी अपनी हीनता दिखाने का दम्भ कह सकते हैं। मैंने अपने हृदय को टटोला। यदि दम्भ होता, तो मैं कदम आगे नहीं बढ़ाता, लेकिन वहाँ दम्भ का कहीं पता नहीं था। लोगों ने, जिनमें पास खड़े भिक्षु और राज पुरुष भी थे, जरूर इस पर आपत्ति की, लेकिन अब तक उन्हें मालूम हो चुका था कि जिस बात को मैं ठीक समझ कर करने का निश्चय कर लेता हूँ, उसके बारे में कोई बाधा सुनने या सहने के लिए तैयार नहीं होता। मेरे चिथड़ों के बने चीवर में मिट्टी लगने से कोई फर्क नहीं हो सकता था, और न मैं कोमल जीवन का अभ्यासी था, यह भी लोग देखते ही थे। संघनायक के टोकरी ढोने की चर्चा सारे छी राज्य में और सम्राट् के पास तक होने लगी, यह स्वाभाविक ही था। इसका एक सुफल यह हुआ, कि हमारे भिक्षुओं में भी कितने ही अब ऐसे काम को पसन्द करने लगे। सिर पर टोकरी ढोने से और भी भारी बोझ वाले दूसरे काम थे, इसलिए हम और हमारे भिक्षु उतने ही में अपने कर्त्तव्य की इति श्री कैसे मान सकते थे ?

गुणमित्र राजधानी में ही रहते, उन्हें बाहर जाने का अवसर कम मिलता। थियेन्-पिंग महाचिकित्सालय के वह महावैद्य थे। पीछे नगर-प्राकार के भीतर भी सम्राट ने एक विशाल रोगी सुश्रूषणालय बनवा दिया, जिसमें भी वह प्रतिदिन कुछ समय के लिए जाते। इसके अतिरिक्त एक और बड़ा काम उन्होंने अपने ऊपर सँभाला था, वह था नये योग्य वैद्यों को पैदा करना। मैं कह सकता हूँ, इस काम में कि जो सफलता हुई, उसका सबसे अधिक श्रेय गुणमित्र को मिलना चाहिये। संघनायक होने से मुझे ही सब कुछ मानना ठीक नहीं, संघनायक होने से एक और लाभ यह हुआ कि अब भिक्षुओं और भिक्षुणियों की प्रव्रज्या सारे राज्य के लिए थियेन्-पिंग-संघाराम की सीमा के भीतर ही हो सकती थी। मैं और मेरे साथी इस बात का पूरा ध्यान रखते कि अयोग्य तरुण-तरुणी संघ में प्रविष्ट न होने पायें। उनकी विद्या, शील, बुद्धि आदि की हम पूरी परीक्षा करते। छह महीने तक बिना कपड़ा बदले ऐसे ही परीक्षार्थ परिवास कराते। जब यह मालूम हो जाता, कि वह केवल संसार से भागने के लिए नहीं आये हैं, बल्कि संसार के दुःख को हटाने के लिए कुछ कर सकते हैं, तभी प्रव्रज्या या उपसम्पदा देकर उन्हें श्रामणेर-श्रमणेरी या भिक्षु-भिक्षुणी बनाते। विनय-पिटक में दिये भिक्षु-भिक्षुणियों के नियमों को अनेक बार मैंने पारायण किया है, इन नियमों के बनाने में तथागत की सर्वज्ञता मुझे दिखलाई देती थी। भिक्षु-भिक्षुणी या श्रामणेर-श्रामणेरी बनाकर उन्हें निश्चित समय तक योग्य आचार्य-उपाध्याय के अधीन शिक्षा प्राप्त करने का नियम इसी तरह का है। संघ में प्रविष्ट होने वाले तरुण-तरुणियों की शिक्षा की ओर हम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ध्यान देते थे। नगर-प्राकार के भीतर भिक्षुणियों का संघाराम पहले से भी था, लेकिन रे काम के आगे बढ़ने पर वह अपर्याप्त हो गया। जिस तरह अच्छे-अच्छे भिक्षु हमें मिल थे, उसी तरह भिक्षुणियाँ भी मिलने लगीं। सम्राट् की एक भगिनी ने भिक्षु-दीक्षा ली अपना सर्वस्व लगाकर भिक्षुणी-संघाराम के पास उसने स्त्रियों के लिए एक विशाल कित्सालय बनवाया। इससे भी बढ़कर उसने जो काम किया, वह था बड़ी तत्परता के पुस्तक और प्रयोग के रूप में चिकित्साशास्त्र का अध्ययन करना। मुझे अपने जीवन की घड़ियाँ बड़ी सुन्दर मालूम होती हैं, जब मैं चिकित्सा के काम या प्रबन्ध में लगा रहता राजधानी या बाहर, जहाँ-कहीं भी जाता, मैं चिकित्सालय में रोगियों को देखने जरूर ता। उनके मुँह से उनकी दुख-सुख की बातें सुनकर मुझे बड़ा संतोष होता। मेरे संघनायक से पहले छी-राज्य में संघारामों और भिक्षु-भिक्षुणियों की कमी नहीं थी लेकिन, दस वर्ष इस पद पर रहने के बाद अब कोई बड़ा गाँव ऐसा नहीं था, जहाँ संघाराम के साथ छोटा- चिकित्सालय न हो। येह के संघाराम के उद्यान को और बड़ा बनाकर वहाँ हमने बहुत की औषधियाँ लगवाईं, दूसरी जगहों पर भी इस तरह के औषधि-उद्यान तैयार किये। -ठीक गुणवाली औषधियाँ लोगों को सुलभ हों, इसके लिये थियेन्-पिंग में औषधि-निर्माण- ला अलग बनवा दी। चिकित्सा में किसी देश या व्यक्ति का पक्षपात नहीं है, इसके बारे में साथी भी मुझसे सहमत थे। हमने केवल भारतीय आयुर्वेदिक औषधियों और निदानों ही स्वीकार नहीं किया बल्कि चीन के लोगों की समृद्ध चिकित्सा-पद्धति को भी अपनाया। त में घूमते समय किसी दवा या चीज का पता लगता, तो मैं तुरन्त संग्रह करवाता। विद्यार्थियों की संख्या कई सौ पर पहुँच गई, तो अन्त में थियेन-पिंग में चिकित्सा के लिए अलग विद्यालय बनाना पड़ा। हमारे हरेक काम में कला सम्मिलित रहती हैं, यह मैंने त्र संघारामों में देखा था। यदि कला की निपुणता को ही भिक्षु कायम रखते, तब भी की प्रतिष्ठा सब जगह अक्षुण्ण रहती। देवालय हो या प्रतिमागृह, स्तूप-उपोसथागार हो, साधारण भिक्षुनिवास, सभी जगह सुन्दर चित्रों, फूल-पत्तियों से उसे सजाना अच्छा समझा ता है। मैं भी इसको बहुत पसन्द करता हूँ। जब चिकित्सा विद्यालय के लिए शाला बनकर र हुई, तो हम लोग विचारने लगे, कि इसकी भीतों को कैसे अलंकृत किया जाये। मुझे समय एकाएक ख्याल आया, जेतवन में अत्यन्त बीमार पड़े भिक्षु की तथागत ने स्वयं षा की थी, उसी का चित्र बनाकर उनका यह वचन, क्यों न अंकित कर दिया जाय— णी की सुश्रूषा करना मेरी पूजा करना है।" गुणमित्र और दूसरे साथियों ने इसे बहुत द किया और शाला के प्रमुख स्थान पर दीवार में हमने इस दृश्य को अपने कुशल चित्र- र बुद्धमित्र द्वारा अंकित करवाया। उसके एक दृश्य में अस्थि-पंजर अवशिष्ट भिक्षु अपने ब-पाखाने में पड़ा हुआ है, तथागत तथा आयुष्मान् आनन्द उसे बड़ी करुणापूर्ण दृष्टि से रहे हैं। दूसरे दृश्य में जंताघर (स्नान गृह) में भिक्षु चारपाई पर लेटा हुआ है, चूल्हे में गरम हो रहा है, तथागत अपने हाथों से उसके पैरों को धो रहे हैं, आनंद उनके काम हायता कर रहे हैं। तीसरे दृश्य में रुग्ण भिक्षु को स्वच्छ बिस्तर लगाकर एक चारपाई लिटाया गया है और तथागत प्रसन्नमुख उसकी तरफ देख रहे हैं। पहले पहल मैंने इस के विचार को देकर उसे वहाँ अंकित करवाया था। उसका अनुकरण सारे राज्य की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हमारी चिकित्सालयों में होने लगा।

मुझे बाहर जाते ही रहना पड़ता, क्योंकि हर जगह संघ की व्यवस्था और चिकित्सालय को देखना मेरा कर्तव्य था। मैं इसके कारण किसी पर बोझ नहीं बनता था, क्योंकि मेरे पास कभी पाँच से अधिक भिक्षु नहीं रहते और हम सभी पिंडपातिक अर्थात् भिक्षा माँग कर खाने वाले थे। भिक्षु-भिक्षुणी सारे राज्य में बड़े सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे, क्योंकि वह केवल कंठस्थ किये हुये सूत्रों को तोते की तरह रटा नहीं करते थे, बल्कि लोगों के सुख दु:ख में हाथ बँटाते थे। हमने अपाहिजों और अन्धे-लूले-लंगड़ों के लिए भी शरण स्थान बनवाये। सम्राट् मुझे जो भी देते थे, उसका सद्व्यय मैं इसी तरह से करता रहता। यात्रा में जो भी दीन-दुखी मिलता, उसे मैं शरण स्थान में पहुँचाने, की व्यवस्था करता। मैंने देखा कहीं-कहीं लोगों को पानी का कष्ट है। वह दूर-दूर से पानी ढोकर लाते, गन्दा पानी पीते हैं, मुझे एक नया काम मिल गया। पहले कूयें को खुदवाते समय मैं कई दिनों तक नियमपूर्वक अपने सिर पर मिट्टी की टोकरी ढोता रहा। आस-पास के लोग सैकड़ों की तादाद में उस समय मेरी सहायता के लिए आ गये और कुछ ही दिनों में एक पक्का कुआँ तैयार हो गया। जब वहाँ के लोगों को नये कुयें का स्वच्छ जल पहले पहल पीते देखा, तो मेरा चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। मैंने यह निश्चय कर लिया कि सम्पूर्ण राज्य में कहीं कोई स्थान ऐसा नहीं होना चाहिए, जहाँ लोगों को पानी की तकलीफ हो। छी-राज्य मरुभूमि नहीं है, यहाँ सभी जगह धरातल से कुछ ही हाथों नीचे स्वच्छ मधुर जल मौजूद है, फिर लोगों को पानी की क्यों तकलीफ होनी चाहिये? मार्ग पर ऐसे स्थान भी थे, जहाँ आस-पास बस्ती न होने से कुआँ का अभाव था, जिसके कारण पथिकों को बहुत कष्ट होता था। मैंने एक ऐसे ही स्थान पर कुआँ बनवाया और गर्मियों के समय कितने ही दिनों तक पानी निकालकर अपने हाथ से प्यासे पाँथों को शीतल जल पिलाता रहा। एक-दो बातें करने में दिखावे की गन्ध आ सकती है, लेकिन यदि आप अपने जीवन के सभी जागृत क्षणों में वही करने के लिए तैयार हों, तो कोई दिखावे और दम्भ का लाँछन नहीं लगा सकता, यदि अपने स्वभाव के कारण कोई वैसा करे भी, तो क्या सुमार्ग से हमें भ्रष्ट होना चाहिये?

मेरा तूफानी जीवन समाप्त हो गया था। पर्यटन की इच्छा की तृप्ति छी-राज्य के भीतर घूमकर ही पूरा करता था। समय बीतने के साथ, जब चीनी भाषा और चीन के लोगों से मेरी घनिष्टता बढ़ी, तो इस बात की इच्छा जरूर होती थी कि देश के और भागों में भी जाऊँ। लेकिन, वैसा करने का अवसर नहीं मिलता था, क्योंकि मैंने संघनायक की जिम्मेवारी लेकर अपने पैरों में बेड़ियाँ डाल ली थीं। मैंने स्वीकार किया था, उसे स्वेच्छापूर्वक ही दीनों-दुखियों की सहायता करता था। आँसुओं के सूख जाने, मर्मान्तक पीड़ा के हल्की हो जाने के बाद प्राणी के चेहरे को जब परिवर्तित देखता, तो समझता मेरे अपने श्रम की मजूरी तुरन्त मिल गई। दूसरे कामों के लिए मेरा समय नाम मात्र ही खर्च होता था। अनुवाद का काम सिर्फ एक साल करके चार पुस्तकें समाप्त की थी, अध्यापन का काम भी मैंने अपने जिम्मे नहीं लिया था। मैं एकान्त मन से भेषज्य-गुरु के दिखलाये पथ पर चल रहा था।

मनुष्य के दु:खों को जब नजदीक से देखा जाये और उनके कारणों पर विचार किया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाये, तो उनकी जड़ बहुत गहरी मालूम होती है। जब तक जड़ को न हटाया जाये, तब तक पत्तों के नोंचने से रोग को दूर नहीं किया जा सकता। मुझे अपने चिकित्सालयों, शरणस्थानों, कूप-तड़ाग खोदने के कामों, और स्वयं सिर पर टोकरी उठाने या घड़े से पानी निकालकर प्यासों को पिलाने में तृप्ति मिली थी। मेरा चेहरा भले ही वहाँ के लोगों से भिन्न हो, किन्तु मेरा वेष सबसे गरीब भिक्षु जैसा था। मुझे देखकर लोग यही समझते थे कि मैं पश्चिम के बर्बर देशों में से कहीं का हूँ। आखिर कूची या कुस्तन (खोतन) के लोगों के रूप रंग से मैं भेद नहीं रखता था। कभी-कभी मैं चुपचाप अकेले वो-संग को लेकर राजधानी से दूर चला जाता और किसी सेवा के काम में लग जाता। पूर्वी समुद्र तट पर मैं बहुत जाया करता था। अनन्त समुद्र को देखने में मुझे आनन्द आता था। पृथ्वी के स्थल-मार्ग का बहुत-सा मैंने दर्शन कर लिया था, पर समुद्र में सिंहल जाते-आते ही कुछ दिनों यात्रा की थी। उसे अगम-अथाह समझता था। वहाँ देश-देशान्तरों से आये पोतों और वहाँ के आदमियों को देखता, तो फिर मन तरंगित हो उठता। उस समय मालूम होता, छी-भूमि ने मुझे खूँटे से बाँध रक्खा है।

घड़े और टोकरी को लेकर परिश्रम करने की ही मुझे आदत नहीं थी, बल्कि येह और महाप्राकार के निकट के नगर (कलगन) में रहने पर मैं कितनी बार घुमन्तुओं (त्योकों) के डेरों में जाता। घुमन्तू चीन में भी अपने व्यापार या किसी और काम से जब आते, तो अपने नम्दे के तम्बुओं को लेकर ही आते और नगर से बाहर अपनी सवारी या बार-बरदारी के पशुओं के लिए अनुकूल स्थान देखकर ठहर जाते। मैं उनकी भाषा बोल सकता था, उनके यबगु और कितने बेगों से परिचित था। उनको मुझे पहचानने में भी देर नहीं होती थी, इसलिए वह बड़ी श्रद्धा के साथ मेरी बातों को सुनते। मैं जानता था, इन लोगों का सारा खाद्य मांस पर निर्भर है, जो हिंसा के विना प्राप्त नहीं हो सकता। "लंकावतार-सूत्र" को पढ़कर ही मेरे मन में यह धारणा नहीं हुई थी कि मांस खाना बुरा है, और त्रिकोटि परिशुद्ध का नाम देकर शुद्ध (खाद्य) मांस कहना निरी वँचना है। मैं घुमन्तुओं के पास उपदेश करने जाता। उन्हें बहुत समझाता—तुम मांस खाना छोड़ दो। यदि उनके जीवन को उनके भीतर रहकर मैंने न देखा होता, तो शायद विश्वास भी करता; पर मैं भली-भाँति जानता था कि उनके जैसे जीवन वालों को मांस-भक्षण छोड़ना असम्भव है। इसीलिए मैं उनसे कहता—साल में महीने में चार या छह दिन मांस-भोजन छोड़ दो और अपने हाथ से जीव मारने से जहाँ तक हो सके, बचो। मनुष्य चाहे घुमन्तू हो, चाहे नगरवासी, पर स्वभावतः क्रूर और खून का प्यासा नहीं होता। जब उनमें से कुछ त्रिशरण और पंचशील लेकर प्रतिमास की दोनों अष्टमियों, अमावस्या तथा पूर्णिमा को मांस न खाने का व्रत ले लेते, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती। मैंने हजारों नहीं लाखों को अपने जीवन में इस तरह का व्रत दिलवाया। शायद उसके कारण मांस के लिए मारे जाने वाले लाखों प्राणियों की रक्षा हुई हो, लेकिन कभी-कभी मुझे यह निरा भ्रम मालूम होता है। मनुष्य ऐसे न मारे जाने वाले पशुओं को अवध्य नहीं कर सकता, या उसे जंगल में नहीं छोड़ सकता। आखिर उनके खाद्य पशु—भेड़-बकरियाँ, घोड़े-ऊँट या चमरी—उनके पास ही रहते हैं। अतिरिक्त होने पर वह उन्हें नगर-ग्रामवासियों के हाथ में बेंच देते हैं। वहाँ जाकर उन्हें अपनी मौत मरना होगा, यह विश्वास नहीं किया जा सकता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वस्तुत: रोगियों और अनाथों की सेवा, अहिंसा-व्रत का प्रचार मेरे जीवन का अभिन्न अंग बन गया था, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मैं अपने काम से नितान्त संतुष्ट था। जब उन पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगता, तो मुझे अपने पर अविश्वास होने लगता। लोग दीन और अनाथ हों, जिसमें हमें उनकी सेवा का अवसर मिले, यह कौन-सा अच्छा विचार है ? क्या उससे यह अच्छा नहीं कि कोई दीन और अनाथ दुनिया में रहे ही नहीं और हमें वैसा अवसर न मिले ? इस तरह के विचारों के आने से पहले मैं कूची और आगे के एक-दो नगरों में कुछ पारसीक साधुओं से भी मिल चुका था। येह में भी उनका एक आश्रम था और छंग-अन् में और भी बड़ा आश्रम था, जहाँ उनके विद्वानों के सम्पर्क में आने का मुझे अवसर मिला। पारसीक धर्म के अनुयायियों में एक नया पंथ स्थापित हुआ था, उसी तरह जैसे हमारे यहाँ हीनयान के साथ महायान। इस पंथ के गुरु मानी एक बड़े ही परोपकारी, विचारक तथा कलाकार पुरुष थे। वह अपने पुराने धर्मगुरुओं के समान ही बुद्ध में भी भक्ति रखते थे और वैसा ही उन्होंने अपने अनुयायियों को शिक्षा दी थी। वह हमारे विहारों और मन्दिरों में बड़े भक्ति-भाव से आते। मुझे यह देखकर दु:ख होता था कि हमारे भिक्षु उन्हें तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। मैंने इस दुर्भाव को हटाने में सफलता पाई। उन्हें हमेशा मैं बड़े स्नेह और सम्मान की दृष्टि से देखता। प्राणी मात्र की सेवा के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग करने वाले बोधिसत्वों के मार्ग के पथिकों के अनुरूप यह भाव बिल्कुल नहीं है। जब प्राणी मात्र हमारे सेव्य हैं, तो उनके प्रति सेवक का इस तरह का मनोभाव कब उचित हो सकता है ? अवसर मिलने पर वह अपने धर्म और गुरुओं की शिक्षा के बारे में कहते। येह में उस वक्त मेरी ही उमर के एक मानीपंथी साधु रहते थे उन्होंने जो करुण कथा मुझे सुनाई, उसे सुनकर मैं बड़ा ही खिन्न और अपने कामों से कुछ असंतुष्ट भी हुआ। उस समय यहाँ आये मुझे दस साल हो गये थे, मेरी उमर 50 साल की थी और वही उस मित्रदात साधु की भी थी। कुछ ही समय में हमारी इतनी घनिष्टता हो गई कि मेरे कितने ही पर्यटनों में मित्रदात भी मेरे साथ रहते। वह बतलाते थे। मैं उस समय दस साल का था, जबकि रोमांचकारिणी घटना घटित हुई। मानी के उत्तराधिकारी हमारे गुरु मज्दक जीवन भर लोगों को सुखी रखने का रास्ता कार्य रूप में बताते थे। उनकी शिक्षा थी, दोनों और रोगियों की सेवा-सुश्रूषा करना बहुत ठीक है, लेकिन इससे दु:ख की जड़ नहीं दूर हो सकती। दूर करने का एक ही रास्ता है और वह है पुरुष-पुरुष में धन-सम्पति की विषमता न रह जाये न कोई आदमी भूखा रहे, न कोई धन-वैभव में डूबा। उन्होंने हमारे देश में बड़ी सफलता पाई। गाँव के गाँव और नगर के नगर उनके बतलाये मार्ग पर चलने लगे। समता का एक छत्र राज्य चारों तरफ दिखलाई पड़ने लगा। उनके प्रभाव के कारण शाहानुशाह कवाद भी उनका अनुयायी हो गया। लेकिन, धनी—जिनके मुँह में गरीबों का खून लग गया था—अपनी सम्पदा को हाथ से जाते देख कैसे चुप रह सकते थे ? उन्होंने बराबर इस बात की कोशिश की कि गुरु मज्दक अपने उद्देश्य में सफल न हों। मैं दस साल का था, जबकि बूढ़े कवाद का तरुण बेटा अनवशकखाँ (नौशेरवाँ, खुसरो) उनका हथियार बना और हमारे सारे देश में तथा राजधानी में वह भीषण खूनी कांड हुआ, जिसको याद करके आज भी मुझे रोमांच होता है, आँखें आँसू बरसाने की जगह घृणा की बरसाने लगती हैं, यद्यपि मैं यह जानता हूँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि यह गुरु के उपदेश के विरुद्ध है। हमारे गुरु कहते थे, "स्वर्ग को इसी पृथ्वी पर लाना है, मेवों के बगीचे, मधु और दूध की नदियाँ यहीं बहानी हैं। यदि मनुष्यों का खून चूसने वाले न रहें, अर्थात् उनको वैसा करने का अवसर न मिले, तो निस्सन्देह स्वर्ग भूमि पर उतर आयेगा।" आज भी मैं अपनी आँखों देखे उस भीषण कांड को भूला नहीं हूँ। गुरु के उपदेश से नहीं, बल्कि उनके कामों से लोगों की गरीबी दूर हो गई। हमारे गाँवों में तरह-तरह के स्वादिष्ट मेवों के बाग लगे। अतिथियों की दिल खोल कर सेवा की जाती। गुरु का कहना था कि केवल सम्पति में ही मेरा-तेरा का भाव बुरा नहीं है, बल्कि विवाह भी मेरे-तेरे के भावों को पैदा करके अपनी सन्तान के प्रति पक्षपात का कारण होता है। सारा देश तब तक कुटुम्ब नहीं बन सकता, जब तक कि विवाह-प्रथा मौजूद है। उनके कहने पर लोगों ने विवाह प्रथा छोड़ दी। मैं अपनी माँ को जानता हूँ, लेकिन कौन मेरा पिता था, यह नहीं बतला सकता। खुसरो ने राजधानी तसपोन में उस दिन अपने प्रासाद के सामने मानव शरीरों का उद्यान खड़ा किया था, स्त्री-पुरुषों के सिर को जमीन में गाड़ पैरों तथा हाथों को ऊपर रक्खा गया था। मज्दक के शिष्यों को वह हत्यारा कह रहा था—"लो, यह है तुम्हारा भूमि पर उतरा स्वर्ग।" राक्षस ने हम बालकों को वहाँ खड़ा करके इस दृश्य को खास तौर से दिखलाया, जिसमैं हमारे हृदय में मज्दक की शिक्षा का कोई प्रभाव न रह जाये। जिस किसी को भी उसने मज्दक का धर्मदूत समझा, उसको जीवित नहीं छोड़ा। सबसे बड़ी बिडम्बना यह है कि वह राक्षस खुसरो आज अद्वितीय न्यायावतार माना जा रहा है।

मित्रदात की करुण कथा ने मेरे हृदय पर स्थायी प्रभाव डाला। पारसीक देश की खून-खराबी से ही मेरा हृदय दुःखी नहीं हुआ, बल्कि मैं सोचने लगा। तथागत ने भी दुःख हटाने के मार्ग का उपदेश किया है। महायान् तो हमारे सामने यही एक मात्र कर्तव्य रखता है कि जब तक संसार में एक भी प्राणी दुःखी है, तब तक अपने निर्वाण की कामना करना अनुचित है। बुद्ध के प्रशंसक मानी तथा उसके उत्तराधिकारी मज्दक भी अपने देश में उसी काम को कर रहे थे। उनका रास्ता ज्यादा खतरे का था, लेकिन हो सकता है, वही दुःख के हटाने का ठीक रास्ता हो। यह तो मैं भी देख रहा था कि सारे चिकित्सालाओं और अनाथाश्रमों के होते हुये भी अभाव के कारण होने वाले दुःख की जड़ को मैं नहीं काट रहा हूँ। मैं कितनी ही बार सोचने लगा, मनुष्यों में सम्पत्ति की जो विषमता है, वही सबसे अधिक दुःखों का कारण है। संम्राटों या सामन्तों को वैभव में इतना डूबे रहने का क्या अधिकार है? यह वैभव तथा धन उसके प्रासादों में आकाश से नहीं टपकता। परिश्रम करते-करते लोगों की कमर टूट जाती है, तब यह बहुमूल्य धातुओं और रत्नों के जेवर प्राप्त होते हैं, ये नाना प्रकार के स्वादिष्ट खाद्य प्रस्तुत होते हैं, महार्घ मृगचर्म तथा पट्ट (रेशम) वस्त्र तैयार होते हैं। इन सबको जो हाथ तैयार करते हैं, वहीं दुनियाँ में सबसे गरीब हैं। जो अपने हाथ से एक तृण भी न हटाने की शपथ खाये हुये हैं, वह मौज में रहते हैं। इसके लिए यह कहना कि वह अपने पूर्व के कर्म का उपभोग कर रहे हैं, सारे दुःखों की जड़ इस विषमता को कायम रखने का प्रयत्न है। यदि कर्म का फल होना ही है, तो वह आदमी आदमी में बुद्धि और प्रतिभा की विषमता द्वारा हो सकता है। दाने-दाने के लिए मोहताज करते आदमी को पशु से भी नीचे गिराने की उसके लिये कोई जरूरत नहीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खुसरों की आज्ञा से जिस वक्त दूसरे लड़के नकली बापों में बाँटे जा रहे थे, उस समय मित्रदात को किसी छोटे-मोटे सामन्त का पुत्र बना दिया गया। उनको अपनी माँ के प्रति असाधारण प्रेम था, जिसे उस दिन राजागण में सिर गाड़ कर मानव-वृक्ष का रूप दिया गया था। जिन स्तनों के दूध को पीकर वह इतना बड़ा हुआ था, वह वहाँ निर्जीव और नंग थे। दोनों पैर आसमान की ओर खड़े थे और दोनों हाथ जमीन के भीतर से निकली हुई दो शाखाओं की तरह थे। गाड़ने के साथ ही प्राण निकल चुके थे। जब प्राण निकल गये, तो निर्जीव शरीर मिट्टी से बढ़ कर नहीं रहता, उसके साथ-चाहे जो भी करो। अधम पशु खुसरो को वह दृश्य-देखकर अपनी सफलता पर संतोष हो सकता है लेकिन उन माँ-बापों की सन्ताने उसे कैसे सहन सकती थीं? खुसरो ने अपने आतंक से मज्दक के अनुयायियों का उच्छेद कर दिया, उस पंथ के दृढ़ अनुयायियों के बिन-बिन कर खतम किया और उनके बच्चों को इस तरह बाँट कर रख दिया, जिससे मज्दक की शिक्षा आगे न बढ़े। मित्रदात छह वर्ष तक अपने कृत्रिम पिता के यहाँ आराम से रहा, लेकिन माँ की उस अवस्था का नग्न शरीर सदा उसकी आँखों के सामने रहता, वह स्वप्न में उसे देखता और कितनी ही बार माँ धरती से मुँह निकाल कर हँसती हुई कहती—"बेटा, डरो मत। मनुष्य जाति का कल्याण इसी रास्ते से है, चाहे वह आज हो, या हजार वर्ष बाद"। मित्रदात को अपनी माँ की बात पसन्द थी। मज्दक और मानी की क्या शिक्षा थी, यह जानने के लिए अपने देश में सुभीता नहीं था। लोग डर कर बदल गये थे, पर कितने ही विचार छोड़ने की जगह अपने देश को छोड़ कर येथों (हेफ्तालों, श्वेत हूणों) के राज्य में चले गये। सोलह वर्ष के होते-होते मित्रदात उनकी खोज में निकला। उसे अपने उद्देश्य में सफलता मिली और बिखरे हुए अपने धर्म-भाइयों के सत्संग के लिए वह देश-विदेश में मारा-मारा फिरा। अब वह यहाँ महाचीन देश में था। मैं सोचता था—धनी-गरीब का भेद मिटाकर ही संसार में मनुष्य जाति को दुःख सागर से उबारा जा सकता है। लेकिन ऐसा करने में क्या हर देश में खुसरो अनवशकरवाँ नही पैदा होंगे? पैदा हो सकते हैं, लेकिन कितने दिनों तक वह पृथ्वी पर स्वर्ग की उतरने से रोकेंगे। आखिर अनवशकरवाँ मुट्ठी भर होंगे और जिनका हित होने-वाला है, वही सबसे अधिक संख्या में हैं। उसके ऊपर जब तक भ्रम और अज्ञान का जाल फैला रहेगा, तभी तक यह मुट्ठी भर खूनी अपना काम कर सकते हैं। खुसरो ने अपने हाथ से दो-चार ही को मारा होगा, उसके सामन्तों ने दस-बीस को मारा होगा, लेकिन बाकियों को मारने-वाले खड्ग तो उन्हीं के हाथों के थे, जिनके कल्याण के लिये मज्दक ओर उनके शिष्यों ने हँसते-हँसते अपने बलिदान किया। नहीं, खुसरो अनवशकरवाँ हमेशा अपने दुरुद्देश्य में सफल नहीं होंगे। तथागत ने बहुजन-हिताय बहुजन सुखाय हमें संसार में चारिका करने का उपदेश किया, उस पथ से हमें भ्रष्ट नहीं होना है। हाँ, यह अवश्य है, एक दो आदमी इस तरह का महान् परिवर्तन नहीं कर सकते, जिस बहुजन के हित और सुख की स्थापना करनी है, उन्हीं के हाथों यह काम पूरा होगा। वहीं जब इसके के लिये कटिबद्ध हो जायेंगे, तो कोई रोक नहीं सकेगा।

तथागत ने हमें मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा रखने का उपदेश दिया। किसी से घृणा या वैर नहीं करना चाहिए। वैर से वैर शान्त नहीं होता, इस सत्य से मैं इन्कार नहीं करता, लेकिन सच बताऊँ, मित्रदात से जब मैंने वह भयंकर गाथा सुनी, तो खुसरो जैसों के प्रति मेरे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में अपार घृणा पैदा हो गई। उसी समय मैं बीमार पड़ गया। मैं उस वक्त राजधानी से दूर था। मेरे मित्र मुझे उठा कर येह में ले गये। पेट में असह्य शूल उठता था, दांतों को होंठों पर दबा कर मैं उसे सहने की कोशिश करता था। लेकिन, उस समय भी मैं अपनी पीड़ा के सामने हृदय में वैठी घृणा को भूल नहीं सकता था। मुझे अत्यन्त रुग्ण सुन कर अपनी राज्ञी के साथ सम्राट हाउ चू मुझे देखने के लिए संघाराम में आये। यह मेरा असाधारण सम्मान था, चीन के सम्राट देव-पुत्र हैं, उनके दर्शन से लोग अपने को कृतकृत्य समझते हैं। देवपुत्र स्वयं मुझे देखने वहाँ आये थे। मेरी चारपाई के पास उनके लिए आसन रख दिया गया। कितनी ही देर तक वह मेरे स्वास्थ्य के बारे में पूछते रहे। उनके चेहरे और स्वर से मालूम होता था, कि उन्हें मेरे लिये दुःख हो रहा है। छी-वंश के वह सबसे बड़े सम्राट थे और उन्होंने सबसे अधिक—बारह साल (565-77 ई०) तक—शासन किया था। उनके साथ इस वंश की राजलक्ष्मी विदा हो गई। नाम मात्र के ही उनके दो उत्तराधिकारी कुछ दिनों तक शासन कर सके। सम्राट का व्यवहार बहुत स्नेह और सम्मान का था। मित्रदात भी मेरी सुश्रूषा में उपस्थित थे, ऊनकी आँखों में मैं खुसरो को देख रहा था, फिर सम्राट की ओर नजर जाते ही उनके चेहरे में वहीं खुसरो मुझे दिखलाई पड़ने लगा। यह क्यों हैं? इनका सबसे बड़ा काम है मनुष्य-मनुष्य के भीतर विषमता को कायम रखना। हमारे सार्थवाह के पास लाखों की संपत्ति है। राजभवन कीं सम्पत्ति को देखकर लोगों की आँखें चौंधिया जाती हैं। यदि मालूम हो कि मैं इस विषमता को दूर करने के लिए प्रयत्न कर रहा हूँ, तो क्या वे ऐसे रहेंगे? क्या उस समय मुझे सम्मान की दृष्टि से देखेंगे अथवा रोगशैयया पर पड़े रहने पर इस तरह पूछ-ताछ के लिए आयेंगे। कभी नहीं। यह सारा सम्मान-प्रदर्शन तभी तक है, जब तक मैं विना सींग-की गौ हूँ, इनको मुझसे कोई भय नहीं। उस समय मुझे अपने ऊपर बहुत संयम करना पड़ा। कहीं ऐसा न हो कि शिष्टाचार के विरुद्ध कोई बात मेरे मुँह से निकल आये। पर मुझे अपने प्राणों का इतना प्रेम है कि मैं उनसे जनसेवा का काम लेना चाहता हूँ।

बीमारी कठिन थी, लेकिन गुणमित्र और दूसरे बन्धुओं को यह पसन्द नहीं था कि मैं अभी चल बसूँ। मैं अच्छा हो गया। चारपाई पर पड़े-पड़े एकान्त घड़ियों में सोचते मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यद्यपि आततायी के प्रति सहानुभूति दिखलाना उचित नहीं है, पर हम व्यक्ति को विषमता के लिए दोषी नहीं ठहरा सकते। इसमें एक वर्ग का अपना स्वार्थ है, सम्राट मर जाये, तो इससे यह विषमता दूर हो सकती है? एक सम्राट मरेगा, दूसरा उसकी जगह आ जायेगा, एक सामन्त या सार्थवाह खतम हो जायेगा, तो उसकी जगह सूनी नहीं रहेगी। जब तक ऐसी परिस्थिति न पैदा कर दी जाये, जिसमें ऐसा होना सम्भव ही न हो, तब तक वैयक्तिक ईर्ष्या या हिंसा से भी काम नहीं चल सकता। इसके लिए बहुजन को युद्ध करना होगा, पर अन्तिम सफलता जल्दी होगी, इसकी आशा नहीं करनी चाहिये।

दुःख-निरोध के लिए मुझे एक दूसरे मार्ग की झलक दिखलाई पड़ी, किन्तु मैंने अपने जीवन में क्या किया? वही जो कि पहले करता आया था, रोगियों—भूखों-अनाथों की तन-मन से सेवा। स्वास्थ्य लाभ करने के बाद फिर मैं उसी तरह घूमते या राजधानी में रहते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसी काम को करता रहा। इसी समय (563 ई०) मैंने "अभिधर्महृदयशास्त्र" का भाषान्तर किया। भाषान्तर की जगह मेरी तो इच्छा होती थी कि मज्दक के उपदेश के बारे में "मज्दकपरिपृच्छा" लिखूँ। मैंने इस इच्छा को कार्यरूप में परिणत भी किया, लेकिन मुझे आशा नहीं, वह मेरे जीवन के बाद भी मौजूद रहेगा। राजाओं और सामन्तों के अत्याचारों के प्रति घृणा करते हुए कितने ही लोक गीत बनाये और गाये जाते हैं, जिनमें कविता का वह रस आता है, जिसे न हम कालिदास की कृतियों में पा सकते हैं, न अश्वघोष की। किन्तु, क्या वह चिरस्थायी हो पाते हैं? चिरस्थायी होने के लिए उन्हें तालपत्र या कागज पर उतरना चाहिये और एक बार उतरने से कुछ नहीं हो सकता। हमारी धर्म पुस्तकों की तरह उन्हें बार-बार उतरते रहना चाहिये, तभी वह शताब्दियाँ पार कर सकती हैं। मुझे विश्वास नहीं, कि "मज्दक परिपृच्छा" चिरस्थायी हो सकेगी। मुझे तो अभी ही उसे गुप्त रखने का प्रयत्न करना पड़ता है। यदि कहीं इसका पता प्रभुओं को लग जाये, तो वह उस पुस्तक को नष्ट करके ही संतुष्ट नहीं होंगे, बल्कि लिखने वाले को भी सुरक्षित नहीं छोड़ेंगे। इसे मेरी कायरता कहा जा सकता है, लेकिन वर्तमान स्थिति में मैं जो कुछ सेवा कर रहा हूँ, उससे भी लोग वंचित हो जायें, यह मुझे पसन्द नहीं। वर्तमान से मुझे भले ही निराशा हो, लेकिन बहुजन से मुझें निराशा नहीं, विशेषकर महाचीन के बहुजन से जिसने अत्याचारियों की तलवारों से डर कर अपने पथ को सदा के लिए कभी नहीं छोड़ा, यह तथागत के शासन पर हुए, अत्याचारों से मालूम है। हजारों की संख्या में बौद्ध-भिक्षु और भिक्षुणी, उपासक और उपासिकाओं ने हँसते-हँसते दहकती आग को आलिंगन किया, लपलपाते खड्ग के सामने सिर कर दिया, तथागत ने जो दुःख-निरोध-मार्ग बतलाया था, उसी के लिए उन्होंने यह सब किया। दुःख-निरोध-मार्ग को ये कभी नहीं छोड़ेंगे, यह मुझे पूरा विश्वास है। अन्त में खुसरो जैसे राक्षस अत्याचार करते-करते खतम होकर रहेंगे और भूमि पर स्वर्ग वस्तुतः उतरेगा।

झंझा में

(577–81 ई०)

येह का सन्तोषदायक निवास खतम होने को आया। मैंने "चन्द्र गर्भ सूत्र" (566 ई०) और "पितापुत्र-समागमसूत्र" (568 ई०) के अनुवाद कर डाले। अपने अन्तिम समय में सम्राट् हाउ-चू मेरे कार्य में और भी अधिक सहायता करने के लिए हर समय उद्यत रहते थे। काम वही था, जिसके बारे में मैं बतला चुका हूँ और जिसे मैं रोगों की असली औषधि नहीं समझता। छी वंश की निर्बलता अब स्पष्ट दिखाई पड़ती थी। सामन्त और राजपुरुषों के अत्याचारों पर नियंत्रण रखना मुश्किल हो गया था, तो भी सम्राट् हाउ-चू के जीवन तक उतनी अशान्ति नहीं हुई थी। उसके उत्तराधिकारी अन्-तेह् यांग (577 ई०) और यू-चू (577 ई०) निर्बल, अयोग्य और विलासी थे। छंग-आन का चाउ वंश बराबर लम्लच भरी दृष्टि से येह की ओर देख रहा था। छंग-आन पुरानी राजधानी है। बड़े-बड़े राजवंशों ने यहाँ रहकर महाचीन पर शासन किया। पे-वेई वंश को लेते समय उसके अमात्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ने ख्याल किया था कि मैं सारे राज्य का अधिकारी बनूंगा, लेकिन उससे पहले ही पे-छी-वंश ने उसके पूर्वी भाग को सँभाल लिया। वंश-स्थापक शिवों मिन-ती (566-57 ई०) जिस बात में असफल रहा, उसे उसके द्वितीय उत्तराधिकारी यू-ती (561-78 ई०) ने पूरा किया। छी-वंश खतम हुआ और पेव-चाउ दोनों राज्यों का स्वामी बना। बू-ती उस विजय का उपभोग कुछ ही महीनों कर सका। उसके बाद शु-येन-ती (57-8-80 ई०) गद्दी पर बैठा। राज्य-परिवर्तन के बाद येह अब राजधानी नहीं रह गई, तो भी उत्तरी घुमन्तुओं के रास्ते का सबसे नजदीक का सबसे बड़ा नगर होने के कारण अभी भी उसकी स्थिति दीन-हीन नहीं हुई थी। बू-ती ने पुराने राजवंश के विश्वासपात्रों से खतरा समझ कर उनकी शक्ति का उच्छेद करना आवश्यक समझा। छी-वंश के प्रभाव को बढ़ाने में हमारा भी कुछ हाथ समझा जाता था, हम बहुजन-हिताय जो सेवा करते रहे, उसके कारण हमारे प्रति और हमारे सहायक छी सम्राट के प्रति लोगों का सद्भाव था। वूने हमारे काम पर प्रहार करना शुरू किया, जिसके कारण मुझे, मित्रदात और बोसंग के साथ राजधानी छोड़ देना पड़ा। उसके उत्तराधिकारी श्वेन् तीने तो अपने दो साल (578-80 ई०) के शासन में गजब ढा दिया। छंग अन में उसने उतने अत्याचार नहीं किये और वहाँ अब भी भिक्षुओं का कुछ कुछ सम्मान था, पर छी-राज्य में तो वह भिक्षु-भिक्षुणियों को फूटी आँखों भी नहीं देखना चाहता था। उसने हुकुम निकाला था: "शाक्य-श्रमणों के काम को जबर्दस्ती बन्द किया जाये, भिक्षु-भिक्षुणियों को चीवर छोड़कर गृहस्थ बनने के लिए मजबूर किया जाये और जो न माने, उसे प्राणदंड दिया जाये"। मैं अपने पथ को नहीं छोड़ सकता था और पकड़े जानें पर प्राण गँवाने के सिवा और कोई लाभ नहीं था। मेरे मित्रों ने नहीं चाहा कि मैं इस तरह अपने जीवन का अन्त कर दूं। जीवन रहने पर मैं फिर अपने काम को जहाँ भी रहूँ, चालू कर सकता था। इससे भी बढ़कर डर था, मेरे बलिदान के निश्चय करने पर कितने ही मेरे मित्र मेरा अनुगमन करते, तो जो बहुजन की सेवा का मार्ग हमने खोला था, वह हमेशा के लिए बन्द हो जाता। चीवर मैंने नहीं छोड़ा। यह निश्चय कर लिया था कि प्राणों के साथ ही यह मेरे शरीर को छोड़ेगा। लेकिन ऊपर से मैंने गृहस्थों का चोगा पहनना मंजूर किया। हम देख रहे थे, किस तरह हमारे चिकित्सालयों को जबर्दस्ती बन्द कर दिया गया। पहले नये राजवंश ने वैद्यों को रखकर उन्हें चलाने की कोशिश की, लेकिन न वह उतने योग्य थे, न उनमें वह सेवा-भाव था। ऊपर से राज्य खर्च के लिए पर्याप्त द्रव्य देने के लिए तैयार नहीं था। दुःख-त्राण के लिए जो स्थान और आश्रम हमने 18 वर्ष की मेहनत से तैयार किये थे, वह देखते-देखते उजड़ गये। जहाँ भी हम जाते, वहाँ उनके सँभालने की कोशिश करते, लेकिन फिर उस जगह पर रहने का हमें अवसर नहीं मिलता था। अन्त में यह नौबत आई कि हमें उत्तर के देश को छोड़कर दक्षिण की ओर जाने के लिए मजबूर होना पड़ा। महाचीन देखने की इच्छा इस प्रकार हमारी तृप्त हुई, किन्तु कितने घाटे और मानसिक यातना के साथ।

चाउ वंश अब हमारा कुछ नहीं कर सकता था, लेकिन हम भी यहाँ नये स्थान में नये सिरे से अपने कार्य को फैलाने में सफल नहीं हो सके। मैं इसे अपनी आयु का दोष समझता हूँ। 59 वर्ष का हो गया था, जबकि मुझे अन्तर्धान होना पड़ा। 60 वर्ष की सीमा पार करते-करते एक तरह का ऐसा मानसिक अवसाद हुआ, कि मेरे सभी मनसूबे और संकल्प ढीले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पड़ने लगे। 60 वर्ष की सीमा, जान पड़ता है, जीवन की बड़ी सीमा है। उससे पहले आदमी को दिल से विश्वास नहीं होता कि मैं जीवन के दूसरे छोर पर पहुँच गया हूँ। अब यह ख्याल पैदा होने लगा, कि चला-चली की बेला आ गई है। हो सकता है, दस वर्ष बाद आये या उससे अधिक समय बाद, किन्तु अवस्था अनिश्चित हो जाती है। यदि किसी किसान को यह पता हो, कि जिस बीज को मैं खेत में बोने जा रहा हूँ, उसके उगने और फलने-फूलने से पहले ही मैं नहीं रहूँगा, तो वह क्यों घर के अन्न को खेतों में बखेरने जायेगा। कुछ ऐसी ही अवस्था मेरे मन की भी थी। फिर से काम फैलाने में समय की आवश्यकता है, साथी भी अब कम हैं, नींव डालते-डालते कहीं नींव डालने वालों का पता ही नहीं रहे। सचमुच 60 वर्ष की आयु में जब मैं पीत नदी के दक्षिण तट पर उतरा, तो मैं बिल्कुल बदला हुआ आदमी था। जान पड़ता था, मैं कहने के लिए ही जीवित हूँ, अन्यथा आशाओं और आकांक्षाओं के सम्बन्ध में मृत हो चुका हूँ। मेरे पैर कहीं खड़ा होना नहीं चाहते थे। मैं बराबर एक जगह से दूसरी जगह घूमता रहा, लेकिन अब वह ऐसे भी नहीं थे, कि बहुत दूर जाने के लिए तैयार हों। पहला जीवन होता, तो इस अवसर से लाभ उठाकर मैं द्वीपान्तरों की सैर करता। यवद्वीप के बारे में मैंने सुना था, सिंहल में एक बार वहाँ जाने वाले पोतों को देखकर चलने की इच्छा भी हो गई थी, लेकिन उस वक्त तो उत्तर के मार्ग से महाचीन जाने की धुन सवार थी।

मुझे अब मालूम हो गया कि पैर तो मेरे शायद चलते ही रहें, क्योंकि किसी काम में आसक्ति नहीं थी, किन्तु अब मेरा चलना कोल्हू के बैल की तरह होगा।

भारत में भी उत्तर-दक्षिण का भेद है, वैसे ही महाचीन में भी उत्तर-दक्षिण का भेद है। तथागत का शासन यद्यपि दोनों खंडों में एक-सा ही है, किन्तु उसके रीति-रिवाजों में कुछ अन्तर आ गया है। उत्तरी चीन अपने उत्तर और पश्चिम के घुमन्तुओं की सीमा पर हैं, जहाँ से लूटने या शरण लेने के लिए अनादिकाल से घुमन्तू आते रहे और शताब्दियों तक उत्तर पर शासन भी करते रहे, यह हम बता चुके हैं और यह भी कि चीनी जन-समुद्र में वह नाम रूप खोकर विलीन होते गये। चीन का रंग बहुत पक्का है। यद्यपि घुमन्तुओं जितना तो नहीं, लेकिन हजारों की संख्या में भारतीय आये, जिनमें से कितनों की दूसरी-तीसरी पीढ़ियाँ अपने भारतीय पूर्वजों को अच्छी तरह जानती हैं और कितनों के पिता-पितामह अभी जीवित हैं। लेकिन, उनके देखने से मुख पर हमारा कोई भी छाप नहीं मालूम होती। इतनी जल्दी और सदा के लिए मुखमुद्रा का परिवर्तन और जातियों में नहीं देखा जाता। तो भी आगन्तुकों को अपने में हजम करने पर उनकी कितनी ही बातें भी लेनी पड़ती हैं और उच्च कुल का अभिमान भी खर्च होता है, इसलिए दक्षिणी चीन के लोग उत्तरी चीन वालों को उतनी ऊँची नज़र से नहीं देखते। यही बात भारत में भी हुई है। खश, यवन, शक, येथा आदि कितने ही जातियाँ बाहर से आकर उत्तरी भारत के लोगों में मिल गईं। उत्तरी भारत ही क्यों, दक्षिण के पल्लव (पह्लव) भी तो मूलत: बिदेशी थे। वहाँ दक्षिण वालों को हीन समझा जाता है, यद्यपि वहाँ के लोगों में उत्तर वालों की अपेक्षा बहुत कम मिश्रण हुआ है अर्थात् एक तरह से हमारे यहाँ रक्त मिश्रण को गुण माना गया है और चीन में उसे दोष। पर, यहाँ मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ, कि चीन में छुआछूत को कोई जानता भी नहीं और किसी जाति के प्रति वैसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भावना नहीं रक्खी जाती, जैसी भारत में। अपनी कुल-परम्परा का गौरव दक्षिण चीन अधिक शुद्ध मानते हैं। वह अपनी भाषा को अधिक समझते हैं और उत्तरी भाषा को रों द्वारा दूषित कह नाक-भौं सिकोड़ते हैं।

दक्षिण की महानदी (यांग-ची क्यांग) पीत नदी (ह्वांग हो) जैसी-ही विशाल हैं। नों ही हमारे भारत की किसी भी नदी से बड़ी हैं। सीमान्त दक्षिण की महानदी के धिकार-क्षेत्र तक है। चीनी लोग अपने सारे देश को एक मानते हैं और शताब्दियों तक वह राज्य रहा भी है, किन्तु सामन्त-कुलों की स्वेच्छाचारिता और स्वार्थान्धता ने उसे अनेक खंड-खंड किया और फिर उन मेंड़ों को तोड़कर एक बनाया गया। चिन्-वंश (255-06 ई० पू०) ने ऐसा ही किया था और उसी के कारण बाहर वाले इस देश को चीन हने लगे। उसके उत्तराधिकारी हान-वंश (208 ई० पू० 220 ई० पू०) ने भी सवा चार वर्षों तक चीन को एक करके रक्खा। इसी समय (208 ई० 25 ई०) सवा दो सौ वर्षों अधिक समय तक छंग-अन महाचीन की राजधानी रही, फिर ढाई सौ वर्षों (25 220 ई०) लिए लोयांग को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। छांग-अन और लोयांग का नाम आज भी लोग सम्मान से लेते हैं। वहाँ एक से एक कला के नमूने और विद्या के केन्द्र बने। हरेक सम्राट अपनी राजधानी को सजाने में कोई कसर उठा नहीं रक्खी, किन्तु कोई राजवंश सदा नहीं सकता। वंश परिवर्तन शान्ति के साथ नहीं बल्कि आग और तलवार से होता है, जिसमें जधानियाँ राजदुर्ग होने के कारण सबसे अधिक ध्वस्थ होती हैं। हान वंश के बाद दूसरे न वंश (265-420) ने [छंग-आन, लोयांग (265-316 ई०) और नानकिंग (317—20) ई०)] सारे चीन पर शासन किया। इसके बाद दक्षिण-उत्तर का विभाजन हुआ। क्षिण में कई राजवंशों ने नानकिंग (420—859 ई०) और चियांग-लिंग (520—589 ०) से शासन किया।

नानकिंग (दक्षिणी राजधानी) अरुण सुवर्ण पर्वतों से घिरा तथा महानदी (यांगजू) किनारे अवस्थित बड़ी ही सुन्दर नगरी है। गंगा और सिंधु की तरह यह महानदी भी श्चिम के हिमवान पर्वतों से निकलती है। नानकिंग केवल सारे दक्षिण चीन की राजधानी नहीं, बल्कि विद्या और कला का केन्द्र होने से भी हमारे लिए आकर्षण रखतीं थी। परन्तु वहाँ रहने के लिए तैयार नहीं था। डर था, कि छी-राज्य के संघनायक को वहाँ लोग हुचाने बिना नहीं रहेंगे। स्थविर परमार्थ के प्रति मेरी बड़ी श्रद्धा थी। उन्होंने वर्ष तक 548-557 ई०) यहाँ रहकर बहुत से ग्रन्थों का अनुवाद किया। पहले लियांग-वंश के समय 502-557 ई०) किया और उसके बाद छेन-वंश के समय (577-83 ई०) में बारह वर्ष 557-569 ई०) तक कितने ही विशाल और गम्भीर ग्रन्थों का अनुवाद किया जिनमें विज्ञप्तिमात्रतासिद्ध", "तर्कशास्त्र", "अधर्मकोश" जैसे ग्रन्थ भी हैं। मैं नौ वर्ष पहले यदि या होता, तो उज्जयिनी में पैदा हुये इस महाविद्वान से मिलने का सौभाग्य प्राप्त करता।

हम मुश्किल से चार दिन नानकिंग के एक छोटे से संघाराम में रहे। उत्तर के भागे ये सामंत, राजपुरुष, कवि, कलाकार आकर यहाँ बस गये हैं, इसलिए इस नगर की हर रह से समुन्नति बड़ी जल्दी हुई। घुटने तक लम्बे तथा बहुत लम्बी चौड़ी अस्तीनों वाले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जामों को पहने यहाँ के सम्भ्रांत पुरुष या महिलायें अपने अनुचरों के साथ जब राजपथ पर चलती हैं, तो धीमी हवा से उनके उड़ते हुये कपड़े भले ही किसी कवि को बड़े सुन्दर प्रतीत होते हों, किन्तु मुझे तो हमेशा दुःख का असली कारण सामने दिखाई पड़ता था, जो यही विषमता थी। समुद्र नजदीक तथा अधिक दक्षिण होने के कारण गर्मियों में यहाँ हमारे देश के किन्हीं-किन्हीं स्थानों जैसी गर्मी पड़ती है, पसीना भी आता है। किन्तु, साथ ही यहाँ वर्षा बहुत होती है। नदी में तरह-तरह की छोटी और बड़ी नावें और राजपथ पर पहिये वाली गाड़ियाँ चलती रहती हैं। प्रधान सड़कों पर धनिकों की गगनचुम्बी अट्टालिकायें खड़ी हैं।

मुझे परमार्थ के दायक सम्राट वू-ती की (502—549 ई०) की कथा बड़ी करुण मालूम हुई। यह सम्राट बुद्धधर्म की शिक्षाओं को अपने जीवन में ढालने की कोशिश करता था। लियांग वंश का यही संस्थापक था। छी वंश के अन्तिम राजा होती (501-2 ई०) ने स्वतः अपने योग्य सेनापति वू-ती को राजसिंहासन प्रदान किया था। पर वू-ती को उसमें कोई आसक्ति नहीं थी। उसने कई बार सिंहासन छोड़ने की इच्छा प्रकट की, लेकिन लोगों की प्रार्थना पर वह वैसा नहीं कर सका। वह अपना सारा समय धर्म के कामों में लगता था। उसने बहुत से विहार बनवाये, परमार्थ जैसे विद्वानों को रखकर बहुत से धर्मग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद ही नहीं करवाया, बल्कि स्वतः बहुत ध्यानपूर्वक उनका अध्ययन किया। राजकुमार सिद्धार्थ के महान त्याग का उसके जीवन पर बड़ा असर पड़ा था। वह दिन में सिर्फ एक बार भोजन करता और उसमें मांसलहसुन नहीं रहता। बलि के लिए पशुओं को मारने का उनने निषेध कर दिया था। जहाँ वैसा करना जरूरी होता, आटे का पशु (पिष्टशु) बना कर लोग बलि देते। अपराधियों को मृत्युदंड देना उसे सह्य नहीं था, आँखों में आँसू भर कर वह अपने हाथों उन्हें मुक्त कर देता।

प्राणि मात्र के प्रति उसके हृदय में अपार करुणा थी। ऐसे पुरुष का राजसिंहासन पर इतने दिनों तक टिकना बड़े आश्चर्य की बात है। अन्त में उसे अपने उत्तरी राजा का बन्दी बनना पड़ा और जेल में ही उसकी मृत्यु हो गई। अपनी समझ के अनुसार उसने प्राणि मात्र के कल्याण करने की कोशिश की और सिंहासन के प्रलोभनों में नहीं पड़ा। उसका जीवन सफल और गौरवशाली था, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। लेकिन, शायद मेरी तरह वह भी रोग की जड़ को न काटकर पत्तों को नोचने में ही सारा परिश्रम करता रहा।

दक्षिणी राजधानी छोड़ने से पहले मैंने देख लिया कि वहाँ अपने को छिपाना मुश्किल होगा। संघाराम यहाँ उत्तर की अपेक्षा भी अधिक हैं। भिक्षु तीर्थयात्रा और पर्यटन के लिये सारे देश में घूमते ही रहते हैं। यदि हम तीन आदमियों की जमात बनाकर घूमते, तो पहचाने जाने की सम्भावना थी। अनिष्ट होने का डर नहीं था. यह मेरे दोनों साथी भी जानते थे, पर मैं एक दीन भिक्षु पर्यटन की तरह घूमना चाहता था, सबसे कठोर स्थिति में पड़े लोगों के जीवन का उपभोग करना चाहता था।

मुझे समझाने में समय लगा, किन्तु अन्त में मेरे दोनों साथियों ने स्वीकार किया। नगरी के बाहर जा मैंने महानदी के दक्षिणी तट से उसके किनारे-किनारे ऊपर की ओर चलना शुरू किया। चिथड़ों के सिले चीवर और संघाटी मेरे शरीर पर मिट्टी का भिक्षापात्र कन्धे पर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

र पीठ पर वही मेरी चिरसंगिनी तालपोथियाँ थीं। हाथ में डंडा और पैर नंगे थे। उत्तर विशेषकर शीतकाल में नंगे पैर रहना मुश्किल है। यह गर्मियों का समय था, वैसे भी इधर र्फ नाम मात्र पड़ती है। पहले दिन की यात्रा दो योजन (10 मील) से अधिक की थी। मैं चाहता था जितनी जल्दी हो सके राजधानी से दूर चला जाऊँ। महानदी के दक्षिणी किनारे चलने का यह अर्थ नहीं था कि मैं बिलकुल उसके तट के साथ जा रहा था। नदी को छोड़कर बहुत दूर नहीं जाता था। यहाँ का दृश्य बहुत बातों में भारत से समानता रखता है, अन्न भी बहुत से वही यहाँ भी पैदा होते, लोग चावल खाना ज्यादा पसन्द करते हैं। नदी के पास दोनों तरफ काफी दूर तक समतल भूमि थी, फिर कहीं-कहीं पहाड़ आने लगे। कितनी ही नदियाँ दक्षिण से आकर इस नदी में मिलती थीं। जहाँ भी कोई रमणीक पर्वतस्थली या नदी तट होता, वहाँ संघाराम अवश्य होते। मैंने आगे चलकर यही नियम बना लिया कि शाम के वक्त किसी संघाराम में जाकर ठहर जाऊँ और सुबह दो घड़ी दिन चढ़ते वहाँ से चल दूँ। प्रातराश करने का अग्रह मान लेता, लेकिन मध्याह्न-भोजन मैं भिक्षा माँग कर करता। मैं तीन वर्ष के करीब इस तरह विचरता रहा। पश्चिम में मैं उन पहाड़ों में गया, जिन्हें देख कर मुझे उद्यान याद आता था। केवल एक बार मुझे एक परिचित भिक्षु मिला, जिसे मैंने अनुमय विनय से रहस्य न खोलने के लिये राजी कर लिया, मैं अपरिचित की तरह लोगों में घूमता रहा। मेरे भिक्षापात्र में पाँच-सात तरह की औषधियाँ रहतीं, जिनका मैं कभी-कभी मिलने वाले रोगियों के लिए उपयोग करता।

मैं भिक्षु वेष में था। बौद्ध हो या अबौद्ध गृहस्थों की भिक्षुओं के प्रति कुछ आस्था रहती ही है। साथ ही मैं अपने भोजन का बोझ केवल एक परिवार पर नहीं डालना चाहता था, इसलिए इस सारे पर्यटन में दो-चार बार ही भूखा रहना पड़ा। गरीबों की श्रद्धा और दया देखकर मेरा दिल पिघल जाता। स्वयं भूखे रहते भी वह किसी परदेशी या गरीब को वैसा देखना नहीं चाहते। मैं भिक्षु था, किन्तु चेहरे से परदेशी और भेष से गरीब था। मैंने बहुत धर्मोद्देश दिये थे, अब भी कभी-कभी वैसा करना पड़ता था, लेकिन उसमें मुझे अब उत्साह नहीं था। मैं जब दुःख सत्य की व्याख्या करने लगता, तो परम्परा से सुनी-सुनाई बातों को कहने में भारी संकोच होता। जन्म दुःख है, जरा दुःख है, मरण दुःख है, प्रिय का वियोग और अप्रिय का संयोग दुःख है। इतना ही कहने से दुःख का स्वरूप प्रकट नहीं होता। दुःख यह है, जो हमारी आँखों के सामने बहुजन परिश्रम करते-करते अपने अर्जित अन्न-धन का उपभोग नहीं कर सकता, उसे भूखा रहना पड़ता है, लुटेरे उसे लूट ले जाते हैं। आश्चर्य यह, कि अर्जन करने वालों की संख्या सौ में नब्बे है, और लुटेरे अपने हथियारों के बल पर नहीं, बल्कि अर्जन करने वालों की सन्तानों के हाथों में हथियार थमाकर दिन दहाड़े लूट कर रहे हैं। क्या मैं दुःख सत्य को उसके असली और सच्चे रूप में इस तरह बतला सकता था? बतलाने का क्या फल होता? शायद वह अरण्य-रोदन होता! मेरे श्रोता इस सीधी-सादी बात को समझ न पाते और सोचने लगते, मैं पागल हो गया हूँ। अथवा प्रभुवर्ग के प्रति घृणा फैला कर स्वयं उनका स्थान लेना चाहता हूँ। शायद मेरी वेषभूषा से उनको यह ख्याल न होता। इस तरह विचार मेरे दिल में पैदा होकर मुझे भारी दुविधा में डाल देते। फिर मैं जब चाहता, कि अपने विचारों को अपने भीतर ही छिपाये रक्खूँ और चुपचाप यों ही हाथ में डंडा पकड़े

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

घूमता रहूँ, तो आत्मग्लानि होती थी। चारों तरफ अंधकार सा दिखाई पड़ता था, एक बात तो बिल्कुल निश्चित थी कि मैं दूसरों के दुःख और पीड़ा को देख नहीं सकता था, उस वक्त अपनी बेबसी देखकर मेरा हृदय अत्यन्त व्याकुल हो उठता था।

शायद दूसरे वर्ष मैं महानदी के किनारे-किनारे चलते-चलते, ऐसे प्रदेशों में गया, जहाँ के लोग भाषा और रीति-रिवाज में चीन के लोगों से भेद रखते थे। ऐसी जगहों में गया, जहाँ भारत की तरह लोग सिर पर पगड़ी (उष्णीष) बाँधते थे, पुरुष ही नहीं स्त्रियाँ भी। उस समय मुझे बुद्धिल की बात और चैत्यगिरि (साँची) के तोरणों की मूर्तियाँ याद आने लगीं। किसी समय भारत में भी स्त्रियाँ उसी तरह पगड़ी बाँधती थी, जैसे पुरुष। तो यहाँ के लोगों ने क्या उसी समय भारत से यह परिधान सीखा? वह अपने देश का नाम गन्धार बतलाते थे। गन्धार मेरा पड़ोसी था, उसके पुरुषपुर (पेशावर) और तक्षशिला जैसे नगरों को मैं अपने घर जैसा समझता था। यहाँ के लोगों में बुद्ध भक्तों की संख्या बहुत अधिक थी, लेकिन वहाँ पहुँचने पर मुझे मालूम हुआ कि मैं भारत के भीतर जा रहा हूँ।

मेरा इरादा वहाँ जाने का नहीं था, इसलिये इस प्रदेश (युन्नन्) में चार ही पाँच दिन जाकर लौट पड़ा। फिर मैंने महानदी के उत्तर तट को पकड़ा। जब-तब मालूम होता रहता, कि उत्तरापथ (उत्तरी चीन) में क्या हो रहा है। चाउ-वंश बौद्धों से भयभीत था, वह नहीं सह सकता था, कि बौद्ध-श्रमण निश्चित हो अपना काम करते अपने प्रभाव को बढ़ायें। मुझे नहीं मालूम है, किसी बौद्ध-भिक्षु ने कभी राजसिंहासन पर आँख गड़ाई हो। वह राज्य का विरोध भी नहीं करना चाहते। यदि दीन-दुखियों और रोगियों की सेवा करना लोगों में विद्या और कला का प्रचार करना अपराध है, तो दूसरी बात है। यह अवश्य है कि अपने संघ के कारण बौद्धों की शक्ति अधिक दृढ़ होती है। एक राजवंश उच्छिन्न होकर अपने बीते दिनों को लौटा नहीं सकता, लेकिन हमारे संघ ने ऐसा अनेक बार किया। वह मानो अमर होकर आया है। किसी राजा की क्रूरता के कारण जो सर्वनाश उपस्थित होता, उसे देखकर आदमी समझने लगता कि अब फिर इनके भले दिन नहीं आयेंगे, लेकिन अत्याचारी शासक सदा के लिए तो नहीं आते, उनके हटते ही खंडस्फोट को सुधारने के लिए लाखों हाथ न जाने कहाँ से आकर लग जाते, हमारे संघाराम पहले से भी सुन्दर और भव्य बन जाते। संघ की इस अजेय शक्ति के कारण कितने ही सम्राट् और सामन्त हमारे प्रभाव को सहन नहीं करते।

मुझे इस यात्रा के समय जो कड़वे-मीठे अनुभव हो रहे थे, उनमें तथागत का यह वचन बराबर याद आता था: "खड्गविषाण (गैंडे) की तरह अकेला विचरण करे।" भिक्षु-संघ में कलह होने पर एक बार कौशाम्बी से भगवान भी अकेले विचरण करने निकल पड़े थे। मैं अकिंचन था। कल के लिए भोजन भी मैं अपने भिक्षापात्र में नहीं रखता था। मृत्यु मेरे लिये भय की चीज नहीं थी और कष्ट सहने के लिए मैं वहाँ तक तैयार था, जहाँ तक कोई मनुष्य सह सकता है। मेरा चीवर पुराने लत्तों का बना था, लेकिन मैं उन्हें साफ करके रखता था। गन्दा रहना मुझे पसंद नहीं था। ऐसे वस्त्र को देखकर भी चोरों और डाकुओं को सन्देह हो सकता है, शायद इस दीन-भिक्षु ने अपने इन कपड़ों में सोना छिपा रक्खा हो। कितनी ही बार डाकुओं और चोरों से मेरा सम्पर्क हुआ। किसी की लोभ भरी आँखों को जब मैं देखता, तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपने अन्तर्वासक से शरीर को ढाँके चीवर और पात्र को उसके सामने फेंक देता और कहता यदि इनसे तुम्हारा कोई उपकार हो, तो ले जाओ। ऐसा कभी नहीं हुआ, किसी नें उनको नहीं उठाया और वहाँ लेने के लिए कुछ था भी नहीं। यह तीन वर्ष का जीवन मेरे लिए नया ही था। दोपहर के वक्त भिक्षा के भोजन को खाकर किसी वृक्ष के नीचे मैं अपनी पोथी खोल कर बैठ जाता। बुद्धिल के हाथ के लिखे सुन्दर अक्षरों को पढ़ते समय मैं उनकी याद करता, और मन ही मन उनसे कहता। तुम्हारी अपूर्ण इच्छा को मैंने पूर्ण करने की कोशिश की। यद्यपि मेरे संतोष के लिए वह पूर्ण नहीं है। दुःख-सत्य का दूसरा ही रूप मुझे दिखलाई पड़ा, लेकिन उसके निरोध का रास्ता कोई नहीं दीखता, यदि दीखता भी है, तो उस पर चल नहीं पाता। तुम यदि इस समय मेरे साथ होते, तो शायद कोई रास्ता निकालने में सफल होते।

मैं महानदी को पार कर उसके दभिण में अवस्थित महासरोवर (तुंग-तिंग) के किनारे गया हुआ था। चारों ओर का प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही सुन्दर था। एक बार मैं इसकी परिक्रमा करके पश्चिम गया था, अब फिर उसके दर्शन की इच्छा हो आई थी। वहीं मुझे खबर मिली कि जिस चाउ-वंश के अत्याचारों के कारण मुझे अपना कर्मक्षेत्र छोड़ना पड़ा, उसके प्रधानमंत्री ने उसे उच्छिन्न कर दिया और वेन-ती (581-605 ई०) के नाम से छाँग-आन के सिंहासन पर बैठ सुई राजवंश (581-618 ई०) की नींव रख दी। जिस संघाराम में मैंने यह खबर सुनी, वहाँ केभिक्षु इसे सुन कर वहुत प्रसन्न हुये। अपने अन्तिम दिनों में चाउ- वंश ने उत्तरी चीन के संघारामों और भिक्षुओं का वहुत संहार किया था। इसलिए इन भिक्षुओं की तरह मुझे भी इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसी समय मेरे हृदय को यह सोच कर पीड़ा भी होने लगी, कि इतने दिनों तक मैं अपने को अनासक्त और उपेक्षक जो समझता था, वह धोखा था। तभी तो चाउ के उच्छेद से मेरे हृदय को प्रसन्नता हो रही है, और फिर पीत नदी की ओर जाने की उत्कंठा हो आई है। मैं कह सकता हूँ, इसमें कारण उत्तर के अपने मित्रों के मिलने की लालसा है, लेकिन वह भी धोखा हो सकता है। मैं अपने हृदय को टटोल कर देखता था, तो उसमें भोग और सुख की लालसा का पता नहीं था। पर उत्तर की ओर जाने की इतनी आकांक्षा क्यों? निरुद्देश्य घूमना मुझे अब पसन्द नहीं आ रहा था। आशा होती थी, कि उत्तर में जाकर शायद मैं वहुजन हित के कुछ काम कर सकूँ। मैंने उत्तर जाने का निश्चय इतना जल्दी नहीं किया। हां, सरोवर से महानदी पार करके जरूर उत्तर की ओर चला आया, कितने ही महीनों तक उसके उत्तर-पश्चिम के पहाड़ों में घूमता रहा, इसी बीच पता लगा, कि सम्राट वेन-ती केवल उत्तरी चाउ और उत्तरी छीकी भूमि से ही संतुष्ट नहीं हैं। उसने सारे चीन को एकतावद्ध करने का संकल्प किया है, दक्षिण चीन की ओर भी वह धीरे-धीरे वढ़ रहा है।

मैंने अब अज्ञातवास का ख्याल छोड़ दिया, मेरे पैर स्वयं उस भूमि की ओर चल पड़े, जो कि अब सुइ-वंश की थी। अधिक समय नहीं लगा, वेन- ती को मेरे बारे में पता लगा, और गद्दी पर बैठने से अगले ही साल (582 ई०) उसने मुझे अपनी राजधानी में निमन्त्रित किया। मैं छंग- अग की ओर चल पड़ा। अब मुझे पता लगा कि मनुष्य का अपना हृदय भी उसे धोखा देता है। वह परस्पर विरोधी भावनाओं का समागम स्थान है। पर यह ख्याल तो था ही, कि अपने शेष जीवन में शायद दूसरों का कुछ उपकार कर सकूँ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जीवन-संध्या

(582-89 ई०)

छांग-आन मेरे लिए बिल्कुल अपरचित नगर नहीं था। मैं येह् में रहते समय भी एक-दो बार वहाँ आया था, लेकिन वहाँ जाना न जाने ही के बराबर था; क्योंकि वहाँ मुझे कभी एक दो दिन से अधिक नहीं रहना पड़ा। अब मैं शायद वहाँ अपने जीवन भर के लिए आया था। 63 वर्ष की अवस्था में पहुँच कर अब मैं इधर-उधर घूमने की इच्छा नहीं रखता था। यद्यपि महाचीन में सबसे पहला बिहार—श्वेताश्च विहार—लोयांग नगर में बना था, जहाँ हमारे प्रथम मार्ग-प्रदर्शक काश्यप मातंग ने ठहर कर अनुवाद और धर्म-प्रचार का काम किया था, पर छांग-अनका महात्म्य लोयांग से कम नहीं है। लोयांग, छांग-अन, कोयेन्-ये (नान्किंग) ये तीन बड़े केन्द्र थे, जहाँ आकर भारतीय विद्वानों ने अनेकों ग्रन्थों का अनुवाद किया। सुइ-सम्राट यांग अपने पूर्व के राजवंश की गलतियों को समझते थे; राजा होने के कारण अपने प्रजा के धार्मिक विचारों को जबर्दस्ती दबाना कल्याणकारी नहीं होता। भारत के धर्मराज अशोक और धर्मराज कनिष्क ने बुद्ध-धर्म में बड़ी आस्था रखते भी दूसरे धर्मों को दबाया नहीं, उलटा उनके प्रति भी सम्मान प्रदर्शित किया। चीन के राजाओं के लिए भी सबमें अच्छा रास्ता यही है। यह कहना आसान है, कि बौद्ध-धर्म एक विदेशी धर्म है, और कनफूजू तथा लाउजू अपने देश के आचार्य थे, इसलिये उन्हीं का तंथ स्वदेशी अतएव ग्राह्य है। तथागत ने अपने धर्म को किसी देश, काल या जाति से नहीं बाँधा। मनुष्य मात्र का हित ही उसका ध्येय है। चीन में आकर हम लोगों ने कभी भावना नहीं फैलाई, कि चीन के नर-नारी चीनीपन छोड़कर और कुछ हो जायें। हमने उनकी प्राचीन काल से अधिक अर्जित निधि को नष्ट करने की कोशिश नहीं की बल्कि तथागत द्वारा प्रदान की हुई निधि को मिला कर उसे और समृद्ध करने की कोशिश की। राजनीति में हस्तक्षेप करना तथागत ने कभी नहीं सिखाया, ओर शायद ही किसी पथभ्रष्ट भिक्षु ने वैसा करने की कोशिश की हो।

सम्राट यंग सब तरह से दीर्घदर्शी और कर्मठ पुरुष थे। उन्होंने अयोग्य चाउ-वंश को हटाकर अपने कर्त्तव्य को समाप्त नहीं समझा। उत्तर पर शासन दृढ़ करके उन्होंने दक्षिण के चेन-वंश के अन्तिम सम्राट हो-चू (569-86 ई०) को भी पद भ्रष्टकर उत्तरी और दक्षिणी चीन को एक महाचीन का रूप दिया। वह लोगों के सामने अपने विचारों को प्रकट करते हुए वह कहते थे : राजवंश बदल रहते हैं, लेकिन देश हमेशा रहता। अपने वंश के स्वार्थ के लिए देश का विभाजन बहुत बुरा है। मैं एसा मूर्ख नहीं हूँ कि समझू कि मेरा सुइ-वंश अनन्त-काल तक रहेगा। आवश्यक नहीं है, कि योग्य पिता की योग्य ही सन्तान हों। सुइ-वंश कल या परसों उच्छिन्न होकर रहेगा मैं ऐसा काम करना चाहता हूँ, जिसमें उत्तर और दक्षिण की खाई पट जाय। यंग-ती अपने दिल की बात कह रहे थे। वह जानते थे कि तलवार से स्थापित की हुई एकता निर्बल है, इस एकता को स्थाई करने के लिए कुछ और दृढ़ कार्य करना होगा। दोनों महानदियाँ चीन को दो खण्डों में विभक्त करती हैं, यदि इनको मिला दिया जाय तो महाचीन एक हो जायगा। इसी को कार्य रूप में परिणत करने के लिए उन्होंने लोयांग के पास से पीत नदी नदी से नहर निकाल कर दक्षिण की महानदी (यांग-ची क्याँग) को मिलाने का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ाम आरम्भ किया, यह नहर 3000 ली (1000 मील) लम्बी है। इसी से यह मालूम होगा कि यह काम चीन की महादीवार से किसी प्रकार कम नहीं उन्होंने 30 लाख से अधिक आदमी इस पर लगा दिये। 15 वर्ष से ऊपर के हर एक आदमी को इसमें काम करना अनिवार्य कर दिया। इसके अतिरिक्त हरेक पाँच परिवार पर एक बूढ़े लड़के या औरत को खाना-पीना पहुँचाने का काम सपुर्द किया। 50 हजार सैनिकों को भी सम्राट ने इस काम पर लगाया। अपने कुदालों, फावड़ों, बेलचों और दूसरे हथियारों को लिए हुये हर रोज आदमी इस महान नहर पर काम करते। सम्राट कहते थे, जीवन का ठिकाना नहीं, इस काम को जल्दी पूरा होना चाहिए। सचमुच ही जिस तरह से लोगों से काम लिया जाता था, उसके कारण उनके कष्टों की सीमा नहीं थी। हजारों आदमियों ने मेहनत करते-करते प्राण दिये। सम्राट इसे न जानते हों, यह बात नहीं; किन्तु मनस्वी कार्यार्थी पुरुष न अपने सुख-दुःख की परवाह करता हैं न दूसरों के। कुछ ही वर्षों में नहर तैयार हो गई। सम्राट ने कहा—मैंने अपना लक्ष्य पूरा कर लिया। चिन-वंश के सम्राट शीह हवांग ने महादीवार को बनाकर उत्तर के घुमन्तुओं को नहीं रोक पाया और न रोकने की जरूरत थी। हमारा चीन इतना महान है, इसे कोई छिन्न-भिन्न नहीं कर सकता। क्षण भर अपने ज्ञान और शौकतकों दिखला कर प्रत्येक विजेता को इसी महासमुद्र में लीन हो जाना है। पर, मैंने जिस नहर को बनवा कर तैयार किया, वह उत्तर और दक्षिण के भेद को सदा के लिये मिटा देगी।

यंग्-ती में झक्कीपन भी था और कभी-कभी वह अपने उत्साह का अपव्यय कर बैठता था। चीन से नहर (कोरिया पर) विजय प्राप्त करने के लिए उसने बहुत जन-धन नष्ट किया। जब नहर तैयार हो गई, तो अपने वैभव को दिखलाने के लिए चलते फिरते प्रासादों के रूप में खास नौकाओं को सोने और रत्न से अलंकृत करवाया। उसकी अपनी नौका लघु लाल तो चालीस हाथ ऊँची डेढ़ हजार हाथ लम्बी चौमंजिला विशाल पोत सी थी, जिसमें कितने ही कक्ष और विशाल शालायें थीं। साम्राज्ञी की नौका उड्डीयमान पीतनाग को भी इसी तरह बहुमूल्य रत्नों और सोने से अलंकृत किया गया था। नौकर-चाकर सभी को सोने और रत्नों से ढँक दिया गया था। भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए दो अलग-अलग सुन्दर नौकायें थी। मुझे भी उस समय तक परदेशी भिक्षु-स्वागत-स्थविर के पद पर रख दिया गया था, इसलिये मैं नौका का प्रमुख था। मेरे साथ भिक्षु जिन गुप्त गौतम धर्मज्ञान, मेरे देशवासी (उद्यानी) विनीत रुचि और दूसरे भिक्षु थे। नौकों के बेड़े को 3000 ली (हजार मील) की यात्रा करनी थी। नावें बीच से चल रही थीं। उनके खींचने के लिये रस्से रेशम के थे, जिन्हें भड़कीली रेशमी पोशाक पहने हजारों आदमी दोनों किनारों से खींच रहे थे। चारों तरफ केवल आनन्द-मंगल ही देखने में आये, इसके लिए सैकड़ों सुन्दरियाँ अपने भड़कीले वस्त्राभूषणों में रस्सा खींचने वालों के साथ हँसती-बोलती चल रही थीं। गर्मी का दिन था। यह पहले ही से मालूम था कि काम करनें वालों को धूप से परेशानी होगी, इसलिये, सम्राट ने नहर बनते ही समय घोषित कर दिया था, कि वीरी (वेद) का एक वृक्ष किनारे लगा कर तैयार कर देगा, उसे 26 गज का रेशमी थान दिया जायगा। एक ही साल के भीतर लोयांग से क्वांग-लिंग तक वेद-मजनू के वृक्ष लग गये। जिस समय सम्राट का बेड़ा पहले पहल उत्तरी चीन से दक्षिण चीन की ओर नहर का उद्घाटन करते हुये चला, उस समय दोनों तटों पर हरे-भरे वृक्षों की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पाँतियाँ तैयार हो गई थीं। उनकी छाया से रस्सा खींचने वालों को दिन की गर्मी का कष्ट नहीं हुआ। सुगन्धित द्रव्य इतनी मात्रा में बजरों में लगाया गया था कि वेड़े के चले जाने के बाद भी घन्टों सुगन्ध फैलती रहती। दोनों किनारों पर पताकाओं को हाथ में लिए सवार दौड़ रहे थे। देखने के लिए दूर-दूर से आदमी पहले ही से जमा हो गये थे। सम्राट ने नहर के किनारे कितने ही प्रासाद और उद्यान बनवाये थे।

जिस समय मैं अपनी आँखों के सामने इस चकाचौंध करने वाले वैभव को देख रहा था, उस समय मेरा मन प्रसन्न होने की जगह विकल हो रहा था : "जिनके परिश्रम से यह विशाल नहर खोदी गई, जिन्होंने खून-पसीने एक कर इस वैभव का सृजन किया, उनका दुःख क्या इससे जरा भी कम हुआ? इस सबके निर्माण में क्या उन्होंने सबसे अधिक दुःख नहीं सहा?" जिन गुप्त मेरे छांग-अन पहुँचने के तीन ही वर्ष बाद (585 ई०) में आये। बहुत जल्दी ही हम दोनों का प्रेम हो गया। मेरे विचारों से वह बहुत सहमत थे, जिनके सामने मैं अपने हृदय की व्यथा को प्रकट कर सकता था। मित्रदात का पता लगाने के लिये मैंने बहुत कोशिश की, किन्तु मुझे सफलता नहीं थी, लेकिन पसन्द वह भी नहीं करते थे। पर, महाचीन को एक करने वाले प्रतापी सम्राट यंग की झकको कौन रोक सकता था? यह नहर अब उत्तर और दक्षिण में वस्तुओं के दानादान में बहुत सुभीता पैदा करेगी, आदमियों का आना-जाना भी आसान होगा। आवश्यकता पड़ने पर सेनायें भी उत्तर से दक्षिण को भेजी जा सकेगीं। उत्तर में अर्ध-बर्बर लोग रहते हैं, दक्षिणी लोगों की इस धारणा को नष्ट करने में इस नहर से मदद मिलेगी। यह सब ठीक है, पर उसी के साथ-साथ यह भी कि बहुजन का नहीं, अल्पजन का हित और प्रभुत्व अधिक बढ़ेगा।

सम्राट यंग ने फिर बौद्ध-धर्म को प्रतिष्ठा प्रदान की। चाउ-वंश के अत्याचार के कारण जो बड़े-बड़े भिक्षु भाग गये थे, संघारामों की अवस्था खराब हो गई थी, उसे सुधारने की कोशिश की। मेरा यहाँ आना इसका ही परिणाम था। गौतम धर्मज्ञान, विनीतरुचि भी उसी साल बुला लिये गये। मेरे आने के तीन वर्ष बाद जिन गुप्त आये। जिनगुप्त पहले भी एक बार चीन आ चुके थे, जबकि सम्राट मिंग (557-66 ई०) का छांग-अन् पर शासन था। उन्होंने जिनगुप्त के लिए खास तौर से "चतुर्दैवराजिका विहार" बनवाया था। वू-ती (568-78 ई०) के समय बौद्धों के ऊपर बहुत अत्याचार हुये उन्हें चीन से चला जाना पड़ा था। जिनगुप्त बड़े विद्वान थे, उनकी प्रतिभा कुछ-कुछ बुद्धिल जैसी थी। चीनी भाषा का और तुर्की का भी उनका सुन्दर ज्ञान था। मैंने जिन 12 ग्रंथों को अनुवाद किया, उनका परिमाण 50 हजार श्लोक (आह्निक) होगा, जबकि जिनगुप्त ने 170 लाख 38 हजार श्लोकों को (197 आह्निक) से भी अधिक ग्रंथों का अनुवाद किया। महाकवि अश्वघोष के "बुद्धचरित" के 28 सर्गों का उन्होंने इतना सुन्दर अनुवाद किया, कि उसके पढ़ने वाले उसमें मूल रस की अनुभूति पाते हैं। मालूम ही है, कविता का अनुवाद सबसे कठिन है। "सद्धर्मपुंडरीक" जैसे और बहुत से महत्वपूर्ण सूत्रों का भी जिनगुप्त ने अनुवाद किया।

जिनगुप्त मुझसे दस वर्ष छोटे हैं और मेरा सम्मान बड़े भाई की तरह करते हैं, किन्तु मैं उन्हें विद्या-ज्येष्ठ समझता हूँ। उन्होंने भी देश-देशान्तर की यात्राओं में कम कष्ट नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उठाया। मेरे जन्म से दस साल बाद पुरुषपुर (पेशावर) में वह कम्बुज में (कम्बो) क्षत्रिय कुल में पैदा हुये। उनके पिता वज्रसार एक राजकर्मचारी थे। पिता-माता ने अपनी बुद्धभक्ति की प्रतीक पुत्र को सात वर्ष की उमर में महावन विहार में श्रामणेर बना दिया। फिर अवस्था प्राप्त करके उन्होंने स्थविर जिनयश को उपाध्याय और ज्ञानभद्र को आचार्य बनाकर भिक्षु-दीक्षा प्राप्त की। तीनों पिटकों का उन्होंने अच्छी तरह अध्ययन किया, विनय के वह विशेष पंडित बने। कविता का शौक भी उन्हें था, लेकिन वह अधिकतर महाकवियों की कृतियों के अध्ययन करने तथा उनमें से एक को अनुवाद करने में ही अपनी इस रुचि को लगा सके। जिनगुप्त जब 27 वर्ष के थे, तब उन्होंने विदेश में जाकर धर्म-प्रचार करने का निश्चय किया। गन्धार से कपिशा जा उन्होंने एक साल बिताया। यन्ता (येथा, हेफ़ताल) की स्थिति बुरी हो गई थी। मिहिरकुल को पराजित होकर कश्मीर में शरण लेनी पड़ी थी और उसके मरते-मरते ये-ता का अवशिष्ट राज्य भी छिन्न-भिन्न होने लगा था। उत्तर में अवारों को तुर्क पूरी तौर से पराजित कर चुके थे और उनके किसी समय भी ये-तों के ऊपर आ पड़ने का भय था। कुछ समय बाद (563-567 ई० के बीच) तुर्कों ने कपिशा तक को अपने हाथ में कर लिया। ऐसी स्थिति में दुर्गम हिमालय को पार करके कांस्यदेश और चीन की तरफ आने का संकल्प करना साधारण हिम्मत वाले आदमी का काम नहीं है। रास्ते में उन्होंने येनता के शासन के नाश होने के प्रमाणस्वरूप गाँवों और इलाकों को निर्जन बना नष्ट-भ्रष्ट देखा। खो-लो-फन-था (ताश कुर्गन) होते वह कुस्तन में कुछ समय के लिए ठहरे। फिर तू-यू हू येन् (तुर्क-खान) की राजधानी में पहुँचे, जो कि नील सरोवर (काकोनोर) से पाँच कोस पश्चिम में थी; फिर छ्यान् चाउ (सी-निंग) में पहुँचे। दस साथियों के साथ वह चले थे, लेकिन उनमें यहाँ तक चार ही जीवित पहुँचे। यह वह समय (557 ई०) था, जबकि मैं घुमन्तुओं की भूमि में था। शायद यदि मैं अपनी यात्रा को जारी रख सकता, तो जिनगुप्त के रास्ते ही मुझे भी महाचीन आना पड़ता और येह की जगह छाँग-आन् में गया होता। जिनगुप्त इस जगह (सी-निंग में) तीन वर्ष रहे, फिर चाउ-सम्राट् मिंग के समय वह छांग-आन् पहुँच चाउ-याँग विहार में ठहरे। आरम्भ में बड़ा स्वागत-सत्कार हुआ, यह बतला चुके हैं, लेकिन पीछे उन्हें चीन छोड़कर लौट जाना पड़ा। वह देश लौटते तुर्कों के राज्य के भीतर से गुजारे। तोपा (572-82 ई०) खान ने उन्हें अपने यहाँ रहने की प्रार्थना की और जिनगुप्त अपने साथियों जिनभद्र और जिनयश, तथा गुरुभाई यशोगुप्त के सत्य वहाँ ठहर गये। तुर्क-कआनों सम्राटों में तोपा बहुत ही बुद्धभक्त था। उसने जिनगुप्त और उनके साथियों का बड़ा सत्कार किया। उनकी सहायता से वह अपने लोगों में धर्म-प्रचार करने में सफल हुआ। वहाँ रहते ही पता लगा, कि चीन में नया राजवंश (सुई-वंश) स्थापित हुआ है, बुद्ध शासन की पुनः प्रतिष्ठा हुई है, इसलिए वह सम्राट यंग के पाँचवें वर्ष (585 ई०) में अपने अधूरे काम को पूरा करने के लिए फिर महाचीन आये। पहली यात्रा में चाउ-वंश के समय उन्होंने तीन हजार श्लोकों की चार पुस्तकों का अनुवाद किया था।[1]

1. इनमें से दो—"सद्धर्म पुंडरीक" और "नानासंयुक्त मंत्र सूत्र—अब भी मौजूद हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परदेशी भिक्षुओं के स्वागत-सत्कार का भार मेरे ऊपर था, इसलिए आते ही उनकी मुझसे मुलाकात हुई। वह मुझसे अधिक विद्वान् थे और मैं ऊँचे पदपर था, इसलिए ईर्ष्या हो सकती थी। उनके आते ही मैंने इच्छा प्रकट की, कि इस पद को आप स्वीकार करें। पर उन्होंने मुख से नहीं हृदय से चाहा कि मैं उस पद पर बना रहूँ। नाना प्रकृति के लोगों की सेवा करना आसान काम नहीं है, वह अपना सारा समय अनुवाद के काम में लगाना चाहते थे। उनके आग्रह को मैंने स्वीकार किया। आगमन (585 ई०) के बाद मैंने किसी ग्रंथ के अनुवाद में हाथ नहीं लगाया और छंग-अन में रहते किये गये अपने छोटे-छोटे आठ[1] ग्रंथों (श्लोक संख्या प्राय: 45 हजार) के अनुवाद पर ही संतोष किया।

मैं अपने को जिनगुप्त से किसी बात में भी बड़ा नहीं देखता। अनुवाद के काम में तो मैं अपने को दीर्घ सूत्री कह सकता हूँ। यद्यपि महाचीन में धर्म प्रचार का सबसे बड़ा साधन यही है कि तथागत के उपदेशों का अधिक से अधिक अनुवाद किया जाये। अभी जितने ग्रन्थों के अनुवाद हुये हैं, वह बिल्कुल अपर्याप्त हैं। जिनगुप्त के काम को निरन्तर बढ़ते देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। मैं यही कामना करता हूँ, कि वह सौ वर्ष तक जीवे[2] पर्यटन में भी उन्होंने मुझसे कम कष्ट नहीं उठाया है। तुर्कों की भूमि से शीत समुद्र या दक्षिण में सिंहल द्वीप की यात्रा मेरी अधिक थी, लेकिन उनको मुझसे भी कठोर यात्राओं का सामना करना पड़ा था, जिनमें उनके दस में से छह साथियों ने प्राण त्याग दिया। उनकी विद्या को देखकर अत्याचारी चाउ-सम्राट चाहता था, कि वह भिक्षुपन को छोड़कर साधारण गृहस्थ के तौर पर छांग-आन में सम्मानपूर्वक बने रहे, लेकिन उन्होंने ऐसा करने से इन्कार कर दिया और इसकी कोई पर्वाह नहीं की, कि सम्राट उनके प्राणों का ग्राहक भी बन सकता है। इसे संयोग ही समझिये, जो उन्हें देश लौटने की आज्ञा मिल गई। तुर्कों में दस वर्ष रहकर वह केवल आराम की जिन्दगी नहीं बिताते रहे। अपने साथियों-सहित उन्होंने इन घुमन्तुओं में धर्म-प्रचार करके उनके स्वभाव को नरम करने की कोशिश की।

जिनगुप्त या मैं नही बल्कि हमारे देश (भारतवर्ष) के सैकड़ों-हजारों आदमियों ने आकर महाचीन में अपनी क्षमता अनुसार धर्म का काम किया। सभी अनुवाद का काम नहीं कर सकते थे, कोई चिकित्सक बनकर काम करते रहे, कोई अध्यापन का काम करते रहे और कितने ही उपदेश देते रहे। चीन में बुद्ध-शासन के विस्तार में उनका प्रयत्न कम सहायक नहीं हुआ। यदि हमारी अनुवादित पुस्तकों में से आगे चलकर कुछ बच रहीं और उनके कारण हमें याद रक्खा गया तो उसके साथ उनका भी ख्याल करना जरूरी है, जिन्होंने ग्रन्थों का अनुवाद नहीं किया, लेकिन दूसरी तरह बहुत काम किया।

× × ×

मेरी आयु अब (589 ई०) 71 वर्ष की हो गई है। मेरा स्वास्थ्य सदा अच्छा रहा।

1. 1. सूर्यसूत्र, 2. मंजु श्री विक्रीड़ितसूत्र, 3. महामेघसूत्र, 4. श्रीगुप्त सूत्र 5. बल-व्यूहसूत्र, 6. शतबुद्धसूत्र, 8 स्थिरमतिसूत्र।

2. जिनगुप्त नरेन्द्रयश से ग्यारह वर्ष बाद 600 ई० में मरे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदि ऐसा न होता, तो ऐसी कठोर यात्राओं को करके इस आयु तक मैं नहीं पहुँच सकता था। आज भी मैं चल-फिर सकता हूँ। छंग-अन से बाहर विहारों में जाता हूँ, लोयांग, येह हो-शू (कान्सू); हेंग-अन (ता-तोंग), कीयोन-ग्रे (नानकिंग) के पुण्य स्थानों की यात्रायें भी। परदेशी भिक्षुओं का स्वागत करने का मेरा कर्तव्य भी ऐसी यात्राओं के लिए मजबूर करता है और वैसे भी अपने परिचित स्थानों और वहाँ के मित्रों से मिलनेमें मुझे आनन्द आता है। नदियों और नहर के रास्तों को छोड़कर बाकी जगहों में मैं पैदल ही जाता हूँ। मेरे पुराने परिचितों में अब बिरले ही रह गये हैं। मैं भी शरद का सूखा पत्ता हूँ, किसी समय भी झर सकता हूँ। जब मैं अपने 70 वर्ष पूर्व के बीते जीवन की ओर नजर डालता हूँ, तो हर जगह अपने बिछुड़े पुराने मित्रों और परिचितों की स्मृति दुःखद लगती है; लेकिन मुझे अपने जीवन के लिए कोई अफ़सोस नहीं है। मैंने जिसे अच्छा समझा उसके लिए मन प्राण से काम किया। जितना और जो करना चाहा, सब न कर सका, क्योंकि मार्ग में बहुत जबर्दस्त बाधायें थीं, जिन बाधाओं को दूर करना एक आदमी की शक्ति के बाहर है। यदि मैं नहीं दूर कर सका, तो मैं इसे अपना दोष नहीं मानता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपसंहार

नरेन्द्रयश अब नहीं रहे। हम सबको उसी रास्ते जाना है, जिस पर वह गये। वेन-ही के आठवें वर्ष (589 ई०) में एक दिन उन्होंने अकस्मात् अपने जीवन-कार्य से विश्राम ले लिया और किसी को अपने महाप्रयाण का पता भी होने नहीं दिया। न कोई बीमारी थी और न ही कोई दूसरी दुर्घटना, बैठे-बैठे जैसे खिला हुआ फूल एकाएक मुरझा जाये, वैसे ही मित्र-मंडली में उनका सिर झुक गया। मेरा नाम जिनगुप्त है, जिसके सम्बन्ध में अपने प्रेमवश उन्होंने प्रशंसा में अतिशयोक्ति की है। मैं अपने को उनका पात्र नहीं समझता। उनके पर्यटन के सामने मेरा पर्यटन कोई चीज नहीं है। न उनके समान मुझे कष्ट उठाना पड़ा। पुस्तकों का अनुवाद वह चाहते तो उससे कहीं अधिक कर सकते थे, जितना कि मैंने किया। अवलोकितेश्वर (क्वान-यिन) की करुणा के बारे में हमने बहुत पढ़ा है, हमारे नरेन्द्र भी है, उसी तरह करुणामय थे। उनकी करुणा को हम उनके जीवन में जितना देखते थे, उसके शतांश की भी सूचना अपनी लेखनी से दिखावट से परे रहने वाले नरेन्द्र ने नहीं दी। अपने जीवन के कामों, विशेषकर अपनी यात्रा के बारे में वह आने वाली पीढ़ियों के लिए लिख जाना चाहते थे। चीन में ऐसी यात्राओं के लिखने का बड़ा रिवाज है, जिनसे ही उन्हें प्रेरणा मिली थी, इसी-लिये वह अपनी जीवनी को लेखबद्ध कर गये।

नरेन्द्र अजातशत्रु थे। मेरे साथ उनके स्नेह का कारण समानकर्मा समानधर्मा होने के साथ गन्धार में मेरा जन्म होना भी था। उद्यान और गन्धार दोनों पास-पास हैं, इसके कारण हममें आत्मीयता बढ़ गई। लेकिन, यह कहना नरेन्द्र के साथ न्याय करना नहीं होगा कि उन्हें मेरे और पराये का ख्याल था। उनके स्नेह और वात्सल्य के सभी समान अधिकारी थे। उनको यही खेद था कि मैं भी सहस्रबाहु, सहस्रमुख और सहस्रकाय होता, जिसमें एक ही बार सहस्रों की सेवा कर सकता।

उनके इन्हीं गुणों और कार्यों के कारण जब उनकी मृत्यु की सूचना राजधानी के लोगों को मिली, तो सभी अपना स्नेह और सम्मान दिखलाने के लिए उनकी श्मशान-यात्रा में सम्मिलित हुये। सभी जातियों से लोग थे। छांग-आन् में भिक्षु-भिक्षुणी व्यापारी-वैद्य आदि के रूप में रहने वाले आदमियों में शायद ही कोई हो, जो न आया हो। क्योंकि भी उनके प्रति वैसी ही श्रद्धा रखते थे, जैसे चीन के लोग। कूची, कुस्तनी, तुखारी सभी आँसू बहा रहे थे। हमने उनके शव का बड़े सत्कार के साथ दाह-संस्कार किया। उनकी हड्डियों को बिहार के एक स्तूप में रक्खा। उनकी स्मृति को चिरस्थायी रखने के लिए जो कुछ बना, हमने किया। वह होते तो वैसा न करने देते। उनको चिरस्थायिता पर विश्वास नहीं था। वह केवल यही चाहते थे कि प्राणिमात्र सुखी हों, दुनिया का दु:ख-समुद्र सूख जाये।

इति

14-12-53

मंसूरी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.